तृतिय वर्ष कला

हिन्दी प्रश्नपत्र क्र.४

हिंदी साहित्य का इतिहास

डॉ. राजन वेळूकर कुलगुरू मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई.	**डॉ. धनेश्वर हरिचंदन** प्राध्यापक एवं संचालंक दूर एवं मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई.

कार्यक्रम समन्वयक एवं संपादक :- **डॉ. संध्या एस. गर्जे**
समन्वयक, हिन्दी विषय
दूर एवं मुक्त अध्ययन संस्था
मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई.

अभ्यास लेखक :- **डॉ. पी. के. धुमाळ**
कला, वाणिज्य और विज्ञान महाविद्यालय,
शिवले, ता. मुरबाड.

:- **डॉ. दत्ता मुरूमकर**
रुईया महाविद्यालय,
माटूंगा, मुंबई - ४०० ०१९.

:- **डॉ. बालाजी गायकवाड**
सिद्धार्थ महाविद्यालय,
आनंद भवन, फोर्ट, मुंबई - ४०० ००१.

डिसेंबर, २०१० तृतिय वर्ष कला- हिंदी - प्रश्नपत्र-४ हिंदी साहित्य का इतिहास

प्रकाशक :- प्राध्यापक एवं संचालक, दूर एवं मुक्त अध्ययन संस्था
मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई - ४०० ०९८.

अक्षर जुळणी :- तृप्ती ग्राफीक्स्
राधानिवास, फिरोजशहा मेहता रोड,
विलेपार्ले (पूर्व), मुंबई - ४०० ०५७

छपाई :-

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृष्ठ. क्रमांक
१.	**हिन्दी साहित्य : काल–विभाजन एवं नामकरण**	
	हिन्दी साहित्य के इतिहास का कालविभाजन	१
२.	**आदिकाल**	११
३.	**भक्ति का उद्‌भव और विकास**	४०
१.	भक्तिकाल	४३
३–अ	संत काव्य	४७
३–आ	सूफी काव्य	५८
३–इ	राम भक्ति काव्य	६६
३–ई	कृष्ण भक्ति काव्य	७४
४.	**रीतिकाल**	८५
५.	**आधुनिक काल**	१०२
५–अ	भारतेन्दु – युगीन काव्य	११५
५–आ	द्विवेदी युगीन– काव्य	१२७
६.	**छायावाद**	१३९
७.	**प्रगतिवाद**	१६३
८.	**प्रयोगवाद**	१८६
९.	**नई कविता**	२१०
१०.	**नवगीत**	२३५
११.	**उपन्यास**	२५७
१२.	**हिन्दी कहानी ः उद्‌भव और विकासलेखक**	२८७
१३.	**हिन्दी नाटक का विकास**	२९७
१४.	**हिन्दी निबन्ध साहित्य का विकास**	३११

T.Y.B.A. HIND PART - IV

हिंदी साहित्य का इतिहास

(History of Hindi Literature)

पाठ्यक्रम के लिए निर्धारित विषय –

१. **हिन्दी साहित्य :**

काल–विभाजन एवं नामकरण

२. **आदिकाल :**

सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य, जैन साहित्य, लौकिक साहित्य और रासो साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

३. **भक्तिकाल :**

संत काव्य, सूफी काव्य, राम भक्ति काव्य और कृष्ण भक्ति काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

४. **रीतिकाल :**

रीति बद्ध, रीति सिद्ध और रीति मुक्त काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

५. **आधुनिक काल :**

(क) आधुनिक हिन्दी कविता का विकास

(भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता तथा नवगीत की प्रमुख प्रवृत्तियाँ)

(ख) हिन्दी गद्य की विधाएँ

(हिन्दी उपन्यास, कहानी, नाटक और निबन्ध साहित्य का क्रमिक विकास)

(हिन्दी गद्य विधाओं के खंड से युग–विभाजन अथवा युग विशेष सम्बंधी प्रश्न अपेक्षित नहीं हैं।)

विशेष सूचना – इस प्रश्नपत्र में चार प्रश्न विकल्प सहित पूछे जाएँ। पाँचवें प्रश्न में 'क' और 'ख' दो खंड हों। खंड 'क' में दो टिप्पणियाँ पूछी जाएँ जिनमें से किसी एक का उत्तर अपेक्षित हो और खंड 'ख' के अन्तर्गत **दस वस्तुनिष्ठ** प्रश्न निर्धारित प्रश्न सूची में पूछे जाएँ। सभी प्रश्नों के लिए २० अंक निर्धारित हैं।

निर्धारित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की सूची

१. हिन्दी साहित्य के आरंभिक युग को 'आदिकाल' के नाम से किसने अभिहित किया है? **– हजारी प्रसाद द्विवेदी**

२. हिन्दी का प्रथम कवि किसे माना गया है? **– सरहपाद**

३. 'वीसलदेव रासो' के रचयिता का नाम लिखिए। **– नरपति नाल्ह**

४. 'पउम चरिउ' किसकी रचना है? **– स्वयंभू**

५. आदिकाल में खड़ी बोली को काव्य–भाषा बनानेवाले प्रथम कवि का नाम लिखिए। **– अमीर खुसरो**

६. किस कवि को 'मैथिल कोकिल' कहा गया है? **– विद्यापति**

७. सरहपाद की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना कौन–सी है? **– दोहाकोष**

८. हिन्दी साहित्य के किस काल को 'हिन्दी साहित्य का स्वर्ण–युग' कहा गया है? **– भक्तिकाल**

९. 'चंदायन' के रचनाकार का नाम लिखिए। **– मुल्ला दाऊद**

१०. 'दादू' भक्तिकाल की किस धारा के कवि है? **– निर्गुण**

११. 'कवितावली' के रचयिता का नाम लिखिए। **– तुलसीदास**

१२. 'भ्रमरगीत' के रचनाकार का नाम लिखिए। **– सूरदास**

१३. तुलसीदास ने किस महाकाव्य की रचना की? **– रामचरित मानस**

१४. 'शुद्धाद्वैतवाद' का सम्बंध हिन्दी साहित्य की किस धारा से है? **– कृष्ण भक्ति शाखा (वल्लभाचार्य)**

१५. राम भक्ति काव्य पर किस दर्शन का प्रभाव पड़ा है?**– विशिष्ठा द्वैतवाद (रामानुजाचार्य)**

१६. पुरुष प्रधान सामंती परंपरा को किस मध्ययुगीन कवयित्री ने चुनौती दी थी? **– मीरा**

१७. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'उत्तर मध्य काल' को कौन–सा नाम दिया है? **– रीतिकाल**

१८. रीतिकाल को काव्य की दृष्टि से कितने भागों में बाँटा गया हैं? **– तीन**

१९. रीति सिद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि कौन हैं? **– बिहारी**

२०. रीतिकाल के किस कवि ने वीररस प्रधान रचनाएँ की हैं? **– भूषण**

२१. घनानंद किस काव्य–धारा के कवि हैं? **– रीतिमुक्त**

२२. आधुनिक काल में लिखा गया खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य कौन–सा है? **– प्रिय प्रवास**

२३. 'साकेत' के रचनाकार का नाम लिखिए। **– मैथिली शरण गुप्त**

२४. 'पुष्प की अभिलाषा' कविता का कवि कौन है? **– माखनलाल चतुर्वेदी**

२५. छायावाद को 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' किस आलोचक ने कहा है? **– डॉ. नग्रेंद्र**

२६. कामायनी में किस दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है? **– शैव दर्शन**

२७. 'सरोज स्मृति' नामक रचना किस कवि ने की है? **– निराला**

२८. 'सरस्वती' पत्रिका ने निराला की किस रचना को अस्वीकृत कर दिया था?
– जूही की कली

२९. आधुनिक काल की मीरा किसे कहा जाता है? **– महादेवी वर्मा**

३०. 'रसवंती' के रचनाकार का नाम लिखिए। **–'दिनकर' रामधारि सिंह दिनकर**

३१. 'मधुशाला' के रचनाकार का नाम लिखिए। **– हरिवंशराय बच्चन**

३२. प्रकृति का सुकुमार कवि किसे कहा गया है? **– सुमित्रानंदन पंत**

३३. 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' काव्य संग्रह के कवि कौन हैं?**– 'मुक्तिबोध' गजानन माधव मुक्तिबोध**

३४. 'अँधेरे में' कविता का रचनाकार कौन है? **– मुक्तिबोध**

३५. 'आँगन के पार द्वार' काव्यसंग्रह को किस कवि ने लिखा है? **– अज्ञेय**

३६. 'संसद से सड़क तक' काव्य संग्रह को किसने लिखा है? **– धुमिल**

३७. हिन्दी का प्रतिनिधि ग़ज़लकार किसे माना जाता है? **– दुष्यंत कुमार**

३८. 'शबरी' नामक कृति के रचयिता कौन हैं? **– जगदीश गुप्त**

३९. 'विश्वास बढ़ता ही गया' कविता किसने लिखी है? **– शिवमंगल सिंह 'सुमन'**

४०. 'बादल को घिरते देखा है' कविता के रचयिता का नाम लिखिए। **– नागार्जुन**

४१. 'चिन्तामणि' किसके निबंधों का संकलन है? **– आचार्य रामचंद्र शुक्ल**

४२. 'आँगन का पंछी और बनजारा मन' निबंध संग्रह के लेखक का नाम लिखिए।
– विद्यानिवास मिश्र

४३. 'उसने कहा था' कहानी के लेखक कौन थे? **– चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी'**

४४. 'मानसरोवर' किसकी कहानियों का संग्रह है? **– प्रेमचंद**

४५. 'स्मृति की रेखाएँ' नामक संग्रह किसने लिखा है? **– महादेवी वर्मा**

४६. 'अंधेरनगरी' नाटक का लेखक कौन है? **– भारतेन्दु हरिश्चंद्र**

४७. 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक के लेखक का नाम लिखिए। **– शंकर शेष**

४८. 'जल टूटता हुआ' उपन्यास किसने लिखा है? **– रामदास मिश्र**

४९. 'बेतवा बहती रही' उपन्यास की लेखिका का नाम लिखिए। **– मैत्रेयी पुष्पा**

५०. 'दूसरी परंपरा की खोज' किसकी रचना है? **– डॉ. नामवर सिंह**

५१. 'परमाल रासो' के कवि का क्या नाम है?
(१) चन्दबरदाई (२) नरपति नाल्ह **(३) <u>जगनिक</u>** (४) दलपत विजय।

५२. हिन्दी साहित्य के आदिकाल को 'सिद्ध सामंत काल' किसने कहा है?
(१) रामचंद्र शुक्ल (२) रामकुमार वर्मा **(३) <u>राहुल सांकृत्यायन</u>** (४) डॉ. नगेन्द्र।

५३. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी का प्रथम महाकाव्य किसे माना है?
(१) कीर्तिपताका (२) पद्मावत **(३) <u>पृथ्वीराज रासो</u>** (४) प्रियप्रवास।

५४. 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' किसने लिखा है?
(१) मिश्रबंधु (२) राजकुमार शर्मा (३) गणपतिचंद्र गुप्त **(४) <u>बच्चन सिंह।</u>**

५५. 'बीजक' के रचयिता का क्या नाम है?

(१) सूरदास **(२) कबीरदास** (३) जायसी (४) दयाल।

५६. निम्नलिखित में से कौन–सी रचना जायसी की नहीं है?

(१) पद्मावत (२) अखरावट **(३) चंदायन** (४) आखिरी कलाम।

५७. भारत में भक्ति का स्त्रोत कहाँ से प्रस्फुटित होकर उत्तर भारत में आया?

(१) पूर्व (२) पश्चिम (३) सिंध **(४) दक्षिण।**

५८. 'संतन को कहा सीकरी सो काज' किसकी पंक्ति है?

(१) सूरदास **(२) कुंभनदास** (३) चतुर्भुजदास (४) तुलसीदास।

५९. नानक किस काव्य–धारा के कवि है?

(१) सूफी काव्य (२) राम काव्य **(३) संत काव्य** (४) कृष्ण काव्य।

६०. 'मानुस प्रेम भयउ बैकुंठी' किस कवि की पंक्ति है?

(१) दादू (२) मुल्ला दाउद (३) कुतुबन **(४) जायसी।**

६१. 'भ्रमरगीत' के रचयिता कौन है?

(१) तुलसीदास **(२) सूरदास** (३) बिहारी (४) कबीरदास।

६२. सैयद इब्राहिम ने कृष्ण भक्ति के प्रभावश अपना नाम रख लिया?

(१) कृष्णदास (२) रामदास **(३) रसखान** (४) प्रेमदास।

६३. 'पुष्टिमार्ग' का जहाज किस कवि को कहा गया है?

(१) कबीरदास **(२) सूरदास** (३) तुलसीदास (४) केशवदास।

६४. अकबर के दरबार के किस सदस्य ने 'दोहावली' की रचना की?

(१) बीरबल **(२) रहीम** (३) तानसेन (४) इनमें से किसी ने नहीं।

६५. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिकाल को क्या नाम दिया है?

(१) रीतिकाल (२) श्रृंगारकाल **(३) अलंकृत काल** (४) उत्तर मध्यकाल।

६६. रीतिमुक्त काव्य–धारा के प्रमुख कवि इनमें से कौन है?

(१) बिहारी (२) देव **(३) घनानंद** (४) पद्माकर।

६७. 'रामचंद्रिका' के रचयिता का नाम क्या है?

(१) नापादास (२) तुलसीदास **(३) केशवदास** (४) भिखारीदास।

६८. पद्माकर रीतिकाल की किस काव्यधारा के कवि है?

(१) रीतिबद्ध (२) रीतिसिद्ध (३) रीतिमुक्त (४) इनमें से कोई नहीं।

६९. निम्नलिखित में से कौन–सी रचना मैथिलीशरण गुप्त की है?

(१) प्रियप्रवास **(२) साकेत** (३) लहर (४) उर्वशी।

७०. कौन–सा कवि 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से प्रसिद्ध है?

(१) रामनरेश त्रिपाठी (२) नरेंद्र शर्मा **(३) माखनलाल चतुर्वेदी** (४) धूमिल।

७१. इनमें से कौन–सा कवि छायावादी है?

(१) हरिवंशराय बच्चन **(२) जयशंकर प्रसाद** (३) अज्ञेय (४) धूमिल।

७२. भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना कब हुई थी?

(१) १९३६ (२) १९३५ (३) १९३८ (४) १९५०।

७३. प्रगतिवाद किस दर्शन से प्रभावित है?

(१) अस्तित्ववाद **(२) <u>मार्क्सवाद</u>** (३) गाँधीवाद (४) मनोविश्लेषणवाद।

७४. प्रयोगवादी काव्यधारा का प्रारंभ किस पुस्तक के प्रकाशन से माना जाता है?

(१) <u>तारसप्तक</u> (२) दूसरा सप्तक (३) तीसरा सप्तक (४) चौथा सप्तक।

७५. अज्ञेय के उपान्यासं का शीर्षक है –

(१) दिव्या **(२) <u>शेखर एक जीवनी</u>** (३) मृगनयनी (४) चित्रलेखा।

७६. 'अंधा युग' किसकी रचना है?

(१) भारतेन्दु (२) नरेश मेहता **(३) <u>धर्मवीर भारती</u>** (४) धूमिल।

७७. मुक्तिबोध के काव्यसंग्रह का नाम है?

(१) बाघ (२) संसद के सड़क तक **(३) <u>चाँद का मुँह टेढ़ा</u>** (४) कुआनोनदी।

७८. 'पहाड़ पर लालटेन' किसका काव्य–संग्रह है?

(१) <u>उदय प्रकाश</u> (२) मंगलेश डबराल (३) अरुण कमल (४) राजेश जोशी।

७९. 'साये में धूप' के रचनाकार है?

(१) कुमार विकल (२) विनोद कुमार **(३) <u>दुष्यंत कमार</u>** (४) राजेश जोशी।

८०. भारतेन्दु हरिश्चंद्र के नाटक का शीर्षक है?

(१) <u>अंधेरनगरी</u> (२) बकरी (३) शकुंतला (४) संयोगिता स्वयंवर।

८१. 'सरस्वती' के संपादक इनमें से कौन थे?

(१) प्रतापनारायण मिश्र **(२) <u>महावीर प्रसाद द्विवेदी</u>** (३) हजारी प्रसाद द्विवेदी
(४) हरिऔध।

८२. आचार्य रामचंद्र शुक्ल का निबंध–संकलन इनमें से कौन–सा है?

(१) अशोक के फूल **(२) <u>चिंतामणि</u>** (३) विचार और वितर्क (४) रसज्ञरंजन।

८३. 'पगडंडियों का जमाना' किस व्यंग्यकार का व्यंग्य–संग्रह है?

(१) गुलाबराय (२) शरद जोशी **(३) <u>हरिशंकर परसाई</u>** (४) नरेंद्र कोहली।

८४. बंग महिला की कहानी का नाम है?

(१) किस्सा तोता–मैना (२) उसने कहा था (३) हार की जीत **(४) <u>दुलाईवाली।</u>**

८५. 'समांतर कहानी' के प्रवर्तक कौन है?

(१) प्रेमचंद (२) मोहन राकेश (३) राजेंद्र यादव **(४) <u>कमलेश्वर।</u>**

८६. इनमें से कौन–सा नाटक प्रसादजी का नही है?

(१) स्कंदगुप्त (२) चंद्रगुप्त (३) ध्रुवस्वामिनी **(४) <u>भारत दुर्दशा।</u>**

८७. 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक के नाटककार का नाम क्या है?

(१) शंकर शेष **(२) <u>मोहन राकेश</u>** (३) लक्ष्मीनारायण लाल (४) उदय शंकर भट्ट।

८८. 'आठवां सर्ग' नाटक के रचयिता का नाम लिखिए?

(१) भीष्म साहनी **(२) <u>सुरेंद्र वर्मा</u>** (३) गोविंद चातक (४) मोहन राकेश।

८९. 'बकरी' नाटक के नाटककार का नाम लिखिए?

(१) जगदीशचंद्र माथुर (२) मोहन राकेश **(३) <u>सर्वेश्वर दयाल सक्सेना</u>**
(४) असगर वज़ाहत।

९०. हिन्दी का पहला उपन्यास किसे माना जाता है?
(१) नूतन ब्रह्मचारी **(२) परीक्षा गुरु** (३) ठेठ हिन्दी का ठाठ (४) चंद्रकांता।

९१. इनमें से कौन–सा उपन्यास प्रेमचंद का नहीं है?
(१) कर्मभूमि (२) रंगभूमि **(३) तितली** (४) गोदान।

९२. 'त्यागपत्र' उपन्यास के लेखक का नाम बताइए?
(१) यशपाल (२) अमृतलाल नागर (३) जयशंकर प्रसाद **(४) जैनेन्द्र कुमार।**

९३. सूरदास के जीवन पर आधारित उपन्यास का नाम बताइए?
(१) मानस का हंस (२) सेवा सदन **(३) खंजन नयन** (४) भाग्यवती।

९४. इनमें से कौन–सा उपन्यास अज्ञेय का नहीं है?
(१) दादा कामरेड (२) शेखर एक जीवनी (३) नदी के द्वीप
(४) अपने–अपने अजनबी।

९५. 'रुकोगी नहीं राधिका' की लेखिका कौन है?
(१) मृदुला गर्ग (२) मन्नू भंडारी **(३) उषा प्रियंवदा** (४) कृष्णा सोबती।

९६. 'चाक' के रचनाकार का नाम लिखिए?
(१) मैत्रेयी पुष्पा (२) मंजुल भगत (३) सूर्यबाला (४) ममता कालिया।

९७. 'निराला की साहित्य साधना' किसकी कृति है?
(१) नामवर सिंह (२) नगेंद्र **(३) रामविलास शर्मा** (४) महादेवी वर्मा।

९८. 'बिल्लेसुर बकरिहा' किसका संस्मरणात्मक रेखाचित्र है?
(१) जयशंकर प्रसाद **(२) निराला** (३) पंत (४) महादेवी वर्मा।

९९. हिन्दी का पहला आत्मकथा लेखक कौन है?
(१) वियोगी हरि (२) उपेन्द्रनाथ अश्क (३) बनारसीदास चतुर्वेदी
(४) बनारसीदास जैन।

१००. 'घुमक्कड़शास्त्र' के लेखक का नाम क्या है?
(१) रांगेय राघव **(२) अज्ञेय** (३) राहुल सांकृत्यायन (४) यशपाल।

संदर्भ ग्रंथ

1. **हिन्दी साहित्य का इतिहास** — आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. **हिन्दी साहित्य का इतिहास** — सं. डॉ. नगेन्द्र
3. **हिन्दी साहित्य का आदिकाल** — आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. **हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास** — आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. **हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ** — डॉ. शिवकुमार शर्मा
6. **हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास** — डॉ. रामकुमार वर्मा
7. **हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास** — डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
8. **हिन्दी साहित्य का इतिहास** — डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
9. **हिन्दी साहित्य का इतिहास** — डॉ. विजयेन्द्र स्नातक
10. **हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास** — डॉ. बच्चन सिंह
11. **हिन्दी साहित्य तथा साहित्येतिहास: अंतरानुशासनों का अनुशीलन** — डॉ. देवेश ठाकुर
12. **स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास** — डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
13. **आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास** — डॉ. बच्चन सिंह
14. **हिन्दी साहित्य का इतिहास** — सं. डॉ. रामसजन पांडेय
15. **साठोत्तर हिन्दी कविता** — डॉ. रतन कुमार पांडेय
16. **मध्यकालीन काव्य वैभव** — डॉ. शीतल प्रसाद दुबे

हिन्दी साहित्य : काल–विभाजन एवं नामकरण
हिन्दी साहित्य के इतिहास का कालविभाजन
आदिकाल

लेखक – डॉ. पी. के. धुमाळ

१

हिन्दी साहित्य : काल–विभाजन एवं नामकरण
हिन्दी साहित्य के इतिहास का कालविभाजन

इकाई की रूपरेखा

१.१. उद्देश्य

१.२ प्रस्तावना

१.३ हिन्दी साहित्य : काल विभाजन एवं नामकरण

१.४ बोध प्रश्न

१.१. उद्देश्य

प्रस्तुत खंड की पहली इकाई में हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन किया जाएगा। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य का काल विभाजन नामकरण पर विस्तृत चर्चा इस अध्याय में की गयी है। काल विभाजन और नामकरण के संबंध में विभिन्न विद्वानों और आचार्यों के मत भी इस अध्याय में दिये गये हैं। ताकि इस इकाई का अध्ययन कर विद्यार्थी बोध प्रश्नों का उत्तर आसानी से प्राप्त कर सकेंगे।

१.२ प्रस्तावना

साहित्य नदी के प्रवाह की तरह होता है। जो निरंतर आगे बढ़ता है। उसमें न कोई रुकावट आती हैं। और न ही कोई उसे भंग करता है। हाँ समय के साथ साथ उसमें परिवर्तन आते रहते है और परिवर्तन के अनुरूप साहित्य को नयी प्रवृत्तियाँ, नयी दिशाएँ मिलती है।

किसी भी साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन करने की सर्वाधिक उपयुक्त प्रणाली उस साहित्य में प्रवाहित साहित्य धाराओं, विविध प्रवृत्तियोंके आधार पर उसे विभाजित करना है। युग की परिस्थितियों के अनुकूल साहित्य की विषय तथा शैलीगत प्रवृतियाँ परिवर्तित होती रहती है। हिन्दी साहित्य के विषय में भी यही बात युक्तियुक्त प्रतीत होती है। एक विशेष काल में समाज की विशेष परिस्थितियाँ एवं तत्सम्बन्धी विचारधाराएँ रही है और उन्हीं के अनुरुप साहित्यिक रचनाएँ प्रस्तुत हुई है। अपवाद रहे अवश्य परन्तु गौण प्रवृत्ति के रुप में। काल–विभाजन करते समय स्वयं आचार्य शुक्लजी ने विभाजन के आधार के सम्बन्ध में अपना मत स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने कहा है– ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्ही चित्तवृत्तियोंकी परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।''

हिन्दी साहित्य के इतिहास की सामग्री 'भक्तमाल', 'चौराशी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' आदि ग्रन्थों में मिलती है किंतु कालविभाजन और नामकरण की ओर कोई दृष्टि नही की गई थी। हिन्दी साहित्य का इतिहास सर्वप्रथम लिखने का श्रेय एक फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी को दिया जाता है। इन्होंने फ्रेन्च भाषा में 'इसवार द ला सितरेत्युर रहुई ए हिन्दुस्तानी' नामक ग्रन्थ में अंग्रेजी वर्ण क्रमानुसार हिन्दी और उर्दू भाषा के अनेक कविंयों का परिचय दिया है। परन्तु उन्होंने भी कलविभाजन और नामकरण की ओर ध्यान नहीं दिया था। इस परम्परा का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ हिन्दी विद्वान शिवसिंह सेंगर का 'शिवसिंह सरोज' है। इसमें लगभग एक हजार भाषा–कवियों के जीवन चरित्र और इनकी कविताओं के उदाहरण संग्रहित किये है किंतु काल विभाजन का इसमें कोई संकेत नहीं है।

इस सम्बन्ध में सबसे पहला प्रयास करने का श्रेय जार्ज ग्तियर्सन को है। पर जैसा कि उन्होंने स्वयं अपने ग्रन्थ की भूमिका में स्वीकार किया है, उनके सामने अनेक ऐसी कठिनाइयाँ थी जिससे वे काल–क्रम एवं काल विभाजन के निर्वाह में पूर्णत: सफल नहीं हो सके। उन्होंने लिखा है – ''सामग्री को यथा संभव कालक्रमानुसार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह सर्वत्र सरल नहीं रहा है और कतिपय स्थलों पर तो यह असंभव सिद्ध हुआ है। इन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास को निम्नलिखित ग्यारह शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया है। – (१) चारण–काल 1702 -1300 ई.) (२) पन्द्रहवीं शती का धार्मिक पुनर्जागरण (३) जायसी की प्रेम कविता (४) ब्रज का कृष्ण–सम्प्रदाय, (५) मुगल दरबार (६) तुलसीदास (७) रीति काव्य (८) तुलसीदास के अन्य परवर्ती (९) अट्ठारहवीं शताब्दी (१०) कम्पनी के शासन में हिन्दुस्तान और (१) महारानी व्हिक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्तान। डॉ. ग्तियर्सन के विभाजन में अनेक असंगतियाँ, न्यूनता एवं त्रुटियाँ होते हुए भी प्रथम प्रयास होने के कारण इसका अपना महत्व है।

आगे चलकर मिश्र बन्धुओं ने अपने 'मिश्र बन्धु–विनोद' (1913) में काल–विभाजन का नया प्रयास किया जो प्रत्येक दृष्टि सें ग्तियर्सन के प्रयास से बहुत अधिक प्रौढ़ एवं विकसित कहा जा सकता है। इनका विभाजन इसप्रकार है–

१	आरम्भिक काल / पूर्वारम्भिक काल	(600 - 1343 वि.)
	उत्तरारम्भिक काल	(1344 - 1444 वि.)
२.	माध्यमिक काल / पूर्व माध्यमिक काल	(1445 - 1560 वि.)
	प्रौढ़ माध्यमिक काल	(1561 - 1580 वि.)
३.	अलंकृत काल / पूर्वालंकृत काल	(1681 - 1790 वि.)
	उत्तरालंकृत काल	(1791 - 1889 वि.)
४.	परिवर्तन काल –	(1890 - 1925 वि.)
५.	वर्तमान काल –	(1926 वि. से अब तक)

मिश्र बन्धुओ के पश्चात् आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने सन् 1929 में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' प्रस्तुत करते हुए काल–विभाजन का नया प्रयास किया। इनके काल–विभाजन में अधिक सरलता, स्पष्टता एवं सुबोधता है। अपनी इसी विशेषता के कारण वह आज तक

सर्वमान्य एवं सर्वत्र प्रचलित है। उनका काल–विभाजन इसप्रकार है –

१. आदिकाल (वीरगाथा काल) संवत् 1050 से 1375
२. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) संवत् 1375 से 1700
३. उत्तर मध्यकाल (रीतिकल) संवत् 1700 ते 1900
४. आधुनिक काल (गद्यकाल) संवत् 1900 से अब तक।

आ. शुक्लजी के पश्चात् डॉ. रामकुमार वर्मा का नाम इस प्रसंग में उल्लेखनीय है, जिन्होंने अपना नया– काल विभाजन प्रस्तुत किया जो इसप्रकार है –

१. सन्धिकाल (750 - 100 वि.)
२. चारण काल (1000 - 1375 वि.)
३. भक्तिकाल (1375 - 1700 वि.)
४. रीतिकाल (1700 - 1900 वि.)
५. आधुनिक काल (1900 से अब तक)

डॉ. वर्मा के विभाजन के अंतिम तीन काल–विभाजन आचार्य शुक्लजी के ही विभाजन के अनुरूप है, केवल 'वीरगाथाकाल' के स्थान पर 'चारणकाल' एवं 'सन्धिकाल' नाम देकर अपना नयापण स्थापित किया है।

इस परम्परा में बाबू श्यामसुन्दर दास द्वारा किया हुआ काल–विभाजन भी उल्लेखनीय है। उनके काल–विभाजन में आ. शुक्लजी से कोई अधिक भिन्नता नहीं है। उनका काल–विभाजन इसप्रकार है –

१. आदिकाल (वीरगाथा का युग संवत् 1000 से संवत् 1400 तक)
२. पूर्व मध्ययुग (भक्ति का युग, संवत् 1400 से संवत् 1700 तक)
३. उत्तर मध्ययुग (रीति ग्रन्थों का युग, संवत् 1700 से, संवत् 1900 तक)
४. आधुनिक युग (नवीन विकास का युग, संवत् 1900 से अब तक)

उपर्युक्त काल–विभाजन की परम्परा में आ. शुक्लजी के बाद कुछ विद्वानों ने थोड़ा–बहुत परिवर्तन करके अपना काल–विभाजन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। परंतु शुक्लजी का इतिहास लेखन का आधार ही अधिक वैज्ञानिक, तर्कसंगत और उपयुक्त प्रतीत होता है। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' में उसका अनुमोदन किया है। उनका काल–विभाजन इसप्रकार है –

१. प्रारम्भिक काल (1184 - 1350 ई.)
२. पूर्व मध्यकाल (1350 - 1600 ई.)
३. उत्तर मध्यकाल (1600 - 1857 ई.)
४. आधुनिक काल (1857 ई. अब तक)

इस परम्परा में डॉ. नगेन्द्र का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने हिन्दी साहित्य का काल–विभाजन तथा नामकरण इसप्रकार किया है –

१. आदिकाल – 7 वीं शती के मध्य से 14 वीं शती के मध्य तक।
२. भक्तिकाल – 14 वीं शती के मध्य से 17 वीं शती के मध्य तक।
३. रीतिकाल – 17 वीं शती के मध्य से 19 वीं शती के मध्य तक।
४. आधुनिक काल – 19 वीं शती के मध्य से अब तक।

अ) पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु काल) सं. 1877 - 1900 ई.

ब) जागरण–सुधार काल (द्विवेदी काल) सं. 1900 - 1918 ई.

क) छायावाद काल सं. 1918 - 1938 ई.

ड) छायावादोत्तर काल

१. प्रगति–प्रयोग काल – सं. 1938 - 1953 ई.

२. नवलेखन काल सं. 1953 ई. से अब तक।

उपर्युक्त सभी विद्वानों के काल–विभाजन में आ. शुक्लजी का काल–विभाजन ही सर्वसम्मत एवं उपर्युक्त माना गया है।

१.३ हिन्दी साहित्य का नामकरण

हिन्दी साहित्य के काल–विभाजन को लेकर विद्वानो में अधिक मतभेद नही है, केवल हिन्दी साहित्य के आरम्भ को लेकर मतभेद है। उसमें भी मुख्यत: दों वर्ग है – एक वर्ग हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ सातवीं शताब्दी से मानता है, और दूसरा वर्ग दसवीं शताब्दी से। वास्तव में सातवी शताब्दी से दसवी शताब्दी के कालखण्ड को हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि के रुप में स्वीकार कर लिया जाय तो यह मतभेद भी समाप्त हो जाता है क्योंकि इस कालखण्ड़ की रचनाएँ अपभ्रंश में है और अपभ्रंश से ही हिन्दी भाषा का जन्म हुआ है। हिन्दी भाषा एवं साहित्य की मूल चेतना को जानने के लिए इस कालखण्ड़ की भाषा के स्वरुप एवं साहित्य–धारा को समझना अति आवश्यक है।

हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालखण्ड़ों के नामकरण को लेकर विद्वानों में मतभेद है। मुख्यत: दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक के आरम्भिक कालखण्ड़ (आदिकाल) और सत्रहवी शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक के कालखण्ड़ (रीतिकाल) के नामकरण को लेकर ही अधिक मतभेद है।

अ) दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक के कालखण्ड़ का विभिन्न विद्वानों द्वारा किया गया नामकरण इसप्रकार है –

चारणकाल – ग्रियर्सन

प्रारम्भिक काल – मिश्रबन्धु

वीरगाथाकाल – आ. रामचन्द्र शुक्ल

सिद्धसामंत काल – राहुल सांकृत्यायन

बीजवपन काल – महावीरप्रसाद द्विवेदी

वीरकाल – विश्वनाथप्रसाद मिश्र

आदिकाल – हजारीप्रसाद द्विवेदी

संधिकाल एवं चारणकाल – डॉ. रामकुमार वर्मा

चारणकाल :– ग्रियर्सन ने सर्वप्रथम हिन्दी साहित्येतिहास के आरम्भिक काल का नामकरण 'चारणकाल' किया है, किंतु इस नामकरण का कोई ठोस प्रमाण वे प्रस्तुत नही कर सके है। उन्होंने चारणकाल ६४३ ईसवी से माना है जबकि १००० ईसवी तक चारण कवियों

द्वारा लिखित कोई रचना उपलब्ध नहीं होती। यत: यह नामकरण उपयुक्त नहीं है।

प्रारम्भिक काल :– मिश्रबन्धुओं ने ६४३ ईसवी से १३८७ ईसवी तक के काल को 'प्रारम्भिक काल' नाम से अभिहित किया है। यह नाम किसी साहित्यिक प्रवृत्ति का द्योतक नही है। यह एक सामान्य संज्ञा है जो हिन्दी भाषा के प्रारम्भ को बताती है। अत: यह नाम भी तर्कसंगत नही है।

वीरगाथाकाल :– आ. रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में संवत् १०५० से लेकर १३७५ ईसवी तक की कालावधि को 'वीरगाथा काल' नाम दिया है। अपने मत के समर्थन में उन्होंने कहा है – ''आदिकाल की दीर्घ परम्परा के बीच प्रथम डेढ़–दो सौ वर्षो के भीतर तो रचना की किसी विशेष प्रवृत्ति का निश्चय नही हो पाता है – धर्म, नीति, श्रृन्गार, वीर सब प्रकार की रचनाएँ दोहों में मिलती है। इस अनिर्दिष्ट लोक–प्रवृत्ति के उपरान्त जब से मुसलमानों की चढ़ाइयाँ आरंभ होती है तब से हम हिन्दी साहित्य की प्रवृत्ति विशेष रूप में बँधती हुई पाते है। राजाश्रित कवि और चारण जिस प्रकार रीति, श्रृन्गार आदि के फुटकल दोहे राजसभाओं में सुनाया करते थे, उसी प्रकार अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रम पूर्ण चरितों या गाथाओं का भी वर्णन किया करते थे। यह प्रबन्ध परम्परा 'रासो' के नाम से पाई जाती है, जिसे लक्ष्य करके इस काल को हमने 'वीरगाथा काल' कहा है। शुक्लजी ने इस युग का नामकरण करने के लिए जिन बारह ग्रन्थों को आधार बनाया वे ग्रन्थ हैं –

१. विजयपाल रासो	७. पृथ्वीराज रासो
२. हम्मीर रासो	८. जयचन्द प्रकाश
३. कीर्तिलता	९. जयमयंक जसचन्द्रिका
४. कीर्तिपताका	१०. परमाल रासो
५. खुमान रासो	११. खुसरो की पहेलियाँ
६.बीसलदेव रासो	१२. विद्यापति की पदावली

जिन बारह रचनाओं को शुक्ल जी ने नामकरण का आधार माना. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने उन रचनाओं को अप्रामाणिक सिद्ध करते हुए 'वीरगाथाकाल' नामकरण को निरर्थक सिद्ध किया है। जैसे बीसलदेव रासो और खुमान रासो नये शोध परिणामों के आधार पर सोलहवीं शताब्दी में रचित माने गए हैं। हम्मीर रासो, जयचन्द्रप्रकाश और जयमयंक जसचन्द्रिका नोटिस मात्र है। इसीप्रकार प्रसिद्ध महाकाव्य पृथ्वीराज रासो को भी अर्ध प्रामाणिक मान लिया गया है। परमाल रासो या आल्हाखंड के मूल का आज कही पता नही लगता और खुसरो की पहेलियाँ तथा विद्यापति की पदावली भी वीरगाथात्मक नही है। इसके अतिरिक्त इस काल में केवल वीरकाव्य ही नही लिखे गये अपितु धार्मिक, श्रृन्गारिक और लौकिक साहित्य की भी रचनाएँ हुई है।

सिद्धसामंत काल :– राहुल सांकृत्यायन ने इस काल का नामकरण 'सिद्ध सामन्त काल' किया है। इनके मतानुसार इस कालखण्ड़ के समाज जीवन पर सिद्धों का और राजनीति पर सामन्तों का एकाधिकार था। इस युग के कवियों ने अपनी रचनाओं में सामन्तों का यशोगान ही प्रमुख रूप से किया है। इस युग की अन्तर्बाह्य प्रवृत्तियों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि वहाँ सिद्धों और सामन्तों का ही वर्चस्व था।

इस नामकरण से तत्कालीन सामन्ती वातावरण का तो पता चलता है परंतु किसी साहित्यिक प्रवृत्ति का उद्घाटन नहीं हो पाता। इस नामकरण से नाथ पंथी और दृढ योगी कवियों तथा खुसरो आदि की काव्य प्रवृत्तियों का समावेश नही हो पाता।

बीजवपन काल :– आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने इस काल का नामकरण 'बीजवपन काल' किया है। परंतु यह नाम भी उपयुक्त नहीं है। भाषा की दृष्टि से यह काल भले ही बीजवपन का काल हो, परंतु साहित्यिक प्रवृत्ति की दृष्टि से स्थिति ऐसी नही थी। इस नाम से यह अभास होता है कि उस समय साहित्यिक प्रवृत्तियाँ शैशव में थी, जबकि ऐसा नही है। साहित्य उस युग में भी प्रौढ़ता को प्राप्त या अंत: यह नाम उचित नही है।

वीरकाल :– आ. विश्वनाथ प्रसाद मित्र जी ने इस काल का नाम 'वीरकाल' किया है। यह नाम आ. रामचन्द्र शुक्ल द्वारा दिये गये नाम 'वीर गाथा काल' का रुपान्तर मात्र है, किसी नवीन तथ्य को प्रस्तुत करने वाला नहीं है। अंत: यह नामकरण भी समीचीन नही है।

सन्धि एवं चारणकाल :– डॉ. रामकुमार वर्मा ने आदिकाल को दो खण्डों मे विभाजित कर 'सन्धिकाल' एवं 'चारणकाल' नाम दिया है। सन्धिकाल भाषा की ओर संकेत करता है और चारणकाल से एक वर्ग विशेष का बोध होता है। इस नामकरण में भी यह त्रुटि है कि इसमें किसी साहित्यिक प्रवृत्ति को आधार नहीं बनाया गया। किसी जाति विशेष के नाम पर साहित्य में उस काल का नामकरण उचित नहीं। अत: यह नामकरण भी ठीक नहीं है।

आदिकाल :– आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने इस काल के साहित्य को अधिकांशत: संदिग्ध और अप्रामाणिक मानते हुए भी उसमें दो विशेषताओं को रेखांकित किया। नवीन ताजगी और अपूर्व तेजस्विता। इन दोनों विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए इस काल का नाम उन्होंने 'आदिकाल' रखा। अपने इस मत को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि– वस्तुत: हिन्दी का आदिकाल शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि यह काल कोई आदिम मनोभावापन परम्पराविनिर्मुक्त काव्य रूढ़ियों से अछूते साहित्य का काल है। यह ठीक नहीं है। यह काल बहुत अधिक परम्परा प्रेमी, रूढ़िग्रस्त और सचेत कवियों का काल है।''

इस प्रकार वास्तव में 'आदिकाल' प्रारम्भ का न होकर परम्परा के विकास का सूचक है। इस नाम से सातवी–आठवीं शताब्दी के बौद्ध, सिद्ध, नाथयोगियों के साथ वीर गाथा काव्यों और अब्दुर्रहमान, विद्यापति तथा खुसरो आदि को एक सूत्रता में समेटा जा सकता है और फुटकर कवियों के नाम गिनाने से बचा जा सकता है। आदिकाल नाम में हिन्दी काव्यरुपों एवं भाषा के अंकुरित होने का भाव भी आ जाता है। अत: यही नाम उपयुक्त ठहरता है। अधिकांश विद्वानों द्वारा भी 'आदिकाल' नाम ही मान्य रहा है।

ब) चौदहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक के कालखण्ड का नामकरण :–

आ. रामचन्द्र शुक्ल जी ने सवंत् १३७५ से लेकर १७०० इ. तक के कालखण्ड को पूर्वमध्यकाल की संज्ञा से अभिहित किया है। इस युग के साहित्य में भक्ति की मुख्य प्रवृत्ति को देखते हुए इस कालावधि का नामकरण 'भक्तिकाल' किया है। इसे परवर्ती सभी विद्वानों ने

स्वीकार किया है और आज भी 'भक्तिकाल' नामकरण सर्वमान्य है।

क) सत्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक के कालखण्ड (रीतिकाल) के नामकरण विषयक मतभेद :–

आ. शुक्लजी ने सवंत् १७०० से लेकर १९०० इ. तक के समय को उत्तर मध्यकाल नाम दिया है। इस युग के साहित्य में रीति (लक्षण) ग्रन्थों के लेखन की परम्परा को देखते हुए इसे 'रीतिकाल' कहना तर्कसंगत माना है। इस काल के नामकरण को लेकर भी विद्वानों में मतभेद है–

अलंकृतकाल – मिश्रबन्धु
रीतिकाल – आ. रामचन्द्र शुक्ल
कलाकाल – रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'
श्रृन्गार काल – पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

अलंकृतकाल :– मिश्रबन्धुओं ने इस युग का नामकरण 'अलंकृत काल' करते हुए कहा है कि – ''रीतिकालीन कवियो'' ने जितने आग्रह के साथ रचना शैली को अलंकृत करने का प्रयास किया है. उतना अन्य किसी भी काल के कवियों ने नहीं। इस प्रवृत्ति के कारण यह अलंकृतकाल है। इस काल को अलंकृतकाल कहने का दूसरा कारण यह है कि इस काल के कवियों ने अलंकार निरूपक ग्रन्थों के लेखन में विशेष रूचि प्रदर्शित की। महाराजा जसवंतसिंह का 'भाषा भूषण', मतिराम का 'ललित ललाम', केशव की 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' तथा सूरति मिश्र की 'अलंकार माला' आदि ग्रन्थ महत्वपूर्ण है।

परंतु इस काल को 'अलंकृतकाल' नाम देना उचित नहीं है क्योंकि अलंकरण की प्रवृत्ति इस काल की विशेष प्रवृत्ति नहीं है। यह प्रवृत्ति तो हिन्दी के आदिकाल से लेकर आज तक चली आ रही है। दूसरे यह नामकरण कविता के केवल बहिरंग पक्ष का सूचक है। इससे कविता के अंतरंग पक्ष भाव एवं रस की अवहेलना होती है तथा बिहारी और मतिराम जैसे रससिद्ध कवि, जिनकी कविता में भाव की प्रधानता है, उनकी कविता के साथ न्याय नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त अलंकृतकाल नाम को स्वीकार कर लेने से इस काल की विशेष प्रवृत्ति श्रृन्गार और शास्त्रीयता की पूर्ण उपेक्षा हो जाती है।

कलाकाल :– रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने इस काल को 'कलाकाल' नाम दिया है। उनका कहना है कि ''मुगल सम्राट शाहजहाँ का सम्पूर्ण शासन काल कला वेष्टित था। इस युग में एक ओर स्थापत्य कला का चरम बिन्दु ताजमहल के रूप में 'काल के गाल का अश्रू' बनकर प्रकट हुआ तो दूसरी ओर हिन्दी कविता भी कलात्मकता से संयुक्त हुई। इस काल के कवियों ने विषय की अपेक्षा शैली की ओर अधिक ध्यान दिया। उनकी कविता में चित्रकला का भी योग हुए बिना न रह सका। अत:एवं यह कलाकाल है।''

कलाकाल नाम से भी वस्तुत: कविता के बाह्य पक्ष की विशेषता का ही बोध होता है। कविता का आंतरिक पक्ष उपेक्षित रह जाता है। साथ ही इस युग की व्यापक श्रृंगारिक चेतना की अवमानना हो जाती है।

श्रृंगार काल :– पं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस काल को 'श्रृंगार काल' कहना अधिक उपयुक्त समझा है। उनके द्वारा दिया गया यह नामकरण इस काल में प्रयुक्त श्रृंन्गार रस की प्रधानता को लक्ष्य कर दिया गया है। परंतु यह नाम भी युक्तिसंगत नही है क्योंकि रीतिकालीन कवियों ने श्रृंन्गार के अतिरिक्त वीर रस की कविता भी लिखी है। साथ ही भक्तिपरक, नीतिपरक रचनाएँ भी इस युग में लिखी गई है। रीतिकालीन कवियों का मूल स्वर श्रृंगार कभी नहीं रहा। उनका उद्देश्य तो अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न कर अर्थोपार्जन करना था। आश्रयदाता विलासी वृत्ति के थे। श्रृंगार में उनकी रूचि को देखते हुए इन्होंने श्रृंगारपरक कविताएँ लिखी। यद्यपि इस काल में श्रृंगार रस की प्रधानता है, परंतु वह स्वतंत्र न होकर सर्वत्र रीति पर आश्रित है। अत: यह नामकरण उचित नहीं है।

रीतिकाल :– आ. रामचन्द्र शुक्लजी ने इस युग का नामकरण 'रीतिकाल' किया है। उनका मत है कि– ''इन रीतिग्रन्थो'' के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगो का शास्त्रीय पद्धति पर निरुपण करना। अत: उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषत: श्रृंगार रस) और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यन्त प्रचुर परिणाम में प्राप्त हुए।'' शुक्लजी के इस नामकरण का आधार इस काल में रीतिग्रन्थों और रीतिग्रन्थकारों की सुदीर्घ परम्परा है। इस नाम को सभी विद्वानों ने लगभग एकमत से स्वीकार किया है। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र आदि विद्वानों ने भी शुक्लजी द्वारा दिये गये इस नाम को स्वीकार किया है। डॉ. भगीरथ मिश्र जी ने इस युग के 'रीतिकाल' नाम की सार्थकता को स्पष्ट करते हुए कहा है – ''कलाकाल कहने से कवियों की रसिकता की उपेक्षा होती है। श्रृंगार काल कहने से वीर रस और राज प्रशंसा की, किंतु रीतिकाल करने से प्राय: कोई भी महत्त्वपूर्ण वस्तुगत विशेषता उपेक्षित नहीं होती और प्रमुख प्रवृत्ति सामने आ जाती है। यह युग रीति–पद्धति का युग था, यह धारणा वास्तविक रूप से सही है।'' इसप्रकार 'रीतिकाल' नामकरण अधिक तर्कसंगत एवंम् वैज्ञानिक प्रतीत होता है।

ड) १९ वीं शताब्दी से अबतक के कालखण्ड़ का नामकरण :–

संवत् १९०० से आरम्भ हुए आधुनिक काल को आ. रामचन्द्र शुक्लजी ने गद्य के पूर्ण विकास एवं प्रधानता को देखते हुए 'गद्यकाल' नाम दिया है। आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रेस के उद्‌भव को ही आधुनिकता का वाहन मानते है। श्यामसुन्दर दास इसे 'नवीन विकास का युग' कहते है। गद्य का विकास इस काल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। यद्यपि इस काल में कविता के क्षेत्र में भी विविध नवीन प्रवृत्तियों का विकास हुआ है, किंतु जैसा विकास गद्य के विभिन्न अंगों का हुआ है, वैसा कविता का नहीं हो सका है।

'आधुनिक काल' को आ. शुक्लजी ने तीन चरणों में विभक्त किया है और इन्हें प्रथम उत्थान, द्वितीय उत्थान तथा तृतीय उत्थान कहा है। अधिकांश आधुनिक विद्वान इन्हें 'भारतेन्दु युग' अथवा 'पुनर्जागरण काल', 'द्विवेदी युग' अथवा 'जागरण–सुधार काल', 'छायावादी युग' तथा 'छायावादोत्तर युग' में प्रगति, प्रयोग काल, नवलेखन काल मानते है। द्विवेदी युग तक तो आधुनिक युग की धारा सीधी रही किंतु छायावाद के जन्म के साथ ही उसमें नाना वादों और प्रवृत्तियों की बाढ सी आ गई है। आधुनिक काल की प्रगति इतनी विशाल और बहुमुखी है कि उसे किसी विशिष्ट वाद या प्रवृत्ति की संकुचित सीमा में नहीं बाँधा जा सकता।

इसी कारण आदिकाल के समान इस काल को भी 'आधुनिक काल' कहना ही अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

१.४ बोध प्रश्न :-

१. हिन्दी साहित्य के काल विभाजन पर विस्तृत लेख लिखिए?

२. विभिन्न विद्वानों ने हिन्दी साहित्य का काल विभाजन किस प्रकार किया है?

◆◆◆◆◆◆

२

आदिकाल

२.० इकाई की रूपरेखा
२.१ उद्देश्य
२.२ प्रस्तावना
२.३ आदिकालीन साहित्य का विस्तृत अध्ययन
२.४ बोध प्रश्न

२.१ उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत आदिकालीन विद्यार्थी साहित्य का विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे। आदिकालीन काव्य में तीन प्रकार की साहित्य रचना प्रमुख रूप सें हुई हैं– धार्मिक साहित्य, लौकिक साहित्य और रासो साहित्य इस इकाई के अध्ययन सें विद्यार्थीयों को सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य और रासो साहित्य की सम्पूर्ण जानकारी मिल सकेगी और विशेषताओं का भी विस्तृत अध्ययन विद्यार्थी कर सकेंगे।

२.२ प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल को आदिकाल कहा जाता है। हिन्दी साहित्य के आरंभिक समय की रचनाएँ साहित्य के विकास के अध्ययन के लिए अत्यंत आवश्यक है। परंतु अधिकांश आदिकालीन ग्रंथों का उपलब्ध न होना, प्रमाणिकता में संदिग्धता, कालनिर्धारण में सामंजस्य न बैठना आदि कठिनाईयों के साथ साहित्य के विद्वानों, आचार्यों द्वारा व्यवस्थित धारणा बना लेना बहुत ही कुशलता का कार्य है।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल जिसे वीरगाथा काल, चारणकाल, सिद्ध सामन्त युग, बीजवपन काल, वीरकाल आणि अनेक संज्ञाओं से विभुषित किया है, हिन्दी का सबसे विवादग्रस्त काल रहा है। इस काल में एक तरफ संस्कृत के ऐसे बडे–बडे कवि उत्पन्न हुए जिनकी रचनाएँ संस्कृत काव्य–परम्परा की चरम सीमा पर पहुँच गयी थी तो दूसरी ओर अपभ्रंश के कवि उत्पन्न हुए जो अत्यन्त सरल एवं सहज भाषा में अत्यन्त संक्षिप्त शब्दों में अपने मार्मिक भाव प्रकट कर रहे थे। वस्तुत: इस काल में जहाँ एक ओर सिद्ध, नाथ और जैन साहित्य का निर्माण हुआ जिसे धर्माश्रय प्राप्त होने के कारण वह फूलता–फलता रहा. वहाँ दूसरी ओर राजस्थान के चारण कवियों द्वारा चरित काव्य भी रचे गये, जिन्हें राजाश्रय मिलने के कारण वह प्रशंसा का विषय बना। परन्तु इस काल में इन दोनों काव्य–धाराओं से भिन्न लोक साहित्य की भी रचना हुई, वह लोकाश्रित होने से सुरक्षित न रह सका। अनेक कारणों से यह साहित्य लुप्त सा हो गया। उससे इतना अवश्य ज्ञात होता है कि आदिकाल में लोक साहित्य भी लोक प्रचलित रहा है। उपयुक्त आदिकालीन सभी साहित्य को प्रवृत्तियों के आधार पर निम्न रुप में वर्गीकृत

किया जा सकता है :–

आदिकालीन साहित्य

धार्मिक साहित्य	लौकिक साहित्य	रासो साहित्य (वीर काव्य)
१) सिद्ध साहित्य,	१) ढोला मारु रा दूहा	१) खुमान रासो
२) नाथ साहित्य	२) बीसलदेव रासो	२) परमाल रासो
३) जैन साहित्य।	३) वसंत विलास	३) हम्मीर रासो
	४) राउल वेल	४) विजयपाल रासो
	५) उक्ति–व्यक्ति प्रकरण	५) बीसलदेव रासो
	६) वर्ण – रत्नाकर	६) पृथ्वाराज रासो।
	७) खुसरो का काव्य	
	८) विद्यापति पदावली।	

(१) सिद्ध साहित्य :–

भारतीय साधना के इतिहास में ८ वीं शती में सिद्धों की सत्ता देखी जा सकती है। सिद्ध परम्परा का जन्म बौद्ध धर्म की घोर विकृति के फलस्वरूप माना जाता है। बुद्ध का निर्वाण ४८३ ई. पूर्व में हुआ। उनके निर्वाण के लगभग ४५ वर्ष तक बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का खूब प्रचार हुआ। इस धर्म की विजय–दुदुंभि देश तथा विदेशों में बजती रही। बौद्ध धर्म का उदय वैदिक कर्मकाण्ड़ की जटिलता एवं हिंसा की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। यह धर्म सहानुभूति और सदाचार के मूल तत्वों पर आधारित था। परन्तु आगे चलकर इस धर्म के अनुयायियों में कतिपय सैद्धान्तिक और साधनात्त्मक प्रश्नों को लेकर मतभेद आरम्भ हो गया। ईसा की प्रथम शताब्दी में बौद्ध महायान तथा हिनयान दो शाखाओं में विभाजित हो गया। महायान बड़े रथों के आरोही थे और हिनयानी छोटे रथों के आरोही। महायान में व्यवहारिकता का प्राधान्य रहा जबकि हीनयान में सिद्धांत पक्ष का प्राधान्य रहा। इनमें महायानी लोक निर्वाण के समर्थक थे और हीनयानी व्यक्तीगत साधना के समर्थक। महायान वाले अपने रथ में उँचे–नीचे, छोटे–बडे, गृहस्थी–संन्यासी सबको बैठाकर निर्वाण तक पहुँचाने का दावा करते थें। हीनयान केवल विरक्त और सन्यासियों को आश्रय देता था। इनका जीवन सरल था, किन्तु महायानियों ने मठों और विहारों के निर्माण पर जोर दिया। उसने स्त्रियों एवं गृहस्थों के लिए मोक्ष का द्वार खोल दिया। इसी कारण अधिकाअधिक लोग उसकी ओर आकृष्ट होने लगे। स्वर्ण और सुन्दरी हे योग से उसमें भ्रष्टाचार का प्रवेश हो गया। जादू–टोणा और मंत्राचार बढने लगा। मंत्रो के इस महत्व एवं प्रचार के कारण महायान यंत्रयान बन गया।

सातवीं शताब्दी के आसपास मंत्रयान से एक अन्य उपयान निकला, जिसे वज्रयान या सहजयान कहते है। कंचन–कामिनी के योग से मंत्रयान की लोकप्रियता बढ़ चुकी थी और उसमें व्यभिचार भी बढ़ रहा था। धीरे धीरे कामपरक भावनाओं को सैद्धान्तिक और दार्शनिक रूप देने

की चेष्टा की गई। वज्रयान पंचमकारों मे बंध गया। मंत्र,मध, मैथुन, मांस और मुद्रा वज्रयान के मूल आधार बन गये। इस प्रकार वज्रयान में यौन संबंन्धों की स्वच्छंन्दता को बढ़ावा दिया। समाज पर इसका दूषित प्रभाव पड़ा। इसतरह बौद्ध धर्म महायान, यंत्रयान, वज्रयान आदि में विभक्त होता हुआ क्रमश: पतनोन्मुख होता गया।

तंत्रों मंत्रोद्वारा सिद्धि चाहनेवाले सिद्ध कहलाये। ये सिद्ध वज्रयानी अथवा सहजयानी ही थे। वज्रयानी सिद्धों ने अपने मत–प्रचार के लिए जो साहित्य लिखा, वह आदिकालीन सिद्ध–साहित्य कहलाता है। सिद्धों की संख्या ८४ मानी जाती है जिनमें से २३ सिद्धों की रचनाएँ उपलब्ध होती है। प्रत्येक सिद्ध के नाम के पीछे 'या' शब्द खडा हुआ है। सरहया हिन्दी के प्रथम सिद्ध माने जाते है। उनका 'देहाकोश' ग्रन्थ विख्यात है। इनके अलावा शबरया, लुझॅ, डोंबियॅ, कळयॅ, कुकुरिपा, मुंडरियॅ,शांतिपा और वाणापा आदि सिद्ध कवियों मे भी आदिकालीन सिद्ध साहित्य को समृद्ध बनाने में अपना योगदान दिया है।

इन सिद्धों ने गृहस्थ जीवन पर बल दिया। इसके लिए स्त्री का सेवन, संसार रुप विषय से बचने के लिए था। जीवन के स्वाभाविक भोगों में प्रवृत्ति के कारण सिद्ध साहित्य में भोग में निर्वाण की भावना मिलती है। जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों में विश्वास के कारण इन सिद्धों का सिद्धान्त पक्ष सहज मार्ग कहलाया।

सिद्ध प्राय: अशिक्षित और हीन जाति से संबन्ध रखते थे, अत: उनकी साधना की साधनभूत मुद्रायें कापाली, डोम्बी आदि नायिकायें भी निम्न जाति की थी क्यौंकि इनके लिए ये सुलभ थी। उन्होंने धर्म और आध्यात्म की आड़ में जन–जीवन के साथ विड़म्बना करते नारी का उपभोग किया। उनके कमल और कलिश योनि और शिश्न के प्रतीक मात्र है। सिद्धों ने सरल या सहज जीवन पर जोर दिया है। समस्त बाह्य अनुष्ठानों एवं षट्‌दर्शन का विरोध किया है, गुरू–कृपा की कामना की है, पुस्तकीय ज्ञान से ब्रह्म साक्षात्कार में संदेह व्यक्त किया है। शरीर को समस्त साधनाओं का केन्द्र तथा पवित्र तीर्थ बताया है, आत्मा–परमात्मा की एकता में विश्वास व्यक्त किया है, सामरस्य भाव तथा महासुख की चर्चा की है और पाप–पुण्य दोनों को बन्धन का कारण बताया है। सिद्ध साहित्य का मूल्यांकन करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते है– ''सिद्ध साहित्य का महत्व इस बात में बहुत अधिक है कि उससे हमारे साहित्य के आदिरूप की सामग्री प्रामाणिक ढ़ंग से प्राप्त होती है। चारणकालीन साहित्य तो केवल मात्र तत्कालीन राजनीतिक जीवन की प्रतिच्छाया है। यह सिद्ध साहित्य शताब्दियों से आनेवाली धार्मिक और सांस्कृतिक विचारधारा का स्पष्ट रुप है। संक्षेप में जो जनता नरेशों की स्वेच्छाचारिता पराजय या पतन से त्रस्त होकर निराशावाद के गर्त में गिरी हुई थी, उसके लिए इन सिद्धों की वाणी ने संजीवनी का कार्य किया।''

सिद्ध साहित्य की विशेषताएँ :–

सिद्ध साहित्य अपनी प्रवृत्ति और प्रभाव के कारण हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व रखता है। इन सिद्धोंने अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का दिग्दर्शन करनेवाले साधनापरक साहित्य का निर्माण किया। सिद्ध–साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियॉ इसप्रकार है :–

१) जीवन की सहजता और स्वाभाविकता मे दृढ विश्वास :–

सिद्ध कवियों ने जीवन की सहजता और स्वाभाविकता में दृढ़विश्वास व्यक्त किया है। अन्य धर्म के अनुयायियों ने जीवन पर कई प्रतिबन्ध लगाकर जीवन को कृत्रिम बनाया था। विशेषकर कनक कामिनी को साधना मार्ग की बाधाएँ मानी थी। विभिन्न कर्मकाण्ड़ों से साधना मार्ग को भी कृत्रिम बनाया था। सिद्धों ने इन सभी कृत्रिमताओं का विरोध कर जीवन की सहजता और स्वाभाविकता पर बल दिया। उनके मतानुसार सहज सुख से ही महासुख की प्राप्ति होती है। इसलिए सिद्धों ने सहज मार्ग का प्रचार किया। सहज मार्ग के अनुसार प्रत्येक नारी प्रज्ञा और प्रत्येक नर करूणा (उपाय) का प्रतीक है, इसलिए नर–नारी मिलन प्रज्ञा और करूणा निवृत्ति और प्रवृत्ति का मिलन है, दोनों को अभेदता ही 'महासुख' की स्थिति है।

२) गुरू महिमा का प्रतिपादन :–

सिद्धोंने गुरू–महिमा का पर्याप्त वर्णन किया है। सिद्धों के अनुसार गुरू का स्थान वेद और शास्त्रों से भी ऊँचा है। सरहया से कहा है कि गुरू की कृपा से ही सहजानन्द की प्राप्ति होती है। गुरू के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। जिसने गुरूपदेश का अमृतपान नहीं किया, वह शास्त्रों की मरूभूमि में प्यास से व्याकुल होकर मग जाएगा। –

''गुरू उवएसि अमिरस धावण पीएड जे ही।
बहु सत्यत्य मरू स्थलहि तिसिय मरियड ते ही।।

३) बाह्याडम्बरों पाखण्ड़ों की कटु आलोचना :–

सिद्धों ने पुरानी रूढ़ियों परम्पराओं और बाह्य आडम्बरों, पाखण्ड़ों का जमकर विरोध किया है। इसिलिए इन्होंने वेदों, पुराणों, शास्त्रों की खुलकर निंदा की है। वर्ण व्यवस्था, ऊँच–नीच और ब्राह्मण धर्मों के कर्मकाण्ड़ों पर प्रहार करते हुए सरहया ने कहा है – ''ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से तब पैदा हुए थे, अब तो वे भी वैसे ही पैदा होते हैं, जैसे अन्य लोग। तो फिर ब्राह्मणत्व कहाँ रहा? यदि कहा कि संस्कारों से ब्राह्मणत्व होता है तो चाण्ड़ाल को अच्छे संस्कार देकर ब्राह्मण कों नंदी बना देते? यदि आग में घी डालने से मुक्ति मिलती है तो सबको क्यों नहीं ड़ालने देते? होम करने से मुक्ति मिलती है यह पता नहीं लेकिन धुआँ लगने से आँखों को कष्ट जरूर होता है।''

दिगम्बर साधुओं को लक्ष्य करते हुए सरहया कहते हैं कि ''यदि नंगे रहने से मुक्ति हो जाए तो सियार, कुत्तों को भी मुक्ति अवश्य होनी चाहिए। केश बढ़ाने से यदि मुक्ति हो सके तो मयुर उसके सबसे बड़े अधिकारी है। यदि कंध भोजन से मुक्ति हो तो हाथी, घोड़ों को मुक्ति पहले होनी चाहिए।'' इसतरह इन सिद्धों ने वेद, पुराण और पण्ड़ितों की कटु आलोचना की है।

४) तत्कालीन जीवन में आशावादी संचार :–

सिद्ध साहित्य का मुल्यांकन करते हुए डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने लिखा है – ''जो जनता नरेशों की स्वैच्छाचारिता, पराजय या पतन से त्रस्त होकर निराशावाद के गर्त में गिरी हुई थी, उसके लिए इन सिद्धों की वाणी ने संजीवनी का कार्य किया। ... जीवन की भयानक

वास्तविकता की अग्नि से निकालकर मनुष्य को महासुख के शीतल सरोवर में अवगाहन कराने का महत्वपूर्ण कार्य इन्होंने किया।'' आगे चलकर सिद्धोंमें स्वैराचार फैल गया, जिसका बूरा असर जन–जीवन पर पड़ गया।

५) रहस्यात्मक अनुभूति :–

सिद्धों ने प्रज्ञा और उपाय (करूणा) के मिलनोपरान्त प्राप्त महासुख का वर्णन और विवेचन अनेक रुपकों के माध्यम से किया है। नौका, वीणा, चूहा, हिरण आदि रूपकों का प्रयोग इन्होंने रहस्यानुभूति की व्याख्या के लिए किया है। रवि, शशि, कमल, कुलिश, प्राण, अवधूत आदि तांत्रिक शब्दों का प्रयोग भी इसी व्याख्या के लिए हुआ है। डॉ. धर्मवीर भारती ने अपने शोध ग्रन्थ 'सिद्ध साहित्य' में सिद्धों की शब्दावली की दार्शनिक व्याख्या कर उसके आध्यात्मिक पक्ष को स्पष्ट किया है।

६) श्रृंगार और शांत रस :–

सिद्ध कवियों की रचना में श्रृंगार और शांत रस का सुन्दर प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं पर उत्थान श्रृंगार चित्रण मिलता है। अलौकिक आनन्द की प्राप्ति का वर्णन करते समय ऐसा हुआ है।

७) जनभाषा का प्रयोग :–

सिद्धों की रचनाओं में संस्कृत तथा अपभ्रंश मिश्रित देशी भाषा का प्रयोग मिलता है। डॉ. रामकुमार वर्मा इनकी भाषा को जन समुदाय की भाषा मानते है। जनभाषा को अपनाने के बावजूद जहाँ वे अपनी सहज साधना की व्याख्या करते है, वहाँ उनकी भाषा क्लिष्ट बन जाती है। सिद्धों की भाषा को हरीप्रसाद शास्त्री ने 'संधा–भाषा' कहा है। साँझ के समय जिस प्रकार चीजें कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट दिखाई देती है, उसी प्रकार यह भाषा कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट अर्थ–बोध देती है। यही मत अधिक प्रचलित है।

८) छन्द प्रयोग :–

सिद्धों की अधिकांश रचना चर्या गीतो में हुई है, तथापि इसमें दोहा, चौपाई जैसे लोकप्रिय छन्द भी प्रयुक्त हुए है। सिद्धों के लिए दोहा बहुत ही प्रिय छन्द रहा है। उनकी रचनाओं में कहीं कहीं सोरठा और छप्पय का भी प्रयोग पाया जाता है।

९) साहित्य के आदि रूप की प्रामाणिक सामग्री :–

सिद्ध साहित्य का महत्व इस बात में बहुत अधिक है कि उससे हमारे साहित्य के आदि रूप की सामग्री प्रामाणिक ढ़ंग से प्राप्त होती है। चारण कालीन साहित्य तो केवल तत्कालीन राजनीतिक जीवन की प्रतिछाया है। लेकिन सिद्ध साहित्य शताब्दियों से आनेवाली धर्मिक और सांस्कृतिक विचारधारा का एक सही दस्तावेज है।

नाथ साहित्य

सिद्ध साहित्य में आ गई विकृतियों के विरोध में नाथ साहित्य का जन्म हुआ। यद्यपि इनका मूल भी बौद्धों की वज्रयान शाखा ही है। सिद्धों ने 'योग–साधना' को नीरे मैथून का स्वरूप देकर समाज में अपने स्वैराचार को 'वाममार्ग' की शरण दी थी। नाथ–सम्प्रदाय ने योग–साधना को एक स्वस्थ साधना के रूप में अपनाया और आदिकालीन धार्मिक, सामाजिक जीवन में व्याप्त अनाचार को खत्म करने का प्रयास किया। यद्यपि नाथ लोग इस मत के जनक 'आदिनाथ शिव' को मानते है, लेकिन सही अर्थ में इस मत को एक सुव्यवस्थित रुप देने का श्रेय गोरखनाथ को दिया जाता है। गोरखनाथ ने अपने इस सम्प्रदाय को सिद्ध सम्प्रदाय से अलग कर दिया और इसका नाम 'नाथ सम्प्रदाय' रखा।

'नाथ' शब्द में से 'ना' का अर्थ है 'अनादि रूप' और 'थ' का अर्थ है 'भूवनत्रय में स्थापित होना। इसप्रकार 'नाथ' शब्द का अर्थ है– वह अनादि धर्म, जो भूवनत्रय की स्थिति का कारण है। दूसरी व्याख्या के अनुसार – 'नाथ' वह तत्व है, जो मोक्ष प्रदान करता है। नाथ ब्रह्म का उद्‌बोधन करता है, तथा अज्ञान का दरुमन करता है। नाथ सम्प्रदाय उन साधकों का सम्प्रदाय है जो 'नाथ' को परमतत्व स्वीकार कर उसकी प्राप्ति के लिए योग साधना करते थे तथा इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर अपने नाम के अन्त में 'नाथ' उपाधि जोड़ते थे। नाथ शब्द का प्रयोग ब्रह्म के लिए भी हुआ है और सद्‌गुरू के लिए भी। इन योगियों की एक विशिष्ठ वेशभूषा होती है। प्रत्येक योगी एक निश्चित तिथि को कान चिरखा कर कुंड़ल धारण करता है जिसे मुद्रा कहते है। इनके हाथ में किंकरी सिर पर जटा, शरीर पर भस्म, कंठ में रूद्राक्ष की माला, हाथ में कमण्ड़ल, कन्धे पर व्याघ्रचर्म और बग़ल मे खप्पर रहता है।

नाथ सम्प्रदास में नौ नाथ आते है, जिनके नाम है – (१) आदिनाथ (स्वयं शिव), (२) मत्स्यन्द्रनाथ, (३) गोरखनाथ, (४) गहिणीनाथ, (५) चर्पटनाथ, (६) चौरंगीनाथ, (७) जालंधरनाथ, (८) भर्तृनाथ (भरथरीनाथ) और (९) गोपीचन्द नाथ। इन नाथोंने अपने सम्प्रदाय में भोग का तिरस्कार, इन्द्रिय संयम, मन:साधना, प्राणसाधना, कुण्डलिनी जागरण, योग साधना को अधिक महत्व दिया है। इनकी साधना का मूल स्वर शील, संयम और शुद्धतावादी था। इस सम्प्रदाय में इन्द्रिय निग्रह पर विशेष बल दिया गया है। इन्द्रियों के लिए सबसे बड़ा आकर्षण नारी है, अत: नारी से दूर रहना की भरसक शिक्षा दी गई है। संभव है कि गोरखनाथ ने बौद्ध विहारों में भिक्षुनियों के प्रवेश का परिणाम और उनका चरित्रिक पतन देखा हो। इस सम्प्रदाय में निवृत्ति और मुक्ति गुरू के प्रसाद से ही संभव मानी गई है। अत: गुरू का विशेष महत्व है। नाथ पंथियों के मुख्य सिद्धान्त इन्द्रिय –संगम, मन:साधना, हठयोग साधना आदि का प्रभाव कबीर एवं अन्य सन्तों की रचनाओं मे देखा जा सकता है। गोरखनाथ आदि ने जिन प्रतीकों को पारिभाषिक शब्दों को, खण्ड़न – मण्ड़नात्मक शैली को अपनाया उसका विकास संत साहित्य में मिलता है।

नाथों की साधना–प्रणाली 'हठयोग' पर आधारित है। 'ह' का अर्थ सूर्य और 'ठ' का अर्थ चन्द्र बतलाया गया है। सूर्य और चन्द्र के योगों को हठयोग कहते है। यहाँ सूर्य इड़ा नाडी का और चन्द्र पिंगला नाडी का प्रतीक है। इस साधना पद्धति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति कुण्ड़लिनी और प्राणशक्ति लेकर पैदा होता है। सामान्य तया कुण्ड़लिनी शक्ति सुषुप्त रहती है।

साधक प्राणायाम के द्वारा कुण्ड़लिनी को जागृत कर ऊर्ध्वमुख करता है। शरीर में छह चक्रों और तीन नाड़ियों की बात कही गयी है। जब योगी प्रणयान के द्वारा इड़ा पिंगला नामक श्वास मार्गों को रोक लेता है। तब इनके मध्य में स्थित सुषुम्ना नाड़ी का द्वार खुलता है। कुण्ड़लिनी शक्ति इसी नाड़ी के मार्ग से आगे बढ़ती है और छ.चक्रों को पार कर मतिष्क के निकट स्थित शून्यचक्र में पहुँचती है। यही पर जीवात्मा को पहुँचा देना योगी का चरम लक्ष्य होता है। यही परमानन्द तथा ब्रह्मानुभूति की अवस्था है। यही हठयोग साधना है।

नाथ साहित्य की विशेषताएँ :–

नाथ मत का दार्शनिक पक्ष शैव मत से और व्यावहारिक पक्ष हठयोग से सम्बन्धित है। इन नाथों की रचनाओं में नैतिक आचरण, वैराग्य भाव, इन्द्रिय निग्रह, प्राण–साधना, मन साधना और गुरू महिमा का उपदेश मिलता है। इन विषयों में नीति और साधना की व्यापकता है और उसके साथ ही जीवन की अनुभूतियों का सधन चित्रण भी है। इस दृष्टि से नाथ साहित्य की निम्नलिखित विशेषताएँ कहा जा सकता है –

१) चित्त शुद्धि और सदाचार में विश्वास :–

नाथों ने सिद्धों द्वारा धर्म और समाज में फौलाई हुई अहिंसा की, विषवेलि को काटकर चारित्रिक दृढ़ता और मानसिक पवित्रता पर भर दिया। इन्होंने नैतिक आचरण और मन की शुद्धता पर अधिक बल दिया है। अपने मतानुयाषियों के शीलवान होने का उपदेश दिया है। मद्य भाँग धतूरा आदि मादक वस्तुओं के सेवन का परित्याग योगियों के लिए अनिवार्य माना गया है। योग–साधना में नारी का आकर्षण सबसे बड़ी बाधा होती है, इसलिए नारी से दूर रहने का उपदेश दिया गया है।

२) परम्परागत रूढ़ियो एवं बाह्यडम्बंरों का विरोध :–

नाथों ने धर्म प्रणित बाह्यडम्बर और रुढ़ियों का खुलकर विरोध किया है। उनके अनुसार पिण्ड में ब्रह्माण्ड़ है इसलिए परमतत्व को बाहर खोज़ना व्यर्थ है। मन की शुद्धता और दृढ़ता के साथ हठयोग के द्वारा उस परमतत्व का अनुभव किया जा सकता है। धर्म के क्षेत्र में बाह्यडम्बर के लिए कोई स्थान नहीं है। इसीलिए नाथों ने मूर्तिपूज़ा, मुण्डन विशिष्ट वस्त्र पहनना, उँच नीच, वेद पुराण पढ़ना आदि का विरोध किया है।

३) गुरू महिमा :–

नाथ सम्प्रदाय में गुरू का स्थान सर्वोपरि माना है। इसलिए गुरू–शिष्य परम्परा को नाथ सम्प्रदाय में अत्याधिक महत्व दिया जाता है। उनकी मान्यता है कि वैराग्यभाव का दृढ़ीकरण और त्रिविध साधना गुरू ज्ञान से ही संभव हो पाती है। गोरखनाथ ने कहा है कि गुरू ही आत्माब्रह्म से अवगत कराते है। गुरू से प्राप्त ज्ञान के प्रकाश में तीनों लोक का रहस्य प्रकट हो सकता है।

४) उलटवासियाँ :-

नाथों की साधना का क्रम इन्द्रिय निग्रह के बाद प्राण साधना तथा उसके पश्चात् मन:साधना है। मन:साधना से तात्पर्य है मन को संसार के खींच कर अन्त:करण की ओर उन्मुख कर देना। मन की स्वाभाविक गति है बाहरी जगत की ओर रहना उसे पलटकर अंतर जगत की ओर करनेवाली इस प्रक्रिया को उलटवासी कहते है। नाथों ने उलटवासियों का प्रयोग अपनी साधना की अभिव्यक्ति के लिए किया है। उलटवासियाँ कहीं-कहीं क्लिष्ट जरूर है, लेकिन अद्भूत रस से ओत-प्रोत है।

५) जनभाषा का परिष्कार :-

आदिकालीन हिन्दी को समृद्ध कराने में नाथ साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यद्यपि नाथों ने संस्कृत भाषा में भी विपुल मात्रा में रचनाएँ लिखी हैं, लेकिन सामान्य जनों के लिए उन्होंने अपने विचार जन-भाषा में ही अभिव्यक्त किये है। जिस प्रकार उनके विचार परम्परागत रुढ़ी विचारों से अलग है उसी तरह उनकी भाषा भी। आ. शुक्लजीने इनकी भाषा को खड़ीबोली के लिए राजस्थानी माना है।

कुल मिलाकर हम कह सकते है कि नाथ साहित्य में स्वच्छन्द भाव और विचारों की प्रामाणिक अभिव्यक्ति हुई है। नाथ साहित्य की देन को स्पष्ट करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं - ''गोरखनाथ ने नाथ सम्प्रदाय को जिस आन्दोलन का रूप दिया वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ है। उसमें जहाँ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गई वहाँ दूसरी ओर विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूढ़ियों पर भी आघात किया। जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आत्मिक अनुभूतियों के लिए सहज मार्ग की व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ ने किया।''

◆◆◆◆◆◆

जैन साहित्य

आदिकाल की उपलब्ध सामग्री में सबसे अधिक ग्रंथो की संख्या जैन ग्रन्थों की है। जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी है। इनका समय छठी शताब्दी माना जाता है। बौद्धों की तरह इन्होंने भी संसार के दु:खों की ओर बहुत ध्यान दिया। सुख–दु:ख के बन्धनों पर इन्होंने जीत पाई जिससे ये 'जिन्न' कहलाये। जिन्न शब्द से ही जैन शब्द की उत्पत्ति हुई है। इन्होंने ३० वर्ष तक अपने उपदेश दिये। महावीर जैन ने अहिंसा पर अधिक बल दिया और देव पूजा का विरोध किया। जैन धर्म के मूल सिद्धान्त चार बातों पर आधारित हैं – अहिंसा, सत्य भाषण , अस्तेय और अनासक्ति। बाद में ब्रह्माचर्य भी इसमें सामिल कर लिया गया। इस धर्म में बहुत से आचार्य और तीर्थकार हुए. जिनकी संख्या २४ मानी जाती है। इन्होंने इस धर्म को फैलाने का प्रयास किया। आगे चलकर जैन धर्म दो शाखाओं दिगंबर और श्वेतांबर में बँट गया। जैन धर्म की इन दो शाखाओं ने धर्म प्रसार के लिए जो साहित्य लिखा वह जैन साहित्य के नाम से जाना जाता है। दिगम्बर जैन साधुओं और कवियों का क्षेत्र दक्षिण भारत और मध्य देश रहा है और श्वेताम्बर जैन साधुओं तथा कवियों का क्षेत्र अधिकतर राजस्थान और गुजरात रहा है।

इन जैन मुनियों द्वारा अपभ्रंश में लिखित जैन साहित्य धार्मिक दृष्टि से ही नही साहित्यिक और भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी बड़ा महत्व रखता है। महावीर स्वामी का जैन धर्म हिन्दु धर्म के अधिक समीप है। जैनों के यहाँ भी परमात्मा है परंतु वह सृष्टि का नियामक न होकर चित्त और आनन्द का स्त्रोत है। उसका संसार से कोई सम्बध नहीं। प्रत्येक मनुष्य अपनी साधना और पौरूष से परमात्मा बन सकता है। उसे परमात्मा से मिलने की कोई आवश्यकता नहीं। इन्होंने जीवन के प्रति श्रद्धा जगाई और उसमें आचार की सुदृढ भिति की स्थापना की। अहिंसा, करुणा, दया और त्याग का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान बताया। त्याग इन्द्रियों के अनुशासन में नही कष्ट सहने में है। उन्होंने उपवास तथा व्रतादि कर्म पर आधारित साधना पर अधिक बल दिया और कर्मकाण्ड की जटिलता को हटाकर ब्राह्मण तथा शूद्र दोनों को मुक्ति का समान भागी ठहराया। जैन कवियों ने जनसामान्य तक सदाचार के सिद्धान्तो को पहुँचाने के लिए चरित काव्य, कथात्मक काव्य, रास, ग्रन्थ, उपदेश प्रधान आध्यात्मिक ग्रन्थों की रचना की। कथाओं के माध्यम से शलाका पुरूषों के आदर्श चरित्र को प्रस्तुत करना, जनसाधारण का धार्मिक एवं चारित्रिक विकास करना, सदाचार, अहिंसा, संयम आदि गुणों की महत्ता बताना और उन्हें जीवन में धारण करने के लिए प्रेरित करना कवियों का मुख्य उद्देश्य था।

जैन कवियों ने आचार, रास, पाश, चरित आदि विभिन्न शैलियों में साहित्य लिखा है, लेकिन जैन साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय रुप 'रास' ग्रन्थ माने जाते है। यह रास ग्रन्थ वीरगाथा रासो से अलग है। रास एक तरह से गेयरुपक है। जैन मंदिरों में श्रावक लोग रात्री के समय ताल देकर रास का गायन करते थे। इस रास में जैन तीर्थकारों के जीवनचरित, वैष्णव अवतारों की कथाएँ तथा जैन आदर्शों का प्रतिपादन हुआ करता था। आगे चलकर 'रास काव्य' एक ऐसे काव्य रुप के रुप में निश्चित हो गया जो गेय हो। हिन्दी में इस परम्परा का प्रवर्तन जैन साधु शालिभद्र सूरि द्वारा लिखित ''भरतेश्वर बाहुबली रास'' से माना जाता है।

जैन कवियों ने रामायण और महाभारत के कथानकों और कथानायकों को अपने विश्वास और मान्यताओं के साँचे में ढालकर प्रस्तुत किया है। इन्होंने पौराणिक पुरुषों के अतिरिक्त अपने

सम्प्रदाय के महापुरुषों के जीवन को भी काव्यबद्ध किया। इसके साथ–साथ प्रचलित लोककथाओं को भी काव्यात्मक प्रश्रय दिया। मुनि रामसिंह (पाहुड दोहा) और योगिन्दु (परमात्मा प्रकाश) आदि कवियों ने रहस्यात्मक काव्यों की भी रचना की। जैन अपभ्रंश साहित्य की रचना करनेवाले तीन प्रसिद्ध कवि है – स्वयंभू पुष्पदन्त और धनपाल। इन्होंने उत्कृष्ट काव्यों की रचना की। इनके अतिरिक्त देवसेन, जिनदत्त सुरि, हेमचन्द्र, हरिभद्र सूरि, सोमप्रभू सूरि, असरा कवि, जिन धर्म सूरि, विपनचन्द्र सूरि आदि इस सम्प्रदाय के प्रख्याति रचनाकार माने जाते है।

महाकवि स्वयंभू अपभ्रंश के सर्वश्रेष्ठ कवि है। इनका समय आठवीं शती माना जाता है। इनके द्वारा रचित चार कृतियाँ मानी जाती है। पदमचरित्र (पद्मचरित) या रामचरित), रिट्ठणेमिचरित (अरिष्टनेमिचरित अथवा हरिवंशपुराण), पंचमोचरित (नागकुमार चरित) और स्वयंभू छन्द। इनकी कीर्ति का अधारस्तंभ पदमचरित' है। इसमें राम कथा है। इस ग्रन्थ के कारण स्वयंभू को अपभ्रंश का वाल्मीकी कहा जाता है। स्वयंभू ने अपनी रामकथा को पाँच खण्ड़ो में रखा है जो वाल्मीकि रामायण के कांण्डो से मिलता है। इन्होंने बालकाण्ड का नाम विद्याधर काण्ड रखा है और अरण्य तथा किष्किन्धा काण्ड को एकदम हटा दिया है। जैन धर्म की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने राम–कथा में यत्र–तत्र परिवर्तन कर दिए है तथा कुछ नए प्रसंग भी जोड़ दिए है। स्वयंभू के राम वाल्मीकि के राम की तरह अपनी सम्पूर्ण मानवीय दुर्बलताओं और मानवीय शक्ति के प्रतिनिधि बनकर आते है। नारी के प्रति पुरूष मात्र का दृष्टिकोण क्या था, यह सीता के 'अग्नीपरीक्षा' वाले प्रसंग में राम और सीता के कथनों से प्रकट होता है। सीता के चरित्र को उदारता दिखाने में कवि ने कमाल कर दिया है । कवि ने रामकथा का अंत शांत रस से किया है तथा राम सीता जनक आदि सभी पात्रों को जैन धर्म में दीक्षा लेते हुए दिखाया है। 'अरिष्टनेमिचरित' (हरिवंशपुराण) में जैन परम्परा के बाईसवें तीर्थकार अरिष्टनेमि तथा कृष्ण और कौरव. पाण्डवों की कथा वर्णित है। इसमें कवि ने द्रौपदी के चरित्र को एकदम निखार दिया है। नारी चरित्रों के प्रति कवि की आतीक सहानुभूति स्पष्ट सामने आती है।

जैन साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

अपभ्रंश साहित्य को जैन साहित्य कहा जाता है, क्योंकि अपभ्रंश साहित्य के रचयिता जैन आचार्य थे। जैन कवियों की रचनाओं में धर्म और साहित्य का मणिकांचन योग दिखाई देता है। जैन कवि जब साहित्य निर्माण में जुट जाता है तो उस समय उसकी रचना सरस काव्य का रूप धारण कर लेती है और जब वह धर्मोपदेश की ओर झुक जाता है तो वह पद्य बद्ध धर्म उपदेशात्मक रचना बन जाती है। इस उपदेश प्रधान साहित्य में भी भारतीय जनजीवन के सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष के दर्शन होते है। इस साहित्य की सामान्य विशेषताएँ इसप्रकार है :–

१) उपदेश मूलकता :– उपदेशात्मकता जैन साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति है, जिसके मूल में जैन धर्म के प्रति दृढ़ आस्था और उसका प्रचार है। इसके लिए जैन कवियों ने दैनिक जीवन की प्रभावोत्पादक घटनाएँ, आध्यात्म के पोषक तत्व, चरित नायकों, शलाका पुरूषों, आदर्श

श्रावकों, तपस्वियों तथा पात्रों के जीवन का वर्णन किया है। इसीलिए इस साहित्य में उपदेशात्मकता का स्वर मुख्य बन गया है।

२) विषय की विविधता :– जैन साहित्य धार्मिक साहित्य होने के बावजूद सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक विषयों के साथ ही लोक–आख्यान की कई कथाओं को अपनाता है। रामायण, महाभारत सम्बन्धी कथाओं को भी जैन कवियों ने अत्याधिक दक्षता के साथ अपनाया है। जहाँ तक सामाजिक विषयों का सम्बन्ध है, जैन रचनाओं में लगभग सभी प्रकार के विषयों का समावेश हो गया है।

३) तत्कालीन स्थितियों का यथार्थ चित्रण :– जैन कवि राजाश्रित नहीं थे, अत: राजाश्रय का दबाव और दरबारी अतिरंजना से इनकी रचनाएँ मुक्त है। यही कारण है कि इनकी रचनाओं में तत्कालीन स्थितियों का यथार्थ अंकन हुआ है। आदिकालीन आचार–विचार, समाज, धर्म, राजनीति आदि की सही स्थितियों को जानने के लिए यह रचनाएँ पर्याप्त रूप में सहाय्यक सिद्ध होती है।

४) कर्मकाण्ड़ रूढ़ियों तथा परम्पराओं का विरोध :– जैन अपभ्रंश कवियों ने बाह्य उपासना, पूजा–पाठ, शास्त्रीय ज्ञान, रूढ़ियों और परम्पराओं का घोर विरोध किया है, किन्तु इनके स्वर में कटुता या परखड़ता नही मिलती। मंदिर, तीर्थ शास्त्रीय ज्ञान, मूर्ति, वेष, जाति, वर्ण, मंत्र, तंत्र, योग आदि किसी भी संस्था को यह नही मानते। चारित्रिक अथवा मन की शुद्धता को ये हर व्यक्ति के लिए एक आवश्यक वस्तु मानते है। धन–सम्पत्ति की क्षणिकता, विषयों की निन्दा, मानव देह की नश्वरता, संसार के सम्बन्धों का मिथ्यापन आदि का वर्णन करते हुए इन कवियों ने शुद्ध आत्मा पर बल दिया है।

५) आत्मानुभूति पर विश्वास :– आत्मानुभव को जैन कवियों ने चरम प्राप्तव्य कहा है और यह शरीर में रहता है। आत्मा को जानने के लिए शुभाशुभ कर्मों का क्षय करना आवश्यक है। आत्मा परमात्मा एक ही है। आत्मा को जान लेने के पश्चात् कुछ जानने के लिए नहीं रहता। आत्मानन्द ही सरसीभाव या सहजानन्द है। अपने साधन–पथ की व्याख्या करने के लिए इन्होंने जहाँ–तहाँ प्रेम–भावना के द्योतक प्रिय–प्रियतम की कल्पना का आश्रय लिया है। इसप्रकार इन जैन कवियों ने भोग से त्याग की, शास्त्रज्ञान से आत्मज्ञान की और कर्मकाण्ड़ से आत्मानुभूति की श्रेष्ठता सिद्ध की है।

६) रहस्यवादी विचारधारा का समावेश :– जैन कवियों की कुछ रचनाएँ रहस्यवादी विचार भावना से ओत प्रोत है। योगिन्द्र मुनि रामसिंह, सुत्रभाचार्य, महानन्दि महचय आदि इस कोटि के कवि है। इनको रहस्यवादी रचनाओं में बाह्य आचार, कर्मकाण्ड़, तीर्थव्रत, मूर्ति का बहिष्कार, देहरूपी देवालय में ही ईश्वर की स्थिति बताना, तथा अपने शरीर में स्थित परमात्मा की अनुभूति पाकर परम समाधि रुपी आनन्द प्राप्त करना आदि इनकी साधना का मुख्य स्वर है। यह आनन्द शरीर में स्थित परमात्मा गुरू (जिन गुरू) की कृपा से प्राप्त होता है, यह इनकी

धारना है।

७) काव्य रूपों में विविधता :– काव्य रूपों के क्षेत्र में जैन साहित्य विविध रूपों से सम्पन्न है। इसमें रास, फागु, छप्पय, चतुष्पदिका, प्रबन्ध, गाथा, जम्नरी, गुर्वावली, गीत, स्तुति, माहात्म्य, उत्साह आदि प्रकार पाये जाते है। अपभ्रंश के कई काव्य–रुपों का प्रयोग जैन कवियों ने किया है लेकिन अधिकांश काव्य रुप ऐसे भी है, जिनके निर्माण का श्रेय जैन साहित्य को जाता है।

८) शांत या निर्वेद रस का प्राधान्य :– जैन साहित्य में करुण, वीर, श्रृंगार, शान्त आदि सभी रसों का सफल निर्वाह हुआ है। 'नेमिचन्द चउपई' में करुण, 'भरतेश्वर बाहुबली रास' में वीर तथा 'श्रीस्थूलिभद्र फागु में श्रृन्गार इस की सफल निष्पत्ति पायी जाती है, किन्तु इन सभी कृतियों के अन्त में शान्त या निर्वेद सभी रसों पर हावी हो जाता है। इसीलिए यह कहना असंगत नहीं होगा कि जैन साहित्य में रसराज शान्त या निर्वेद है।

९) प्रेम के विविध रूपों का चित्रण :– जैन अपभ्रंश साहित्य में प्रेम के पाँच रूप मिलते हैं– विवाह के लिए प्रेम, विवाह के बाद प्रेम, असामाजिक प्रेम, रोमाण्टिक प्रेम और विषम प्रेम। प्रथम प्रकार के प्रेम का चित्रण 'करकंडुचरिउ' में हुआ है। दूसरे प्रकार के प्रेम का उदाहरण 'पउमासिरिचरिउ' में समुद्र और पद्मश्री के प्रेमपूर्वक विवाह में मिलता है। 'जहसरचरिउ' में रानी अमृतमयी का कुबड़े से जो प्रेम था, वह असामाजिक की कोटि में आता है। प्रेम की विषमता का ज्वलन्त उदाहरण 'पउमचरिउ' में रावण का प्रेम है, किंतु रोमाण्टिक प्रेम का ही इस साहित्य में अधिक प्रस्फुटत हुआ है। इसके दो कारण हैं – प्रथम, सामंतवादी इस युग में बहुपत्नी प्रथा थी, दूसरा, धर्म की महिमा बताने के लिए।

१०) गीत तत्व की प्रधानता :– जैन कवियों की रचनाएँ शैली, स्वरूप और लक्ष्य की दृष्टि से गीत काव्य के अधिक निकट है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि गेयता इस युग की प्रमुख विशेषता थी। जैन कवियों द्वारा प्रयुक्त छन्दों में लय और गेयता का ध्यान रखा गया है। मंगलाचरण के अतिरिक्त स्तुति और वंदना इस काव्य का आवश्यक अंग है। छन्दों में संगीत का पुट पुष्पदन्त और स्वयंभू ने दिया है। कड़वक के छन्दो की गति क्रमश: संगीत के स्वर और वाद्यों के लय पर ही चलती है।

११) अलंकार –योजना :– जैन साहित्य में अर्थालन्कार और शब्दालन्कार दोनों प्रयुक्त हुए है, परंतु प्रमुखता अर्थालन्कारों की ही है। अर्थालन्कारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यक्तिरेक, उल्लेख, अनन्वय, निदर्शना, विरोधाभास, स्वभावोक्ति, भ्रान्ति, सन्देह आदि का प्रयोग सफलतापूर्वक हुआ है। अधिकांश जैन कवि उपमान के चुनाव में विशेष परिचय देते है। शब्दालन्कारों में श्लेष, यमक, और अनुप्रास की बहुलता है।

१२) छन्द–विधान :– जैन काव्य छन्द की दृष्टि से समृद्ध है। स्वयंभू कृत 'स्वयंभूछन्द' और हेमचन्द्र विरचित 'छन्दोऽनुशासन' ग्रन्थों में पर्याप्त संख्या में छन्दो की विशिष्ट विवेचना की गई है। जैन काव्य में कड़वक, पट्पदी, चतुष्पदी, धत्ता बदतक, अहिल्य, बिलसिनी, स्कन्दक, दुबई, रासा, दोहा, उल्लाला, सोरठा, चउपद्य आदि छन्दो का प्रयोग मिलता है।

१३) लोकभाषा की प्रतिष्ठा :– जैन साधु ग्राम, नगर–नगर घूमकर धर्म–प्रचार करते थे, इसीलिए उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति के लिए लोकभाषा का प्रयोग किया और उसे प्रतिष्ठा प्रदान की।

◆◆◆◆◆◆

आदिकालीन लौकिक साहित्य

हिन्दी साहित्य के आदिकाल मे जैन एवं सिद्ध साहित्य धर्मश्रित होने के कारण तथा रासो साहित्य राजश्रित होने के कारण सुरक्षित रह गया. परंतु इस काल में इन दोनों काव्य धाराओं से भिन्न लोक साहित्य की भी रचना हुई लेकिन वह लोकाश्रित होने से सुरक्षित न रह सका। अनेक कारणों से वह साहित्य लुप्त हो गया। विभिन्न लोकगीतों के माध्यम से लोक में जो थोड़ा–बहुत शेष रह गया उससें इतना अवश्य ज्ञात होता है कि आदिकाल में लौकिक साहित्य भी लोक प्रचलित रहा है। उपलब्ध लोक साहित्य में ''ढोला मारू रा दूहा'', ''बीसलदेव रासो'', ''बसन्त विलास'' ''राउलवेल'', ''उक्ति व्यक्ति प्रकरण'', ''वर्ण रत्नाकर'', ''अमीर खुसरो की रचनाएँ'' तथा ''विद्यापति की पदावली'' को देखकर तत्कालीन लोक साहित्य के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है।

ढोला मारू रा दूहा :–

राजस्थान में जन–जन का कष्ठहार ''ढोला मारू रा दूहा'' है जिसमें कछवाहा वंश के राजा नल के पुत्र ढोला और पूगल के राजा पिंगल की रूपवती कन्या मारवाड़ी की प्रेमकथा है। यद्यपि मूल कथा का सम्बन्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों से है, किन्तु राजस्थान के लोक जीवन से जुड़ने के कारण यह काव्य कृति पश्चिमी राजस्थान में अति लोकप्रिय है। यह एक लोकगाथा काव्य है जो राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है। राजस्थान में ढोला और मारवणी को प्रेम के प्रतिक के रूप में स्मरण किया जाता है। ''सन्देश रासक'' एवं ''बीसलदेव रासो'' की भाँति यह भी एक विरहकाव्य है जिसका कथासार इसप्रकार है– बचपन में ही ढ़ोला और मारवणी का विवाह हो जाता है। युवा होने पर मारवणी अपने बचपन के पति ढोला की चर्चा सुनती है तो उसके विरह में व्याकुल हो जाती है। वह अपने पति का पता लगाने के लिए कई संदेशवाहक भेजती है लेकिन कोई लौटकर नहीं आता। सभी संदेश वाहकों को मारवणी की सौत मालवणी मरवा देती है और ढोला तक संदेश पहुँचने नहीं देती। अन्त में मारवणी लोकगीत के गायक ढाढ़ी को संदेश देकर भेजती है। वह ढोला तक पहुँचने में सफल हो जाती है। ढाढ़ी के प्रयत्न से ढोला और मारवणी का पुनर्मिलन होता है।

''ढोला मारू रा दूहा'' में परम्परागत बारहमासा का वर्णन नहीं मिलता। इसमें केवल पावस ऋतु का वर्णन है और वह भी विस्तार से। ''ढोला मारू रा दूहा'' में मारवाड़ का वास्तविक जीवन प्रतिबिम्बित हो उठा है। इसमें राजस्थानी जनजीवन, प्रकृति, समाज, वातावरण, लोकाचार एवं लोकविश्वासों का जैसा सरस सजीव और स्वाभाविक चित्र उभरा है, वैसा अन्यत्र दुर्लक्ष है। शैली की दृष्टि से ''ढोला मारू रा दूहा'' लोकगीत की श्रेणी में आता है।

१) बीसलदेव रासो :–

हिन्दी के आदिकाल की इस श्रेष्ठ रचना के रचनाकार नर पति नाल्ह है। यह एक प्रेम काव्य है, जिसमें संयोग–वियोग के गीत गाये गए है। इस कृति में अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज (बीसलदेव) तथा भोज परमार की पुत्री राजमती के विवाह, वियोग एवं पुनर्मिलन की कथा सरल एवं सरस शैली में प्रस्तुत की गई है। राजा बीसलदेव अपनी नवविवाहिता रानी

राजमती के व्यंग्य बाणों से रूष्ट होकर उड़िसा राज्य चला जाता है तथा बारह वर्ष तक लौटकर नहीं आता। पति के वियोग से अत्यन्त दु:खित रानी एक पंडित द्वारा अपने पति बीसलदेव को सन्देश भेजती है। अन्त में बीसलदेव के लौट आने पर दोनों का पुनर्मिलन हो जाता है। सम्पूर्ण कथा १२० छन्दो और चार खण्डों में विभक्त है।

बीसलदेव रासो में श्रृन्गार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का बड़ा ही सुन्दर एवं हृदयग्राही वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है। प्रेषितपतिका की विरह व्यन्जना बड़ी मार्मिक बन गई है। बारहमासा वर्णन के अन्तर्गत प्रकृति का चित्रण बढ़ा ही सजीव बन गया है। विरह काव्य होने के कारण बीसलदेव रासो में संयोग के मंसलता पूर्ण चित्तों का प्राय: अभाव है। इस काव्य की नायिका राजमती की आत्मा विद्रोहिणीमन अभिमानी और जबान प्रखर है। उनका चरित्र बड़ा ही सजीव तथा विलक्षण बन पड़ा है। ''मध्ययुग के समूचे हिन्दी साहित्य में जबान की इतनी तेज और मन की इतनी खरी नायिका नहीं दीख पड़ती है। ''अभिव्यक्ति की ताजगी और भागों की तीव्रता के कारण यह रचना लोकमानस में अपना अक्षुभ स्थान बनाएँ हुई है।

२) बसन्त विलास :–

डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने विभिन्न प्रमाण देकर ''बसन्त विलास'' का रचना–काल १३ वी १४वी शती के मध्य का माना है। इस कृति के रचयिता का पता नहीं चल पाया है। ''यह एक अत्यधिक सरस साहित्यिक कृति है और आधुनिक भारतीय आर्य–भाषा–साहित्य के आदिकाल के इतिहास में बेजोड़ है।'' इस रचना में चौरासी दोहों में बसन्त ऋतु और स्त्रियों पर उसके विलासपूर्ण प्रभाव का मनोहारी वर्णन हुआ हैं। इस काव्य में प्रकृति और नारी दोनों का मदोन्मत्त रूप श्रृंगार रस की तीव्र धारा प्रवाहित करता है। डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' के शब्दों में– 'स्त्री–पुरूष–प्रकृति–तीनों में अजस्त्र बहती मदोन्मत्तता का इस काव्य में जैसा वर्णन मिलता है, वैसा रीतिकालीन हिन्दी कवि भी नहीं कर सके। इसकी भाषा सरस ब्रजभाषा है जिसका विकास परवर्ती भक्तिकालीन कृष्णकाव्य में और रीतिकाव्य में दिखाई देता है।''

३) राडलवेल :–

वह गद्य–पद्य मिश्रित चम्पू–काव्य की प्राचीनतम हिन्दी कृति है। इसका रचयिता रोढ़ा नामक कवि माना जाता है। विद्वानों ने इसका रचना–काल दसवीं शताब्दी माना है। इसकी रचना ''राउल'' नायिका के नखशिख वर्णन के प्रसंग में हुई है। आरम्भ में कवि ने राउल के सौंदर्य का वर्णन पद्य में किया है और फिर गद्य का प्रयोग किया गया है। इस कृति से ही हिन्दी में नखशिख वर्णन परम्परा आरम्भ होती है। इसकी भाषा में हिन्दी की सात बोलियों के शब्द मिलते है, जिनमें राजस्थानी प्रधान है। कवि ने विषय वर्णन बड़ी तन्मयता से किया है। नायिका राउल का श्रृन्गार आकर्षण से भरा हुआ है। वह सहज रूप में जितनी सुन्दर है उतनी ही सहज–सुन्दर उसकी सज्ञा भी है। इस सौन्दर्य के अनुकूल ही उसकी भाव–दशा भी है।

३) उक्ति–व्यक्ति प्रकरण :–

इस ग्रन्थ की रचना दामोदर शर्मा ने की है। १२ वीं शताब्दी का यह एक महत्वपूर्ण ''व्याकरण ग्रन्थ'' माना जाता है, इसमें बनारस और आसपास के प्रदेशों की तत्कालीन संस्कृति और भाषा आदि पर पर्याप्त प्रकाश ड़ाला गया है। इसकी भाषा के अध्ययन

से तत्कालीन गद्य और पद्य दोनों शैलियों की हिन्दी भाषा में तत्सम पदावली के प्रयोग की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का पता चलता है। अत: हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक अध्ययन में यह ग्रन्थ अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ है।

४) वर्णरत्नाकर :–

मैथिली हिन्दी में रचित गद्य का यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसका लेखक ज्योतिशेखर ठाकुर नामक मैथिल कवि था। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार इसकी रचना चौदहवी शताब्दी में हुई होगी। यह एक शब्दकोशनुमा ग्रन्थ है, परन्तु सौन्दर्य ग्राहिणी प्रतिभा भी उसमें निहित है। उसकी भाषा में कवित्व, अलंकारिकता, तथा शब्दों की तत्समता की प्रवृत्तियाँ मिलती है। हिन्दी गद्य के विकास में 'राडलवेल' के पश्चात ''वर्णरत्नाकर'' का योगदान भी कम नहीं कहा जा सकता।

५) अमीर खुसरो की रचनाएँ :–

आदिकाल में शिष्ट हास्य तथा विनोद मूलक रचानाएँ खड़ी बोली में प्रस्तुत करने का श्रेय अमीर खुसरो को है। इनका वास्तविक नाम अबुल हसन था। आदिकाल में खड़ीबोली को काव्य की भाषा बनाने वाले अमीर खुसरो प्रथम कवि है। इन्होंने हिन्दू–मुस्लिमों के बीच एकता स्थापित करने का सर्वप्रथम प्रयास किया था। खुसरों अनेक भाषाओं के विद्वान थे। तुर्की, अरबी, फारसी ब्रज और खड़ीबोली पर इन्हें समान अधिकार प्राप्त था। मनोरंजन के माध्यम से लोक–व्यवहार की शिक्षा देना ही उनके साहित्य का उद्देश्य था। कविता के राजाश्रय में पलने के कारण सामान्य जनता से उसका सम्बन्ध टूट चुका था। खुसरो के प्रयत्न से वह फिर से जनसामान्य के समीप आ गयी। इनके विषय में डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन सटीक जान पड़ता है– ''चारणकालीन रक्तरंजित इतिहास में जब पश्चिम के चारणों की ड़िंगल कविता उद्धत स्वरों में गूँज रही थी और प्रतिध्वनि और भी उग्र थी। पूर्व में गोरखनाथ की गम्भीर धार्मिक प्रवृत्ति आत्मशासन की शिक्षा दे रही थी, उस काल में अमीर खुसरो की विनोदपूर्ण प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक महान निधि है। मनोरंजन और रसिकता का अवतार यह कवि अमीर खुसरो अपनी मौलिकता के कारण स्मरणीय रहेगा।''

खुसरो द्वारा रचित सौ के लगभग रचनाएँ मानी जाती हैं, किन्तु उपलब्ध रचनाओं की संख्या बीस–बाईस से अधिक नहीं है। जिनमें फूटकर पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो सुखने ढ़कोसला आदि प्रसिद्ध है। इनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं –

पहेलियाँ – १) ''एक थाल मोलियों से भरा, सबके उपर औंधा धरा।
चारों तरफ वह थाल फिरै, एक भी मोती नीचे न गिरे ।।'' (आकाश)

२) ''एक कहानी मैं बहूँ, सुन ले तू मेरे पुत।
बिना परों के वह उड़ गया, बाँध गले में सूत।।'' (पतंग)

मुखरियाँ – १) ''वह आवे तब शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय।
मीठे लागे बाके बोल, क्यों सखि साजन न सखि ढोल।।''

२) ''जब मेरे मन्दिर में आवे, सोते मुझको आन जगावे।
पढ़त फिरत वह विरह के अच्छर सखि साजन ना सखि मच्छर।।''

दो सुखने :– १) पान सड़ा क्यों? घोड़ा अड़ा क्यों? (फेरा न था)
२) ब्राह्मण प्यासा क्यों? गधा उदासा क्यों? (लोटा न था)

ढ़कोसला :– ''खीर पकाई जतन से, चर्खा दिया चलाय।
आया कुत्ता खा गया तु बैठी ढ़ोल बजाय।।''

६) विद्यापति की पदावली :–

बिहार के दरभंगा जिले में विसपी गाँव में जन्मे विद्यापति हिन्दी के आदि–गीतिकार माने जाते हैं। मधुर गीतों के रचयिता होने के कारण इन्हें अभिनव जयदेव के नाम से भी जाना जाता है। विद्यापति महान पण्डित थे। उन्होंने अपनी रचनाएँ संस्कृत, अवहट्ट और मैथिली भाषा में लिखी। हिन्दी साहित्य में विद्यापति की अशुण्ण कीर्ति का आधार उनके तीन ग्रन्थ है– कीर्तिलता, कीर्तिपताका और पदावली। विद्यापति पदावली में उन्होंने राधा–कृष्ण प्रणय–लीलाओं का अत्यन्त ह्दयहारी वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में इनके आदर्श कवि जयदेव रहे हैं। जयदेव के गीत–गोविन्द से प्रभावित होकर उन्होंने पदावली का प्रणयन किया है। पदावली में इनका श्रृंगारी रूप पूर्णत: उभर आया है। वैसे तो श्रृंगार के दोनो पक्षों–संयोग और वियोग का वर्णन इस ग्रन्थ में उपलब्ध होता है पर जो तन्मयता संयोग श्रृंगार के चित्रण में दिखाई देती है, वह वियोग पक्ष में नहीं। वस्तुत: विद्यापति संयोग पक्ष के सफल गायक है और प्रेम के परम पारखी है। विद्यापति अपने राधा–कृष्ण सम्बन्धी मधुर गीतों के लिए हिन्दी साहित्य में सदैव अमर रहेंगे।

लौकिक साहित्य की सामान्य विशेषताएँ :–

आदिकालीन साहित्य में रासो साहित्य तथा धार्मिक साहित्य के साथ–साथ साहित्य की एक अन्य धारा भी प्रवाहित होती दिखाई देती है, जिसे लौकिक साहित्य के नाम से जाना जाता है। राजाश्रय और धर्माश्रय से सर्वथा विमुख यह साहित्य लोकाश्रय में पुष्मित एवं पल्लवित हुआ है। इस साहित्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित है :–

१) स्वान्त:सुखाय सृजन :–

आदिकाल का लौकिक साहित्य न तो रासो साहित्य के समान राजाओं, सामन्तों की वीरता का वर्णन करने के लिए लिखा गया है, न धार्मिक साहित्य के समान किसी विशिष्ट धर्म–मत के प्रचार के लिए लिखा गया है। यह कवि के भावों का सहज अविष्कार है। चाहे वह रोड़ा कवि का 'राउलवेल' हो या विद्यापति जैसे राजश्रित कवि का पदावली साहित्य हो या 'ढ़ोला मारा रा दूहा', 'बसन्त विलास' जैसे गुमनाम कवियों का साहित्य हो इसकी अभिव्यक्ति पर कोई बाह्य–प्रयोजन का बोझ नही है। यह साहित्य इन कवियों का खान्त:सुखाय सृजन है।

२) लोकमानस से आप्लवित साहित्य :–

लोकतत्व के संस्पर्श से खान्त: सुखाय लौकिक साहित्य अत्याधिक सरस और प्रभावकारी बन गया है। रासो साहित्य में जहाँ राजाओं–सामन्तों के मन के हास–उल्लास का चित्रण है, वहाँ इस काव्य में लोक–मानस में उठने वाली हास–उल्लास की तरंगे है। यहाँ की

राजमती ढ़ोला, या राधा में सामान्य नारी अपने भावों को प्रतिबिम्बित पाती है। चाहे वह भाव संयोग के हो या वियोग के। रूठे पति के उड़िसा चले जाने के बाद राजमती जब यह कहने लगती है कि – ''हे महेश! मुझे स्त्री का जन्म तुमने क्यों दिया? देने के लिए तो तुम्हारे पास और भी अनेक जन्म थे।'' तो उसमें केवल राजमती की हा वेदना की अभिव्यक्ति नही होती, बल्कि वासनाभिभूत पुरूष के स्वार्थ और कामुकतामयी रसिकता की शिकार तत्कालीन हर नारी की आत्मा का करूण क्रन्दन एवं चित्कार अभिव्यक्त होता है। 'ढ़ोला मारू रा दूहा' की 'मारू' की वेदना भी तत्कालीन नारी वेदना का ही एक और स्थर है। इन कृतियों में वर्णित प्रेम महज एक शरीराकर्षित वासना नही है और अशरीरी काल्पनिक भी नहीं है, वह एक लौकिक भाव है जिसमें मन और शरीर अभिन्न है। रासो और धार्मिक साहित्य तत्कालीन राजनैतिक धार्मिक परिवेश की उपज है और लौकिक साहित्य तत्कालीन जन–समाज की सांस्कृतिक गरिमा को अभिव्यक्त करता है।

३) संयोग और वियोग का सरस चित्रण :–

आदिकालीन लौकिक साहित्य में श्रृन्गार के दोनो पक्षों – संयोग और वियोग का सरस चित्रण हुआ है। 'वसन्त–विलास' और 'विद्यापति की पदावली' का संयोग श्रृन्गार मात्र इस काल को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि परवर्ती काव्य को भी पर्याप्त मात्रा में प्रभावित करता है। 'वसंत विलास' में वसंत और स्त्रियों पर उसके विलासपूर्ण प्रभाव का मनोहरी चित्रण हुआ है वह अन्यत्र दुर्लक्ष है। विद्यापति की पदावली में संयोग श्रृंगार की सभी क्रीडाओं –भावों का अनुपन चित्रण हुआ है। विद्यापति संयोग श्रृंगार के कवि है। संयोग श्रृंगार का इतना बेजोड़ चित्रण रीतिकाल में भी दुर्लभ है।

लौकिक साहित्य का संयोग श्रृंगार जितना पुष्ट है, उससे कहीं अधिक वियोग श्रृंगार समृद्ध है। बीसलदेव रासो, ढ़ोला मारू रा दूहा विरह–वेदना के सहज और स्वाभाविक उच्छवास है।

४) नख–शिख वर्णन – परम्परा का प्रणयन :–

'राडलवेल' आदिकालीन लौकिक साहित्य की एक महत्वपूर्ण रचना मानी जाती है जो गद्य–पद्य मिश्रित चम्पू काव्य है। इसी रचना से हिन्दी में नख–शिख वर्णन की परम्परा का आरम्भ होता है। बीसलदेव रासो, वसन्त विलास, ढ़ोला मारू रा दूहा और विद्यापति की पदावली में इस परम्परा का विकास देखा जा सकता है। यहाँ एक बात विशेष स्मरणिय है कि राउल, राजमति और मारू का नख–शिख वर्णन कहीं भी उद्दाम रूप में नहीं हुआ है। इन नायिकाओं के सौन्दर्य वर्णन में कुलीना गृहणी की मर्यादा को अबाधित रखा गया है।

५) प्रकृति चित्रण :–

आदिकालीन लौकिक साहित्य में प्रकृति का चित्रण आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। श्रृंगार और प्रकृति का रिश्ता अटूट है। 'बीसलदेव रासो' में बारह मासों तथा ऋतुओं के प्राकृतिक चित्र संयोग और वियोग में उद्दीपन का कार्य करते है। विरह की विभिन्न दशाओं के वर्णन में बिजलियाँ, बादल प्रियविहित नायिका की वियोग दशा के वर्णन में चार चाँद लगा देते है। 'बसन्त विलास' में प्रकृति और नारी दोनों का मदोन्मत्त

स्वरूप श्रृन्गार रस की तीव्र धारा प्रवाहित करता है।

६) गेयता एवं संगीतात्मकता :–

भाव–प्रवणता स्वयं गेय होती है। इसीलिए इस धारा की लगभग सभी रचनाओं में गेयता और संगीतात्मकता पायी जाती है। नारी के सहज श्रृंगार से लेकर उसके मानसिक सौन्दर्य तक पहुँचने की प्रवृत्ति आदिकालीन लौकिक साहित्य में प्रस्फुटित हुई है। नख–शिख वर्णन, विरह के विभिन्न रूप, विरहिणी नायिका द्वारा प्रियतम के पास सन्देश प्रेषण ये लौकिक साहित्य के विभिन्न आयाम है। इसीकारण गेयता और संगीतात्मकता का समावेश इस साहित्य में हुआ है।

७) बोली भाषा का परिष्कार :–

आदिकालीन लौकिक साहित्य में तत्कालीन काव्य–भाषा की अपेक्षा जन–बोलियों का प्रयोग हुआ है। इस धारा की प्राचीनतम् कृति 'राडलवेल' से मात्र लौकिक साहित्य की परम्परा ही शुरू नही होती बल्कि बोलचाल की भाषा का साहित्य के लिए प्रयोग करने की एक परम्परा भी शुरू हो जाती है। बीसलदेव रासो, ढ़ोला मारू रा दूहा और विद्यापति की पदावली में भी तत्कालीन स्वीकृत काव्य–भाषा से हटकर बोल–चाल की भाषा का सरस और सशक्त प्रयोग हुआ है।

◆◆◆◆◆◆

रासो काव्य

हिन्दी साहित्य के आरम्भिक काल में प्राप्त ग्रन्थों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस युग के अधिकांश ग्रन्थों में 'रासो' शब्द नाम के अन्त में जुडा हुआ है, जो 'काव्य' शब्द का पर्यायवाची है। 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। प्रथम फ्रेंच इतिहासकार गार्सा द तासी ने इस शब्द की व्युत्पत्ति 'राजसूय' यज्ञ से मानी है। आ. रामचन्द्र शुक्ल इस शब्द की व्युत्पत्ति 'रसायण' से मानते है। उनका कहना है कि– ''कुछ लोग इस शब्द का सम्बन्ध 'रहस्य' से जोडते है। पर 'बीसलदेव रासो' में काव्य के अर्थ में 'रसायण' शब्द बार–बार आया है। अत: हमारी समझ में इसी 'रसायण' शब्द से होते होते 'रासो' हो गया है। डॉ. मोतीलाल मेनरिया ने इस शब्द का सम्बन्ध 'रहस्य' से माना है। श्री नरोत्तम स्वामी इस शब्द की व्युत्पत्ति 'रसिक' से मानते है। प्राचीन राजस्थानी में 'रसिक' का अर्थ–कथा–काव्य माना जाता था। यही शब्द क्रमश: 'रासउ', और 'रासो' हो गया। यह मत हमें सत्य के काफी नजदीक पहुँचा देता है। प्रधान रुप से कथा–ग्रन्थों के लिए ही 'रासा', 'रासक', 'रासो' शब्द का प्रयोग होता आया है। कुछ विद्वान इस शब्द का सम्बन्ध 'रास' या 'रासक' से जोडते हुए इसका अर्थ–ध्वनि, क्रीडा, विलास, नृत्य, गर्जन और श्रृन्खला आदि देते है। आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी रासक को एक शब्द भी मानते हैं और काव्य–भेद भी। उनके अनुसार जो काव्य रासक छन्द में लिखे जाते थे, वे ही हिन्दी में 'रासो' कहलाने लगे।

ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल की कविता के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ करता था। ये काव्य चरित्रप्रधान है। इन चरित्रों को काव्य में बाँधने के लिए ही इस छन्द का प्रयोग होता रहा है। वस्तुत: रासो काव्य मूलत: रासक छन्द का समुच्चय है। अपभ्रंश में उनतीस मात्रा का एक रासा या रास छन्द प्रचालित था। ऐसे अनेक छन्दों के गान की परम्परा कदाचित लोकगीतों में रही होगी। एकरसता न रहे, इसलिए बीच बीच में दूसरे छन्द जोडने और गाने की प्रथा भी उस समय से चली होगी। 'सन्देशरासक' इसका सुन्दर नमूना है। पहले रासो काव्य छन्द में लिखे गये। कालान्तर में इनमें बदलाव आया होगा जिनके फलस्वरुप गेय मुक्तक छन्दों का उपभोग किया जाने लगा। 'बीसलदेव रासो' एक ऐसा ही प्रेम प्रधान काव्य है जिसमें रासकेतर छन्द का प्रयोग हुआ है। आगे चलकर काव्य का यह रुप कोमल भावनाओं के अतिरिक्त अन्य भावों की अभिव्यक्ति का वाहक बना। प्रेम भाव के साथ इनमें वीरों की गाथात्मक चेतनाओं को स्थान मिला। इस तरह इस काल के रासो काव्य में एक साथ विरोचित और श्रृंगारोचित भावनाओं के वर्णन सुलभतापूर्वक मिल जाते है।

रासो साहित्य मूलत: सामंती–व्यवस्था, प्रकृति और संस्कार से उपजा हुआ साहित्य है, जिसे 'देशीभाषा काव्य' के नाम से भी जाना जाता है। इस साहित्य के रचनाकार हिन्दू राजपूत राजाश्रय में रहनेवाले चारण या भाट थे। समाज में उनका स्थान और सम्मान था, क्योंकि उनका जुडाव सीधे राजा से होता था। ये चारण या भाट कलापारखी और कलारचना में निपुण होते थे। ये कुशलता से युध्द करना भी जानते थे और युध्द शुरु होने पर अपनी सेना की अगुवाई विरुदावली गा– गाकर किया करते थे। ये राजाओं, आश्रयदाताओं, वीर पुरुषों तथा सैनिकों के वीरोचित युध्द घटनाओं को केवल बढ़ा चढाकर ही नहीं, उसकी यथार्थपरक स्थितियों एवं सन्दर्भों को भी बारीकी के साथ चित्रित करते थे। वीरोचित भावनाओं के वर्णन के

लिए इन्होंने 'रासक या रासो' छन्द का प्रयोग किया था, क्योंकि यह छन्द इस भावना को सम्प्रेषित करने के लिए अनुकूल था। इसलिए इनके द्वारा रचित काव्य को 'रासो काव्य' कहा गया। रासो काव्य परम्परा के प्रतिनिधि ग्रन्थ इस प्रकार है–

१. खुमाण रासो :–

रासो काव्य परम्परा की प्रारम्भिक रचनाओं में 'खुमाणरासो' का स्थान सर्वोपरि है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख शिवसिंह सेंगर की कृति 'शिवसिंह सरोज' में मिलता है। इसके रचयिता दलपति विजय हैं। आ. रामचन्द्र शुक्ल इसको नवीं शताब्दी (सन् ८१२ ई.) की रचना मानते हैं। इसमें राजस्थान के चितौड–नरेश खुमण (खुम्माण) द्वितीय के युध्दों का सजीव वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ भी प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति पूना–संग्रहालय में सूरक्षित है। खुमाण रासो 'पाँच हजार छन्दों का एक विशाल ग्रन्थ हैं। इसमें समकालीन राजाओं के आपसी विवादों के बाद हुए एकता के साथ अब्बासिया वंश आलमामूं खलीफा और खुमाण के साथ हुए युध्द का चित्रण मिलता है। इस कृति का प्रमुख प्रतिपाद्य राजा खुमाण का चरित्रान्कन करना है उनके चरित्र के दो प्रस्थान बिन्दु हैं–एक युध्द और दूसरा प्रेम। खुमाण के प्रेम को दर्शाने के लिए ही कृतिकार ने विवाह, नायिका भेद, षट्ऋतुवर्णन का विस्तृत वर्णन किया है जो रमणीय है। अन्य रासो ग्रन्थों के समान इसमें भी श्रृन्गार और वीर –दोनों रस प्रधान रहे हैं। इसमें दोहा, सवैया, कवित्त आदि विविध छन्दों का सुचाख प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा राजस्थानी हिन्दी रही है काव्य सौन्दर्य भाषाशैली की दृष्टिसें यह एक सरल और सफल काव्य माना जाता है। इसकी सरस,सरल भाषा शैली का उदाहरण दृष्टव्य है –

'' पिउ चितौड न आविऊ, सावण पहली तीज।
जोवै वाट विरहीणी, खिण खिण अणवै खीज।।
सन्देसो पिउ साहिबा, पाछो फिरिय न देह।
पंछी घाल्या पिंजरें, छूटण रो सन्देह।।''

२. परमाल रासो :–

रासो काव्य परम्परा की प्रमुख कृति के रुप में 'परमाल रासो' का नाम भी लिया जाता है। इसे 'आल्हाखण्ड' भी कहते है। आ. रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'बैलेड' तथा डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे 'वीरगाथा' काव्य कहा है। कुछ विद्वान इसे 'विकसनशील लोक महाकाव्य' मानते है। इसकी जनता में अत्यधिक लोकप्रियता को देख डॉ. ग्रियर्सन ने इसे वर्तमान युग का सर्वाधिक लोकप्रिय महाकाव्य माना था। अभी तक इसकी प्रामाणिक प्रति उपलब्ध नहीं हुई है। इसके रचयिता जगनिक है, जो महोबा के नरेश परमर्दि देव वे आश्रित थे। रचनाकार ने इस काव्य में महोबा देश के दो लोक–प्रसिध्द वीरों– आल्हा और ऊदल के वीर चरित्र को यथार्थ ढंग से प्रस्तुत किया है। इनके द्वारा किये गये विभिन्न युध्दों का बडी उत्तेजक भाषा में वर्णन इस ग्रन्थ की विशेषता है। इस में आल्हा छन्द (वीर छन्द) का प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा बैसवाडी है। यह काव्य शिक्षित समाज की अपेक्षा अशिक्षित या अर्ध्द–शिक्षित समाज में ही अधिक लोकप्रिय रहा है। यह सदैव गायकों की परम्परा द्वारा ही विकसित होता रहा है। यह एक गेय–काव्य है। इसकी मूल प्रेरणा वैयक्तिक वीर भावना, स्वाभिमान, दर्द और

साहसपूर्ण भावों का वर्णन करने की रही है–

''बारह बरिस है कूकुर जिएँ, औ तेरह लै जिएँ सियार।
बरिस अठारह छत्री जिएँ, आगे जीवन को धिक्कार।।''
सदा तरैया न बन फूलै, मारो सदा न सावन होय।
स्वर्ग मडैया सब काडूँ को, यारो सदा न जीवै कोय।।''

३. हम्मीर रासो :–

'हम्मीर रासो' अभी तक एक स्वतंत्र कृति के रुप में उपलब्ध नहीं हो सका है। अपभ्रंश के 'प्राकृत पैंगलम्' नामक एक संग्रह–ग्रन्थ में संग्रहीत हम्मीर विषयक ८ छन्दों को देख आ. शुक्लजी ने इसे एक स्वतंत्र ग्रन्थ मान लिया था। प्रचलित धारणा के अनुसार इस कृति के रचयिता शार्डग:धर माने जाते है। परन्तु कुछ पदों में 'जज्जल भणह' वाक्यांश देख पं. राहुल सांकृत्यायन ने इसमें जज्जल नामक किसी कवि की रचना माना है। आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का कहना है कि 'प्राकृत पैंगलम्' की टीका में भी इन्हें जज्जल की ही उक्ति माना गया है; अत: इसके रचयिता शार्डग:धर न होकर जज्जल है। इस कवि में हम्मीर देव और अल्लाउद्दीन के युध्द का वर्णन किया गया है। इसका रचनाकाल १३ वीं शती माना जाता है, क्योंकि हम्मीर देव सन् १३०० ई. में अल्लाउद्दीन की चढाई में मारे गये थे। इस कृति का उद्देश्य हम्मीर देव की वीरता का वर्णन करना है।

४. विजयपाल रासो :–

मिश्रबन्धुओं ने अपने ग्रन्थ 'मिश्रबन्धु विनोद' में इस परम्परा की एक रचना 'विजयपाल रासो' का उल्लेख किया है। इसके रचयिता नल्हसिंह भाट माने जाते है। इसका रचनाकाल सन् १२९८ ई. माना जाता है। डॉ. राजनाथ शर्मा के अनुसार इस कृति में विजयपाल सिंह और बंग राजा के युध्द का वर्णन किया गया है। डॉ. राजबली पाण्डेय के अनुसार इस रचना में रचनाकार ने राजा विजयपाल सिंह और बंग राजा के बीच हुए युध्दों को सजीव रुप में चित्रित किया है। इस कृति में केवल ४२ छन्द ही उपलब्ध है।

५. बीसलदेव रासो :–

'बीसलदेव रासो' इस काव्य–परम्परा की पाँचवी कृति है। इसकी रचना– ''बारह से बरोत्तरा मंझारि। जेठ बदी नवमी बुधिवारी'' के अनुसार जेष्ठ वदी नवमी, दिन बुधवार सन् ११५५ ई. (संवल १२१२) में हुई थी। इसके रचयिता नरपति नाल्ह माने जाते हैं, जो अजमेर के चौहाण राजा बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) के समकालीन थे। इसमें अजमेर नरेश विग्रहराज, उपनाम बीसलदेव और उनकी पत्नी, राजा भोज की पुत्री राजमती के विवाह, कलह, विरह और मिलन के मार्मिक चित्र अंकित किये गये है। इस ग्रन्थ की सबसे निराली विशेषता यह है कि यह हिन्दी के अन्य रासों ग्रन्थों के समान वीरता का प्रशस्तिगायन न होकर कोमल प्रेम के मधुर, मार्मिक और संवेदनशील रुप का अमर चित्र है। विप्रलम्भ–श्रृन्गार इसका प्रधान वर्ण्य विषय है। चार खण्डों में विभाजित सवा सौ छन्दों का यह छोटा सा काव्य प्रणय सम्वेदना का द्रवणशील, ह्रदयग्राही रुप प्रस्तुत करता है। इसके प्रथम खण्ड में बीसलदेव और

मालवा के भोज परमार की कन्या राजमती का विवाह वर्णन, दूसरे खण्ड में बीसलदेव का रानी से रुढकर उडिसा जाना तथा वहाँ बारह वर्षों तक रहना, तीसरे खण्ड में राजमती का विरह वर्णन तथा बीसलदेव का उडीसा से लौटना और चौथे खण्ड में भोज का अपनी पुत्री को अपने घर ले आने की कथा तथा बीसलदेव का उसे पुन: चित्तौड लौटा लाने का प्रसंग वर्णित है। यह सारी कथा ललित मुक्तकों में कही गई है।

'सन्देश रासक' की भाँति बीसलदेव रासो भी मुख्यत: विरह काव्य है। यह ग्रन्थ विरह के स्वाभाविक चित्र, संयोग और विप्रलम्भ श्रृन्गार की सफल उद्‌भावना और साथ ही प्रकृति के रुप चित्रों से परिपूर्ण है। इस ग्रन्थ की सबसे बडी विशेषता यह है कि विविध घटनाओं के वर्णनों के होते हुए भी इस काव्य में इतिवृत्तात्मकता नहीं है। नायिका राजमती का चरित्र बडा ही सजीव तथा विलक्षण बन पडा है। ''मध्य युग के समूचे हिंदी साहित्य में जबान की इतनी तेज और मन की इतनी खरी नायिका नहीं दीख पडती है।'' राजा बीसलदेव ने एक दिन राजकीय अभिमान की रौ में कहा कि मेरे समान दूसरा भूपाल नहीं। रानी राजमती से यह मिथ्याभिमान न सहा गया। उसने कहा कि उडीसा का राजा तुमसे धनी है। जिस प्रकार तुम्हारे राज्य में नमक निकलता है, उसी तरह उसके घर में हीरे की रवानों से हीरा निकलता है। राजा इस पर जल-भून गया और रुट गया तथा रानी कें लाख अनुनय-विनय करने पर भी उडिसा निकल गया। राजमती जबान की तेज है तो क्या हुआ, आखिर है तो नारी ही। विरह से उसका हृदय वीदीर्ण हो जाता है, उसे अपने स्त्री-जीवन पर रोना आता है। महेश (परमेश्वर) को उलाहना देती हुई वह कहती है कि-

''अस्त्रीय जनम काई दीघउ महेश
अवर जनम धारइ घना रे नरेश,
रानि न सिरजीय रोझडी,
घणह न सिरजीय धवुलिय गाई।''

अर्थात ''स्त्री का जन्म तुमने क्यों दिया ? देने के लिये तो तुम्हारे पास और भी अनेक जन्म थे। राजराणी का जन्म न देकर यदि वन खण्ड की काली कोयल भी बनाया होता तो आम और चम्पा की डाली पर तो बैठती, अंगूर और बीजोरी के फल तो खाती। वास्तव में राजमती का यह कथन वासनाभिभूत मध्ययुगीन पुरुष के स्वार्थ और उसकी अति कामुमतामयी रसीकता की शिकार बनी हुई मध्ययुगीन नारी की आत्मा का करूण क्रन्दन एवं चीत्कार है। राजमती की आत्मा विद्रोहिणी, मन अभिमानी और जबान प्रखर है। बारह वर्ष के पश्चात् राजा के वापस लौटने पर रानी की कैची जैसी जबान ने फिर बार कर दिया, उसने राजा को ताना मार ही दिया कि- 'स्वामी घी विणाजे यह नइ जीतियड तेल'। अर्थात् हे स्वामी! तुमने वाणिज्य तो घी का जरुर किया किन्तु स्वयं खाया तेल ही। इतनी सुन्दर नारी से विवाह तो किया, किन्तु उसके उपयोग करने का सौभाग्य तुम्हें न मिल सका। अभिव्यक्ति की ताजगी और भावों की तीव्रता के कारण बीसलदेव रासो लोकजीवन के रंग में अधिक रंगा हुआ है। राजमती के वियोग वर्णन के लिए कवि ने जो बारहमासा दिया है वह अपने ढंग का अकेला है।

६. पृथ्वीराज रासो :-

रासो काव्य परम्परा का सर्वश्रेष्ठ एवं प्रतिनिधि ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो है। आ. शुक्लजी ने इसे हिन्दी का प्रथम महाकाव्य और इसके रचयिता चंदवरदाई को हिन्दी का प्रथम

कवि माना है। चंदवरदाई दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहाण के प्रमुख सामंत सलाहकार, मित्र और राज कवि थे। इनके विषय में प्रसिध्द है कि पृथ्वीराज और चंदवरदाई दोनों का जन्म एक ही दिन और मृत्यु भी एक ही दिन हुई थी। कवि चन्द के चार पुत्र थे, जिनमें से चतुर्थ पुत्र जल्हण था। जिस समय पृथ्वीराज को मुहम्मद गौरी बन्दी बनाकर गजनी ले गया तो उस समय चन्दवरदाई भी उसके पीछे गए और अपने पुत्र जल्हण को अपनी अधूरी रचना 'पृथ्वीराज रासो' सौंप गए थे। इस सम्बन्ध में यह उक्ति प्रसिध्द है–

'पुस्तक जल्हण हाथ दै, चलि गज्जन नृप काज। ' बाद में जल्हण ने इस अधूरी रचना को पूरा किया था।

पृथ्वीराज रासो के बृहत, मध्यम, लघु और लघुतम चार संस्करण प्रसिध्द है। इन चारों संस्करणों को देखकर पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता को लेकर विद्वानों के तीन वर्ग है। विद्वानों का एक वर्ग पृथ्वीराज रासो को पूर्णतया जाली एवं अप्रामाणिक मानने वालों का है जिसमें डॉ. बूलर, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, मुंशी देवीप्रसाद, आ. रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वान प्रमुख है। दूसरा वर्ग पृथ्वीराज रासो को प्रामाणिक रचना मानने वाले विद्वानों का है। इस वर्ग में डॉ. श्यामसुन्दरदास, मोहनलाल विष्णुलाल पंडया, मिश्र बन्धु, कर्नल टाड आदि विद्वान आते है। विद्वानों का तीसरा वर्ग पृथ्वीराज रासो को अर्ध्दप्रामाणिक रचना मानने वालों का है। इस वर्ग में आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी आदि. विद्वान है।

पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता भले ही संदिग्ध हो, परंतु काव्य–सौन्दर्य की दृष्टि से यह बेजोड है। इसे महाभारत के समान विकसनशील महाकाव्य माना जाता है। रस की दृष्टि से इसमें श्रृंगार और वीर रस दोनों का सुन्दर परिपाक हुआ है। ये दोनों रस पृथ्वीराज चौहाण के व्यक्तित्व के दो पहलुओं को उद्घाटित करते है। वीर और श्रृंगार रस दोनों रसों की पृष्ठभूमि में नारी है। उसे पाने के लिए युध्द होते है और पा लेने पर जीवन का विलास पक्ष अपनी पूरी रमणीयता के साथ उभरता है। युध्द वर्णन में जहाँ कवि ने शौर्य एवं वीरता के प्रदर्शन में अपनी कलम की शक्ति दिखाई है वहाँ श्रृन्गार रस के सरस वर्णनों में भी अपनी अद्भूत कल्पना–शक्ति का परिचय दिया है। वीर रस का वर्णन हो अथवा श्रृन्गार रस का, कवि ने नैतिकता की सीमा का उल्लंघन नहीं किया है, जिससे दोनों रसों का निर्वाह संतुलित एवं सात्विक हुआ है। शहाबुद्दीन की सेना के साथ हुए पृथ्वीराज के युध्द का वर्णन करते हुए कवि पृथ्वीराज के युध्द– कौशल की विशेषता बताते हुए कहते है–

''थकि रहे सूर कौतिक गिगन, रगन–मगन भई श्रोन धर।
हदि हरणे वीर जग्गे हुलस, हुरेड रंगि नवरत्त वर।।''

अर्थात् पृथ्वीराज चौहान के युध्द, कौशल एवं वीरता को देखकर सूर्य भी स्तंभित होकर ठहर गया। इस युध्द में हुए नरसंहार से सारी धरती रक्त से भर गई। ऐसे युध्द को देखकर वीर योध्दा उल्लास से भर उठे तथा उनके चेहरों पर प्रसन्नता से रक्त की लालिमा छा गई।

इच्छिनी, संयोगिता और शशिव्रता के विवाह प्रसंगों में, नायिका के सौन्दर्य–वर्णन में, विवाहोपरान्त प्रथम रति के दृश्यों में श्रृन्गार रस का सरस वर्णन कवि ने किया है। कवि ने इच्छिनी की सौन्दर्य शोभा का, प्रथम समागम की उमंग के साथ ही भय, कंपन आदि का बडा सुन्दर वर्णन किया है। वह सर्वांग में काम की तरंग के रहते हुए भी प्रथम केलि के समय ऐसे काँपती है, जैसे मंद वायु के हलके झकोरे से लता–

''हल हलै लता कछु मंद वाय. नव वधू केलि भय कंप पाय।
उपमा उर कव्वि कहिय तांम, जुव्वन तरंग अंगि अंगि काम।।''

वीर और श्रृन्गार रस के अतिरिक्त अन्य रसों करुण, रौन्द्र, बीभत्स आदि की भी सम्यक योजना की है। पृथ्वीराज जब शशिव्रता को खींचकर घोडे की पीठ पर बैठा लेता है, तो उस समय प्रतिरोध के कारण पृथ्वीराज में रौद्र, शशिव्रता में करुण, सामन्तों में वीर, सखियों में हास्य, शत्रुओं में वीभत्स और कमधज्ज वीरचन्द में भयानक रस एक साथ दिखाई पडते है।

वस्तु–वर्णन की दृष्टि से भी रासो का सौन्दर्य अतुलनीय है। इसमें नगर, उपवन, वन, सेना, युध्द के वर्णनों के अतिरिक्त ऋतुवर्णन, नख–शिख सौन्दर्य वर्णन भी अति सरस है। पृथ्वीराज रासो में युध्द वर्णन के लिए डिंगल भाषा तथा श्रृन्गार वर्णनों में पिंगल भाषा का प्रयोग हुआ है। रासो–काव्य परम्परा में यह एक अद्वितीय काव्य है और आदिकालीन काव्य की प्रवृत्तियों का विवेचन मुख्यत: इस काव्य को आधार बनाकर ही किया जाता है जिससे इसका महत्व स्वत: सिध्द हो जाता है।

रासो साहित्य / काव्य की सामान्य विशेषताएँ

रासो साहित्य मूलत: सामन्ती व्यवस्था, प्रकृति और संस्कार से उपजा हुआ साहित्य है जिसका मुख्य स्वर वीरत्व का रहा है। इस साहित्य के रचनाकार हिन्दू राजपूत राजाश्रय में रहने वाले चारण या भाट थे। समाज में उनका स्थान सम्मान का था, क्योंकि उनका जुडाव सीधे राजा से होता था। ये चारण या भाट कलापारखी और कला– रचना में निपुण होते थे। ये युध्द कला भी जानते थे, जो युध्द होने पर अपनी सेना की अगुवाई विरुदावली गा–गाकर किया करते थे। ये राजाओं, आश्रयदाताओं, वीर पुरुषों तथा सैनिकों के वीरोचित युध्द घटनाओं को केवल बढा–चढाकर ही नहीं, उसकी यथार्थपरक स्थितिओं एवं सन्दर्भों को भी बारीकी के साथ चित्रित करते थे। वीरोचित भावनाओं के वर्णन के लिए इन्होंने ''रासक या रासो'' छन्द का प्रयोग किया था, क्योंकि यह छन्द इस भावना को सम्प्रेषित करने के लिए अनुकूल था। इसीलिए इनके द्वारा रचित साहित्य को 'रासो साहित्य' कहा गया। इस काव्य की सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार है:–

१. संदिग्ध रचनाएॅ :–

इस काल में उपलब्ध होनेवाली प्रायः सभी रासो रचनाएँ ऐतिहासिकता की दृष्टि से संदिग्ध मानी जाती है। इस काल में रचित चार काव्य ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं – 'खुमान रासो', 'बिसलदेव रासो' 'पृथ्वीराज रासो' तथा 'परमाल रासो'। भाषा शैली और विषय सामग्री की दृष्टि से इन ग्रन्थों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इनमें निरन्तर कई शताब्दियों तक परिवर्तन और परिवर्धन होते रहे हैं। यह परिवर्तन और परिवर्धन इतने प्रचुर मात्रा में हुए हैं कि इनका मूल्य रुप ही दब गया है। यह भी निश्चित नहीं कहा जा सकता कि ये ग्रन्थ आश्रयदाताओं के समय में ही लिखे गये हो।

२. ऐतिहासिकता का अभाव :–

आदिकालीन रासो रचनाओं में इतिहास प्रसिध्द चरित्र नायकों को लिया गया है किन्तु उनका वर्णन युध्द इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। इन कवियों द्वारा दिये गए संवत् और तिथियाँ इतिहास से मेल नहीं रखती। इन काव्यों में इतिहास की अपेक्षा कल्पना का बाहुल्य है। इतिहास के विषय को लेकर चलनेवाले कवियों मे जो सावधनता अपेक्षित होती है, वह इन काव्य निर्माताओं में नही। इन कवियों ने इतिहास को अतिशयोक्ति और कल्पना पर नौछाकर कर दिया है। यहाँ तक कि पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज को उन राजाओं का भी विजयी माना गया है जो उनसे कही शताब्दियों पूर्व अथवा पश्चात विद्यमान थे।

३. युध्दों का सजीव वर्णन :–

युध्दों का सजीव वर्णन इन ग्रन्थों का प्रमुख विषय है और यह वर्णन इतना सजीव बन पडा है कि कदाचित संस्कृत साहित्य भी इस दिशा में इन काव्यों की ओड नहीं कर सकता। इन कवियों का युध्द वर्णन अत्यन्त सजीव बन पड़ा है, कारण चारण कवि केवल मसिजीवी ही नहीं था समय आने पर हाथ में तलवार लेकर लढना भी जानता था। दोनों ओर की सेनाओं को लढते समय युध्द में प्रयुक्त आक्रमण की रीतियों का जैसा सजीव चित्रण इस युग के कवियों ने किया है वैसा परिवर्ती कवियों में नहीं दिखाई देता। उनकी वीर रचनावली में शस्त्रों की झनकार स्पष्ट दिखाई पडती है और उनके युध्द वर्णन के सजीव चित्रण वीर हृदय में आज भी वीरता पैदा करते है। यह समय अंतरिक कलहो' और बाहरी आक्रमणों का समय था, अत: अपने अपने आश्रयदाताओं को युध्द के लिए उत्तेजित करना इस काल के कवि का प्रमुख कर्तव्य–सा बन गया था।

४. युध्दों का मूल कनक, कामिनी और भूमि :–

वीरगाथा काल का अध्ययन करने के पश्चात् यह बात स्पष्ट रुप से दिखाई देती है कि इस युग में युध्द निरन्तर हुआ करने थे। युध्द के मूल में कनक, कामिनी अथवा भूमि में से कोई एक मुख्य कारण के रुप में कार्य करते हुए दिखाई देती है। अधिकतर नारियाँ ही युध्द का प्रमुख कारण हुआ करती थी। साथ ही साथ वीर गाथा काव्य में कुछ ऐसे भी नरेश थे जो अपना साम्राज्य विस्तार करना चाहते थे। कभी–कभी राजकाज चलाने के लिए धन की आवश्यकता पडती थी। तात्पर्य, युध्द के मूल में यह तीनों चीजें कार्यरत थी। रासो काव्य इसका प्रमाण है।

५. संकुचित राष्ट्रीयता :–

आदिकालीन राजा स्वयम् शुरवीर पौरुष से परिपूर्ण थे लेकिन उनमें संकुचित राष्ट्रीयता थी। उस समय के राजाओं ने अपने पचास सौ गाँवों को ही राष्ट्र समझ रख था, उनमें व्यापक राष्ट्रीयता की भावना का अभाव था। अजमेर और दिल्ली के राजाओं को कन्नोज और कलिंग के समृध्द होने अथवा उजाड जाने पर कोई हर्ष या विषाद (दुःख) नहीं होता था। इसका प्रभाव इन चारण कवियों पर भी पडा था। इन कवियों ने जीविका प्राप्ति के लिए अपने आश्रयदाताओं की स्तुति मुक्त कंठ से की है। देशद्रोही जयचंद को भी देशप्रेमी कहलाने वाले

वीर चारण उस समय थे। तात्पर्य यह है कि यदि उस समय राष्ट्र का अर्थ व्यापक रुप में लिया गया होता, तो निश्चित रुप से हमारे देश का मानचित्र आज कुछ और होता, पर उस समय के राजाओं ने इस बात पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। यह हमारे देश का महादुर्भाग्य था।

६. वीर और श्रृन्गार रस :-

इन रासो ग्रन्थों में वीर तथा श्रृन्गार रस का अद्‌भूत सम्मिश्रण है। उस समय युध्द का बाजार चारों ओर गर्म था। वीर रस का जितना सुन्दर परिपाक इस काव्य में मिलता है, उतना हिन्दी साहित्य के किसी भी काल में नही मिलता। उस समय की वीरता का आदर्श निम्न पंक्तियों में स्पष्ट होता है :-

''बारह बरस लै कुकर जिये और तेरह लै जिये सियार।
बरस अठारह क्षत्री जिये आगे जीवन को धिक्कार।।''

आदिकालीन युध्दों का एकमात्र कारण नारी लिप्सा है। युध्दों का मूल कारण नारी को कल्पित किया गया है, अतः श्रृन्गार रस का भी इस साहित्य में जमकर सजीव वर्णन हुआ है।

७. नारी के वीर रुप का वर्णन :-

वीरगाथाकालीन कवियों ने नारी के वीर रुप का चित्रण किया है। उस जमाने में नारियाँ वीर पुरुष को पति अथवा पुत्र के रुप में पाना अपना सौभाग्य समझती थी। अपने धर्म और कर्तव्य का पालन करते हुए वीरगति को प्राप्त करने वाले अपने पति का समाचार प्राप्त करके (पाकर) राजपूत रमणियाँ प्रसन्नता का अनुभव करती थी। नारी अपने पति को हर रुप से वीर रुप में देखनेके लिये आतुर रहती थी। वह यह नहीं चाहती थी कि उसका पति युध्द भूमि से मुँह मोड कर पराजय को स्वीकार कर के वापस आए। ऐसा होने पर वह खुद को लज्ञित समझती थी। वीरगाथाकालीन नारी का वीर रुप निम्न पंक्तियों में स्पष्ट हो जाता है -

'' भल्ला हुआ जूँ मारिया बहिनि हवारा कंतु,
लज्जेजं तु वयांसिअहु जै भग्गा धरू एंतु।

(हे बहिन ! भला हुआ जो मेरा पति युध्द में मारा गया यदि वह भागकर आ जाता तो मुझे अपनी सखियों से लज्जित होना पडता।)

८. आश्रयदाताओं की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा :-

वीरगाथाकालीन चारण या भाट कवियों ने अपने अपने आश्रयदाताओं की मुक्तकंठ से झूठी प्रशंसा की है। इन कवियों ने अपने राजाओं को ब्रह्म, इन्द्र आदि देवताओं से भी बढकर शूर तथा वीर बताया है। उस समय सामन्तवाद का बोलबाला था। राजा को सर्वोपरि माना जाता था। उस समय जो छोटे छोटे राजा थे वे हमेशा साम्राज्य विस्तार के लिए आपस में लढते थे। उनमें केन्द्रिय सत्ता को हाथियाने की एक ओढ सी लगी हुई थी। इन राजाश्रित कवियों ने अपने अपने आश्रयदाताओं की खुलकर प्रशंसा की है, जो वास्तविकता से उत्पन्न अतिशयोक्ति से परिपूर्ण है।

९. जन–जीवन से सम्पर्क नहीं :–

चारण कवि अपने आश्रयदाताओं की स्तुति में लगे हुए थे, अतः इनकी रचनाओं में राजाओं तथा सामन्तों का जीवन ही उभर कर सामने आया है। इन कवियों ने 'स्वामिन सुखाय' काव्य की रचना की है, 'सामान्य जन सुखाय ' की नहीं। अतः इनकी रचनाओं में सामान्य जन जीवन के घात–प्रतिघातों का अभाव है। राजाओं का गुणगान करना ही इन कवियों का उद्देश्य था। परिणामतः साधारण जनता के प्रति इनका दृष्टिकोन अपेक्षाकृत हीन ही रहा। उस काल में जन समुदाय की स्थिति साधरण थी। इसका वर्णन करने के लिये आदिकाल के कवियों के पास अवकाश नहीं था। चारण कवियों की विस्तार भरी अभिव्यक्ति में मूलतः राजा, सामन्त, योध्दा और युध्द के वर्ण विषय रहे है, समाज की प्रायः उपेक्षा हुई है।

१० प्रकृति–चित्रण :–

इस साहित्य में प्रकृति का आलम्बन और उद्दीपन दोनों रुपों में चित्रण किया है। नगर, नदी,पर्वत आदि का वस्तुवर्णन भी सुन्दर बन पडा है। अधिकतर इन कवियों ने प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रुप में ही किया हैं। प्रकृति का स्वतंत्र रुप में चित्रण किये हुए स्थान इन काव्यों में थोडे हो मिलते है। प्रकृति चित्रण की जो उदात्त शैली छायावादी काव्य में मिलती है, वह इस काल के काव्य में नहीं। कहीं कहीं तो इन कवियों ने प्रकृति चित्रण में नाम परिगत शैली को अपनाया है, जहाँ रसोन्द्रेक के स्थान पर निरसता आ गई है।

११ काव्य के दो रुप :–

आदिकालीन रासो रचनाएँ मुक्तक और प्रबन्ध दोनों रुपों में मिलती हैं। मुक्तक काव्य का प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ 'बीसलदेव रासो' है तथा प्रबन्ध काव्य का प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ जिसे महाकाव्य कहा जाता है 'पृथ्वीराज रासो ' है। इन दो काव्य रुपों के अतिरिक्त इस साहित्य में और दूसरा काव्य का कोई रुप नही मिलता है। इनमें काव्य रुपों की विविधता का अभाव है। न तो इस समय दृश्य काव्य लिखा गया और न ही गद्य लिखने का प्रयत्न किसी ने किया। इस समय की कुछ रचनाएँ अप्रामाणिक और कुछ नोटिस मात्र है। 'जयचन्द प्रकाश' तथा 'जयमयंक जसचंद्रिका' इस कोटि के ग्रंथ हैं।

१२ रासो ग्रन्थ :–

आदिकालीन साहित्यिक ग्रन्थों के साथ 'रासो' शब्द जुडा हुआ है। जो कि काव्य शब्द का पर्यायवाची है। 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति विभिन्न विद्वान अपने–अपने ढंग से अलग अलग मानते हैं। आ. शुक्लजी 'रासो' शब्द का सम्बन्ध रहस्य से मानते हैं, लेकिन 'वीसलदेव रासो' में इसका अर्थ रसायन का परिचायक है जिसका सम्बन्ध मूल कथानक से है। मूल रुप में रासो शब्द एक छन्द के लिये प्रयुक्त हुआ है, जिसका उपयोग अपभ्रंश साहित्य में हुआ है।

१३ छन्दों का विविध मुखी प्रयोग :–

वीरगाथाकालीन रासो साहित्य में छन्द के क्षेत्र में तो मानों एक क्रान्ति ही हो गयी है। छन्दों का जितना विविधमुखी प्रयोग उस साहित्य में हुआ है उतना उसके पूर्ववर्ती साहित्य में नहीं हुआ। दोहा, त्रोटक,सोरठा, छप्पय, गाथा, सटक, रोला, उल्लाला और

कुण्डलियाँ आदि छन्दों का प्रयोग बडी कलात्मकता के साथ किया गया है। 'पृथ्वीराज रासो' में छन्दों का परिवर्तन और प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में हुआ है, लेकिन कहीं भी मूल कथानक में बाधा उत्पन्न नहीं होती। डॉ.हजारीप्रसाद द्विवेदी पृथ्वीराज रासो के सम्बन्ध में लिखते हैं– ''रासो के छन्द जब बदलते हैं, तो श्रोता के हृदय में प्रसंगानुकूल कम्पन उत्पन्न करते हैं।''

१४ अलन्कार :–

वीरगाथाकालीन चारण कवियों ने अलन्कारों पर विशेष ध्यान नहीं दिया, फिर भी उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा आदि अलन्कारों का स्थान–स्थान पर सुन्दर प्रयोग देखा जा सकता है। पृथ्वीराज रासो में बहुत सारे अलन्कारों का चित्रण न होते हुए भी कुछ अलन्कारों का प्रयोग सुन्दर रुप में हुआ है, जो सजीव एवं सुन्दर हैं। उत्प्रेक्षा तथा अतिशयोक्ति अलन्कारों का सुन्दर वर्णन देखिये –

'' मनहु कन्त ससिमान कला सोलह सो बन्हिमा।
बौह वैस सजिता समिप अमृत रस पिन्नीपा।।''

इस तरह इस साहित्य में अलन्कारों का प्रयोग चाहे कम संख्या में हुआ है, लेकिन जितने भी अलन्कारों का प्रयोग हुआ है, वह सजीव एवं सुन्दर हैं।

१५ डिंगल और पिंगल भाषा :–

वीरगाथाकालीन रासो काव्य की एक अन्य उल्लेखनिय विशेषता है डिंगल और पिंगल भाषा का प्रयोग। उस समय की साहित्यिक राजस्थानी भाषा को आज के विद्वान डिंगल नाम से जानते हैं। यह भाषा वीरत्व के स्वर के लिये बहुत उपयुक्त भाषा है। वीरगाथाओं के रचयिता चारण कवि अपनी कविता राजदरबार में ऊँचे स्वर में गाते या पढते थे। डिंगल भाषा उसके उपयुक्त थी। प्रायः इसका प्रयोग युध्द वर्णन के लिए ही हुआ है। पिंगल भाषा का प्रयोग प्रायः विवाह और प्रेम के प्रसंगों के वर्णन के लिए किया जाता था। इस तरह युध्द वर्णन के लिये डिंगल और प्रेम या विवाह वर्णन के लिये पिंगल भाषा का प्रयोग होता था।

२.४ बोध प्रश्न :–

१. आदिकाल–नामकरण पर विभिन्न विद्वानो के मत के साथ आदिकालीन साहित्य पर विस्तृत लेख लिखिए।
२. लौकिक साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए?
३. निम्न लिखित पर टिप्पणी लिखिए।
   अ. सिद्ध साहित्य
   आ. नाथ साहित्य
   इ. जैन साहित्य
   ई. रासो साहित्य

◆◆◆◆◆◆

भक्ति का उद्‌भव और विकास
भक्तिकाल

लेखक – डॉ. बालाजी गायकवाड़

३

भक्ति का उद्भव और विकास

भारतीय धर्म साधना प्रेम भक्ति को विशिष्ट स्थान है। भक्ति के उद्भव के संदर्भ में कई विद्वानों ने अपने-अपने मत व्यक्त किए है। मोनियर विलियम्स के अनुसार भक्ति शब्द की उत्पत्ति 'भज्' शब्द से हुई है जिस का अर्थ होता है- 'भाग लेना'। भक्ति के प्रथम उल्लेख के संबंध में आ. परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं- ''भक्तिका सर्वप्रथम उल्लेख 'श्वेताश्वेतर उपनिषद्' (६/३३) में मिलता है। यह भी उल्लेखनिय है कि आर्यों के भारत आने पर उन्हें यहाँ की यक्ष, किन्नर, गंधर्व, असुर, व्रात्य, विद्याधर आदि जातियों की नागर संस्कृतिका परिचय मिला था। आर्य लोग मुख्यतः सैनिक जीवन के अभ्यासी थे और उनका जातीय जीवन ग्रामीण संस्कृति पर आधारित था। इन दोनों के मिलन और पारस्परिक आदान-प्रदान से भारतीय संस्कृति का विकास हुआ, जिसकी छत्र छाया में भक्ति परम्परा का बीज विकसित हुआ।'' कुछ विद्वानों का विचार है कि भक्तियुग का आविर्भाव राजनीतिक पराभव तथा अविच्छिन्न धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक भावना का परिणाम माना है। '' देश में मुसलमानों की सत्ता के दौरान हिन्दू देवमूर्तियाँ तोडी जा रही थी और हिन्दू जनता हताश हो गई थी। आ. रामचंद्र शुक्लजी लिखते हैं- ''राजनीतिक उलट फेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?'' बाबू गुलाब राय का मत है- '' मनोवैज्ञानिक तथ्य के अनुसार हार की मनोवृत्ति में दो बातें संभव है या तो अपनी अध्यात्मिक श्रेष्ठता दिखाना या भोगविलास में पडकर हार को भूल जाना। भक्तिकाल में लोगों में पहले प्रकार की प्रवृत्ति पाई गई।''

पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय धर्म साधना में भक्ति का उदय के संदर्भ में पाश्चात्य विद्वान वेवर, कीथ, ग्रियर्सन तथा विल्सन आदि ने भक्ति को ईसाई धर्म की देन बताया है। ग्रियर्सन का कहना है कि ईसा की दूसरी-तीसरी शती में कुछ ईसाई मद्रास आकर बसे थे जिनके प्रभाव से भक्ति का विकास हुआ। कुछ विद्वानों ने कहा कि भारतीय भक्ति आंदोलन मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क की देन है और शंकराचार्य, निम्बार्क, रामानुज, रामानंद, वल्लभाचार्य, आलवार संत तथा वीरशैव और लिंगायत आदि शैव सम्प्रदायों की दार्शनिक मान्यताओं पर मुस्लिम प्रभाव है।' हमारे भारतीय विद्वानों ने पाश्चात्य विद्वानों के उक्त मतों का खंडण कर भक्ति का मूल उद्गम प्राचीन भारतीय स्त्रोतों से सिध्द किया है।

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदीने हिन्दी साहित्य में भक्ति के उदय के संबंध में लिखा है- '' यह बात अत्यंत उपहास्पद है कि जब मुसलमान लोग उत्तर भारत के मंदिर तोड रहे थे तो उसी समय अपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलमानों के अत्याचार से यदि भक्ति की भाव धारा को उमडना था तो पहले उसे सिन्ध में और फिर उसे उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर हुई दक्षिण में।''

डॉ. सत्येन्द्र भक्तिका उदय द्राविडों से मानते हुए लिखते हैं- ''भक्ति द्राविडी उपजी लाये रामानन्द।'' इस उक्ति के अनुसार भक्ति का अविर्भाव द्राविडों में हुआ। उक्ति कर्ता सम्भवतः नहीं जानता था कि वह इन शब्दों पर कितने गहरे सत्य को प्रकट कर रहा है। उसका द्राविड से अभिप्राय संभवतः दक्षिण देश से ही था, किन्तु जैसा संकेत किया जा चुका है, नई

प्रागैतिहासिक खोजों में यह सिध्द–सा होता है कि भक्ति का मूल द्राविडों में है और दक्षिण के द्राविडों में ही नहीं, उनके महान पूर्वज 'मोहनजोदडों' और 'हडप्पा'के द्राविडों में भी। अभी संसार को जितने भी प्रमाण प्राप्त है उनसे यह सिध्द होता है कि मोहन जोदड़ो और हडप्पा के द्राविड, अथवा व्रात्य एकेश्वरवादी थे। उनके ईश्वर का नाम शिव था। ... आर्यो ने भक्ति का भाव दक्षिण से प्राप्त किया था।'' भक्ति का प्रतिपादन महाभारत और गीता में प्राप्त होता है। उसमें वासुदेव की उपासना–पध्दति का निरुपण किया गया है, वह भक्ति भावना का प्रारंभिक स्वरुप है।

नारदभक्ति सूत्र में भी भक्ति का विवेचन किया गया है। भक्ति के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है न शोक करता है, न द्वेष करता है न किसी वस्तु में आसक्त होता है। नारद ने भक्ति को कर्म–ज्ञान और योग की अपेक्षा श्रेष्ठत्तर बताया है।

आलवार सम्प्रदाय के रुप में दक्षिण में भक्ति की परम्परा बहुत ही प्राचीन थी। आलवार भक्ति सम्प्रदाय में जति के बन्धन नहीं थे। अडाल नामक भक्तिन हुई जो कृष्ण को अपना पति मानती थी।

बारहवी शताद्वी में आचार्य मध्वाचार्य ने शंकर के अद्वैतवाद का प्रबल विरोध कर द्वैतवाद की स्थापना की। उन्होंने मायावाद का खंडण करके विष्णुकी भक्ति का प्रचार किया द्वैताद्वैत वाद के संस्थापक निम्बाकाचार्य ने लक्ष्मी और विष्णु की भक्ति के स्थान पर राधाकृष्ण की भक्ति का प्रचार किया सुध्दा द्वैतवाद के प्रतिष्ठापक वल्लभाचार्य ने बालकृष्ण की उपासना पर बल दिया और पुष्टि मार्ग का प्रवर्तन किया। पन्द्रहवी–सोलहवी शताब्दी में भक्ति आंदोलन बड़े उत्साह के साथ भारत में फैलने लगा। चैतन्य सम्प्रदाय, सखी सम्प्रदाय, राधा वल्लभ सम्प्रदाय ने कृष्ण की माधुर्य भक्ति का प्रचार किया। कबीर, दादू, नानक आदि संतों ने ईश्वर के सगुण–निर्गुण मिश्रित रुप की उपासना पर बल दिया। सुफियों ने प्रेम कहानियों के माध्यम से ईश्वर के प्रेम स्वरुप का प्रचार किया। इस भक्ति साहित्य का वर्णन करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं– '' नया साहित्य मनुष्य जीवन के एक निश्चित लक्ष और आदर्श को लेकर चला। यह लक्ष्य है भगवद्‌भक्ति; आदर्श है शुध्द सात्विक जीवन और साधन है भगवान के निर्मल चरित्र और सरल लीलाओं का गान। इस साहित्य को प्रेरणा देनेवाला तत्व भक्ति है इसलिए यह साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य से सब प्रकार से भिन्न है।''

हिन्दी भक्तिकाल का साहित्य

भक्तिकाल का आरंभ अधिकांश विद्वान सन् १३५० मानते हैं किन्तु आ. शुक्लजी सन् १३१८(सं १३७५) मानते हैं। इस काल को भक्ति का सुवर्ण युग कहा गया है क्योंकि इस काल में संत कबीर, जायसी, तुलसीदास, सूरदास इन समकालीन कवियों ने अपनी रचनाओं का निर्माण किया। उपासना भेद की दृष्टि से इस काल के साहित्य को दो भागों में बाँटा गया है। एक सगुण भक्ति और दूसरा निर्गुण भक्ति। निर्गुण के दो भेद किए गए है। संतो की निर्गुण उपासना अर्थात ज्ञानमार्गी शाखा तथा सूफियों की निर्गुण उपासना अर्थात प्रेममार्गी शाखा। सगुण में विष्णु के दो अवतार राम और कृष्ण की उपासना साहित्य सृजित है।

◆◆◆◆◆◆

भक्तिकाल

(सं.१३७५–१७००)

२. भक्ति काल की परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल को भक्ति काल कहाँ जाता है। इस काल में भक्ति काव्य धारा के साथ काव्य की अन्य परम्पराएँ भी रही हैं। भारत में मध्य काल में भागवत पुराण भक्ति प्रमुखता से रही ? भागवत भक्ति दक्षिण से होकर उत्तरी भारत भक्ति परम्परा से एकरूप होकर पूरे भारत वर्ष में व्याप्त हो गई। मध्यकालीन भारतीय साहित्य का मूल स्वर भक्ति रही हैं। भगवान की निर्गुण एवं सगुण भक्ति पर बल दिया गया था। तत्कालीन भारत की सभी प्रमुख मराठी, गुजराती, पंजाबी, बंगला, तमिल, मल्यालम और कन्नड आदि भाषाओं में भक्ति का साहित्य लिखा गया। शुक्लजी ने ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी, राम भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति काव्य आदि भक्ति की धाराओं का उल्लेख किया हैं। भक्तिकालीन साहित्य के उद्‌भव और विकास को समुचित रुप में अवगत करने के लिए तत्कालीन परिस्थितीयाँ जानना अनिवार्य हैं। अतः तत्कालीन विभिन्न परिस्थितीयों का विवेचन किया जा रहा हैं।

१) राजनैतिक परिस्थितियाँ :

हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल तक उत्तरी भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हो चुकी थी। किन्तु इन दिनों मुगलों और अफगानों में परस्पर संघर्ष जारी हुआ। इस समय मुस्लिमों नें हिन्दुओं से संबंध स्थापित कर अपना शासन दृढ करना शुरु किया।

भक्तिकाल का समय सं. १३७५ से १७०० तक के कालखण्ड में माना जाता हैं। इस कालखण्ड को दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैं। प्रथम भाग सं १३७५ से १५८३ तक और दुसरा सं. १५८३ से १७०० तक। प्रथम भाग में दिल्ली पर तुगलक और लोधी वंश का शासन था। दुसरे भाग में मुगलवंश के बाबर, हुमायुँ, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ का शासन रहा हैं। मुगलवंश काल राजनीतिक दृष्टी से प्रायः यह काल अशान्त और संघर्षमय रहा था।

१२९५ में अल्लाउद्दीन खिलजी दिल्ली की गद्दी पर बैठा। उसने मालवा प्रांत और महाराष्ट्र को जीत लिया। गुजरात जीतकर राजपुताने घराने कों घेर लिया और दक्षिण भारत में मुस्लिम शासन पहुँचा। अल्लाउद्दीन खिलजी की मृत्यु के पश्चात दिल्ली का शासन बलहीन हुआ। सन १३२० में गयासुद्दीन तुगलक ने उस में शक्ति प्रदान की। कुछ काल के उपरान्त प्रान्तिक शासकों में स्वतंत्र अस्तित्व बनाने में लगें रहें। मेवाड में हम्मीर सिसोदिया १३२६ में स्वतंत्र हो गया। इन्हीं दिनों विजयनगर में हिन्दू राज्य की स्थापना हुई। मदुरा और बंगाल में दिल्ली सल्तनत के सुबेदार स्वतंत्र सुल्तान बन गए। दक्षिण में बहामनी राज्य की स्थापना हुई। कश्मीर में शाहमीर ने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया।

१५ वी शताब्दी प्रान्तीय शासकों का युग रहा है। इस काल में राजस्थान और मेवाड की उन्नति हुई। महाराणा लाखा, चूडा और कुंभा के शासन काल में वह एक प्रमुख शक्ति बना। मालवा, गुजरात,बंगाल और कश्मीर के शासक स्वतंत्र अस्तित्व बनाए हुए थे। बुंदेल खण्ड में

गहड़वाल वंशज बुंदेल सरदार राज्य करने लगा था। उड़ीसा में सुर्यवंशी कपिलेन्द्र ने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। बाबर ने १५२६ में पानिपत के मैदान में नवीन उपकरणों के प्रयोग से इब्राहिम लोधी को पराजित किया। बाबर ने राणा सांगा को भी पराजित किया। परन्तु बाबर के पुत्र हुमाँयु को शेरशाह सुरी ने पराजित किया। शेरशाह के समय में ही हिन्दी का अमरकाव्य 'पद्मावत' लिखा गया। शेरशाह सुरी के उत्तराधिकारी अयोग्य निकले परिणामतः मुगलों में अकबर जैसा शासक हुआ। तत्कालीन छोटे छोटे राजाओं ने अकबर का अधिनत्व स्वीकार कर लिया। मेवाड़ के महाराणा प्रताप अकेले रह कर अंत तक संघर्षरत रहे। महाराणा प्रताप का पुत्र अमरसिंह जंहागीर से १६ वर्ष लड़ा पर अन्त में उसने अधीनता मान ली। शाहजहाँ के अन्तिम दिनों में बुन्देलखण्ड में चंपतराय व महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी महाराज की सत्ता स्थापित हुई।

भक्तिकाल का साहित्य राजनीतिक वातावरण के प्रतिकु ल है। कबीर, जायसी, तुलसी और सूर इन कवियों को न तो सीकरी से काम था और न प्राकृत जन गुण–गान से सरोकार था।

सामाजिक परिस्थितियाँ :

१५वी शताब्दी तक आते आते हिन्दू और मुस्लिमों के बीच सामंजस्य की भावना निर्माण हुई थी। जीवन के कई क्षेत्र में आदान–प्रदान कर रहे थे। कुछ परिवार पुर्ववत हिन्दू बनने के लिए प्रयत्नशील थे। इनके बीच विवाह सम्बन्ध भी होने लगे थे। कश्मीर सुलतान शाह मीर के पूर्वज हिन्दू थे। उन्होंने अपनी लडकियों का विवाह हिन्दू सामन्तों से कर दिया था। लडके उल्लेशेर का विवाह हिन्दू सेनापति की लड़की से हुआ। लड़की पति धर्म स्वीकार कर लेती थी। यह वैवाहिक सम्बन्ध सामन्त वर्ग तक सीमित थे। जनसामान्य में जाति–पाति की भावना अधिक दृढ थी। इस काल में संत कबीर ने जाति–पाति भेद, अन्धविश्वास का प्रखर विरोध किया। खान–पान के कोई बन्धन नहीं थे। चौदहवी शताब्दी तक यह बन्धन कड़े नहीं थे। किन्तु आगे छुआछूत और खान–पान के बन्धन अधिक कड़े होते गए।

शेरशाह ने जमींदारी प्रथा को बन्द किया था। किन्तु मुगलों ने इसे फिर से शुरू किया। बादशाह व जागीरदारों का जीवन भोग विलास तथा ऐश्वर्यपूर्ण था। बादशाह को प्रजा की सुख–दुख की ओर ध्यान न था। गुजरात, खानदेश, और दक्षिण में अकाल पडने पर लगान में छूट देकर अनाज बटँवाया गया था। विलासी मुस्लिम अधिकारीयों की सस्ती रसिकता से रक्षा पाने के लिए हिन्दू समाज में पर्दाप्रथा और बाल विवाह का प्रचलन हुआ। कुछ मुस्लिम शासकों में रुप–लिप्सा और काम–पिपासा भी कम नहीं थी। अल्लाउद्दीन ने ५० प्रतिशत भाग कर के रुप में बडी कठोरता से उगाहा था। हिन्दू और मुस्लिमों के बीच शासित और शासक का भेद था वहाँ धीरे धीरे एक दुसरे के प्रति उदार भी होने लगे थे।

धार्मिक परिस्थितीयाँ :

इस काल की धार्मिक परिस्थिती बडी शोचनीय थी। विविध धर्म और सम्प्रदायों का प्रचलन था। इन धर्मो नें परस्पर समन्वय की भावना नहीं थी। इस काल में वैष्णव धर्म परम्परा की जड़े मजबूत कर रहा था। बौध्द धर्म का विकृत रूप उभरा था। सूफी धर्म भी अपनी जड़े मजबूत बना रहा था।

१) बौध्द धर्म : – बौध्द धर्म के संस्थापक तथागत भगवान गैातम बुध्द है। भगवान बुध्द के महानिर्वाण के पश्चात धर्म का महायान और हीनयान इन दो भागों में विभाजन हुआ। हीनयान में सिध्दांत पक्ष की दार्शनिक जटीलता थी। परिणामतः कम लोगों की आस्था उस सम्प्रदाय के प्रति बनी रही। महायान में सिध्दांतों की अपेक्षा व्यवहार पक्ष को प्रधानता दी गयी थी। कालांतर में हीन यान में कट्टरता एवं संकीर्णता आई। हीनयान अधिक कट्टरता के कारण संकुचित होता चला गया और महायान अधिक उदारता के कारण विकृत। बौध्द धर्म की इस स्थिति का पुरा फायदा शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट ने उठाया और वैदिक हिन्दू धर्म का पुनरुध्दार किया। सुसंस्कृत जनता शंकराचार्य की ओर आकृष्ट हुई। महायान सम्प्रदाय के कारण असंस्कृत वर्ग में तंत्र–मंत्र तथा व्यभिचारबाजी से वशीभूत किये रखा। इसीलिए इसका कालांतर में मंत्रयान नाम पड़ा। मंत्रयान ने वाम मार्ग की मद्य, मांस, मैथून,मुद्रा आदि अनेक मुद्राओं को अपना लिया। नारी के प्रति वासना वृत्ति को साधना का आवश्यक अंग माना गया। मंत्रयान से वज्रयान निकला और उसमें चौरासी सिध्द हुए। इन में गोरखनाथ प्रमुख रहे। इन्हों ने सिध्द एवं नाथ सम्प्रदाय चलाया।

२) वैष्णव धर्म :– शंकराचार्य के पूर्व दक्षिण से आए अलवार संतों ने भक्ति का प्रचार एवं प्रसार किया। इस समय अनेक धार्मिक सम्प्रदाय निर्माण हुए। जिन में विष्णू भक्ति को अधिक महत्व दिया गया। विष्णू के अवतारों में राम और कृष्ण की स्थापना हुई। रामानन्द ने भक्ति के द्वार सब के लिए खोले और जनभाषा में अपने सिध्दांतों का प्रचार किया। इनके पूर्व रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बार्क आदि ने संस्कृत में अपने सिध्दांतो का प्रचार किया। विष्णु के अवतार भगवान श्री कृष्ण की उपासना के विविध भेद निर्माण हुए। भगवान कृष्ण को भागवत पुराण के दशम स्कंध में वर्णित कृष्ण के रुप में अपना आराध्य माना गया। कालान्तर में भक्ति पध्दती में विलासिता व भोग की प्रधानता बनी रहीं।

३) सूफी धर्म :– भारत पर मुस्लिमों के आक्रमण पूर्व ही सूफी संत कवियों ने इस्लामी वातावरण तैयार किया था। कुछ सम्प्रदाय प्रचलित रहे। सूफी कवियों ने भारतीय अध्यात्मिक और अद्वैत को अपने ढंग से स्वीकार किया और प्रेमस्वरुप निराकार, निर्गुण ईश्वर का प्रचार प्रसार किया। सूफी संत कवि सच्चरित, विद्वान और सहनशील थे। हिन्दू धर्म के प्रति उनकी आस्था एवं विश्वास था। इसके फलस्वरूप सूफियों ने भारतीय जनता के मन को जीता है। नाथ सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण सूफियों ने उनके विचार व एकेश्वरवादी विचारों को अपनाते हुए इस्लाम के साथ समन्वय करने का प्रयास किया। अतः इन्होंनें हिन्दू–मुस्लिम के अजनबीपन को मिटाया।

साहित्यिक परिस्थितीयाँ : –

भक्तिकाल के विचारकों ने गद्य में अपने विचार व्यक्त न करके उन्हें छंद–बध्दरुप में व्यक्त किया। संस्कृत में इस संबंध में टिकाओं, व्याख्याओं की सृष्टी होती रही। किसी नवीन मौलिक उद्भावनाओं से काम नहीं लिया गया। सिध्दांत प्रतिपादन तथा भक्ति प्रचार की भावना उस समय के समस्त साहित्य में काम कर रही हैं। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी जैसे भावुक

कवी भी इस मनोवृत्ती से अछुते नहीं रहें। इस युग में हिन्दूओं का उच्च वर्ग संस्कृत भाषा व्यवहार में उपयोग कर रहा था। मुसलमान भी मुख्यतः मुगलसत्ता के कारण राज काज में फारसी को स्वीकृत किया गया था। फलतः इतिहास के अनेक ग्रंथो का निर्माण फारसी में किया गया। इस काल में गद्य का प्रयोग राजस्थान की भाषाओं में और कुछ ब्रज भाषा की वचनिकाओं में हुआ। बादशाहों तथा राजाओं के आश्रित कवियों नें प्रशास्ति, श्रृंगार, रीति, नीति आदि से संबंधित मुक्त और प्रबंध दोनों प्रकार की रचनाएँ की हैं।

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ :

समन्वयात्मकता भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषता है। सांस्कृतिक चेतना की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति सार्वभौम सत्य के आधार पर प्रतिष्ठित धार्मिक भावना और दार्शनिक चिन्ताधार के माध्यम से हुई हैं। कला, शिल्प, साहित्य और संगीत इन्ही की देन है। शैव, शाक्त, भागवत और गाणपत्य जैसे प्रमुख धर्मो में ज्ञान योगतंत्र और भक्ति की प्रवृत्तियों का समन्वय होने लगा। योग का प्रभाव उस समय इतना बढा कि भक्ति ज्ञान और कर्म के साथ भी योग शब्द को जोडा जाना आवश्यक समझा जाने लगा। समन्वयात्मकता की प्रवृत्ति धर्म के समान मुर्ति एवं वास्तुकलाओं में भी देखी जा सकती हैं। खजुराहों के वैद्यनाथ मन्दिर के शिलालेख में ब्रम्ह, जिन, बुध्द तथा वामन को शिव का रुप कहा गया है। भक्ति आंदोलन इसी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिणाम है।

इसी काल में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ एक दुसरे के निकट आयी। संगीत, चित्र तथा भवन निर्माण में समन्वय आरंभ हुआ। साहित्य भी एक दुसरे से प्रभावित रहा। नायक नायिकाओं के नयनाभिराम चित्रों तथा विविध कलाओं के रूप में दोनों की चित्रकलाओं का समागम दर्शनीय है। काव्यों में भी राग–रागिनियों का प्रयोग किया जाने लगा।

भक्तिकाल को साहित्य की दृष्टी से सुवर्ण युग कहाँ गया है। इस काल में भारत की लगभग सभी भाषाओं का साहित्य सृजन हुआ है। भक्तिकाल नें हिन्दी को सुर, तुलसी, कबीर, जायसी, मीरा, रहीम, रसखान जैसे प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार दिए हैं। भक्ति साहित्य एक साथ ह्रदय, मन और आत्मा की भूख को क्षमता है।

◆◆◆◆◆◆

संत काव्य

३अ. १ प्रस्तावना
३अ. २ प्रमुख संत कवि
३अ. ३ संत काव्य की विशेषताएँ
३अ. ४ अभ्यास

३अ.१ प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में भक्ति की सगुण और निर्गुण यह दो धाराएँ विकसित हुई। सगुण भक्तिधारा के अंतर्गत राम और कृष्ण का भक्ति काव्य आता है, निर्गुण के अंतर्गत संत काव्य तथा सूफी काव्य आता है। संत काव्य के प्रवर्तक संत कबीर है। संत काव्य को विद्वानोंने कई नामों से संबोधित किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल संत काव्य को 'निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा', डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे निर्गुण भक्तिकाव्य' तथा रामकुमार वर्मा ने इसे 'संत काव्य परम्परा' नाम से अभिहित किया है।

श्री पीताम्बर दत्त बडथ्वाल ने संत शब्द की उत्पत्ति शांत शब्द से मानी है और इसका अर्थ निवृति मार्ग या वैरागी माना है। इस संबंध में परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है – ''संत शब्द उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है जिसने 'सत' रूपी परम तत्त्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ तद्‌रूप हो गया हो, जो संत स्वरुप नित्य सिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुका हो अथवा अपरोक्ष की उपलब्धि के फल स्वरुप अखण्ड सत्य में प्रतिष्ठित हो गया हो वही संत है।'' अत: निर्गुणोपासकों के लिए 'संत' तथा सगुणोपासकों के लिए 'भक्त' शब्द प्रयोग किया गया है।

डॉ. त्रिलोकीनाथ दीक्षित ने संतकाव्य धारा का दार्शनिक सांस्कृतिक आधार उपनिषद् शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन नाथ–पंथ, इस्लामधर्म तथा सूफी दर्शन आदि को माना है। डॉ. दीक्षित ने निर्गुण भक्ति विकास के पंचतत्व को उल्लेखित किया है – ''निर्गुण भक्ति का मूल तत्व है – निर्गुण सगुण से परे अनादि, अनन्त, अनाम, अजात ब्रह्म का नाम जप। संतों ने नाम जप को साधना का आधार माना है। 'नाम' समस्त संशयों और बन्धनों को विछिन्न कर देता है। 'नाम' ही भक्ति और मुक्ति का दाता है। द्वितीय मूलतत्त्व मानसिक भक्ति। तृतीय मूल तत्व है – प्रेम के माध्यम से कर्मकाण्ड की अनपेक्षित दरुहताओं को दूर करना। चतुर्थ तत्त्व है– मानव की ऐसे विश्वव्यापी धर्म के सूत्रों में निबद्ध करना जहाँ जाति, वर्ग और वर्ण संबंधी भेद न हो। पंचम तत्व है – सहज साधना। इन तत्त्वों से निर्गुण भक्ति का विकास हुआ है।

३अ.२ संत काव्य के प्रमुख कवि

संत काव्य के प्रवर्तक संत कबीर माने जाते हैं। इस विचारधारा के बीज आदिकाल के नाथ कवियों तथा संत नामदेव की रचनाओं में मिलते हैं। भक्ति कालीन निर्गुण संत कवियों में कबीर, दादू, नानक, रैदास, सुन्दरदास, मलूकदास आदि संतो ने इस धारा के प्रचार–प्रसार

तथा विकास में अपना बहुत बड़ा योगदान दिया हैं। यहाँ सभी प्रमुख संत कवियों का परिचय संक्षित रूप में दिया जा रहा है।

ज्ञानमार्गी निर्गुण धारा के प्रमुख संत कबीर

संत कबीरदास के जन्म सम्बन्ध में अनेक प्रवाद है। अंतरसाक्ष्य और कबीर चरित बोध के आधार पर इनका जन्म सन् १३९८ माना गया है। लहर तालाब के ताल के पास मिले बालक को नीरु नाम के जुलाहाने अपने घर ले जाकर उसका पालन किया नीरु की पत्नी नीमा ने माता का स्नेह दिया। परिणाम स्वरुप कबीर दास की जाति जुलाहा थी। कबीर ने अपने जीवन में दो विवाह किए थे। उनकी पत्नी का नाम 'लोई' था, जिससे उन्हें कमाल और कमाली नामक संन्तान प्राप्त हुई थी। इन का देहावसान काल सन् १५१८ ई. माना गया है।

कबीरदासजी के गुरु के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने 'रामानन्द' को स्वीकारा है। तत्कालीन हिन्दी भक्ति साहित्य आंदोलन में रामानंदजी का बहुत बड़ा योगदान है। रामानंदजी ने दशदाभक्ति के साथ ही ज्ञान मार्ग का उपदेश देकर सामाजिक हीनता की भावना को समूल नष्ट करने का प्रयास किया और साधना एवं भक्ति को सभी वर्गों तक तथा सभी वर्णों के लिए खुला कर दिया। यही गुरु मंत्र लेकर कबीर ने तत्कालिन सामाजिक रुढि, परम्परा कुरीतियाँ, धार्मिक–सामाजिक विसंगतियों पर करारा आघात किया है। ''मसिकागद धुओं नहीं, कलाम गहयों नहीं हाथ।'' इस बात को स्वीकारने वाले कबीर ने अपनी वाणी के माध्यम से समाज जन जागरण करने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी रचनाओं को लिपिबध्द नहीं किया। उनके परवर्ती शिष्यौ ने जन मानस में प्रचालित रचनाओं को लिपिबध्द किया। कबीर की रचनाओं में 'बीजक' को प्रामाणिक माना गया है। इसमें कबीर के उपदेशों को शिष्यों ने संकलित किया है। साखी, सबद, रमैनी बी यह बीजक के तीन भाग है। कबीर के ग्रंथों की संख्या लग–भग साठ मानी जाती है।

कबीर के काव्य की विरहानुभूति उच्च कोटी की थी। वह अपने राम के अनन्य विरही थे। उन्हें विरह की विभिन्न दशाओं की वेदना सहनी पडी थी। विरहानुभूति के बिना साधक में प्रिय–मिलन की उत्कण्ठा जागृत ही नहीं हो सकती। कबीर कहते है–

'विरहा कहै कबीर सूँ, तू जिन छाँडे मोहि।
पाप ब्रम्ह के तेज में तहाँ लै राखो तोहि।।'

कबीर काव्य में नारदी भक्ति को माना है। कबीर का मानना है कि, निर्मल मन से भक्ति पर ही 'राम' मिल सकते है–

कर्म करत बध्दे अहमेव। पाथर को करहिं सेव।।
कहु कबीर भगति कर पाया। भोले भाय मिले रघुराया।।

कबीर साहित्य के अध्ययन के बाद यह पता चलता है कि उन्होंने विभिन्न धर्म और सामाजिक विसंगति अंधविश्वास पर करारा अघात किया है। उन्होंने किसी भी धर्म को बक्शा नहीं है। उन्होंने हिन्दुओं की मुर्तिपूजा, तीर्थ यात्रा, व्रत वैफल्य, अवतारवाद, पोथी पुरान, पठन आदि पर आघात किया है और मुस्लिम धर्म में व्याप्त पाखण्डों रोजा, नमाज, हजयात्रा आदि

पर प्रहार किया है। डॉ. हजारी प्रसाद के शब्दो में– 'कबीर ऐसे ही मिलन बिंदू पर खडे थे, जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ से एक ओर ज्ञान निकल जाता है और दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ एक ओर भक्ति मार्ग निकल जाता है और दूसरी ओर योग मार्ग, जहाँ से एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है और दूसरी ओर सगुण साधना, प्रशस्त चौराहे पर वे खडे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुध्द दिशामें गये हुए मार्गों के दोष, गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। कबीर का यह सौभाग्य था। उन्होंने इसका खूब उपयोग भी किया।' संत कबीर दास जी वे जाति, धर्म, सम्प्रदाय विरहित समाज का निर्माण करना चाहते है।

'जाति–पाँति पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।'

वे हिंदू धर्म की विसंगति पर प्रहार करते हुए कहते हैं–

'दुनिया ऐसी बावरी पाथर पूजन जाय।
घर की चकिया कोई न पूजै जेहिका पीसा खाय।'

उसी प्रकार मुस्लिम धर्म की विसंगति पर प्रहार करते हुए वे कहते है–

'कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई चुनाय।
तापर मुल्ला बाँग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय।।'
'दिन भर रोजा रहत है राति हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुसी खुदाय।।'

संत कबीर योगियों और जैनियों को लताडते हुए कहते हैं–

'नांगे फिरे जोग जे होई बन का मृग मुकती गया कोई।
मूँड मुंडाये जो सिधि होई, स्वर्ग ही भेडन पहुँची कोई।।'

वे सिध्दों के भेद खोलते हुए कहते है–

''नारीकी झाँई परत अन्धा होय भुजंग।
कबीरा तिन को कौन गति जो नित नारी के संग।।'

जाति, धर्म, सम्प्रदाय, रुढि, परम्परावादी बाह्यआडंबर पर प्रहार कर एक मानवता वादी समाज का निर्माण संत कबीरदास करना चाहते थे।

संत कबीर की भाषा में पंजाबी, भोजपूरी, बंगला, मैथिली, राजस्थानी, लहंदा, खडी बोली, आदि का प्रयोग मिलता है। इस संदर्भ में डॉ. गोविंद त्रिगुणायत ने लिखा है–

''मेरा तो अनुमान है कबीर की भाषा में यदि देखा जाए और खोज की जाय तो भारत की प्रत्येक भाषा का कुछ न कुछ प्रभाव दिखाई देगा।'' (कबीर की विचारधारा– गोविंद त्रिगुणायत– पृ २९७) वे आमजनों को जन बोलियों में, वे पण्डितों को शुध्द हिन्दी में, मुसलमान को फारसी मिश्रित उर्दू का प्रयोग कर अपनी बात समझाते हैं।

डॉ. हजारीप्रसाद के शब्दो में– ''भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रुप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रुप में भाषा से कहलवा दिया।'' कबीर की भाषा श्रृंगार रसपूर्ण है 'दुलहिन गावहु मंगलाचार' इस पद से स्पष्ट होता है। कबीर के काव्य में सहज रुप से छंदों का प्रयोग हुआ है। साखी, सबद, रमैणी, बसन्त हिडोंला, चाचर बेलि, आदि छंदों का प्रयोग उनकी रचना में पाया जाता है। उनकी रचनाओं में रुपक और उपमा अलंकार का अधिक प्रयोग हुआ है। अत: कबीर की प्रतिभा में कोई संदेह नहीं है।

रैदास (रविदास) :

रैदास रामानन्द की शिष्य परम्परा और कबीर के समकालीन कवि थे। रैदास का जन्म सन् १२९९ ई. में काशी में हुआ है। रैदास विवाहित थे उनकी पत्नी का नाम लोना था। इन्होंने स्वंय अपनी जाति का उल्लेख किया है– ''कह रैदास खलास चमारा'' संत रैदास पढे लिखे नहीं थे। इन्होंने प्रयाग, मथुरा, वृंदावन, भरतपुर, चितौड आदि स्थानों का भ्रमण कर निर्गुण ब्रम्ह का जनसाधारण की भाषामें प्रचार–प्रसार किया। चित्तौड की रानी और मीराँबाई इनकी शिष्या थी।

रैदास में संतों की सहजता, निस्पृहता, उदारता, विश्वप्रेम, दृढ विश्वास और सात्विक जीवन के भाव इनकी रचनाओं में मिलते है। इनकी रचनाएँ संतमन की, विभिन्न संग्रहों में संकलित मिलती है। इनके फुटकर पद 'बानी' के नाम से 'संतबानी सीरीज' में संग्रहित मिलते है। इनके '' आदि गुरु ग्रंथ साहिब'' में लगभग चालीस पद मिलते हैं। इन्होंने संत कबीर के समान मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा आदि बाह्यआडंबरो का विरोध किया है। कुछ पद नीचे उद्धृत है–

''तीरथ बरत न करौ अंदेशा। तुम्हारे चरण कमल भरोसा।।
जहँ तहँ जाओ तुम्हरी पूजा। तुमसा देव और नहीं दूजा।।''

संत रैदास ने जति–प्रथा पर भी प्रहार किया है अपने अपमान और ओछे पन को लेकर उन्होंने लिखा है–

'जाती ओछा पाती ओछा, ओछा जनमु हमारा।
राम राज की सेवा कीन्हीं, कहि रविदास चमारा।

संत रैदास ने तत्कालीन जातिवर्णगन भेद भाव को भी वर्णित करते है–

'जाके कुटुंब सब ढोर दोवंत
फिरही अजहूँ बनारसी आसपास
आचार सहित विप्र करहीं डंडडति
तिन वनै रविदास दासानुदास।।'

अपने भावों, और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए सरल व्यावहारिक ब्रजभाषा को अपनाया है जिसमें अवधी, राजस्थानी खडी बोली का प्रयोग किया है। साथ ही इनमें कहीं–कहीं उर्दू, फारसी के शब्दों का भी मिश्रण मिलता है।

नानक पन्थ : नानक देव (१४६९–१५३८)

नानक पन्थ के प्रवर्तक तथा सिक्ख मत के प्रवर्तक गुरु नानक देव आद्य गुरु माने जाते हैं। गुरु नानक का जन्म संवत १५२६ में तलवंडी नामक गाँव में हुआ। इनके माता–पिता का नाम तृप्ता व कालूराम था। इन का विवाह गुरुदास पूर के मूलचन्द्रखत्री की बेटी सुलक्षणी से सत्रह वर्ष की आयुमें हुआ था। इन का दो पुत्र थे– श्रीचन्द और लक्ष्मीचंद। बाल्यावस्था में ही उन्हे संस्कृत, पंजाबी, फारसी एवं हिन्दी की शिक्षा प्राप्त हुई थी। वे आरंभ से ही संत सेवा, ईश्वर भक्ति, आत्म चिंतन की ओर उन्मुख रहे। उन्हें रुढि, परम्परांगत जाति बन्धन, अनाचार, के प्रति विरोध था। उनका व्यक्तितत्व असाधारण था। उनमें गृहस्थ, त्यागी,

धर्मसुधारक, समाजसुधारक, देशभक्त आदि गुण थे।

गुरु नानक देव के बहुत से पद, साखियाँ तथा भजन लिखे हैं। उनका संकलन सिक्खों के छटे गुरु अर्जुन देवने सन् १६०४ में 'गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित किये हैं। नानक देव की काव्य भाषा हिन्दी, फारसी और पंजाबी है। उनकी भाषा में सहजता है। आ. ह. प्र द्विवेदी लिखते हैं– ''जिन वाणियों से मनुष्य के अंदर इतना बडा अपराजेय आत्मबल और कभी समाप्त न होनेवाला साहस प्राप्त हो सकता है, उनकी महिमा
नि:संदेह अतुलनीय है। सत्त्वे न्हृदय से निकले हुए भक्त के अत्यंत सीधे उद्गार और सत्य के प्रति दृढ रहने के उपदेश कितने शक्तिशाली हो सकते हैं, यह नानक की वाणियों ने स्पष्ट कर दिया है।''

इन महान सन्तों के अतिरिक्त संत–साहित्य धारा के विकास में कवियों का योगदान रहा है। उनमें सम्प्रदाय स्थापक कवि भी है। विश्नोई सम्प्रदाय के जन्भनदास, साध सम्प्रदाय के वीरभान और जोगीदास, लाल पन्थ के लालदास, दादू पंथ के दादूदयाल, मलूक पंथ के मलूकदास, वारकरी सम्प्रदाय के ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ आदि सम्प्रदाय एवं सम्प्रय प्रमुखों ने संत साहित्य धारा के विकास में योगदान दिया है।

३अ. ३ संत काव्य की सामान्य विशेषताएँ

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल को निर्गुण और सगुण भक्ति काव्यधारा इन दो भागोंमें विभाजित किया जाता है । इस काल में निर्गुण भक्ति पद्धति अत्याधिक प्रभावी रही हैं। निर्गुण भक्तिधारा में दो शाखाएँ विकसित हुई एक ज्ञानाश्रयी शाखा और दुसरी प्रेममार्गी शाखा। ज्ञानाश्रयी शाखा को संत काव्य नाम से संबोधित किया जाता हैं। अतः निर्गुण भक्ति, ज्ञानाश्रयी शाखा तथा संत काव्य आदि नाम संबोधन भक्तिकाल के एक विशिष्ट काव्य धारा को ही दिए गए हैं। इसके प्रवर्तक संत कबीर माने जाते हैं। इस काव्य की यह विशेषता मानी जाती हैं कि इसमें कहीं पर भी कृत्रिमता नहीं दिखाई देती हैं। इसमें सहज प्राकृतिक सौंदर्य है जो मन मस्तिष्क को एक साथ हर लेता हैं। संत साहित्य में अधिक तर आध्यात्मिक विषयों की अभिव्यक्ति हुई है। निर्गुण संत काव्य ने अनेक धार्मिक सम्प्रदायों के प्रभावों को ग्रहण किया है। यह साधना तथा काव्यवैभव दोनो दृष्टि से बहुत ही सम्पन्न हैं। संत कवियों की विचारधारा नीजी ज्ञान और अनुभूतियाँ पर आधारित है। इस काव्य धारा की सामान्य प्रवृत्तियाँ एवं सामान्य विशेषताओं को विवेचन निम्न प्रकार दिया जा रहा हैं।

निर्गुण ईश्वर में विश्वास :

सभी संत कवियों ने ईश्वर के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त किए हैं । सभी वर्णो और समुची जातियों के लिए वह निर्गुण एक मात्र ज्ञानगम्य हैं । वह अविगत हैं । वेद पुराण तथा स्मृतियाँ जहाँ तक नही पहुँच सकती –

'मनिर्गुण राम जपहुरे भाई, अविगत की गति लखी न जाई ।'

ये सन्त कवि सूर और तुलसी के समान सगुण और निर्गुण के समन्वयवादी नही है ।

इन्होंने ईश्वर के सगुण रुप का विरोध किया हैं। कवि का कहना है –

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना,
राम नाम का मरम है जाना ।

निर्गुण ब्रम्ह के सम्बन्ध में सन्त कबीरदासजी ने उत्कृष्ट उदाहरण देकर समझाया है –

'जा को मुँह माथा नही, नाही रुप कुरुप ।
पुष्प गंध ते पातरा, ऐसा रुप अनुप ।।'

संत कबीर एवं संत कवियों के अनुसार ईश्वर का अत्यंत सूक्ष्म रुप है वह दिखाई नही देता । जिस प्रकार कोई पुष्प है परंतु उसमें समाहित गंध दिखाई नही देती उसी प्रकार ईश्वर घर घरमें विराजमान है । वह प्रत्येक मनुष्य के ह्रदय में वास करता है ।

बहुदेव वाद तथा अवतारवाद का विरोध :

भक्तिकालीन निर्गुण संत कवियोंने बहुदेववाद तथा अवतारवाद का विरोध किया है। उन्होंने इस भावना का निर्भिकता पुर्वक खन्डन किया है। इसका कारण राजनीतिकता का परिणाम तथा शंकराचार्य के अद्वैत का प्रभाव था। शासक वर्ग मुसलमान एकेश्वर वादी था। हिन्दु–मुस्लिम धर्मो में विद्वेषाग्निको शांत कर एकता की स्थापना के लिए इन कवियों ने एकेश्वर वाद का संदेश देकर बहुदेववाद तथा अवतार का विरोध कर ब्रम्हा, विष्णू, महेश को मायाग्रस्त कहा और उनकी निंदा की है। उनका विश्वास था कि सृष्टि का कर्ता निराकार ब्रम्ह है। चरणदास नें ब्रम्ह के सम्बन्ध में लिखा है –

'यह सिर नवे न राम दूं, नाही गिरीयो टूट ।
आन देव नही परसिये, यह तन जाये छूट ।।'

सद्गुरु का महत्व :

संत कवियों ने अपनी रचनाओं में गुरू को अधिक महत्व दिया है । उनके अनुसार गुरू ही सर्वश्रेष्ठ है । उन्होंने गुरु को ज्ञानी बताते हुए ईश्वर से भी अधिक महत्व दिया है । गुरु का महत्व को स्पष्ट करते हुए कबीरदास जी ने लिखा है –

'गुरू गोविन्द दोऊ खडे काके लागुँ पाइ ।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो बताई ।।'

इन कवियों का विश्वास है कि राम की कृपा भी तभी होती है जब गुरु की कृपा होती है । बिना गुरु की कृपा परमात्मा की कृपा सम्भव नही है । इसिलिए संत कवियों ने गुरु को साक्षात परमात्मा माना है । अतः निर्गुण भक्त कवि सगुण भक्त कवियों की अपेक्षा गुरु को अधिक महत्व देते हैं।

जाति–पाति का विरोध :

निर्गुण संत कवियों ने जाति–पाति का विरोध किया है । मध्य युग कालीन समाज में वर्ण भेद और वर्ग भेद तथा जाति भेद का अधिक प्राबल्य था, फिर संत कबीर ने इनका कसकर विरोध किया । संत कबीर बुध्द की समतावादी दृष्टी के पुरस्कर्ता थे । उनके अनुसार न कोई छोटा है न कोई बडा है, ईश्वर की पूजा तथा आराधना करने का अधिकार प्रत्येक मनुष्यमात्र को है । इस दृष्टीमें भगवत भक्ति में सबको समान अधिकार है । कबीर के अनुसार –

'जाति–पाति पुछे नहीं कोई ,
हरि को भजे सो हरि का होई ।'

इन सन्तों को हिन्दू–मुसलमानों मे एकता स्थापित करने के लिए सामान्य भक्ति मार्ग की प्रतिष्ठा भी करनी थी । इस भेद के निवारणार्थ इनके स्वर में प्रखरता और कटुता आई –

अरे इन दाउन राहन पाई ।
हिन्दुअन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई ।।

कबीर दासजी इसी प्रकार कहते है –

''तू ब्राम्हण मैं काशी का जुलाहा चीन्ह न मोर गियाना ।
तू जो बामण बामणी जाया और राह है क्यों नही आया ।।''

रुढियों और आडम्बरों का विरोध :

सभी निर्गुण संत कवियों ने रुढियों, मिथ्या आडम्बरों तथा अंधविश्वासों की कटू आलोचना की है । इन कवियों ने तत्कालीन समाज में पाई जानेवाली इन कुप्रवृत्तियों का डटकर विरोध किया है । इन्होंने मूर्तिपूजा, धर्म के नाम पर की जानेवाली हिंसा, तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज, हजयात्रा आदि बाह्यडम्बरों का डंके की चोट पर विरोध किया । इन्होंने निर्भयता से तत्कालीन समाज को सही रास्ता दिखाने का प्रयास किया तथा तत्कालीन धर्म और सम्प्रदायों में नीहित झूठी मान्यताओं का विरोध किया । परिणामतः संत कवियों को हिन्दू तथा मुसलमान दोनों की ओर से प्रताडना सहनी पडी । प्रायः इन्हों ने अपने युग के वैष्णव सम्प्रदाय को छोड़कर शेष सभी धर्म सम्प्रदाय की कटु आलोचना की है –

'बकरी पाती खात है, ताकी काढी खाल ।
जे जन बकरी खात है, तिन को कौन हवाल ।।'

कबीर मुस्लिम धर्म सम्प्रदाय की आलोचना करते हुएँ कहते है –

'कांकर पाथर जोरिके, मस्जिद लई बनाय ।
ता चढि मुल्ला बांग दे, बहिरा हुआ खुदाय ।।'

हिन्दू धर्म की आलोचना करते हुएॅ कहते है –

'पत्थर पुजै हरि मिलें, तो मैं पुजुँ पहार ।
ताते वह चक्की भली पीस खाय संसार ।।'

रहस्यवाद :

निर्गुण संत कवियों में रहस्यवाद की भावना मुख्य रुप में दिखाई देती है । रहस्य की दृष्टी से इनका साहित्य अनुपम है । संत सम्प्रदाय में प्रेमासक्ति और रहस्यमयता की प्रवृत्तियाँ विठ्ठल सम्प्रदाय से आयी है । प्रणयाभूति के क्षेत्र में पहुँचकर ये खण्डन–मण्डन की प्रकृति को भूल जाते है और इनका मृदुल–ह्रदय तरल हो जाता है । विरहानुभूति की अभिव्यक्ति में इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है । सन्त काव्य में मुख्यतः अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना हुई जिसे रहस्यवाद की भी संज्ञा दी गई है । साधना के क्षेत्र में जो ब्रम्ह है, साहित्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है । सन्तों का रहस्यवाद शंकर के अद्वैतवाद से प्रभावित है –

'जल में कुम्भ कुम्भ में जल है भीतर बाहर पानी ।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, यह तत कथौ गयानी ।।'

संत कवियों के रहस्यवाद पर योग का स्पष्ट प्रभाव है जहाँ की इंगला,पिंगला और सहस्त्रदल कमल आदि प्रतीकों का प्रयोग है । अतः दोनों प्रकार की ब्रम्हानुभूति योगात्मक रहस्यवाद के अन्तर्गत आयेगी । इनमें विशुध्द भावात्मक रहस्यवाद भी मिलता है, जहाँ प्रणयानुभूति की निश्चल अभिव्यक्ति हुई है –

'आयी न सकौ तुज्झ पै, सकुं न तुज्झ बुलाई ।
जियरा यों ही लेहेंगे विरह तपाई तपाई ।।'

संत कवियों का रहस्यवाद भारतीय परम्परा के अनुकुल है और उस पर वेदों का प्रभाव है ।

भजन तथा नामस्मरण

निर्गुण संत कवियों ने भजन तथा नामस्मरण को अधिक महत्व दिया है । भजन तथा नामस्मरण के संबंध में उनकी यह धारणा है कि भजन, किर्तन या नामस्मरण मन ही मन में होना चाहिए । उसमें किसी भी प्रकार का दिखावा या ढोंग न हो । भजन तथा नामस्मरण से परमेश्वर की प्राप्ति होती है । हर व्यक्ति को भजन, किर्तन तथा नामस्मरण करने का अधिकार है वह अगर सच्चे मन से ईश्वर का स्मरण करता है तो उसे उसकी प्राप्ति संभव है । इस संबंध में कबीर का कहना है –

''सहजो सुमिरन कीजिये हिरदै माही छिपाई ।
होठ होठ सूंना हिलै, सकै नही कोई पाई ।''

प्रेम की आवश्यकता को महत्व देते हुए कबीर कहते है –

''पोथी पढ़ि पढ़ि जगमुआ, पंडित भया न कोई,
ढाई आखर प्रेम के, पढै सो पंडित होई ।।''

लोकसंग्रह की भावना :

निर्गुण संत कवि पारिवारिक जीवन जीनेवाले व्यक्ति रहे हैं । वे नाथ पंथियों के समान केवल योगी नही थे । यही कारण है कि इनकी वाणी में जीवनगत अनुभव की सर्वांगीणता है, सन्तों की साधना में वैयक्तिकता की अपेक्षा सामाजिक अधिक है । सन्तों ने आत्मशुध्दि पर

अधिक बल दिया है । ये लोग संत, कवि और भक्ति आंदोलन के उन्नायक है, वहाँ वे समाज सुधारक भी है । यही कारण है कि हिन्दी के अनेक विचारकों ने कबीर को क्रांतिकारी सामाजिक नेता भी माना है । कृष्ण धारा के कवियों के समान संत कवियों ने समाज से अपनी आँखे नहीं फिरा ली थी । सन्त काव्य में उस समय का समाज प्रतिबिम्बित है । इनकी समस्त वाणी का सार ही कर्मण्यता है ।

श्रृंगार वर्णन एवं विरह वर्णन की मार्मिक उक्तियाँ :

सम्पूर्ण संत साहित्य में श्रृंगार एवं शान्त रस का चित्रण अधिक रुप में हुआ है । इन कवियों ने संयोग और वियोग इस प्रणय की दोनों अवस्थाओं का अत्यंत कलात्मक एवं मनोहारी चित्रण किया है । उपदेश परक सूक्तियों में शान्त रस की व्यंजना हुई है । कहीं–कहीं इनका स्वर कर्कश हुआ है किन्तु वहाँ लोक कल्याण की भावना रही है । संत वाणियों का काव्य पक्ष उनकी प्रणयोक्तियों में ही यथार्थ रुपसे निखर पाया है । नीचे कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य है –

'विरहिन उभी पंथ सिर पंथी बुझै धाइ ।
एक शुध्द कहि पीव का कबरे मिलेंगे आइ ।।'

संत साहित्य में संयोग पक्ष के अंतर्गत रुपाकर्षन, प्रियामिलन, प्रथम समागम, हर्षोल्लास, मिलनोत्कण्ठा, झुला–झुलना आदि का वर्णन मिलता है । इस काव्य में वियोग पक्ष में प्रिय को विदेश जाने से रोकना, विरह–जनित काम–दशाओं का वर्णन, काम आदि के द्वारा प्रियतम का संदेश प्रेषण आदि वर्णन किया है । संत कवियों का श्रृंगार रस चाहे लौकिक हो या अलौकिक, उसमें एक अनुपम माधुर्य रस है । वह लौकिक रुपमें जितना आल्हाददायक है, अलौकिक रुप में उतना ही आनंददायक है । संत कवियों का श्रृंगार वर्णन भी इनके व्यक्तित्व धर्म और दर्शन के समान कुछ विलक्षण तथा निराला है । इनके श्रृंगार में दिव्य रस की आर्द्रता है – वासना की अविलता नहीं ।

नारी के प्रति दृष्टीकोण :

निर्गुण सन्त कवियों ने नारी संबंधी अपने विचारों को खुलकर व्यक्त किया है । इन कवियों ने एक ओर नारी की निंदा–नालस्ती की है, तो दुसरी ओर पतिव्रता नारी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा भी की है । सन्त कवियों ने नारी को माया का प्रतीक माना है । इन्होंने कनक और कामिनी को दुर्गम घाटियाँ माना है । कबीर का कहना है –

'नारी की झाई परत अन्धा होत भुजंग ।
कबिरा तिनकी कहा गति नित नारी के संग ।।'

पतिव्रता नारी की प्रशंसा करते हुए कबीर कहते है –

'पतिव्रता मैली भली, कानी कुचित कुरुप ।
पतिव्रता के रुप पर वारों कोटी सरुप ।।'

कबीर का यह दृष्टीकोण उदारता का परिचायक है । उनकी दृष्टी में पतिव्रता का आदर्श उनके साधना के निकट पडता है । सति और पतिव्रता नारी में एक के प्रति निष्ठावान,

आसक्ति, असिम प्रेम साहस और त्याग भावना से वे प्रभावित थे । कबीर माया के दो रुप सत् माया तथा असत् माया मानते है । संत कवियों ने सत् को स्वीकार कर असत् को अस्वीकार कर उसकी घृणा की है ।

माया से सावधानता :

निर्गुण संत कवियों ने मायासे सावधान रहने का उपदेश दिया है । क्यों कि रमैया की दुल्हन ने सबको बाजार में लुट लिया है और ब्रम्ह, विष्णु और महेश भी उसी के वशीभूत है । यह भगवान से मिलने का मार्ग में बहुत बडी बाधा है । यह माया महा ठगिनी है । इसने मधुर वाणी बोलकर अपनी तिरगुण फांस में सबको फँसा लिया है ।

'माया महा ठगिनी हम जानी
तिरगुन फँास लिए वह डोले, बोले माधुरी बानी'

भाषा एवं शैली :

निर्गुण संत कवियोंकी भाषा जन सामान्य की भाषा है । इनके काव्य में मुख्यतः गेयमुक्तक शैलीका प्रयोग हुआ है । सभी कवि अशिक्षित थे । इन्होंने बोलचाल की भाषा को ही अपने अभिव्यक्ति का साधन माना । संत कवि अपने मत का प्रचार करने हेतु भ्रमण करते थे, अतः इनकी भाषा खिचडी या साधुक्कडी थी । इसमें अवधी, ब्रज खडी बोली, पूर्वी हिन्दी, फारसी, अरबी, राजस्थानी, पंजाबी भाषाओं के शब्दों का सम्मिश्रण हो गया है ।

संत कवियों की भाषा में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग भी मिलता है जो कि इन्होंने अपने पुर्ववती सम्प्रदाय से लिए हुए है। जैसे–शुन्य, अनहद, निर्गुण, सगुण और अवधुत आदि। नाथ पंथियो द्वारा प्रयुक्त इंगला,पिंगला, आदि शब्दों का भी इन्होंने यथावत प्रयोग किया है। डॉ. शिवकुमार शर्मा इनकी भाषा के संबंध में लिखते हैं – ''इनकी भाषा आडम्बर विहीन सरल है। इन्हों ने उसे कहीं भी आलंकारिता से लादने का प्रयत्न नही किया है किन्तु अनुभूति की तीव्रता के कारण उसमें काव्योचित सभी गुण आ गये है।''

शैली :

संत काव्य में गेय मुक्तक शैली का प्रयोग हुआ है । रीति काव्य के सभी तत्व, भावात्मकता, सूक्ष्मता, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता और कोमलता आदि इनकी वाणी में मिलते है ।

अलंकार :

निर्गुण संत कवियों की काव्य रचनाओं में रुपक, उपमा, दृष्टांत, समासोक्ति, अन्योक्ति, वक्रोक्ति, उत्प्रेक्षा व्यतिरेक, विरोधाभास आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है ।

छंद :

निर्गुण संत कवियों ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति 'साखी और सबद' के माध्यम से की है । साखियोंकी रचना दोहा, छंद में हुई है । साथ ही चौपाई, कविता, हंस पद आदि छंदो का प्रयोग हुआ है ।

३अ. ४ अभ्यास

प्र. १. संत काव्य की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

प्र. २. ज्ञानमार्गी शाखा की प्रमुख प्रवृत्तियोंका परिचय दीजिए।

प्र. ३. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए।

अ) संत कबीर

◆◆◆◆◆◆

३–आ

सूफी काव्य

३आ. १ प्रस्तावना
३आ. २ प्रमुख सूफी कवि
३आ. ३ सूफी काव्य की विशेषताएँ
३आ. ४ अभ्यास

३आ. १ प्रस्तावना

भक्तिकाल के निर्गुण संत काव्य के अंतर्गत सूफी काव्य को विद्वानों ने कई नामों से संबोधित किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे 'प्रेममार्गी सूफी शाखा' इस नाम से संबोधित किया है। अन्य नामों में प्रेमाख्यान काव्य, प्रेम काव्य, आदि प्रमुख है। इस काव्य परम्परा को सूफी संतो की देन माना जाता है।

सूफी शब्द की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में विभिन्न मत है। कुछ विद्वान 'सूफ' को सफ शब्द से निकला हुआ मानते हैं जिसका अर्थ है, जो अग्रिम पंक्ति में खड़े होंगे, वे सूफी होंगे। कुछ एक विद्वान मदीना की मस्जिद के समक्ष सुफ्फा–चबुतरे पर बैठने वाले फकीरों को सूफी कहते है। सूफी शब्दों को सोफिया का रुपान्तर माना गया है। कुछ विद्वानों ने सूफी शब्द का संबंध सफा से जोड़ा है जिसका अर्थ पवित्र और शद्धता है। कुछ ने तर्क संगति के आधार पर सूफी शब्द का संबंध सूफ अर्थात 'उन' कपड़े से माना गया है।

आचार्य शुक्ल ने भक्तिकालीन हिन्दी की इस प्रेमाख्यान परम्परा को फारसी–मसनवियों से प्रेरित माना है। इस काव्य धारा के प्रमुख प्रवर्तक मलिक मुहम्मद जायसी है।

३आ. २ सूफी काव्य के प्रमुख कवि

सूफी काव्य के प्रवर्तक मलिक मुहम्मद जायसी माने जाते हैं। यह निर्गुणोपासक कवियों की दूसरी शाखा है। सूफी कवियों ने प्रेम कथाओं के लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक ईश्वर भक्ति की है। भक्ति कालीन निर्गुण सूफी कवियों में जायसी, कुतुबन, मंझन, शेख नबी, कासिम शाह, नूर मुहम्मद आदि प्रमुख कवियों ने 'प्रेममार्गी काव्य' को विकसित करने में अपना बहुत बड़ा योगदान दिया है। यहाँ सभी प्रमुख सूफी कवियों का परिचय दिया जा रहा है।

मलिक मुहम्मद् जायसी

भक्तिकालीन प्रेमाख्यान काव्य के प्रमुख कवि जायसी है। उनके जन्म के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। अंत:साक्ष्य के आधारपर जायसी का जन्म सन् १४९५ माना गया है, रायबरेली में जायस नगर में इनका जन्म हुआ था। जायस नगर में जन्म लेने के कारण ही ये

जायसी कहलाये। इनके पिता का नाम मलिक शेख ममरेज या मलिक राजे अशरफ था। माता–पिता की बचपन में ही मृत्यु हो जाने के कारण ये फकीरों और साधुसंगति में रहने लगे। कुछ विद्वानों का कहना है कि, जायसी का विवाह हुआ था, उन्हें पुत्र भी थे किन्तु वे किसी दुर्घटना में मर गये। अन्त:साक्ष्य के आधार पर जायसी देखने में कुरुप थे। वे एक आँख तथा कान से रहित थे। एक बार शेर शाह ने उनकी कुरुपता का उपहास उडाया तब उन्होंने उत्तर दिया, ''मोहि का हँसेसि कि कोहरहित' शेरशाह लज्जित हुए और इनका अत्याधिक सन्मान किया। इन्हीं के काल में इनके कई शिष्य बन गए थे शिष्य पद्मावत के पद्य गा गाकर भिक्षाटन करते थे। एक दिन ऐसा ही एक चेला अमेठी में नागमती का बारहमासा गाता फिर रहा था–

'कँवल जो विगसा मानसिर, बिनुजल गएउ सुखाई।
सूखि बेलि पुनि पलुहै, जो पिउ सींचे आइ।।'

राजा यह दोहा सुन कर जायसी को बड़े आदरभाव से अमेठी ले आए। और वे अंत समय तक वहीं रहें। जायसी की मृत्यु वहीं पर अमेठी के जंगल में बहेलिए के तीर से हुई। अमेठी नरेश ने जायसी की यहीं पर एक समाधि बनवा दी, जो अब भी मौजूद है।

जायसी की रचनाओं के सन्दर्भ में विद्वानों द्वारा लगभग २१ रचनाओं का उल्लेख मिलता है। पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम ये तीन रचानाएँ प्रकाशित हो चूकी है। अन्य रचनाओं में चम्पावत, इरावत, सखरावत, मरकावत, चित्रावत, मोराई–नामा, मुकहरानामा, पौस्तीनामा, सुर्वानामा, नैनावत, कहरनामा, मेखरावटनामा, धनावत, सोरठ, परमार्थ जपनी और स्फुट छंद आदि का उल्लेख किया जाता है। उनकी 'पद्मावत' में रत्नसेन और पद्मावती की लौकिक प्रेम कहानी द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की गई है। 'अखरावट' में वर्णमाला के एक एक अधार को लेकर सिद्धांत संबंधी तत्वों से भरी चौपाईयाँ कही गई हैं और साथ ही ईश्वर, सृष्टि, जीव, ईश्वर प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किए हैं। 'आखिरी कलाम' में कयामत के वर्णन के साथ जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार है।

जायसी ने अपनी रचनाओं में ठेठ अवधी के पूर्वीपन को अपनाया है। जायसी की भाषा प्रसाद और माधुर्यगुण से परिपूर्ण है। जायसी ने अपनी रचनाओं में दोहा, चौपाई छंदों का प्रयोग कर अवधी भाषा में सफल प्रयोग किया है। अलंकारों में उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, अन्योक्ति, व्यतिरेक, विभावना, संदेह अनुप्रास, निदर्शना आदि का सफल प्रयोग किया है। नि:संदेह जायसी का साहित्य में विशेष स्थान है। बाबू गुलाबराय के शब्दोंमें – ''जायसी एक महान कवि है। उनमें कवि के सहज गुण विद्यमान है। उसने सामायिक समस्या के लिए प्रेम की पीर को देन दी। उसपीर को अपने शक्तिशाली महाकाव्य के द्वारा उपस्थित किया। वह अमर कवि है।''

अन्य सूफि कवि

कुतुबन का अविर्भाव समय सन् १४९३ ई. था। वे शेख बुरहान के शिष्य थे। उन्होंने 'मृगावती' प्रेमाख्यान की रचना की। इसमें चंद्रनगर का राजकुमार और कंचन पुर की 'मृगावती' की प्रेम कथा वर्णित है। कवि 'मंझन' ने सन् १५४५ ई. में 'मधुमालती' लिखा है। इसमें कनेसर

नगर के राजकुमार और महारसनगर की राजकुमारी 'मधुमालती' की प्रेम कथा है।

कवि 'उसमान' जहाँगीर कालीन कवि थे। हाजी बाबा इनके गुरू थे। उन्होंने 'चित्रावली' नामक प्रेमाख्यान लिखा है। इसमें नेपाल राजकुमार सुजान और रुपनगर की राजकुमारी चित्रावती की प्रेमकथा वर्णित है। कवि शेख नबी ने सन् १६१९ ई. में 'ज्ञानद्वीप' की रचना की थी। इसमें राजकुमार ज्ञानद्वीप और राजकुमारी देवयानी की प्रेम कथा चित्रित है। कवि 'मुल्लावजही' ने सन् १६०९ ई. में 'कुत्ब मुश्तरी' प्रेमाख्यान काव्य है। इसमें गोलकुण्डा के राजपुत्र मुहम्मद कुली कुत्बशाह और बंगाल की सुंदरी मुश्तरी की प्रेम–कथा वर्णित है। कवि 'नुस्त्रती' ने सन् १६५८ ई. को 'गुलशने इश्क' प्रेमाख्यान काव्य लिखा। इसमें कनकगिरि के राजकुमार मनहर और धर्मराज की पुत्री मदमालती की प्रेमकथा वर्णित है। कवि 'मुकीमी' ने 'चन्दरबदन व महयार' प्रेमाख्यान लिखा। इसमें सुन्दरपटन के हिन्दू राजा की पुत्री 'चन्दरबदन' और मुस्लिम व्यापारी पुत्र महरयार की दु:खान्त प्रेम कहानी है। कवि 'मीराहाशमी' ने सन् १६८८ ई. में 'युसूफ–जुलेखा' प्रेमाख्यान लिखा।

इन प्रेमाख्यानों के अलावा सूफि सन्तों ने दोहों, गज़लों, स्फुट पदों, की रचनाएँ प्राप्त होती।

३आ. ३ सूफी काव्य की विशेषताएँ

भक्तिकालीन निर्गुण धारा की यह प्रेममार्गी शाखा कहलायी जाती है । इस काव्य धारा के प्रमुख कवि 'जायसी' है । प्रेममार्गी सूफी कवियों ने कल्पित कहानियों के माध्यम से प्रेममार्ग का महत्व प्रतिपादन किया है । इन कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस प्रेम तत्व का अभास दिया है । इन काव्य में रचित प्रेम कहानियों का विषय तो साधारण होता है । किसी राजकुमार का किसी राजकुमारी के प्रेम में पागल होना और घर बार छोडकर निकल पडना। अपनी प्रेमिका को पाने के लिए अनेक कष्ट और आपत्तियाँ झेलकर अंत में उस प्रेमिका राजकुमारी को प्राप्त करना । सूफी कवियों ने जो प्रेम कहानियाँ ली है वे सब हिन्दू परिवारस्थित कई दिनों से चलती आयी प्रेम कहानियाँ है । अतः कहानियों का आधार हिन्दू है । सूफी प्रेम काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ निम्न प्रकार है ।

काव्य प्रेरणा एवं प्रयोजन

प्रेममार्गी शाखा के सूफी काव्यधारा के कवियों ने सूफी मत का प्रचार प्रसार अपनी काव्य की रचना के माध्यम से करने का प्रयास किया है । इस परम्परामें हिन्दू कवि भी थे उन्होने काव्यारंभ में हिन्दू देवी–देवताओं की वंदना भी की है । किन्तु मुस्लिम कवियों ने सूफी मत का प्रचार करने का प्रयास किया था । साथ ही इनका काव्य–प्रयोजन यश प्राप्ति, काव्य कला का प्रदर्शन और युवाओं का मनोरंजन रहा है । इन कवियों ने भारतीय शास्त्रों का आधार लेकर रचनाओं का निर्माण किया है ।

कथावस्तु

प्रेमाख्यानों में चार स्त्रोतोंसे प्राप्त सामग्री का कथावस्तु के रुप में उपयोग किया है । १) महाभारत, हरिवंशपुराण, विष्णुपुराण आदि । २) प्राकृत – संस्कृत के परम्परागत कथानक ३) उदयन, विक्रम, रत्नसेन आदि ऐतिहासिक पात्रों की गाथाएँ । ४) लोक प्रचलित प्रेमकथाएँ इन में कल्पना शक्ति का प्रयोग भी किया है । अतः इनका आधार भारतीय साहित्य को मानना चाहिए ।

प्रबन्ध कल्पना

सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम कहानियों के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की है। इन की यह प्रेम कहानियाँ प्रबन्ध काव्य की कोटि में आती है। इन कवियों का उद्देश कोरी प्रेम कहानी न होकर प्रेमतत्व का निरुपण करना तथा उसका महत्व निर्धारित करना है। सूफी कवियों ने अपने प्रेम पात्र के सौंदर्य को ज्योतिमय पुंज के रुप में चित्रित किया है, कि प्रत्येक जीव उसकी ओर आकर्षित होकर अपना सर्वस्व उस पर न्योछावर करने के लिए तैयार हो जाता है। इस काव्य की प्रेमिकाएँ और प्रेमी पथ पर आनेवाली बाधाओंको पारकर सिध्दिपथ पर चढते जाते हैं। इन कथाओं में पक्षियों, देवों, और अप्सराओं का उल्लेख किया गया हैं।

प्रबन्ध काव्योचित वस्तु एवं घटना वर्णन में जो प्रवाह गति अपेक्षित है, प्रायः इन काव्यों में उसका अभाव है । कथावस्तु के वस्तु वर्णन में सब ने प्रबन्ध रुढियों की शरण ली है । प्रेमाख्यानों प्रायः सर्वत्र समुद्र, तूफान, फुलवारियाँ, वन और मकान जैसे है । इन काव्यों की क्रम योजना प्रायः एक जैसी है । सर्वप्रथम मंगलाचरण में ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का वर्णन, तत्पश्चात हजरत मुहम्मद और उनके सहयोगियों की प्रशंसा की जाती है । संप्रदाय के उल्लेख के बाद कथारंभ रागासक्ति और नायक–नायिका की प्राप्ति के लिए सर्वस्व त्यागकर आँधी तुफान का सामना करने निकलता है। प्रेमी प्रेमिका के मिलन के पश्चात अधिकतर प्रेमाख्यानों का अन्त दुखान्त होता हैं।

भाव पक्ष

प्रेम मार्गी सूफी कवियों का मुख्य विषय प्रेम है । प्रेम के वियोग पक्ष को अधिक महत्व इन कवियों ने दिया है । जितना ध्यान प्रेमी और प्रेमिकाओं के वियोग, उसकी अवधि में झेले जानेवाले कष्टों तथा उनका अन्त करने के लिए किए गये विविध प्रयत्नों को वर्णन करने में दिया है उतना उनके अन्तिम मिलन पर नहीं दिया गया । इन्होंने बारह–मास को महत्व दिया है और भारतीय पद्धति का व्यवहार किया है । कहीं–कहीं भारतीय प्रभाव स्पष्ट रुप से दिखाई देता है । सूफियों ने वैष्णवों की अहिंसा को क्रियात्मक रुप से अपनाया है । उपनिषदों के प्रतिबिंब वाद के अनुसार नाना रुपात्मक जगत ब्रम्ह का प्रतिबिम्ब है । जायसी ने अनेक स्थलोंपर जैसे ''नयन जो देखा कमल भा ......'' में प्रति बिम्बवाद के साथ ही विचार साम्य दिखाया है । सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में पंचमहाभूतों में से आकाश छोडकर अन्य को स्वीकारा है । हठयोग का

प्रभाव इन पर स्पष्ट ही है । इनके श्रृंगार का नख–शिख वर्णन कामशास्त्र से प्रभावित है । उनकी प्रणय भावना फारसी से नहीं कर भारतीय श्रृंगार रस की परम्परा से आती है ।

काव्य रुप

काव्य प्रकार की दृष्टी से सूफी काव्य भारतीय कथा काव्य परम्परा में आते है । इसकी पुष्टी अनेक लक्षणों से हो जाती है । अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं को कथा की संज्ञा दी है । जैसे दामोदर रचित लखनसेन पद्मावती कथा, ईश्वरदास–सत्यवती कथा, जानकवि–कथा रत्नावती, कथा कामलता, कथाकनकावती, व्यास–नल दमयंती कथा आदि । कुछ कवियों ने कथा शब्द प्रयोग शिर्षक में नाकर काव्य के अन्तर्गत किया है – जायसी – प्रेम कथा एहीं भाँति बिचार हुँ, मंझन– कथा जगत जे ती कवि आई, उसमान – जाकी बुध्दि होई अधिकाई, आलम – कहौं बात सुनों सब लोग। कथा–कथा सिंगार वियोग । परशुराम चतुर्वेदी ने सूफियों के काव्य प्रकारों को अधिक स्पष्ट करते हुएँ लिखा है – ''सूफी प्रेमाख्यान तक ऐसी रचना है, जिसमें किसी प्रबन्ध काव्य के प्रायः सभी तत्व वर्तमान है, किन्तु जिसमें इसके साथ ही कथा आख्यायिका, जैन चरित काव्य, एवं मसनवी की भी विशेषताओं का भी समन्वय हो गया है, और यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है।''

फारसी रुढ़ियों का प्रभाव मिलता है । कई प्रसंगो में रक्त की अतिरंजितता बिभत्स लगने लगती है । कई स्थलों पर संयोग अवस्था का वर्णन अश्लील लगने लगता है । इन कवियों ने संयोग अवस्थाओं को भोग विलास के लिए उपयुक्त वातावरण मान लिया तो कभी उसका रहस्यात्मक अर्थ भी कर डाला । प्रायः सूफी कवियों ने प्रेम तत्व की व्याख्या करते हुए सौंदर्य के स्वरुप एवं प्रभाव पर बहुत कुछ कह डाला है ।

चरित्र–चित्रण

सूफी काव्य के चरित्र–चित्रण में कोई वैविध्य नहीं है । इनके नायक प्रायः सामन्त या राजकुमार रहे है, और नायिकाएँ राजकुमारी के रुपमें दर्शायी गयी है जोकि संस्कृत साहित्य की नायिकाओं के समान एक ही ढाँचे में ढली हुई है । नायक का स्वरूप प्रायः पहले से ही निश्चित सा दृष्टी गोचर होता है। राजकुमारी अत्यन्त सुंदरी, रुपगर्विता दिखाई गई है । नायिकाएँ भारतीय परम्परा के अनुसार पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई अन्त में सती हो जाती है। नायक का विरोध नायिका के पिता या संरक्षक द्वारा ही होता है। अन्य काल्पनिक पात्र है, उनका स्थान गौण है। कई स्थलों पर ऐतिहासिक चरित्रों का चित्रण प्रभावी हुआ है। इन सभी चरित्रों पर भारतीयता का गहरा प्रभाव है ।

लोक पक्ष एवं हिन्दू संस्कृति

प्रेममार्गी सूफी कवियों ने लोक जीवन का सहज चित्रण किया है । जैसे – अन्ध विश्वास, मनौतियाँ, यंत्र–तंत्र प्रयोग, जादू टोना, डायनों की करतूते, विभिन्न लोकोत्सव, लोक व्यवहार, तीर्थ, व्रत सांस्कृतिक वातावरण बडी सफलता से अंकित किया गया है ।

प्रेम काव्यों के रचयिताओं नें हिन्दू घरानों की प्रेम कहानियाँ लेकर उनका तदनुरुप वर्णन किया है । सामान्यतः सभी सूफी कवियों को हिन्दू संस्कृति, परम्परा और धर्म का यथावत परिचय था । इस कारण हिन्दू धर्म के सिध्दांतों और आचार–विचार का सुंदर वर्णन किया है। हिन्दु चरित्रों में हिन्दु आदर्श की स्थापना की है । सूफी कवियों का नखशिख वर्णन भी संस्कृत के कामशास्त्रों के ग्रंथोपर आधारित है। प्रसंगानुरुप इन कवियों ने भारतीय ज्योतिष, रसायन शास्त्र, आयुर्वेद का भी वर्णन किया है। कवि जायसी का ज्ञान कहीं पर अधुरा था जैसे अलकापुरी को कुबेर नगरी कहा तथा नारद को शैतान के रुप में बताया है । उन्होंने स्वर्ग को आसमान कहा है और रत्नसेन की उपमा रावण से दी है । इस प्रकार की गलतियाँ सूफी काव्योंमें खोजी जा सकती है ।

शैतान

निर्गुण संत कवियों ने जिसे माया स्वरुप माना है, उसे ही सूफी कवियों ने शैतान कहा है। माया के समान शैतान को साधना मार्ग से भ्रष्ट करनेवाला मानते हैं । शैतान द्वारा निर्माण संकटों से मुक्ति – एक साधक को गुरु के आशीर्वाद से मिलती हैं । कवि की दृष्टी में शैतान का असाधारण महत्व हैं । पद्मावत काव्य में राघव चेतन शैतान के रुप में चित्रित हैं । सूफीयों नें शैतान को त्यागने योग्य नहीं माना हैं, क्यों कि शैतान के द्वारा उपस्थित व्यवधानों से साधक की अग्निपरीक्षा होती है और उसके प्रेम में दृढता और उज्ज्वलता आती हैं।

मण्डनात्मकता

संत कवियों नें हिन्दू–मुस्लिमों के बीच धार्मिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया था किन्तु उन्हें उतनी सफलता नहीं मिली जितनी सूफी काव्यों को मिली है । संत कवियों में खण्डनात्मकता थी जिससे हिन्दू और मुसलमान दोनों क्रोधित होते थे । सूफी कवियों ने मात्र कुशलता से काम लिया । उन्हों ने दोनों का विरोध तथा विशेष खण्डन नहीं किया । इन कवियों ने दोनों को ईश्वर का समान रुप में दर्शन करा कर दोनों सम्प्रदाय के भेदभाव मिटाने का प्रयास किया । दोनों को मनुष्य के सामान्य रुप में दिखाया । सूफीयों ने दूरदर्शिता से काम लिया है । जिससे उन्हें दोनो धर्मो की ओर से उचित प्रतिसाद मिला है । भारत में मुसलमान धर्म के प्रचार और प्रसार में इसी मण्डनात्मक शैली के कारण उन्हें अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है ।

नारी–चित्रण

सूफी काव्यों की यह बडी विशेषता हैं कि, उनमें प्रेम का प्रमुख स्थान नारी पात्र को ठहराया है । नारी को परमात्मा का प्रतीक माना हैं । वस्तुतः सूफी कवियों ने प्रेम साधना में नारी को सहायक रूप में स्वीकार किया हैं । फलस्वरुप यहाँ पर नारी साधकों की दृष्टी में स्वयं एक सिध्दी बनकर आती हैं । इसी कारण सूफी कवियों ने नारी साधकों को अनेक अलौकिक गुणों से युक्त बनाया है । सूफी कवियों ने नारी को कही स्वकिया तो कभी परकिया के रुप में चित्रित किया हैं । परंतु दोनों रुपों में वह पूज्य व साधिका है ।

प्रतीक विधान

सूफी कवियों को लौकिक प्रेम कहानियों द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना करते हुए अव्यक्त सत्ता का आभास देना यही उद्देश था । इस रसस्यात्मकता की अभिव्यक्ति के लिए सांकेतिक विधान या प्रतीकों का उपयोग करना अनिवार्य हो जाता हैं । यही कारण है कि, इन्होंने अपनी रचनाओं में प्रयुक्त कानिपत शब्दोंको सांकेतिक रुप दे दिया हैं । जहाँ ऐसा नहीं किया गया वहाँ उस रचना के अन्त में कथा के वास्तविक रहस्य को समझा दिया गया है । इसी उद्देश की पूर्ति करती हुई जायसी की पंक्ति ''तन चितउर मन राउन कीन्हा'' दिखाई देती है । कहीं–कहीं पर इन्होंने प्रकृति के माध्यम से भी अव्यक्त सत्ता की सर्व व्यापकता का संकेत किया है । जैसे पद्मावत में ''रवि ससि नखत्र दिपत ओहि जोती ।'' वस्तुतः सूफी कवियों में भावात्मक रहस्यवाद की मनोहारी सृष्टि हुई हैं ।

विविध प्रभाव

सूफी मत पर चार प्रभार विशिष्ट रुप से पडे हैं – आर्यों का अद्वैतवाद तथा विशिष्ठा द्वैतवाद, इस्लाम की गुह्य विद्या, नवअफलातूनी मत तथा विचार स्वातंत्र्य । इन पर

शैली

सूफी काव्य में कवियों में शैली की दृष्टि से अंतर है। जायसी की शैली में प्रौढ़ता एवं गंभीरता है किन्तु कुछ कवियों में अपरिपक्वता दृष्टिगोचर होती है। इनकी रचनाओं नें कथा तत्व की प्रधानता होने के कारण इन्हों ने इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग किया है, कुछ कवियों ने अन्योक्ति, समासोक्ति, रुपक प्रतीक आदिके आयोजन द्वारा अपनी शैली में व्यंजना का वैभव संचारित कर दिया है। इन कवियों नें प्रबंध शैली के अतिरिक्त मुक्तक शैली का भी प्रयोग किया है।

भाषा

सूफी प्रेमाख्यानों की भाषा प्रायः सर्वत्र अवधी हैं । उसमान और नसीर पर भोजपुरी का प्रभाव है । नूर मुहम्मद ने कहीं–कहीं ब्रजभाषा का भी प्रयोग किया है । इन कवियों ने अवधि भाषा में तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है, अवधि की लोकोक्तियाँ और मुहावरों का भी अच्छा प्रयोग किया है ।

रस

इन प्रेमाख्यानों में प्रधानतः श्रृंगाररस की व्यंजना हुई है । सर्वप्रथम नायक नायिका की ओर आकर्षित होता है और विरह वेदना और कई संकटों का सामना करना पडता है । उद्दीपन विभाव के अंतर्गत सूफीयों ने सखा–सखी, वन, उपवन, ऋतु परिवर्तन तथा भारतीय साहित्य में वर्णित अन्य उपकरणों का उल्लेख किया है । नायक के साहसिक कार्य के समय वीर

रस का भी प्रयोग हुआ है । कहीं–कहीं करुण, शांत एवं बीभत्स रसों की भी अभिव्यक्ति हुई है ।

छंद

सूफीयों ने अपने प्रेमाख्यानों में अपभ्रंश के चरित काव्यों के समान दोहा–चौपाई शैली को अपनाया है । दोहा, चौपाईयाँ के अतिरिक्त सूफी कवियों ने सोरठे, सवैये, प्लवंगम,बरवै, कुण्डलियाँ और कविता आदि का भी प्रयोग किया हैं । कहीं–कहीं पर कुछेक कवि ने फारसी भाषा के बहर छंद की भी प्रयोग किया है ।

अलंकार

सूफी कवियों ने प्रचलित परम्परा के अनुसार अलंकारों का प्रयोग किया हैं। फारसी साहित्य से प्रभावित रहने पर भी भारतीय क्षेत्र से उपमानादि का ग्रहण किया है। इन्होंने समासोंक्ति का प्रयोग बहुत सुंदर तरीके से किया हैं। सूफी कवियों में समासोक्ति के सबसे अधिक सफल प्रयोक्ता जायसी हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, रुपक और अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग इन कवियों ने किया है।

सूफी प्रेम काव्य धारा मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की व्यापक परम्परा मानी जा सकती हैं। मध्यकालीन संस्कृति एवं लोक जीवन के विविध पक्षों का सहज चित्रण इसमें हुआ है। उन्होंने प्रेम की पीडा के सुमधुर गीत गाएँ है। इन प्रेम कथाओं में विस्मय, दैवी एवं अलौकिक तत्व समान रुप से मिलते हैं। इनके काव्य में साहस और शौर्य का चित्रण हुआ है। इनमें भारतीय वातावरण का प्रभाव हैं। भारतीय श्रृंगार परम्पराओं का सभी ने पालन किया हैं। सबमें समान रुपसे कथानक रुढियों का प्रचलन रहा हैं। ऐतिहासिक और काल्पनिक प्रेम कथाओं की अपेक्षा लोकगाथाओं पर आधारित प्रेमकथाओं में लोक तत्व की मात्रा अधिक है।

३आ. ४ अभ्यास

प्र. १. प्रेममार्गी शाखा की विशेषताएँ लिखिए।

प्र. २. जायसी के प्रेमकाव्य की प्रवृत्तियों का परिचय दीजिए।

प्र. ३. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए।

अ) सूफी संत कवि जायसी

◆◆◆◆◆◆

३-इ

राम भक्ति काव्य

३इ. १ प्रस्तावना
३इ. २ राम भक्ति काव्य के प्रमुख कवि
३इ. ३ राम भक्ति काव्य की विशेषताएँ
३इ. ४ अभ्यास

३इ. १ प्रस्तावना

भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारामें रामभक्ति काव्य की लंबी परम्परा रही है। वेदों में कुछ स्थलों पर 'राम' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'राम'के जीवन से संबंधित पहला महाकाव्य 'वाल्मीकी रामायण' को स्वीकार किया जाता है। इस प्रेरणा से ही राम काव्य की परम्परा शुरू हुई वाल्मीकी रामायण ने केवल देश में ही नही बल्कि विदेश कों भी प्रभावित किया, और राम साहित्य रचा जाने लगा। वाल्मीकी की के राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे। उसमें अवतारवाद नहीं था। उपनिषद् में राम को अवतार स्वीकार कर लिया गया था। पुराणों में भी राम काव्य दृश्य के प्रसंग दिखाई देते है। डॉ. सोनटक्केजीके अनुसार ''अगस्त-सुतीक्षण-सम्वाद संहिता में राम के अनेक अलौकिक गुणों का समावेश कर उन्हें विशेष महत्व दिया गया। अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, अद्भूत रामायण, युशुण्डि रामायण, हणुमं संहिता, राघवोल्लास आदि ग्रंथों में राम कथा की धार्मिक एवं दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की गई। वराह, अग्नि, लिंग, वामन, ब्रम्ह, गरुड, स्कन्द, पद्मवैवर्त आदि पुराणों में राम कथा के अनेक प्रसंग दृष्टिगोचर होते हैं। ''बौद्ध, जैन ग्रंथों में भी राम कथा का प्रयोग हुआ है। धार्मिक ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य में भी राम काव्य की सुदीर्घ परम्परा रही है।

राम काव्य का उद्भव वाल्मीकी रामायण से शुरू हुआ है। पश्चात रामभक्ति रामानन्द द्वारा विकसित होकर तुलसी के 'रामचरित मानस' के द्वारा हिन्दी भक्ति साहित्य में प्रवाहित हुई। तुलसी पूर्व विष्णुदास, अग्रदास, ईश्वरदास आदि ने रामकथा लिखी है किन्तु राम काव्य के मुख्य प्रवर्तक तुलसी ही रहे हैं।

३इ. २ राम भक्ति काव्य के प्रमुख कवि

भक्तिकालीन हिन्दी सगुण भक्ति काव्य के अंतर्गत राम भक्ति काव्य के प्रमुख प्रवर्तक तुलसीदासजी है। रामभक्ति की प्रतिष्ठा रामानन्द द्वारा हुई रामानन्द की भक्ति और विचार धारा से तुलसीदास प्रभावित थे। राम भक्ति काव्य विकास में कई कवियों ने अपना योगदान दिया है उनमें प्रमुख है - अग्रदास, ईश्वरदास, तुलसीदास, जन जसवंत, नाभादास, केशवदास, प्राणचंद चौहाण आदि है। यहाँ सभी का संक्षेप में परिचय देना समीचीन होगा।

राम साहित्य के प्रवर्तक– महाकवि तुलसीदास

तुलसीदास के जन्म संबंध में अधिकांश विद्वानों में मतभेद है। अन्त: साक्ष्य के आधार पर इनकी जन्मतिथि सं. १५८९ (सन् १५३२) अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होती है। इनका जन्मस्थान राजापुर बताया जाता है। जनश्रुति के आधारपर तुलसीदासजी के पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था। इनका बचपन विपन्नावस्था में गुजर चूका था। माता–पिता के द्वारा छोड दिये जाने पर बाबा नरहरिदास ने इनका पालन–पोषण किया और ज्ञान–भक्ति की शिक्षा भी दी। विवाह पश्चात उन्हें सन्तान प्राप्ति हुई थी किन्तु अल्पायु में ही उसकी मृत्यु हुई। पत्नी के प्रति अत्याधिक आसक्ति थी। एक बार पत्नी द्वारा भर्त्सना– ''लाज न आई आपको दौरे आएहु साथ'' मिली तब वे दाम्पत्य जीवन से विमुख होकर प्रभुप्रेम की ओर उन्मुख हुए। उन्होंने कई जगह की तीर्थयात्रा की। अंतत: काशी में ही अपना स्थायी निवास बनाया। इसी अवस्था में साहित्य सर्जना आरंभ हुई। इनके गुरु नरहरि माने जाते हैं। इनके गुरु ने ही राम–कथा सुनाकर राम–भक्ति की ओर प्रवृत किया था। उनकी मृत्यु अत्यंत पीडादायी अवस्था में हुई।

तुलसीदास द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या बारह है जो प्रामाणिक मानी जाती है, वह क्रमानुसार इस प्रकार है– वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्न, रामलला नहछू, जानकी मंगल, रामचरितमानस, पार्वती मंगल, कृष्ण गीतावली, गीतावली, विनयपत्रिका, दोहावली, वरवैरामायण और कवितावली आदि।

'वैराग्य संदीपनी में संत महिमा का वर्णन किया गया है। 'जानकी मंगल' में राम–जानकी विवाह वर्णन है। 'पार्वती मंगल' में पार्वती के जन्म और विवाहोत्सव का वर्णन है। 'कृष्णगीतावली' में कृष्ण की बाल लीला एवं गोपियों का विरह वर्णन है। 'विनयपात्रिका' में राम के प्रति कवि का विनयभाव अभिव्यक्त है। 'कवितावली' में कवित्त शैली में लिखा गया संग्रह है। 'रामचरित मानस' में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्रानुकूल प्रसंगों को विवेचित किया है।

तुलसीदास के लेखन पर तत्कालिन परिस्थितियों का प्रभाव दिखाई देता है। तुलसीदास कालीन समय का समाज नैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से ऱ्हासोन्मुख था। अपनेयुगिन राजनीतिक स्थिति की आलोचना इस प्रकार की है–

'गोंड गँवार नृपाल महि, यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि केवल दण्ड कराल।।'

शासक अधिकारी के लिए लिखा है–

'जासुराज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी'

तुलसी समकालीन समाज में उच्च वर्ग में विलासिता, जाति–पॉति की प्रथा अधिक कठोर हो रही थी। मुस्लिम शासकों के अत्याचार बढ़ रहे थे। धार्मिक ऱ्हास हो रहा था। आर्थिक विपन्नता थी। तुलसीदासने स्वंय कहा है–

'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को न बनिज न चाकर को चाकरी'

तुलसी की मान्यता यह है कि एक अच्छे समाज एवं राष्ट्र निर्माण के लिए वर्ण व्यवस्था का होना जरुरी है–

'बरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पंथ लोग।
तल हि सदा पावहि सुख, जहिं भय शोक न रोग।'

तुलसी ने अपनी रचनाओं के लिए लोक भाषा को चूना। पूर्वी व पश्चिमी अवधी पर समाज अधिकार था। कहीं-कहीं ब्रज भाषा का भी प्रयोग किया है। इनकी भाषा संस्कृत के पण्डित होने कारण संस्कृत की कोमलकान्त पदावली की सुमधुर झंकर है। उन्होंने अपनी रचना शैली में महाकाव्य, मुक्तक, गीति इन तीनों का प्रयोग सफलता पूर्वक किया।

तुलसी ने अपनी रचनाओं में करुण, हास्य, वीर, भयानक बीभत्स आदि रसों का परिपाक मिलता है। उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा, रुपक, संदेह, व्यतिरेक, अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। साथही उन्होंने छप्पय, दोहे, चौपाई, कुण्डलिया, सवैया, तोमर, त्रिभंगी आदि छंदों का सफलता पूर्वक प्रयोग किया है।

तुलसीदास के समूचे साहित्य में समन्वय भावना दृष्टिगोचर होती है। इस ओर संकेत करते हुए डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- ''उनका सारा काव्य समन्वय की विरोह चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, ग्रार्हस्थ और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, कथा और तत्वज्ञान का समन्वय, ब्राम्हण्य और चण्डाल का समन्वय, पाण्डित और पाण्डित्य- रामचरित मानस शुरु से आखिर तक समन्वय का काव्य है।'' अत: तुलसी जनचेतनावादी नायक थे।

स्वामी रामानन्द

स्वामी रामानन्दजी का जन्म १४०० से १४७० ई. माना गया है। इनका जन्म काशी में हुआ था और इन्होंने वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य राघवानन्द से दीक्षा ग्रहण की थी। वर्णाश्रम में आस्था रखने वाले रामानन्दजी भक्ति मार्ग में उन्होंने सभी को समान मानते हुए निम्न वर्ग के भक्तों को अपना शिष्यत्व प्रदान किया। इनके शिष्यों में कबीर, रैदास, धन्ना, पीपा आदि थे।

स्वामी रामानन्दजी संस्कृत के पंडित थे। इन्होंने 'वैष्णव मताब्द भास्कर' और 'श्रीरामार्जुन-पध्दति' यह प्रमुख ग्रंथ लिखे हैं। रामानन्दजी की भक्ति-पध्दति का प्रभाव राम-भक्ति परम्परा पर लक्षित होता है। गोस्वामी तुलसीदास भी इनकी विचारधारा से प्रभावित थे।

रामानन्द जी का हिन्दी में हनुमान की स्तुति का पद इस प्रकार है -

'आरती कीजै हनुमान लला की। दुष्टदलन रघुनाथ कला की।
जाके बल भरते महि काँपै। रोग सोग जाकी सियान ज्यांपै।
अंजनीसुत महाबलदायक। साधु संत पर सदासहायक ।।
गाढ परै कवि सुमिरों तोही। होहु दयाल देहु जस मोंहि।।'

स्वामी अग्रदास

स्वामी रामानंद की शिष्य परम्परा के राम-भक्त कवि स्वामी अग्रदास थे। इन्होंने कृष्णदास पयहरी से दीक्षा लेकर शिष्यत्व प्राप्त किया था। इन्हीं अग्रदास के शिष्य भक्त माल के रचयिता नाभादासजी थे। कृष्णदास पयहारी ने जयपुर के समीप गलता नामक स्थान में

अपनी गद्दी स्थापित की थी। अग्रदासजी गलता गद्दी पर १५६६ ई. में विद्यमान थे। इनके प्रमुख ग्रंथ 'ध्यान मंजरी', 'अष्टयाम', 'हितोपदेश उपखाणाँ बावनी,' 'रामभजन मंजरी', 'उपासना–बावनी', 'कुंडलिया' आदि है। इनकी पद–रचना पढने पर पता चल है कि, इन्हें शास्त्रीय साहित्य का ज्ञान था। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

कुंडल ललित कपोल जुगल अस परम सुदेसा।
तिनको निरखि प्रकाश लजत राकेस दिनेसा।
मेचक कुटिल विसाल सरोरुह नैन सहाए।
मुख पंकज के निकट मनो अलि छौना आए।।

इनका पद भी इस प्रकार है–

पहरे राम तुम्हारे सोवत। मैं मतिमंद अंन्ध नहिं जोवत।।
अपमारग मारग महिजान्यो। इंद्री पोषि पुरुषारथ मान्यो।।
औरनि के बल अनत प्रकार। अगरदास के रामअधार ।।

अग्रदासजी ने 'अग्रअली' नाम से स्वंय को जानकी सखी मान कर काव्य रचनायें की है। इनकी 'रामाष्टयाय' में सीता वल्लभ राम की दैनिक लीलाओं का चित्रण है।

नाभादास

यह तुलसीदास कालीन रामभक्त कवि थे। संवत १६५७ के लगभग वर्तमान थे। नाभादास अग्रदास के शिष्य थे। इनका प्रसिध्द ग्रंथ 'भक्त माल' संवत १६४२ के पीछे बना और प्रियदासजी ने उसकी टीका लिखी। इनकी 'अष्टयाम' की रचना रसिक–भावना को लेकर हुई है जिसमें राम की लीलाओं का वर्णन किया गया है।

ईश्वरदास

ईश्वरदासजी का जन्म १४८० ई. माना जाता है। उनकी सुप्रसिध्द कृति 'सत्यवती कथा' है इसका रचना काल १५०१ ई. है। रामकथा से संबंधित इनकी 'भरत मिलाप' और 'अंगद पैज' यह दो रचनाएँ प्रचलित है। 'भरत मिलाप' में राम के वनगमन के उपरान्त 'भरत–राम' भेट के करुण–कोमल प्रसंग को इस काव्य–कृति में पद्यबध्द किया गया है। ईश्वरदास की दूसरी रचना 'अंगद पैज' में रावण की सभा में अंगद के पैर जमाकर डट जाने का वीररसपूर्ण वर्णन मिलता है।

केशवदास

केशवदास का जन्म १५५५ ई में और मृत्यू १६१७ ई. माना जाता है। इनके द्वारा लिखे गए प्रमुख ग्रंथ कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका, वीरसिंहचरित, विज्ञानगीता, रतनबावनी, और जहांगीर जसचंद्रिका आदि है। इनमें से रामचन्द्रिका १६०१ ई. रामकाव्य परम्परा अंतर्गत प्रमुख कृति है।

इन कवियों के अतिरिक्त रामकाव्य लिखनेवाले अन्य कवि प्राणचंद चौहान कृत 'रामायण महानाटक', सेनापत्रिकृत कवित्त रत्नाकर, कपूरचन्द्रकृत 'रामायण' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय है।

३इ. ३ रामभक्ति साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

भक्तिकाल में भक्ति की अनेक धाराएँ प्रचलित थी । कबीर की निर्गुण ज्ञानमार्गी शाखा और सूफियों की प्रेमपूर्ण भक्ति इसी काल में प्रवाहित रही । ये दोनों शाखाएँ निराकार निर्गुण ब्रम्ह का प्रचार–प्रसार करती हैं । इनके अतिरिक्त सगुण भक्तिधारा भी प्रवाहित रही। सगुण भक्तिधारा में ईश्वर के रुप में राम और कृष्ण माने गये । रामभक्ति के मुख्य प्रवर्तक रामानुजाचार्य और बाद में रामानन्द माने जाते हैं । इन्हों ने राम के सगुण और निर्गुण दोनों रुपों की उपासना का विधान किया । तुलसी ने दास्यभाव की भक्ति की प्रतिमा कर रामभक्ति को एक निश्चित दिशा की ओर उन्मुख कर दिया था । रामभक्ति शाखा के अनेक कवि हुए, किन्तु रामभक्ति काव्य धारा का साहित्यिक महत्व महाकाव्य तुलसीदास के कारण है । उनके ही काव्य की प्रवृत्तियाँ राम काव्य की प्रवृत्तियाँ है । उनका विवेचन निम्न प्रकार हैं ।

राम का स्वरूप

रामभक्त कवियों के उपास्यदेव भगवान विष्णु के अवतार श्रीराम है। वे परब्रम्ह स्वरुप है। राम पाप का नाश करने हेतु और धर्मोध्दार के लिए युग में अवतीर्ण होते है। राम विष्णु का अवतार है और भक्त कवि मानव रुप में उनका साधक हैं।

रामभक्ति के अनुरुप श्रीराम में शील, शक्ति और सौन्दर्य का समन्वय है। अपनी शक्ति से वे दुष्टोंका खात्मा करते हैं और भक्तों को संकटों से मुक्त करते है। वे अपनी करुणामयता से पतितों और अधर्मो का उध्दार करते हैं। इस प्रकार भगवान श्री राम का लोकरक्षक रुप प्रधान है। वे आदर्श के प्रतिष्ठापक है, यही कारण हो सकता है, भगवान राम–सीता के नाम पर प्रेम का चित्रण नहीं हुआ है। कालांतर में राम भक्ति परम्परा में रसिकता का उदय हुआ और उस में सखी सम्प्रदाय की स्थापना हुई परन्तु यह सब कृष्ण भक्ति साहित्य के अनुकरण पर ही हुआ।

समन्वयात्मकता

सगुण भक्तिधारा के राम काव्य का स्वरुप अधिक व्यापक है। राम काव्य में एक विराट समन्वय की भावना है। इस में न केवल राम की उपासना है बल्कि कृष्ण, शिव, गणेश आदि देवताओं की स्तुति की गई हैं। यह काव्य हिन्दु धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों का समन्वय करने का सफल प्रयास करता है। महा कवि तुलसीदास ने सेतुबन्ध के अवसर पर श्रीराम द्वार शिवजी की पूजा करवाई है –

'शिव द्रोही मम दास कहावा।
सोर नर मोहि सपनेहु नहीं भावा।।'

यद्दपि रामभक्ति काव्य में राम भक्ति को श्रेष्ठ माना है तो भी उसकी भक्ति भावना अत्यंत उदार है। राम भक्तों ने भक्ति को सुसाध्य माना है फिर भी उन्होंने ज्ञान,भक्ति और कर्म के बीच समन्वय स्थापित करने का सुंदर प्रयास किया है। इस काव्य में सगुणवाद तथा निर्गुणवाद में एकरुपता बताई गई है। राम भक्तों का अपराध्य सगुण भी है और निर्गुण भी तो भी भगवान का सगुण रुप भक्तिसुलभ है।

लोकसंग्रह की भावना

राम काव्य लोक कल्याण की भावना की दृष्टि से भी यह साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। जन साधारण के लिए यह अत्यंत निकट का महसूस होता है। इन्होंने गृहस्थ जीवन की उपेक्षा नहीं की हैं। राम और सीता के माध्यम से जीवन स्तर को उँचा उठाने का प्रयास किया है। राम काव्य का आदर्श पक्ष अत्यंत उच्च है। भगवान श्रीराम आदर्श पुत्र है। आदर्श राजा भी है। सीता आदर्श पत्नी है,कौशल्या आदर्श माता है, लक्ष्मण और भरत आदर्श भाई हैं, हनुमान आदर्श सेवक है और सुग्रीव आदर्श सखा हैं। राम काव्य में जीवन का मूल्यांकन आचार व्यवहार की कसौटी पर किया गया है। स्वंय भगवान श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम है। आदर्श की प्रतिष्ठा उनकी अथ और इति है।

भक्ति का स्वरुप

राम भक्त कवियों ने भक्ति के स्वरुप पर विस्तार से प्रकाश डाला है। इनके अनुसार भगवान राम का चरित्र त्रिलोकातिशायी है। राम भक्त कवि राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य पर मुग्ध है। यहीं कारण है कि राम भक्त कवियों नें अपने और राम के बीच सेवक–सेव्य भाव को स्वीकार किया है । तुलसी के अनुसार –

'सेवक सेव्य भाव बिनु, भव ने तरिच उरगारि।'

राम भक्त कवियों का भक्ति संबंधी दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अधिक उदार है। इन कवियों ने राम भक्ति के साथ–साथ अन्य देवी–देवताओं की भी स्तुति की गई है। रामभक्त कवि ज्ञान और कर्म की अलग–अलग महत्व स्वीकार करते हैं। रामभक्त कवियों की भक्ति में नवधा भक्ति के सभी अंगो का विधान है। ये भक्त कवि विशिष्ट द्वैतवाद से प्रभावित है। इस भक्ति –प्रणाली में जीव भी सत्य है – क्यों कि वह ब्रम्हा का अंश है।

पात्र तथा चरित्र चित्रण

राम काव्य के पात्र आचार और लोक मर्यादा का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इनका चरित्र महान एवं अनुकरणीय है। इनमें जीवन की सभी कृतियों का चित्रण किया गया है अतः इनमें सर्वांगिणता है। राम काव्य में रज, तम और सत तीनों गुणों की अभिव्यक्ति हुई है। राम की रावण पर विजय अर्थात सत् की तम पर विजय है। तुलसी के काव्य में राम नाना रुप में लीला करते हुए पूर्ण ब्रम्ह है। महाकवि तुलसीदास के काव्य में राम नाना रुप में लीला कर रहें है। निर्गुण संतो में राम ऐतिहासिक न होकर ब्रम्ह है,किन्तु सगुण भक्ति काव्य में ऐतिहासिक होते हुए भी कालातीत है ।

काव्यशैली

सगुण रामभक्ति परम्परा के कवि या तो स्वयं विद्वान थे अथवा विद्वानों की संगति से साहित्य के धर्मो के संबंधों में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। इनके द्वारा अलंकार शास्त्र की अवहेलना हुई है। इनका अनेक काव्य शैलियों पर अधिकार था। यही कारण है कि राम काव्य में सभी शैलियों की रचनाएँ मिलती हैं। इस में प्रबन्ध और मुक्तक, दोनों की काव्यरुपोंका प्रयोग किया गया है। रामचरित मानस में महाकाव्य, पार्वतीमंगल व जानकी मंगल में खन्डकाव्य, कवितावली व दोहावली में मुक्तक, विनय पत्रिका में प्रबन्ध मुक्त का मिश्रण, रामललानहछु में गीति काव्य के प्रायः सभी तत्व विद्यमान है ।

रुपोपासना

सगुण भक्ति पध्दति में रुपोपासना का विशिष्ठ स्थान है। आदि शंकराचार्य ने नाम और रुप को माया जन्म माना है। शतपथ ब्राम्हण में ब्रम्ह को अरुप और अनाम कहा गया है, परंतु सगुण साधना में भगवान के नाम और रुप आनंद की अक्षय निधि है। नाम और रुप ही भक्ति का आरम्भ माना गया है। रामभक्त को भगवान का नाम और रुप इतना विमुग्ध कर लेता है, कि लौकिक छवि उसमें बाधक नहीं बन सकती। आरंभ में सगुण उपासक नामरुप युक्त मूर्ति समक्ष आकर उपासना करता है, परन्तु निरंतर भावना, चिंतन एवं गुण किर्तनसे वह अपने आराध्य में ऐसा सनिविष्ट हो जाता है, कि उसे किसी भौतिक उपकरण की आवश्यकता ही नही रहती।

गुरु की महिमा

रामभक्ति शाखामें निर्गुण संत कवियों के समान सगुण कवियों ने भी गुरु की महिमा गाई है । राम भक्ति के अनुरुप गुरु ब्रम्ह का प्रतिनिधी है । महाकवि तुलसीदास के मतानुसार गुरु के बिना ज्ञान की प्राप्ति असंभव है और ज्ञान के अभाव में मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती ।

रस

राम भक्ति साहित्य में रामकथा अत्यंत व्यापक है । उसमें जीवन की विविधताओं का सहज सन्निवेश है । उसमें सभी रसों का समावेश है किन्तु सेवक–सेव्यभाव की भक्ति होने के कारण निर्वेदजन्य शान्त रस की प्रधानता है । राम मर्यादा पुरुषोत्तम है और भक्त कवि भी मर्यादावादी है । होने के कारण श्रृंगार रस का चित्रण सिमित हुआ है । महाकवि तुलसीदास में सभी रसों का सुंदर परिपाक हुआ है । उनके काव्य में श्रृंगार और शांति रस के साथ साथ वीर रस का भी प्रभावी निरुपण हुआ है । विभिन्न युध्द दृश्य चित्रण में वीर रसके साथ ही रौद्र, करुण, भयानक और कहीं कहीं बीभत्स रस की निष्पत्ति हुई है । नारद मोहके प्रसंग में हास्य रस का प्रसंग चित्रित हुआ है । अनेक स्थलों पर अद्भूत रस का निरुपण हुआ है ।

छंद

रामकाव्य में रचना भेद, भाषा भेद, विचार भेद, अलंकार भेद के साथ–साथ छन्द भेद भी पाया जाता है। वीर गाथाओं के छप्पय, सन्त काव्य के दोहे, प्रेम काव्य के दोहे, चौपाई और इनके अतिरिक्त कुन्डलिया, सोरठा, सवैया, घनाक्षरी, तोमर, त्रिभंगी आदि छंद प्रयुक्त हुए हैं। राम काव्य में मुख्यतः दोहा,चौपाई का प्रयोग हुआ है। तुलसीदासजी ने इनका प्रयोग अधिकारपूर्वक किया है।

अलंकार

रामभक्त कवि पंडित होने हेतु उन्होंनें अलंकार शास्त्र की अवहेलना नहीं की हैं। जहाँ इन कवियों नें विविध छंदो का प्रयोग बडी कुशलता से किया हैं वहाँ अलंकार के प्रयोग में अत्यंत विद्‌ग्धता प्रदर्शित की है। कवि केशव नें बडी मात्रा में शब्दालंकारों का प्रयोग किया है। तुलसी काव्य में सभी अलंकार मिलते हैं किन्तु वें उपमा और रुपक के लिए विशेष प्रसिध्द हैं।

भाषा

रामकाव्य की भाषा अवधी हैं। कवि केशव ने अपनी रचना राम–चन्द्रिका में ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। बाद के रसिक सम्प्रदाय के कवियों ने ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। तुलसीदास मे अपनी रचनाओं में अवधी तथा ब्रज दोनों भाषाओं का सफल प्रयोग किया है। राम काव्य में भोजपुरी, बुन्देलखन्डी, राजस्थानी, संस्कृत और फारसी भाषाओं के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। तुलसी ने भाषा का परिस्कृत रुप प्रस्तुत किया हैं।

संक्षेप में उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता हैं, कि रामभक्ति शाखा के कवियों ने समय, परिस्थिती और काल के अनुरुप अपना काव्य सृजन किया हैं। इन कवियों ने उत्कृष्ट काव्य सृजन का परिचय दिया हैं। कविता इनकी साध्य नहीं साधन हैं। इनका साध्य रामभक्त हैं। अपने साध्य तक पहुँचने के लिए इन कवियों ने जिस साधन को स्वीकार किया हैं उसे इतना समर्थ और पूर्ण बना दिया हैं, उसका मानस जनमानस हो गया। इस काव्य में मानव जीवन की विविध दशाओं का सहज, सरल, स्वाभाविक और प्रभावी चित्रण हुआ हैं। इन कवियों ने एक ओर धर्मरक्षा, लोक हित एवं समाज के उत्थान में योग दिया हैं तो दूसरी ओर काव्य को उदात्त, उत्कृष्ठ एवं लोक मंगलकारी रुप प्रदान करने का स्तुत्य कार्य किया हैं।

३इ. ४ अभ्यास

प्र. १. राम भक्ति–काव्य की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
प्र. २. राम भक्ति–काव्य की प्रवृत्तियों का परिचय दीजिए।
प्र. ३. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए।
अ) कवि तुलसीदास

◆◆◆◆◆◆

३–ई

कृष्ण भक्ति काव्य

३ई. १ प्रस्तावना
३ई. २ कृष्ण भक्ति काव्य के प्रमुख कवि
३ई. ३ कृष्ण भक्ति काव्य की विशेषताएँ
३ई. ४ अभ्यास

३ई. १ प्रस्तावना

भक्तिकालीन सगुण भक्तिधारा में कृष्ण भक्ति काव्य में कृष्ण भक्ति को अधिक महत्व दिया गया है। ऋग्वेद में का उल्लेख एक श्रोता ऋषि के रुप में हुआ है। छन्दोग्योपनिषद में कृष्ण का उल्लेख देवकी पुत्र के रूप में हुआ है। महाभारत में कृष्ण का चरित्र विस्तृत रूप में चित्रित हुआ है। डॉ. भाण्डारकर ने यह सिद्ध किया है कि वैदिक ऋषि कृष्ण का महाभारत के कृष्ण से कोई संबंध नहीं हैं।

महाभारत में कृष्ण का जो वर्णन किया गया है वह कृष्ण सामान्य मानव का रुप है। पश्चात कृष्ण को नारायण, विष्णु, परब्रह्म के रुप में प्रतिष्ठित हुए। कृष्ण चरित्र के संदर्भ में डॉ. विजयेन्द्र स्वातक लिखते हैं – ''वस्तुत: धर्म स्थापन उनके अवतार का प्रमुख और एकमात्र उद्देश है। यदि 'गीता' के आधार पर कृष्ण–चरित्र का आकलन किया जाये, तो उनके दार्शनिक व्यक्तित्व का पूरी तरह उद्घाटन होता है। वेद–वेदांगज्ञाता कृष्ण ने व्यावहारिक स्तर पर दर्शन को 'गीता' में पहली बार प्रतिष्ठित किया है, जिसके अनुशिलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस रुप में कृष्ण यहाँ वर्णित है वह उनके परमदेवत्व का परिचायक रुप है।''

पुराणों में कृष्ण का जो रुप विकसित हुआ है उसके संदर्भ में पाश्चात्य विद्वानों ने कृष्ण की बाल–लीलाओं को क्राइस्ट के बालचरित्र का अनुकरण कहा है। श्रीकृष्ण के पूर्णावतार के संदर्भ में पहली बार पुराणों में ही कहा गया है। 'भागवत पुराण' में कृष्ण की महिमा गायी गई है। पुराणों में कृष्ण को योगेश्वर, सचिदानन्द, अच्युत, अविनाशी, आदि कहा गया है। हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, पद्मपुराण, आदि में कृष्ण महिमा गान विस्तार से हुआ है। संस्कृत काव्य में कृष्ण–लीलाओं का सबसे पहले उल्लेख अश्वघोष के 'ब्रह्मचरित' काव्य में मिलता है। 'हाल' रचित 'गादा–सतसई' में कृष्ण, राधा, गोपी, यशोदा आदि का वर्णन है। नाट्यदर्पन, अलंकार–कौस्तुभ, कन्दर्व मंजरी, श्रीकृष्णलीलामृत आदि संस्कृत ग्रंथों में कृष्ण के विविध प्रसंगों का चित्रण हुआ है। 'गीत गोविंद' में कृष्ण श्रृंगार रस का चित्रण हुआ है। कृष्ण काव्य के विकास में विभिन्न सम्प्रदायों का योगदान रहा है। उनमें प्रमुख है – निम्बार्क, चैतन्य, राधावल्लभ आदि – वल्लभ सम्प्रदायों के सूरदास ने सर्वप्रथम प्रतिमा प्रदान की है। उन्हें ही हिन्दी भक्त साहित्य का प्रणेता माना गया है। अत: कृष्ण भक्ति विकास में संस्कृत–पुराण महाभारत, सम्प्रदाय आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

३ई. २ कृष्ण भक्ति काव्य के प्रमुख कवि

भक्तिकाल के सगुण भक्ति काव्यधारा में कृष्ण भक्ति काव्य के प्रमुख प्रवर्तक सूरदासजी है। साथ ही कृष्ण भक्ति साहित्य प्रणयन विभिन्न कृष्णोपासक सम्प्रदायों में निंबार्क, चैतन्य, वल्लभ और राधावल्लभ आदि में किया है। इस धारा के विकास में सूरदास का अलग स्थान प्रदान किया है। इस धारा के विकास में अन्य कृष्ण भक्त कवियोंने भी अपना अमुल्य योगदान दिया है। उनमें प्रमुख है – सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास, हित हरिवंश, ध्रुवदास, श्रीभट्ट, स्वामी हरिदास, गदाधर भट्ट, मीराँबाई, रसखान आदि। अत: उनका संक्षिप्त परिचय हिन्दी कृष्णभक्ति साहित्य विकास कों समझने में सहायक होगा।

कृष्ण भक्ति साहित्य के प्रणेता 'सूरदास'

'सूरदास' कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि है। सूरदासजीके जीवन वृत को लेकर विद्‌वानों में काफी मतभेद है। सूरदास का जन्म सन् १४७८ ई. माना जाता है। विभिन्न रचना के आधार पर जन्म 'सीही' नामक गाँव और में सारस्वत ब्राह्मण और जाट जाति में उत्पन्न कहा गया है। उनके पिता के रुप में अकबर दरबारी गायक 'रामदास' का उल्लेख किया जाता है। 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' में सूर के जीवन वृत्त पर प्रकाश डाला गया है। वह इस प्रकार है–

'सूरदास बड़े गायक थे। वे गऊघाट पर निवास करते थे और विनयपद गाते थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उन्हें पुष्टिमार्ग में दीक्षित किया और कृष्ण लीला गाने की प्रेरणा दी। उन्होंने कृष्ण लीला के 'सहस्त्रावधि' पद लिखे, जिनकी प्रसिद्धि सुनकर देशाधिपति (अकबर) उनसे मिले। सूरदास अंधे थे। वे ईश्वर और गुरू में कोई अन्तर नहीं मानते थे। उन्होंने परासोली में प्राण–त्याग दिये। सूर के मृत्यु काल के संदर्भ में भी विद्वानों में मतभेद है। लेकिन अधिकांश सूर विद्वान सूर का मृत्यु सन् १५८३ स्वीकार करते हैं। उनके देहावसन समय पर विठ्ठलनाथ ने शोकार्त होकर कहा था–

''पुष्टिमारग को जहाज जात है सो जाको कछु लेना होय सो लेड।''

सूरदास की शिक्षा के संबंध में कोई उल्लेख नहीं मिलता; वे गाँव से चार कोस दूर रह कर पद रचना में लीन रहते थे और गान–विद्या में प्रवीण थे। सूरदास वल्लभाचार्य के सम्पर्क में आने पर सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव की पद–रचना करने लगे। सूरदास ने श्रीमद् भागवत के आधार पर कृष्ण संबंधी रचित पदों की संख्या सवालाख बताई जाती है।

'डॉ. दीनदयालु गुप्त ने उनके द्वारा रचित पचीस पुस्तकों की सूचना दी है। जिनमें सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, सूरपचीसी, सूररामायण, सूरसाठी और राधारसकेलि प्रकाशित हो चुकी है। 'सूरसागर' और 'साहित्य लहरी' उनकी प्रमुख कृतियाँ है। 'सूरसागर' का आधार श्रीमद् भागवत है। भागवत के समान इनमें भी बारह स्कंद है। प्रथम स्कन्द में विनयपद, भाया, अविधा, तृष्णा भक्ति–महिमा से भरा हुआ है। सूर सागर के दशम स्कंद के पूर्वार्ध में कृष्णजन्म, बाललीला, और भ्रमर गीत की रचना ४१६० पदों में की है। दशम स्कंद के उतरार्ध में जरासंध युद्ध, द्वारका निर्माण, रुक्मिणी हरण, शिशुपाल वध, सुभद्रा–अर्जुन विवाह आदि का अंकन १४९ पदों में किया गया है। सूरदास का ग्रंथ 'सूर सारावली' में ब्रजवर्णन, कृष्ण–जन्म, पूतना–वध, संकट–भंजन, भ्रमरगीत आदि प्रसंग है।

सूर की भक्ति पद्धति पुष्टिमार्गीय भक्ति है। और इस भक्ति को अपनाने के बाद प्रभु स्वंय अपने भक्त का ध्यान रखते हैं। भगवान का अनुग्रह ही भक्त का कल्याण करके उसे इस लोक से मुक्त करने में सफल होता है –

'जा पर दीनानाथ ढ़रै।
सोई कुलीन बडौ सुंदर सोइ जा पर कृपा करै।
सूर पतित तरि जाय तनक में जो प्रभु नेक ढ़रै।।'

सूर की रचनाओं का तत्कालीन समाज जीवन से कतई संबंध नहीं था। वे पहले भक्त और बाद में कवि थे। तुलसी के समान सूर में लोक संग्रह की भावना नहीं मिलती है। वे वस्तुत: कृष्ण में ही लीन हो चुके थे। 'सूरदास ने प्रेम और विरह के द्वारा सगुण मार्ग से कृष्ण को साध्य माना है। उनके कृष्ण सखा रुप में भी सर्वशक्तिमान परमेश्वर है। विष्णु, हरि, राम आदि सब कृष्ण ही के नाम है। निर्गुण ब्रह्म के ये सगुण नाम है।' वात्सल्य वर्णन के प्रथम कवि सूरदास है। सूरदास ने वात्सल्य का कोना–कोना झाँका है। वात्सल्य के अंतर्गत दशा का वर्णन सूरदास ने वर्णन किया है। तोतली बोली, माखन चोरी, माँ का बच्चों के लिए लोरी गाना, आदि।

माँ छोटे कृष्ण को झूठ–मुठ के प्रलोभन दिखाकर दूध पिलाती है, तब कृष्ण माँ को पूछते हैं –

''मैया, कबहि बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहि दूध पियत भई, यह अज हूँ है छोटी।''

बलदेव द्वारा छेड–छाड होने पर माँ को शिकायत करते हुए बालकृष्ण–

''मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ।
मोंसों कहत मोल की लीहनों तू ज सुमति कब जायौ।''

अत: सूरदास वात्सल्य वर्णन में महानायक है। आचार्य द्विवेदी लिखते हैं – 'संसार के साहित्य की बात कहना तो कठिन है क्योंकि वह बहुत बड़ा है और उसका एक अंश मात्र हमारा जाना है। परन्तु हमारे जाने हुए साहित्य में इतनी तत्परता, मनोहारिता और सरसता के साथ लिखि हुई बाललीला अलभ्य है।'

सूर के श्रृंगार रस में रति स्थायी भाव का पूर्ण और अलौकिक परिपाक हुआ है। सूर की गोपियों में प्रेम के संस्कार पक्के हैं। 'वे भावना प्रधान है, नंददास की गोपियों के समान वकील नहीं। वास्तव में सूरदास की राधिका शुरू से आखिर तक सरल बालिका है। उनके प्रेम में चाएडीदास की राधिका की तरह सास ननद का डर हीं है। और विद्यापति की किशोरी राधिका के समान रुदन में हास और हास में रुदन की चातुरी भी नहीं है। सूर ने बडी सच्चाई के साथ प्रेमी हृदय में रति की उत्पत्ति, प्रिय मिलन की लालसा, प्रिय मिलन का हर्ष और चापल्य, साहस और उन्माद का ऐसा प्रभावोत्पादक चित्रण किया है कि, एकांगीपन खटकता नहीं। राधा और कृष्ण की युगल लीलाओं के वर्णन में सूर ने अपनी समस्त प्रतिभा और सकल काव्य कौशल का उपयोग किया है। यह सारी प्रेम कहानी अध्यात्मिक भूमि पर प्रतिष्ठित है। उसमें आत्मा का उज्वल प्रकाश है और सर्वत्र भक्ति रस है।'

राधा और कृष्ण के अप्रतिम सौंदर्य पर सभी गोपियाँ मुग्ध है। प्रेम की उत्पत्ति आँखों में होती है –

'औचक ही देखी राधा, नैन बिसाल भाल दिए शेरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति अक शौरी।
सूर स्याम देखन ही रीझे नैन–नैन मिली परी ठगोरी।'

सूरदास ने अपनी रचनाओं के लिए ब्रज भाषा का प्रयोग किया है, जो लोक–प्रचलित थी। कृष्ण साहित्य के कारण ब्रजभाषा अत्याधिक विकसित हुई। उसमें सूर और नंददास का योगदान महत्वपूर्ण है – डॉ. गणपतिचंद्र कहते है – ''सूरदास और नंददास जैसे प्रतिभाशाली कवियों के हाथ में पड कर ब्रजभाषा चमक उठी, उसका शब्द भण्डार तत्सम एवं तद्भव शब्दोंसे परिपूर्ण हो गया तथा उसमें व्यंजकता और प्रवाहशिलता के गुण आ गये। उनके न्हृदय की भावधारां से आप्लावित होकर उसमें ऐसी मधुरता, कोमलता एवं स्निग्धता आ गयी कि वह परवर्ती कवियों के लिए अनुकरणीय हो गई।'' छंदों में सूरदास की रचना 'सूरसागर' में कुछ स्थानों पर रोला एवं चौपाई का प्रयोग हुआ है। अलंकारों का सबसे ज्यादा प्रयोग सूर की रचनाओं में हुआ है। 'सूरसागर' में रुपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि तथा 'साहित्यलहरी' में भी अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

नन्ददास

अष्टछाप कवियों में सूर के बाद का स्थान नन्ददास का था। वे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। 'नन्ददास का जन्म १५३३ ई. में हुआ था। और चाचा आत्माराम। इन्ही आत्माराम के पुत्र तुलसीदास थे। तुलसीदास और नन्ददास ने शैशव में सोरों में रह कर ही नृसिंह पंडित से संस्कृत भाषा का ज्ञान अर्जित किया था।' नन्ददास भी तुलसी के साथ काशी चले गये और वहाँ शास्त्रों का अध्ययन किया। गोकुल में विठ्ठलनाथ सें दीक्षा ली 'और इन्ही दिनों सूर के सम्पर्क में आने पर सच्चे कृष्ण भक्त बन गये। जीवन के अंतिम दिनों में वे अपने गाँव गोवर्धन आ गये थे। इन्हीं समय उनका १५८३ ई. में देहावसन हुआ।

इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या पंद्रह बताई जाती है। इन ग्रन्थों के नाम इस प्रकार है – अनेकार्थ मंजरी, मानमंजरी, रसमंजरी, रुपमंजरी, विरहमंजरी, प्रेम बारहखडी, श्याम सगाई, सुदामा चरित्र, रुक्मिणी मंगल, भंवरगीत, रास पंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, दशमस्कंदभाषा, गोवर्धनदासलीला, नन्ददास–पदावली आदि। इनमें से रास पंचाध्यायी, भंवरगीत और सिद्धांत पंचाध्यायी इनके महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। नन्ददास के सभी ग्रन्थ ब्रज भाषा में लिखे गये है।

गोस्वामी हित हरिवंश

गोस्वामी हित हरिवंश का जन्म १५५९ ई. में मथुरा समीप दक्षिणबाद गाँव में हुआ। वे राधा वल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। पिता का नाम केशवदेव मिश्र और माता का नाम तारावती था। ये जाति के गौड ब्राह्मण थे।

हित हरिवंश ने केवल चौरासी पदों की रचना ब्रजभाषा में अत्यंत सरस रुप में की है।

मीराबाई

मीराबाई के जीवनवृत्त, तथा गुरू के सम्बध में विद्वानों में मतभेद है। अनुसंधान के आधार पर यह निश्चित है कि उनका जन्म १५०४ ई. में और मेडता के समीपवर्ती गाँव 'कुडकी' में हुआ। राठौर वंश की मेडतिया शाखा के प्रवर्तक राव दूदा थे। उन्हीं के चतुर्थ पुत्र रत्न सिंह की पुत्री थी। राव दूदा भी कृष्ण भक्त थे, मीरा को भी भक्ति के संस्कार उन्हीं से प्राप्त हुए थे। 'पारिवारिक वातावरण, समाज में प्रचलित लोकगीत एवं यदा–कदा राजमहलों में आनेवाले सिद्ध सन्यासियों या रमते जोगियों के भक्तिमय उपदेश ही मीरां की पाठशाला बने। लोग गीतों की मधुरता एवं राजसी कलाप्रियता ने उन्हें अनायास संगीत–प्रेमिका बना दिया, तो साधुसंगति के प्रभाव वश उनका ऱ्हदय भक्ति एवं वैराग्य की ओर आकृष्ट हुआ, जिसकी अनुगूंज उनकी रचनाओं में सर्वत्र विद्यमान है।' मीरा का विवाह चितौड के राणासांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से हुआ। मीरा के विवाह के सात वर्ष पश्चात पति भोजराज का स्वर्गवास हो गया। विधवा हो जाने पर वह अपने अराध्य कृष्ण की भक्ति में लीन हो गयी। कुल की मर्यादा को लांघकर सत्संग में जाना देवर विक्रमसिंह को मीरा का यह बर्ताव पंसद नहीं था। मीरा को कष्ट दिया जाने लगा। मीरा ने ससुराल को त्याग दिया और तीर्थस्थानों की यात्रा करते हुए वह वृंदावन पहुँची। कुछ दिन ठहरकर द्वारका चली जाती है वहाँ कीर्तन करते हुए मीरा ने शेष जीवन व्यतीत किया।

मीरा की पूर्ण–अपूर्ण ग्रन्थ संख्या बारह है। वह इसप्रकार है – गीतगोविंद, नरसी जी का मायरा, राग सोरठ का पद, राग गोविंद, सत्यभामाणुं रुसणं, मीरा की गरीबी, रुक्मिणी मंगल, नरसी मेहता की हुण्डी, चरित, स्फूटपद आदि।

कृष्णभक्त साहित्य की मीरा के साहित्य में अनुभूति की तीव्रता अधिक दिखाई देती है। कृष्ण भक्तों ने राधा–गोपियों के माध्यम से अपने भक्तिभाव को अभिव्यक्त किया है। किन्तु मीरा कृष्ण को संबोधित करती है वह उसे पति के रुप में देखती है। कृष्ण के अलावा उसके जीवन में अन्य किसी को स्थान नहीं है। वह कृष्ण के वियोग का दरद झेलती रहती है –

'बिरहनी बावरी सी भई।
उंची चढ़ि अपने भवन में टेरत हाय दई।
ले अँचरा मुख अँसुवन पोंछत उघरे गात सही।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर बिछुरत कछु न कही।।'

मीरा की रचनाओं में विरह रस के साथ–साथ शांत रस का भी प्रयोग मिलता है। मीरा के काव्य की भाषा राजस्थानी ब्रज है। उनके पदों में गुजराती का पुट तथा खड़ी बोली और पंजाबी का भी प्रभाव दिखायी देता है। छंदो का भी प्रयोग तथा अलंकारों में उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग उनकी काव्य रचनाओं में मिलता है।

रसखान

रसखान के जन्म के संबंध में विद्वानों में मतभेद है किन्तु विद्वानों के अन्वेषण के आधारपर उनका जन्म १५३३ ई. माना जाता है। रसखान ने गोस्वामी विठ्ठलनाथ से दीक्षा ली थी। उनका सन् १६१४ ई. में लिखा गया काव्य 'प्रेमवाटिका' यह अंतिम कृति है। इसकी रचना के कुछ ही वर्ष बाद १६१८ ई. के आस-पास उनका देहावसन हो गया।

रसखान की प्रमुख चार रचनाएँ प्रामाणिक मानी जाती है- सुजान रसखान, प्रेमवाटिका, दानलीला, अष्टयाम आदि। उनका 'सुजान रसखान' में २७२ कवित सवैया दोहे है जिसमें भक्ति, प्रेम, राधा कृष्ण की रुप माधुरी, वंशी-मोहिनी, एवं कृष्ण-लीला संबंधी अन्य सरस प्रसंग है। 'प्रेमवाटिका' के ५३ दोहों में उन्होंने राधा-कृष्ण को प्रेमोद्यान के मालिन-माली मानकर प्रेम के गूढ़ तत्व का सूक्ष्म निरुपण किया है। 'दानलीला' में गोपी-कृष्ण संवाद है। 'अष्टयाम' के २६ दोहों में श्रीकृष्ण के प्रात:जागरण से रात्रि-शयन पर्यंत उनकी दिनचर्या एवं विभिन्न क्रिडाओं का वर्णन है।

रसखान की गणना भक्त कवियों में की जाती है। उन्होंने श्रीकृष्ण के रुप पर मुग्ध गोपिका, राधा की मन:स्थिति के माध्यम से रसखान ने श्रृंगार की मधुर अभिव्यंजना की है। उन्होंने श्रीकृष्ण के बाल-रुप की माधुरी का वर्णन इसप्रकार किया है-

धूरिभरे अति सोमित स्याम जू वैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरै अँगना पग पैंजनि बाजति पीरी कछोटी।
वा छविको रसखानि विलोकत वारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी।

रसखान की भाषा साहित्यिक ब्रज है। माधुर्य और प्रसाद गुणों के कारण काव्य-भाषा को सरस एवं सजीव बना दिया गया है। उनके काव्य में कवित, सवैया छंदों का सफल प्रयोग किया है।

३ई. ३ कृष्णभक्ति शाखा की सामान्य प्रवृत्तियाँ

कृष्ण भक्ति सम्बन्धी अनेक सम्प्रदायों का निर्माण इस काल में हुआ जैसे मध्वाचार्य का द्वैतवाद, विष्णुस्वामी का शुध्दाद्वैत, निम्बार्क का निम्बार्क सम्प्रदाय, पुष्टि सम्प्रदाय, चैतन्य गौडिय सम्प्रदाय, गोस्वामी हित हरिवंश का राधा वल्लभी सम्प्रदाय, स्वामी हरिदास का सखी सम्प्रदाय आदि कृष्ण भक्ति सम्बन्धी सम्प्रदाय प्रचलित है। इन में श्रीकृष्ण को मानवीयकरण किया गया है।

हिन्दी में कृष्ण भक्ति काव्य का आरंभ सामान्यतया विद्यापति से माना गया हैं। विद्यापति के चित्रण में मादक श्रृंगारी चित्र अधिक हैं। जिसमें भक्ति का अभाव है। कृष्ण काव्य में प्राण का संचार भरने का श्रेय महाकवि सूरदासजी को जाता हैं। सूरदास के द्वारा ही कृष्ण काव्य को अत्याधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। सूरदास के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी

कृष्ण भक्ति शाखा के विकास में योगदान दिया हैं। कृष्ण भक्ति काव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ तथा विशेषताएँ निम्नप्रकार हैं ।

श्रीकृष्ण लीला वर्णन

कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी काव्य रचनाओं में कृष्ण की लीलाओं का गान किया हैं। भगवान श्रीकृष्ण के तीन रुप प्रचलित है – धर्मोपदेष्टा ऋषि, नीतिविशारद क्षत्रिय नरेश तथा गोपालकृष्ण एवं गोपीवल्लभ रुप ही प्रधान हो गया। कृष्ण भक्त कवियों ने लोकरंजनकारी कृष्ण की लीलाओं का उन्मुक्त गान लीलानन्द के लिए किया हैं। लीला का मूल उद्देश अखण्ड आनन्द में जीवन की आध्यात्मिक परिपूर्णता की अभिव्यंजना करना हैं। उन्हों ने बालगोपाल की वात्सल्यपूर्ण लीलायें, सख्यरुप में लीलायें तथा माधुर्यभाव पूर्ण लीलीयें ही समस्त मध्यकालीन हिन्दी–कृष्ण भक्ति काव्य में व्याप्त हैं। कवियों ने उस अखण्ड आनन्द का चरम रुप स्त्री–पुरूष के रतिभाव में कल्पित किया। निम्बार्क, चैतन्य, हरिवंश और हरिदास इन सभी कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों में माधुर्यभाव का सर्वाधिक महत्व हैं। गोपी–कृष्ण की प्रेमलीलाओं का गायन, श्रवण, स्मरण, एवं चिन्तन ही कविकर्म की इतिश्री बन गया। सूरदास ने श्रीकृष्ण लीलाओं का वर्णन अत्यंत सूक्ष्म अध्यात्म भावना, मानसिक विरागत्व एवं अत्यंत संयम से किया है। आ.ह.प्र. द्विवेदी लिखते हैं – ''लीलागान में भी सूरदास का प्रिय विषय था प्रेम। माता का प्रेम, पुत्र का प्रेम, गोप–गोपियोंका प्रेम, प्रिय और प्रिया का प्रेम, पति और पत्नी का प्रेम, इन बातोंसे ही सूरसागर भरा हैं।'' अतः कृष्णभक्त कवि सगुण लीला भक्ति में विश्वास करतें हैं ।

विषय वस्तु में मौलिक उद्‌भावना

कृष्ण भक्ति काव्य की मूल प्रेरणा भागवत पुराण माना जाता है । कृष्ण भक्त कवियों ने भागवत के दशम स्कंध का आधार लेकर ही कृष्ण की लीलाओं का गान किया है । मध्यकाल में भागवत पुराण बहुत लोकप्रिय था । कृष्णभक्त कवियों ने केवल अनुवाद न कर मौलिक उद्‌भावना से काम लिया है । भागवती कृष्ण निर्लिप्त है जब कि हिन्दी कवियों के कृष्ण गोपियों की ओर स्वयं उन्मुख होते हैं और अपना हृदयकारी लीलाओं से उनके हृदय को जीतते है । भागवत में श्रीकृष्ण ब्रम्हत्व है । हिन्दी कवियों के कृष्ण कम अलौकिक है । वे बालरूप में बाल लीलाएँ और युवारुप में प्रणय लीलाएँ करते हैं । भागवत में राधा का कोई उल्लेख नहीं किन्तु हिन्दी कवियों ने राधा की कल्पना द्वारा प्रणय चित्रण में एक अलौकिक भव्यता लायी हैं और गोपियाँ भी एकनिष्ठता का भाव रखनेवाली हैं । इन कवियों ने जयदेव और विद्यापति का आधार लेकर यथेष्ट कल्पना शक्ति से काम लिया हैं । विद्यापति में राधा और कृष्ण के प्रेम वर्णन में जहाँ स्थूलता और उद्दामता हैं वहाँ इनसे नवीन रुप–रंग भरकर उसे निखार दिया है । इन्होंने लोकप्रचलित कृष्ण लीलाओं का सदुपयोग करके कृष्ण भक्ति की अभिवृध्दी में एक नवीन योगदान दिया । इन कवियों ने अपने युग तथा समाज के वातावरण के अनुसार अनेक नवीन प्रसंगो की उद्‌भावना की हैं ।

सामाजिक पक्ष

कृष्ण भक्ति काव्य लीला होते हुए भी तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दशा का यथार्थ वर्णन कृष्ण भक्ति काव्य में मिलता हैं। सूर ने भागवत के कुछ अन्य प्रसंगों को चुनकर तत्कालीन जीवन की उद्देश्य हीनता एवं इन्द्रिय परायणता की आलोचना की हैं। कलियुग के प्रभाव का वर्णन करते हुए इन कवियों ने वर्णाश्रम धर्म–पतन, सामाजिक कुरीतियाँ और धार्मिक विडम्बनाओं का चित्र प्रस्तुत किया हैं । कृष्ण भक्त कवियों की साधना वैयक्तिक होते हुए भी लोकमंगल की भावना हैं ।

ऐतिहासिक पक्ष

कृष्ण भक्ति काव्य के कवि मथुरा वृंदावन में थे फिर भी दिल्ली की राजनीति का उन पर कोई असर नहीं पडा किन्तु इनके साहित्य इन के अपने देश की ऐतिहासिकता अवश्य दिखाई देती हैं। सूरदास के अतिरिक्त अष्ट छाप के अन्य कवियों ने वल्लभ कुल का परिचय दिया है। राधावल्लभी भक्तों ने हित हरिवंश को अवतार मानते हुए उन को यशोगान किया हैं। कई भक्त कवियों ने उनके भक्तों के चरित्रों को अंकित किया हैं। इन सबका ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व हैं। अष्टछाप के कवियों में तत्कालीन सुन्दर सांस्कृतिक झाँकी मिलती हैं।

वात्सल्य रस का चित्रण

वात्सल्य और श्रृंगार के चित्रण में कृष्ण भक्त कवि अद्वितीय है। सूवात्सल्य और वात्सल्य सूर है। उन्होंने कृष्ण के रुप में बालक की विभिन्न चेष्टाओं व क्रियाओं का चित्रण सहज स्वाभाविक ढंग से किया है। वात्सल्य रस के अंतर्गत जितनी मनोदशायें, क्रीडा तक के विधान है उन सबका हृदयकारी वर्णन कृष्ण भक्ति कवियों ने किया है। सूरदासजी के कुछ उदाहरण दृष्टव्य है–

''मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो''

''मैया कबहि बढैगी चोटी !

कितिक बार मोहि दूध पियंत भइ,यह अजहूँ है छोटी ।''

पात्र एवं चरित्र चित्रण

कृष्ण भक्ति काव्य के कवियों ने कृष्ण जीवन के कोमलतम अंशों को अपने काव्य का विषय बनाया। कृष्ण कथा के नायक श्रीकृष्ण में मानव और अतिमानव के विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण है। इन भक्तों के कृष्ण महाभारत के नीति कुशल, व्यवहारवादी योध्दा कृष्ण न होकर वे है बाल गोपाल तथा साँवले–सलोने छलिया कृष्ण के साथ सम्बध्द पात्र नन्द–यशोदा, गोप–गोपी, और सखा उध्दव है। कृष्णावतार का उद्देश लीला है और इन पात्रों का उद्देश है लीला में शामिल होना। राधा रस रुपिणी है, जिसकी चरित्र के दो पक्ष हैं – वास्तव में वह कृष्ण से अभिन्न है, किन्तु व्यवहार में उसे कृष्ण प्रेम को उत्तरोत्तर विकसित करने के लिए चित्रित किया है। भक्त

कवियों ने उध्दव के माध्यम से बुध्दि और तर्क पर भाव मस्तिष्क पर हृदय, ज्ञान पर भक्ति और निर्गुण पर सगुण की विजय दिखलाई हैं।

प्रकृति चित्रण

कृष्ण भक्ति साहित्य भावात्मक काव्य है। इस काव्य में प्रकृति के मनोरम और अनुकुल भयानक और प्रतिकुल रुपों के चित्रण में कृष्ण भक्त कवियों ने अपने अद्‌भूत कौशल का परिचय दिया है। प्रकृति का कोई भी सौंदर्य उनकी आँखोसे नही छूटा। पृथ्वी, अंतरिक्ष, आकाश, वन, जलाशय, यमुना, कुंज–भवन आदि का सौंदर्य चित्रण कृष्ण भक्त कवियों ने किया है। सूरदास का प्रभातकालीन चित्रण इस प्रकार है –

''जागिये ब्रजराज कुँवर कमल कुसुम फूले।
कुमुद वृन्द संकुचित भृंगलता भूले।।''

रीतितत्व का समावेश

कृष्ण भक्ति काव्य में श्रृंगारिक चित्रणों के साथ रीति–तत्व का भी उल्लेख मिलता है। सूरदास और नन्ददास की कृतियाँ इसका प्रमाण मानी जा सकती है। सूरदास की साहित्य लहरी और नन्ददास की 'रसमंजरी' तथा 'विरहमंजरी' में नायिका भेद तथा अलंकारों का विवेचन मिलता है। सूरदास के समय में ही विठ्ठलजी ने श्रृंगार रस में उन्हीं के जैसा रीति परख ग्रंथ लिखा। उस समय चैतन्य–सम्प्रदाय में भक्ति को काव्य शास्त्र का सांगोपांग रुप देने के लिए भक्ति रसामृत सिन्धु और उज्वल नीलमणि की रचना हो चूकी थी। नन्द दास की रसमंजरी में नायिका भेद, हाव–भाव, हेला, रति आदिका विस्तृत विवेचन है। रुपमंजरी में वयः संधि तथा प्रथम समागम आदि दशाओंका वर्णन है। अष्टछाप के अन्य कवियों में भी नायिका भेद के उदाहरण देखे जा सकते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि इन कवियों ने अपने काव्योंमें रीति तत्व का समावेश आवश्यक रुप में किया है।

प्रेम की अलौकिकता

कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रेम की अलौकिकता पर बल दिया है। इनका श्रृंगार रस चित्रण मधुर रस की कोटि में आता है। मधुर रस की स्थापना कृष्ण और राधा के प्रेम का उन्मुक्त चित्रण करने के लिए ही की गई हैं। कृष्ण भक्त कवियोंने रति जैसे प्रसंगो का भी वर्णन किया है। इस प्रकार के प्रसंगो में अध्यात्मिकता ढूँढना व्यर्थ है। इस भक्ति परम्परा में श्रृंगार वर्णन के कई कारण मौजूद थे – एक तो मन्दिरों का वातावरण विलासप्रधान होता गया। दूसरा अधिकारी वर्ग का दृष्टिकोण भी विलासोन्मुख हो गया था। इस प्रकार कृष्ण भक्ति साहित्यपर चैतन्य, हितहरिवंश, हरिदास तथा राधास्वामी सम्प्रदायों का गहरा प्रभाव रहा है।

संगीतात्मकता (हवेली संगीत)

कृष्ण भक्त कवियों में संगीतात्मकता का प्रभाव दिखाई देता है। सामवेद से लेकर आज तक संगीत का आरोह–अवरोह, सप्त सुरों का संगम, तथा लय–गीति तान व आलाप आदि शास्त्रीय वस्तु होकर भी लोकानुरुप बदलती हुई, मध्य कालीन भक्ति साहित्य में सवेग प्रवाहित होती रही। कबीर–नानक से लेकर सूर–तुलसी सभी मध्य कालीन भक्त कवियों में उक्त संगीतात्मकता साहित्य के अनिवार्य तत्व रागात्मकता के साथ नाना रुपों में स्पन्दित होती रही। कविता की यह संगीतात्मकता की प्रवृत्ति कृष्ण काव्य के पुष्टिमार्गी कवियों में स्पष्ट देखी जाती है। अकबर के महान संगीत सम्राट तानसेन पुष्टिमार्गी स्वामी हरिदास के शिष्य थे। गुजरात प्रान्त में यह संगीतात्मक प्रवृत्ति–हवेली संगीत के रुप में दृष्टिगोचर होती है। अतः इन कवियोंपर संगीतात्मकता का प्रभाव रहा है।

काव्यरुप

कृष्ण भक्ति काव्य में मुख्य रुप से गेयमुक्तक का प्रयोग किया गया है। इस कवियों ने कृष्ण के जिस अंश को अपने काव्य के लिए चुना वह सर्वथा मुक्तक के उपयुक्त था। सम्पूर्ण कृष्ण काव्य में प्रबन्ध रचना बहुत कम पाई गई है। फिर भी कृष्ण के जीवन के किसी अंश की क्रमबध्द कल्पना अवश्य मिलती है। सूरदास के काव्य में ब्रजभाषी कृष्ण की सम्पूर्ण कथा देने का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। कृष्ण की सम्पूर्ण कथा देने का प्रयास ब्रज विलास में ब्रजरत्नदास ने किया है। कवि नंददास के भँवर गीत, रुक्मिणी मंगल और रास पंचाध्यायी आदि में कथात्मकता दिखाई देती है। इस दृष्टि से हित वृंदावन का साहित्य उल्लेखनीय है। इस काव्य पर गद्य का भी प्रभाव रहा है। वैष्णवन की वार्ता, दो सौ बावन्न की वार्ता इसके प्रमाण है।

शैली

कृष्ण भक्त कवियों ने गीत शैली का प्रयोग किया है। इनके काव्य में गीती तत्व के सभी तत्व उपलब्ध है। जैसे भावात्मकता, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता, संक्षिप्तता तथा भाष्य की कोमलता आदि पूर्ण रुप में मिलते है। इन कवियों को वैयक्तिकता के लिए कोई विशेष क्षेत्र नहीं था फिर भी इन्होंने गोपियों के माध्यम से वैयक्तिकता का कलात्मक रुप में समावेश कर लिया है। इन कवियों में अनेक अभिव्यंजना शैली के प्रयोग होते है। सूर–सागर में अनेक अभिव्यंजना शैलियाँ है। इनका साहित्य शब्दशक्ति, अलंकार, काव्य गुण आदि सभी काव्य गुणोंसे सम्पन्न है।

रस

कृष्ण भक्त कवियों ने भिन्न–भिन्न रसों का जितना सुन्दर समन्वय अपनी रचनाओं में किया है। उतना अन्यत्र दुर्लभ है। रस की दृष्टी से कृष्णकाव्य अत्यंत भव्य बन पडा है। इन कवियों ने करुणा, वात्सल्य, भयानक, रौद्र आदि रसों का मार्मिक चित्रण किया है। वात्सल्य रस में सूरदास बेजोड है ।

छंद

कृष्ण भक्ति साहित्य की रचनाएँ प्रमुखतः पदों में की गई है। विभिन्न छंदो का उत्कृष्ट चित्रण इन कवियों ने किया है। इन में दोहा, रोला, चौपाई आदि छंदों का प्रयोग बहुत ही कलात्मक है। सूरदास ने कविता, छप्पय, कुण्डलियाँ, हरिगीतिका आदी छंदों का प्रयोग किया है। नन्दराज ने 'रुपमंजरी' तथा 'रासमंजरी' में दोहा, चौपाई का प्रयोग किया है।

अलंकार

कृष्ण भक्ति काव्य में अलंकारों का अनुठा परिचय दिया गया है। इस काल के कवियों ने विभिन्न अलंकारों का प्रयोग अपनी काव्य रचनाओं में किया है। रुपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, यमक, श्लेष आदि अलंकारों का विविध आयामी प्रयोग इन कवियों नें किया है। अलंकार की दृष्टि से यह साहित्य सम्पन्न रहा है।

भाषा

कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी काव्य रचना के लिए तत्कालीन वृंदावन में प्रचलित ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। ब्रज भाषा समस्त उत्तरी भारत में साहित्य की भाषा के रुप में स्वीकृत हुई। ब्रज भाषा ने बंगाल की भाषा को भी प्रभावित किया। यह आधुनिक काल तक साहित्य की भाषा बनी रही। सूर तथा रीतिकालीन देव, बिहारी आदी कवियों ने इस भाषा को जो सौंदर्य दिया है वह समस्त हिन्दी साहित्य में आज भी अद्वितीय है ।

संक्षेप में, कृष्ण भक्ति साहित्य आनंद और उल्लास की साहित्य है। इस में सर्वत्र ब्रजरस की प्रधानता है। जो अद्भूत और विलक्षण हैं। शुध्द कलात्मक दृष्टी से यह साहित्य अनुपम है ।

३ई. ४ अभ्यास

प्र. १. कृष्ण भक्ति–काव्य की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
प्र. २. कृष्ण भक्ति–काव्य की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
प्र. ३. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए।
अ) कवि सूरदास

◆◆◆◆◆◆

रीतिकाल

लेखक :– पी. के. धुमाळ

४

रीतिकाल

४.० इकाई की रूपरेखा
४.१ उद्देश्य
४.२ प्रस्तावना
४.३ रीतिकाल का विस्तृत अध्ययन
४.४ बोध प्रश्न

४.१ उद्देश्य :–

इस इकाई के अंतर्गत पाठ्यक्रम में निर्धारित रीति–काल का परिचय दिया गया है। इससे रीतिकाल के विस्तृत अध्ययन में विद्यार्थीयों को आसानी होगी। इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी रीतिकालीन काव्य का अध्ययन कर सकेंगे। रीतिबद्ध काव्य, रीतिसिद्ध काव्य और रीतिमुक्त काव्य के परिचय के साथ विशेषताओं का भी विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।

४.२ प्रस्तावना

रीतिकाल जो समय सारणी के अनुसार मध्यकाल के नाम से भी जाना जाता है। रीतिकाल में श्रृंगार परक रचनाएँ अधिक हुई है इसका कारण तत्कालीन समय का परिवेश, राजा, नवाब और सामन्त लोगों का वर्चस्व था वहीं कवि अपनी जीविका का साधन काव्य रचनाओं को मानते थे और आश्रयदाता की रूचि के अनुसार उनके मनोरंजन के साधन के रूप में काव्य रचना की जाती थी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संवत् १७०० से १९०० तक के काल को (१६४३ ई. से १८४३ ई.) 'रीतिकाल' अथवा 'उत्तरमध्यकाल' नाम से अभिहित किया है। रीतिकाल में 'रीति' शब्द का प्रयोग 'काव्यांग निरुपण' के अर्थ में हुआ है। ऐसे ग्रन्थ जिनमें 'काव्यांगो के लक्षण' एवं उदाहरण दिये जाते है, 'रीतिग्रन्थ' कहलाते हैं। रीतिकाल के अधिकांश कवियों ने रीति निरुपण करते हुए लक्षण ग्रन्थ लिखे, अत: इस काल की प्रधान प्रवृत्ति 'रीति निरुपण' को माना जा सकता है। आ. शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के कालों के नामकरण प्रधान प्रवृत्ति के आधार पर किए हैं, अत: रीति की प्रधानता के कारण इस काल का नामकरण उन्होंने रीतिकाल किया है। रीति से उनका तात्पर्य पध्दति, शैली और काव्यांग निरुपण से है।

रीतिकाल का समय मुगलों के वैभव, पराभव या पतन एवं अंग्रेजों के उदय का काल है। सामन्तवादी प्रवृत्ति का बोलबाला इस काल में था और सामन्तवाद के दोष सर्वत्र व्याप्त थे। एक ओर विलासी शासकों, सामन्तों, अधिकारियों एवं मनसबदारों का बोलबाला था तो दूसरे ओर गरीब जनता पिस रही थी। विलासिता की बढती प्रवृत्ति के कारण नारी को सम्पत्ति

माना जाने लगा था। विलास के उपकरणों का संग्रह करना एवं सुरा–सुन्दरी में लीन रहना उच्च वर्ग के जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गया था। मध्य–वर्ग भी उन्हीं के अनुकरण में लीन रहता था। अभिजात वर्ग के हर सुन्दरी नारियों एवं रक्षिताओं से भरे रहते थे। कवि अपने समय का सजग चितेरा होता है। रीतिकालिन कवियों ने भी अपने समय के विलासी राजाओं, सामन्तों की विलासवृत्ति को तुष्ट करने के लिए घोर श्रृन्गार प्रधान रचनाएँ लिखीं। रीतिकाल के अधिकतर कवि राजा–श्रय में रहते थे अत: इन कवियों की सम्पूर्ण अन्तश्चेतना सुरा, सुन्दरी और सुराही तक ही सीमित रह गयी। उसने अपनी योग्यता का विस्तार नारी के अंग चित्रण में केन्द्रित कर दिया। डॉ. नगेन्द्र ने इसी कारण लिखा है कि– ''इस साहित्य का साँचा चाहे जैसा भी रहा हो उसमें ढली श्रृंगारिकता ही।'' डॉ. भगीरय मिश्र ने रीतिकालीन काव्यकारों को यौवन तथा बसंत के कवि कहा है।

इसके अतिरिक्त रीतिकाल में कुछ ऐसे भी राजाश्रित कवि थे जो अपने आश्रयदाताओं के दान, पराक्रम आदि का आलंकारिक वर्णन करते हुए धन की प्राप्ति करते थे। धार्मिक संस्कारों के कारण भक्ति परक रचनाएँ करके कुछ कवि आत्मलाभ भी करते थे. तो कुछ कवि जीवन के कटु–तिक्त वैयक्तिक अनुभवों को नीति का जामा पहनाकर नीति कथनों के रूप में भी व्यक्त करते थे।

रीतिकाल में लिखित सम्पूर्ण उपलब्ध काव्य को वर्ण्य अथवा विषय या प्रवृत्ति के आधारपर निम्नलिखित तीन वर्गो में विभाजित किया जाता है –

रीतिकाल (श्रृंगार काल)

रीतिबध्द काव्य (लक्षण काव्य)	रीतिसिध्द काव्य (लक्ष्य काव्य)	रीतिमुक्त काव्य (स्वच्छन्द काव्य)
चिंतामणि	बिहारी	घनानन्द
केशवदास	रसनिधि	आलम
मतिराम	नृपशंभु	ठाकुरदास
देव	नेवाज	बोधा
पद्माकर		द्विजदेव
भिखरीदास		
ग्वाल		

रीतिबध्द काव्य की प्रमुख विशेषताएँ :–

रीतिबध्द काव्य वह काव्य है जो रीति–निरुपण के रुप में लिखा गया हो। इसमें इस काल में लिखे गये वे सभी रीति–ग्रन्थ आ जाते हैं, जिसमें काव्यांगों का पद्यमय लक्षण प्रस्तुत कर उसके उदाहरण के रुप में स्वरचित काव्य प्रस्तुत किया गया है। डॉ. नगेन्द्र ने इसे ''आचार्य–कवियों का काव्य कहा है। आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इसे 'रीतिबध्द या लक्षणबध्द

काव्य' कहते है। इन काव्य–ग्रन्थ निर्माताओं कों रीतिबध्द कवि कहा जाता है। दूसरे शब्दों में संस्कृत–काव्यशास्त्र के आधार पर हिन्दी में लक्षण ग्रन्थों की रचना करने वाले कवियों को रीतिबध्द कवि माना जाता है। इन्होंने काव्यांगों के लक्षण लिखकर उनके उदाहरण भी प्रस्तुत किए। रीतिबध्द आचार्यों ने संस्कृत के अलंकार सम्प्रदाय को विशेष रुप से स्वीकार किया और रस, रीति, ध्वनि तथा वक्रोक्ति को गौण माना। इन रीतिबध्द काव्य रचनाकारों का मुख्य उद्देश्य अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करना था किन्तु अपने काव्य के माध्यम से वे संस्कृत भाषा में वर्णित साहित्यशास्त्र का हिन्दी लोकभाषा में (ब्रजभाषा) अनुवाद करते थे। इन आचार्यों ने किसी नए काव्यसिध्दान्त की स्थापना नहीं की इसीलिए इनकी रचना में मौलिकता का अभाव है। उन्होंने पूर्वनिधारित परिपाटी का अनुकरण मात्र किया है। ये अलंकारों और नायक–नायिका भेद निरुपण में ही व्यस्त रहे। इस वर्ग में दो प्रकार के कवि हुए। प्रथम वे जिन्होंने लक्षण ग्रन्थों के साथ लक्ष्य ग्रन्थ भी लिखे। इस वर्ग में केशवदास, चिंतामणि, मतिराम, देव, पद्‌माकर आदि की गणना की जाती है। दूसरे वर्ग में वे आचार्य आते हैं जिन्होंने लक्षण ग्रन्थ तो लिखे पर लक्ष्य ग्रन्थ नहीं। इनमें श्रीपति का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। इस काव्यधारा की सामान्य प्रवृत्तियाँ तथा विशेषताएँ इस प्रकार है–

१) कवि कर्म और आचार्य कर्म का समन्वय :–

कवि कर्म और आचार्य कर्म का अद्‌भूत समन्वय रीतिबध्द काव्य धारा की सबसे प्रमुख विशेषता रही है। रीतिकाल में साहित्य और साहित्यशास्त्र दोनों का आश्रय स्थान दरबार में था। दरबार का परिवेश ज्ञान और गुणग्राही उतना नहीं था, जितना चिन्तन के लिए आवश्यक होता है। संभवत इसीलिए आचार्य कर्म में इतनी गंभीरता नहीं थी। दरबारी सभ्यता इस काव्य में एक नया रुप धारण कर चुकी थी,जिसमें 'प्रदर्शन' का जितना महत्व था उतना दर्शन को नहीं। अतः आचार्य कर्म भी उन्ही के अनुसार परिवर्तित हुआ। आचार्यों को कार्य चिन्तन नहीं प्रदर्शन हो गया। कवियों की भी यही दशा थी, इसीलिए कवियों को प्रदर्शन के लिए रीति का सहारा लेना पडा और आचार्यों को काव्य का। परिणामतः आचार्य कर्म और कविकर्म यहाँ एकाकार हो गये। कवित्व और आचर्यत्व के मिश्रण के दुष्परिणामों की ओर संकेत करते हुए आ. शुक्लजी ने लिखा है– ''इस एकीकरण का प्रभाव अच्छा नहीं पडा। आचार्यत्व के लिए सूक्ष्म विवेचन और पर्यावलोचन शक्ति की अपेक्षा होती है, उसका विकास नहीं हुआ। कवि लोग एक दोहे में अपर्याप्त लक्षण देकर अपने कवि कर्म में प्रवृत्त हो जाते थे। काव्यांगों का विस्तृत विवेचन तर्क द्वारा खण्डन मण्डन, नये नये सिध्दान्तों का प्रतिपादन आदि कुछ भी नहीं हुआ। ''

२) श्रृंगारिकता :–

श्रृंगारिकता इस काव्यधारा की ही नहीं, इस काल के सहित्य की भी सर्वाधिक मुखर प्रवृत्ति रही है। इस काल के कवियों में मौलिकता का अभाव भले ही रहा हो पर श्रृंगार रस के विभिन्न अवयवों– विभाव, अनुभाव, संचारी, इत्यादि के वर्णन, नायिकादि भेदोपभेदों, उनकी सूक्ष्म श्रृंगारिक मनःस्थितियों के उद्‌घाटन ऋतु आदि के वर्णनों में कवियों ने जितनी सरस और मार्मिक ऊक्तियाँ प्रस्तुत की हैं संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के हजारों वर्षों के साहित्य से एकत्र की जाये तो भी इनकी तुलना में कम पड़ेगी। केवल मात्रा में ही नहीं सरसता में भी यह साहित्य अद्‌भूत है।

इस धारा के कवियों ने श्रृंगार के संयोग और वियोग – दोनों ही पक्षों का पूरे मनोवेग से चित्रण किया है। प्रेम का मूल्याधार आलम्बन सौन्दर्य मानने के कारण, इन्होंने सौन्दर्य के चित्रण में विशेष रुचि आयी है।

३) सौन्दर्य चित्रण :–

रीतिबध्द श्रृंगारिक काव्य के मुख्य आलम्बन नायक–नायिका रहे हैं। इन दोनों में नायिका की अंग–ज्योति की ओर कवियों की दृष्टि अधिक रही है। नख–शिख वर्णन के सारे प्रसंग इसके प्रमाण है लेकिन हाव अनुभावादि के चित्रणों में यह रुप–सौन्दर्य अधिक मार्मिक होकर सामने आया है। भिखारीदास का एक सौन्दर्य चित्र द्रष्टव्य है–

पंकज से पायन में गूजरी जरायन की
घाघरे को घेर दीठि घेरि घेरि रखियाँ।
'दास' मनमोहिन मति के बनाय
बनि कंठमाल, कंचुकी हवेल हार परिवयाँ।।
भाग भरी भागिनी सोहाग भरी सारी सूही
माँग भरी मोती अनुराग भरी अखियाँ।।

ऐसा ही सम्मोहक रुप इस धारा के कवियों की दृष्टि में था। इसमें ललित हाव,विभ्रव हाव के उदाहरण हैं लेकिन हाव के स्वरूप निरुपण की वृत्ति इसमें दब गयी है और रुप की मादकता ही प्रमुख होकर सामने आयी है।

४) अलंकारिकता :–

चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति रीतिकाल की सामान्य प्रवृत्ति रही है। चमत्कार का अर्थ है– अलंकार प्रधान होना। तत्कालीन रीतिबध्द कवि अलंकारों पर अधिक ध्यान देता था। अलंकारों में भी ये कवि अनुप्रास, यमक पर विशेष बल देते थे, क्योंकि अनुप्रास के प्रयोग से मुक्तक की भाषा नाद उत्पन्न करने में समर्थ होती थी और काव्य नें भी एक मधुरता आ जाती थी। आश्रयदाता भी कविता का मर्मज्ञ नहीं होता था। उसे शब्दों के चमत्कार और उसकी गेयता से ही अधिक मतलब होता था। कभी–कभी इन मुक्तकों को अतिशयोक्ति और उपमा अलंकारों से भी सजाया जाता था। किन्तु यह अतिशयोक्ति कभी–कभी खिलवाड़ की सीमा तक पहुँच जाती थी।

रीतिबध्द कवि संस्कृत के अलंकार शास्त्र के रुढीगत उपमानों को लेकर उनका ही पिष्टपेषण करता रहा। इस सन्दर्भ में उसने किसी नवीन मौलिक उद्‌भावना से काम नही लिया, परिणामतः उनके नखशिख वर्णन रुढिबध्द और अवैयक्तिक ही बने रहे। रुप सादृश्य मूलक अप्रस्तुत विधान की अपेक्षा धर्म–सादृश्य विधान सुन्दरतम होता है। रीतिबध्द कवियों में इसप्रकार के अप्रस्तुत विधान की कमी है।

५) काव्य रुप :–

रीतिकालीन कवि का उद्देश्य उस युग के राजाओं और रईसों की रसिकता की वृत्ति को सन्तुष्ट करना था। वह पूर्ण रुप से राजदरबारी वातावरण से घिरा हुआ था। ऐसी स्थिति

में चमत्कार उत्पादनार्थ तथा वाहवाही प्राप्ति के लिए मुक्तक काव्य शैली उसके अधिक अनुकूल थी। यह समय प्रबन्ध काव्य निर्माण के लिए सर्वथा अनुपयुक्त था। जिस दरबार में कवि पूगवों के दंगल लगते हो और जहाँ पर एक–दूसरे से बाजी मार जाने की होड चलतीरहे, वहाँ प्रबन्ध काव्य का प्रश्न ही नहीं उठता। इस समय इस क्षेत्र में थोडा–बहूत साहस भी किया गया लेकिन वह विशेष फलीभूत नहीं हुआ। प्रबन्ध काव्यों के लिए निरंतर एकरसता और धैर्य की आवश्यकता होतीहै, ये बातें न तो उस समय के कवि के पास थी और न श्रोता के पास।

इस काल में यद्यपि सबके आचार्य केशवदास ने 'रामचन्द्रिका' लिखकर प्रबन्ध काव्य लिखने का मार्ग दिखलाया था, परंतु यह परंपरा आगे नही चल पाई। आचार्य केशवदास स्वयं ओरछा नरेश इन्द्रजीत के दरबार में रहते थे और उनकी वेश्याओं को कविता रचना करने का हुनर भी लिखाते थे। 'कवि प्रिया' इनका इसी प्रकार का एक लक्षण ग्रन्थ है। किंतु उनकी रामचन्द्रिका की प्रबन्ध रचना प्ध्दति आगे नहीं चल पाई।

६) नारी चित्रण ;–

नारी के प्रति रीतिकालीन कवियों का दृष्टिकोन भोगवादी रहा है। चाहे रीतिबध्द कवि देव, मतिराम, केशव हो चाह रीतिसिध्द कवि बिहारी हो अथवा रीतिमुक्त कवि घनानन्द, बोधा या आलम हो, सभी की दृष्टि नारी के प्रति भोगवादी रही है। श्रृंगार भाव की इतनी बेकदरी और नारी के प्रति इतनी गिरी हुयी दृष्टि हिन्दी साहित्य में कभी नहीं प्रकट हुयी। इसका मुख्य कारण यह है कि मुगल शासन की निरंकुश सत्ता के सन्मुख देशी राजवाडों के नरेशों का तेज आहत हो चुका था। मुगल दरबार के प्रचुर विलास का अनुकरण करना ही उनके जीवन का उद्देश्य बन गया था, मानो यह एक मनोवैज्ञानिक रुप से क्षतिपूर्ति थी। राजाश्रित कवि नारी के कूच–कटाक्ष क महीन ब महीन विलासात्मक रंगीले और भडकीले चित्र उतारकर अपने स्वामी के गहरे मानसिक विषाद को दूर करने में प्रयत्नशील थे। उनके सामने नारी का एक ही रुप था और वह था विलासिनी प्रेमिका का। अपने दुःखों और पराभवों को भूलने के लिए इन लोगोंने नारी की मधुर चंचल छाया मे बैठना ही उचित समझा।

रीतिबध्द कवि दरबारी बनकर जन समाज से कट गये थे। रीतिकालीन कविता इसीलिए समाज के प्रति उपेक्षा पूर्ण दृष्टिकोन रखती है। उसके आश्रयदताओं के लिए नारी का सम्बल एक विलास स्थल बन गया था। अपने एकांगी दृष्टिकोन के कारण नारी जीवन के सामाजिक पक्ष, उसके श्रध्दाश्रय रुप और मातृ शक्ति को रीति कवि देख न सका। यहाँ तक कि आराध्य देवी के भी शारीरिक लावण्य पर रिझता रहा। इनके नारी चित्रण में वात्सल्य भावना कहीं पर भी नहीं दिखती। ऐसा लगता है कि मानो वासना ही उस नारी के जीवन का खाना–पीना, ओढना–बिछौना सब कुछ हो। नारी रीतिबध्द कवियों के लिए विलास का एक उपकरण मात्र है। देव ने कहा है–

'' कौन गणै पुर वन नगर कामिनी एकै रीति।
देखत हरै विवेक को चित्त हरै करि प्रीति।।

७) प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण :–

रीतिकाल में प्रकृति का आश्रय या स्वतंत्र रूप में कम ही चित्रण हुआ है। रीतिबध्द कवि दरबारी कवि था, उसके पास प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में विचरने का अवकाश

भी कम था अतः उसके काव्य में वाल्मीकि, कालिदास का सा प्रकृति का विम्बग्राही रूप नहीं मिलता। प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण भी परम्परा मुक्त है। प्रकृति का चित्रण नायक और नायिका की मानसिक दशा के अनुकूल ही किया गया है। संयोग में उसका मनोमुग्धकारी उत्फुल्ल रूप है और वियोग में विदग्धकारी रूप। प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण षट्ऋतु और बारहमासा की चित्रण पध्दति पर हुआ है। संयोग पक्ष में पावस का उतना प्रभावोत्पादक वर्णन नहीं, जितना इससे सम्बध्द हिंडोले और तीज त्यौहारों का। पावस में प्रेमी–प्रेमिका के मिलन अवसर पर कवि का मन खूब रमता हुआ सा दिखाई देता है। रीतिबध्द कवि की नायिका को वियोग काल में शुभ्र चंद्रमा कसाई सा लगता है तो पपीहे की पी–पी प्राण लेने लगती है। कहीं–कहीं इन कवियों ने प्रकृति चित्रण में अपने अज्ञान का भी परिचय दिया है।

८) समाज से सर्वथा विमुख कविता :–

अधिकांश रीतिबध्द कवि दरबारी थे। अपने आश्रयदाता विलासी राजाओं तथा सामन्तों की विलासिता को तुष्ट करने के लिए इन्हें घोर श्रृंगार परक कविता लिखनी पडी। दरबार में हल्की–फूल्की रचनाओं को ही आदर प्राप्त था। अतः रीतिबध्द कविता दरबार में पहुँचकर अपनी स्वाभाविक गंभीरता खोती रही। वह समाज से भी दूर होती गयी। इन कवियों का सम्बन्ध केवल दरबारों से था। राजाओं को स्वयं प्रजा से लेना–देना नहीं था। समाज के यथार्थ से दूर होना ही रीतिकालीन काव्य के चमत्कारपूर्ण बन जाने का एक कारण था।

९) पराश्रयिता की भावना :–

रीतिबध्द कवि अपने साहित्य और काव्यशास्त्रीय ज्ञान के लिए संस्कृत कवियों तथा आचार्यों पर अधिकतर निर्भर रहा है। ऐसा होते हुए भी रिक्त में मिली संस्कृत साहित्य की विशाल परम्परा का सम्यक उपयोग करके विशाल संसार को भी अपनी आँखों से देखने का अवसर उसे मिला। लेकिन यह भी सत्य है कि रीतिकालीन कवि संस्कृत साहित्य पर अत्यधिक अवलंबित है और उनकी स्वतंत्र चिन्तन के प्रति अवज्ञा का भाव अवश्य खटकता है। इस काव्य के कवियों में आलोचनात्मक दृष्टि का अभाव दिखाई पडता है।

१०) रीतिबध्द कवियों के राधा–कृष्ण :–

रीतिबध्द कवियों ने राधा–कृष्ण को अपनी श्रृंगारी कविताओं का आलम्बन बनाया। पद्माकर की गोरी का नाम राधा है। वह कृष्ण को होली खेलने के अवसर पर पकड लेती है और उनकी कमर से पिताम्बर खिंच लेती है, गालों पर गुलाल मल देती है और जो चाहे कर लेती है। केशव के कृष्ण वृषभानु के घर में आग लगने के बाद सीधे राधा के पास पहुँचते हैं। यह सच ही है कि इससे अच्छा मौका रीतिकालीन रसिया को कब मिलता। राधा–कृष्ण रीतिकाव्य में सामान्य नायक और नायिका के रुप में चित्रित है। रीतिबध्द कवियों ने राधा या गोपी को परकीया रुप में चित्रित किया है। राधा परकीया रुप का एक उदाहरण ही हो गयी थी। अक्सर नायक दूसरी स्त्री के घर गया दिखाया है, जिससे स्वकीया नायिका भडक जाती है। कहीं कहीं पर ऐसे वर्णन हैं, जिससे इस बात की गिरी हुई लोक रुचि का पता चलता है।

११) भक्ति, नीति और वीर रस :–

रीतिबध्द काव्य में भक्ति और नीति सम्बन्धी सूक्तियाॅ यत्र–तत्र बिखरी हुई मिल जाती है, पर इनके आधार पर हम रीति कवि को न तो अनन्य भक्त कह सकते हैं और न ही राजनीति निष्णात राधा–कृष्ण के नामोल्लेख मात्र से रीति कवि को भक्ति परम्परा में नहीं बिठाया जा सकता। प्रायः इन सभी कवियों ने श्रृंगार के साथ साथ भक्ति की भी रचनाएँ की है, किन्तु उनकी भक्ति परक रचनाएँ उनके विभाजित व्यक्तित्व की परिचायक है। पद्‌माकर या रसखान जैसे कवियों ने भक्ति की रचनाओं में थोडी–बहुत सफलता अवश्य पाई है। डॉ. राजशेखर प्रसाद चतुर्वेदी ने अपने शोध–प्रबन्ध में स्पष्ट किया है कि वृध्दावस्था में अशक्त होकर केशवदास, पद्‌माकर आदि सभी प्रमुख कवि वैराग्य से ग्रसित दिखलाई पडते है। सच तो यह है कि भक्ति और नीति इस कवि के जीवन के अवसान और थकान की द्योतक है।

वीर काव्य का निर्माण यद्यपि रीतिकालीन परंपरागत श्रृंगारिकता के विपरीत है, परंतु रीतिबध्द कवि पद्‌माकर द्वारा रचित वीर रस की कविता को दुर्लक्षित नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार भूषण, सूदन आदि कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की धमनियों में अपने अतातायी के विरूध्द खडे होकर सबल टक्कर लेने के लिये, नवीन रक्त का संचार करने के लिए वीर रसात्मक कविताओं की रचना की, उसीप्रकार पद्‌माकर ने भी बडी ओजस्विनी भाषा में वीर रसात्मक काव्य की सृष्टि की। इसमें राष्ट्रीयता का स्वर प्रधान है।

१२) अभिव्यन्जना पध्दति :–

रीतिबध्द कवियों की कविता दरबारी कविता थी। दरबार में वाह–वाह प्राप्ति के लिए उन्हें उर्दू और फारसी कवियों से होड लेनी पडती थी अतः फारसी कवि जैसी ऊहात्मकता पध्दति को अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए उन्होंने अपनाया। वैसे मुगल शासकों के दरबार में हिन्दी को भी थोड़ा–बहुत संरक्षण मिला हुआ था।

१३) छन्द :–

रीतिबध्द कविता दरबारी वातावरण में साँस लेती थी। रीतिबध्द कवियों ने दोहा, कवित्त और सवैया छन्दों को अपनाया। सवैया और कवित्त में नाद तत्व का विधान किया जाता था और दोहों में अर्थतत्व का। इसीलिए रीतिबध्द कवि इन्हीं छन्दों का प्रयोग करते दिखाई देते हैं। दोहा गेय न होते हुए भी अर्थ का विस्तार इसमें आवश्यक था। सवैया, कवित्त और दोहों में रीतिबध्द कवि चित्रात्मक वर्णन करता था। गेयता और चित्रात्मकता इस युग की कविता के दो प्रधान गुण थे।

१४) ब्रजभाषा की प्रधानता :–

ब्रजभाषा इस युग की प्रमुख साहित्यिक भाषा है। भारतीय साहित्य में लालित्य के क्षेत्र में संस्कृत भाषा के पश्चात् ब्रजभाषा का स्थान आता है। एक तो वह मध्यदेशीय भाषा थी, दूसरा यह प्रकृति से मधुर थी, साथ ही कोमल रसों की सुन्दर अभिव्यक्ति की इसमें अपार क्षमता थी। माधुर्य गुण और नाजुक मिजाजी के कारण संगीत के लिए इनके शब्द सर्वथा अनुकूल थे। डॉ। नगेन्द्र का कथन इस दृष्टि से दृष्टव्य है – '' भाषा के प्रयोग में इन कवियोंनें एक खास

नाजुक मिजाजी बरती है। इनके काव्य में किसी भी ऐसे शब्द की गुंजाइश नहीं जिसमें माधुर्य नहीं है। अक्षरों के गुंफन में इन्होंने कभी भी त्रुटी नहीं की। संगीत के रेशमी तारों में इनके शब्द माणिक्य मोती की तरह गूँथे हुए हैं।''

यह ब्रजभाषा की चरमोन्नति का काल है। इस समय ब्रजभाषा में विशेष निखार, माधुर्य और प्रांजलता का समावेश हुआ तथा वह अत्यन्त प्रौढ बन गयी। रीतिबध्द कवियों की भाषा में कुछ दोष अवश्य पाये जाते हैं लेकिन यह भी सच है कि रीतिबध्द कवि देव और पद्‌माकर ने कोमलकांत पदावली की दृष्टि से तुलसी को पीछे छोड़ दिया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि रीतिबध्द कवियों ने काव्य को उपयोगिता और जीवन से अलग रखकर विशुध्द कला के रुप में देखा है। फलस्वरुप यह काव्य मोहक छटा से युक्त किंतु निर्जीव मूर्ति के रुप में सामने आया है। परिपाटी बध्दता के कारण इस काव्य में भावना अत्यन्त संकुचित घेरे में बंध गयी है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर आ. रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है– '' जीवन की विभिन्न चिन्त्य बातों तथा जगत् के नाना रहस्यों की ओर कवियों की दृष्टि नहीं जाने पायी। वाग्धारा बंधी हुई नालियों में ही प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव से बहुत से गोचर और अगोचर विषय रससिक्त होकर सामने आने से रह गये।''

रीतिसिध्द काव्य

रीतिसिध्द कवियोंद्वारा लिखा गया काव्य रीतिसिध्द काव्य कहलाता है। रीतिसिध्द कवि वे हैं जिन्होंने रीतिकाव्य की बंधी–बन्धायी परिपाटी में आस्था रखते हुए भी लक्षण ग्रन्थों का प्रणयन नहीं किया अपितु स्वतंत्र ग्रन्थों के द्वारा अपनी कवि प्रतिभा का परिचय दिया। राजशेखर ने ऐसे कवियों के लिए 'काव्य–कवि' के पद का प्रयोग किया है। आचार्य कवियों ने अपने ग्रन्थों में 'कवि–शिक्षक' होने की अभिलाषा का स्पष्ट संकेत किया है, परंतु इन कवियों ने रीति का बन्धन स्वीकार करने पर भी इस अभिलाषा के ठीक विपरीत कवि–गौरव की अभिलाषा की है। इसीकारण इन कवियों को रीतिसिध्द काव्य–कवि के नाम से भी अभिहित किया जाता है।

इन कवियों की एक विशेषता यह है कि वे कवित्व के लोभ में चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ बाँधने में हमेशा लीन रहते थे। उन्हें अपनी कविता को लक्षण विशेष के साँचे में ढालने की विशेष चिन्ता नहीं रहती थी। इन्होंने स्वानुभूति के आधार पर मौलिक काव्य की रचना की। स्वतंत्र उद्‌भावना के लिए जितना अवकाश इन कवियों के पास था उतना रीतिबध्द आचार्य कवि के पास नहीं था। यही कारण है कि इन कवियों की वैयक्तिकता अपेक्षाकृत अधिक उभरी है। काव्यकवियों ने भाव पक्ष और कला पक्ष को समान रुप में महत्व दिया है। इन कवियों की कविता की आत्मा रीति के भार से अधिक आक्रान्त नहीं हुयी, क्योंकि इन्होंने स्वतंत्र रुप से लक्षण– ग्रन्थों की रचना नहीं की, भले ही कविता की पृष्ठभूमि में कहीं–कहीं रीति परम्परा काम कर रही हो। भावाभिव्यक्ति के लिए इन्होंने भी आलंकारिक शैली का अवलम्ब किया है। इस धारा के सबसे प्रमुख कवि बिहारी है। इसके अलावा रीतिसिध्द कवियों में सेनापति, बेनी, कृष्ण कवि, रसनिधि, नेवाज, नृपशंभु, प्रीतम, रामसराय दास आदि के नाम लिए जाते हैं।

* रीतिसिध्द काव्यधारा की विशेषताएँ :–

रीतिसिध्द कवियों की रचनाएँ रीति से गुथी हुयी है। लक्षण ग्रन्थों की रचना से विरत रहकर भी रीति की पूरी–पूरी छाप रखने के कारण ये कवि रीति सिध्द कवि या काव्य–कवि कहलाये और इनका काव्य रीतिसिध्द काव्य अभिहित हुआ। इस काव्य की विशेषताएँ निम्नलिखित है–

१. मध्यम पंथी काव्य:–

रीतिसिध्द कवियों की रचनाओं में शास्त्रीय सिध्दान्तों का निरुपण और लक्षण निर्माण तो नहीं हुआ, फिर भी इनकी रचनाएँ ऐसी बन पडी है, जो किसी न किसी काव्यांग के उदाहरण रुप में अवश्य रखी जा सकती है। लक्षणों का नियमत: पूरा–पूरा पालन न करने पर भी ये उनसे पूर्णत: मुक्त न थे जैसा की स्वच्छन्द कवि थे, परन्तु नियमानुसरण करते हुए भी ये स्वतंत्रता लेते थे। लक्षण ग्रन्थों की रचना से ये विरत रहते थे परंतु रीति की पूरी छाप भी रखते थे। रीति की बँधी परिपाटी में इनकी आस्था पूरी थी, किन्तु ये उसके पूरे गुलाम होकर नहीं चलना चाहते थे। उससे अलग हटना भी इन्हें अभीष्ट न था, उसकी पूरी दासता भी इन्हें स्वीकार्य न थी।

२. स्वतंत्र कवि व्यक्तित्व :–

रीति ग्रन्थ लिखनेवालों को लक्षणों से बाहर जाने की गुंजाइश न थी। परन्तु रीति सिध्द कवि रीति से केवल संकेत ग्रहण करते थे और भाव एवं कल्पना का बंधान स्वतंत्र ढंग से भी करते थे। यही कारण है कि जहाँ ये लोग नवीन उद्‌भावनाएँ कर सके हैं, वहाँ रीतिबध्द कवि अपनी रचनाओं में प्राय: नवीनता का वैशिष्टय नहीं ला सके हैं। बिहारी की रचनाओं के वैशिष्टय का यही कारण है। कवित्त, सवैया जैसे अधिक प्रचलित छन्दों को छोडकर बिहारी ने दोहे को जो ग्रहण किया, वह भी इसी व्यक्ति–वैशिष्टय का सूचक है। उनके दोहों में जो सूक्ष्म कारीगरी है, वर्ण एवं नाद सौन्दर्य का विधान है, गहरी अर्थवत्ता और ध्वन्यात्मकता है, वह कोरी रीति प्रथा का अनुकरण नहीं। वह स्वतंत्र कवि अस्तित्व के विकास का विशाल प्रयास द्योतित करती है।

३. कवि– गौरव के अभिलाषी :–

रीति की सुनिश्चित परिपाटी के अनुकूल रचना करते हुए भी रीतिसिध्द कवियों ने लक्षण ग्रथों की रचना नहीं की क्योंकि इन्हें कविगुरु, कवि शिक्षक या आचार्य बनने का प्रचलित रोग नहीं था। ये कवि गौरव के अभिलाषी थे, कवि गुरु, कवि शिक्षक या काव्याचार्य बनने के नहीं। इनकी दृष्टि में कवित्व शक्ति के निदर्शन द्वारा काव्यरचना के पुनीत क्षेत्र में वैशिष्ट्य लाभ करना अधिक श्रेयस्कर था। इसके बजाय कि कवि शिक्षा की साधारण पाठ्यपुस्तकें लिख कर रीति का आचार्य कहलाता। इनमें कवित्त्व की स्पृह भी थी। ये कवि होना अधिक सम्मान की बात समझते थे। इसीकारण इनका काव्य अधिक सरस और मार्मिक बन पडा है। उक्तियाँ चमत्कार से पूर्ण हैं, रीति की पध्दति से संयुक्त भी।

४. अभिनव कल्पना विधान :–

रीतिसिध्द कवि 'शास्त्रस्थिति सम्पादन' मात्र से सन्तुष्ट न होते थे। कभी ये अपने काव्य में शाब्दिक एवं आर्थिक अलंकारों की नयी चमत्कृति दिखलाते थे, तो कभी अभिनव कल्पना विधान एवं स्वतंत्र भाव–सृष्टि द्वारा नूतन ढंग का रस–संचार भी करते थे। कभी ये कविता में अपनी जिन्दगी के अनुभव भी उंडेल दिया करते थे। इसी में इनकी रचना की विशिष्टता है इनमें रीति है,चमत्कार भी, किन्तु स्वानुभूति और रस की व्यन्जना भी। रस–संचार के लिए ये काव्य कवि स्वानुभूतियों के सहारे अभिनव कल्पनाओं एवं उद्‌भावनाओं की सृष्टि कर काव्य में नवीनता और रमणीयता का संचार करते थे। संसार विषयक अपने अनुभव के सहारे भाव एवं सौन्दर्य–विधान की नयी सामग्री प्रस्तुत करने में ये कवि कुशल थे।

५. मुक्तक शैली का ग्रहण:–

श्रृंगार की सुन्दर, सरस रचना प्रस्तुत करने में ये रीतिसिध्द कवि संस्कृत की श्रृंगार की मुक्तक परम्परा से प्रभावित है। हाल की 'गाथा शप्तशती', अमरुक कवि के 'अमरुक शतक', गोवर्धन की 'आर्या सप्तशती' और भर्तृहरि के 'श्रृंगार शतक' का रीतिसिध्द कवियों पर पूरा–पूरा प्रभाव है। संस्कृत और प्राकृत से होती हुई यह श्रृंगार मुक्तक परंपरा अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थों में भी प्राप्त होती है। बिहारी आदि काव्य–कवियों के श्रृंगारी मुक्तकों को इस परम्परा से थोडी–बहुत प्रेरणा प्राप्त हुयी। क्योंकि इन रचनाओं में एक तो लक्षणानुधावन का बंधन नहीं और ये कवि बंधन ढीला करके चलना भी चाहते थे। दूसरे इन मुक्तकों में जीवन के ऐहिक एवं भोग–परक पक्ष के चित्रण का आग्रह था, जो इनकी और समसामयिक रुचि के अनुकूल भी था। इस परम्परा का उद्देश्य ही श्रृंगार के रसात्मक मुक्तकों द्वारा चित्त को उत्फुल्लता प्रदान करना था। यही कार्य रीतिसिध्द कवियों ने किया।

६. रीतिशास्त्रीय विषयों की मानसिक पृष्ठभूमि :–

रीतिशास्त्रीय विषयों की ही मानसिक पृष्ठभूमि होने के कारण इन कवियों ने भी नायिका भेद, ऋतु वन, बारहमासा, नखशिख आदि परम्परागत और शास्त्रकथित विषयों को काव्य के वर्ण्य के रुप में प्रचुरता से ग्रहण किया, परंतु उसमें अपनी नूतन गति का परिचय दिया। ये विषय ऐसे थे जिनपर स्वतंत्र ढंग से निजी अनुभव के बल पर काफी कुछ करने का अवकाश था। ये विषय रीतिबध्द और रीतिसिध्द दोनों ही प्रकार के कवियों द्वारा उठाये गये, किन्तु भावनाओं एवं उद्‌भावनाओं की नूतनता रीतिसिध्द काव्य में अधिक अभिव्यक्त हुयी है।

७. श्रृंगारिकता :–

रीतिसिध्द कवियों ने श्रृंगार के दोनों पक्षों–संयोग और वियोग का वर्णन किया है किंतु श्रृंगार के संयोग पक्ष में वे जितने रमे है, उतने वियोग पक्ष में नहीं। बिहारी इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। भले ही नायिकाओं की अदाओं को इन्होंने चित्रित किया हो, लेकिन अनुभाव के विधान में इनकी रस व्यंजना अत्यन्त भव्य बन पड़ी है। हावों और भावों की ऐसी सुन्दर योजना इनका कोई भी समकालीन कवि नहीं कर सका। मानों एक प्रकार से उन्होंने हाव–भाव भरी मूर्तियाँ तैयार कर दी है–

'' बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाई।
सौह करै, भौहनि हँसै दैन कर नटि जाई।।

श्रृंगार के वियोग पक्ष में बिहारी उतने सफल नहीं हो पाये है लेकिन कुछ स्थल ऐसे भी है जहाँ नायिका के हृदय के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण इन्होंने खूब किया है। श्रृंगार के संचारी भावों का चित्रण बडा हृदयस्पर्शी बन पडा है

सघन कुँज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मन हो जात अजौ, वहै वा जमुना के तीर।।''

८. आलंकारिता :-

रीतिकालीन चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण अलंकार साधन न रहकर साध्य बन गये। संभावनामूलक उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग इस काल के कवि ने खूब किया। इसका कारण यह है कि इसमें कल्पना की उड़ान और चमत्कार प्रदर्शन की काफी छूट रहती है। इस समय चमत्कारमूलक अलंकारों में से श्लेष, यमक और अनुप्रास का अधिक प्रयोग हुआ। बिहारी ने ऐसे चमत्कारमूलक अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है, लेकिन कभी-कभी ऐसे प्रयोगों के कारण काव्य में हास्यास्पदता आ जाती है। बिहारी और केशव ने चमत्कार की अतिस्पृहा से ऐसे हास्यास्पद प्रयोग किये हैं कि शोभासृष्टि के स्थान पर अशोभनियता पैदा हुयी है। कहीं-कहीं अलंकारों से बोझिल पंक्तियाँ भी मिलती है, परंतु कहीं कहीं अलंकारों के रुप में सुन्दर अप्रस्तुत विधान की योजना भी की गयी है। जहाँ कवि एक मात्र अलंकार के चमत्कार के पीछे दौड़ा है, वहाँ तो काव्य रुप की विकृति हो गयी है। 'बिहारी सतसई' को छोड़कर शेष काव्य में चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति कम ही मिलती है।

९. भक्ति और नीति :-

वस्तुतः यह युग अनेक स्वादों का युग था और उस समय के कवि ने अनेक स्वादों से अपने ग्रन्थों को भरना चाहा। बिहारी ने कहा है- 'करी बिहारी सतसई भरी अनेक संवाद।'

रीतिकालीन श्रृंगारी कवि देव, मतिराम, बिहारी आदि के भक्तिसम्बन्धी छन्दों पर- ''राधा कन्हाई सुमिरन को बहाने है '' की उक्ति चरितार्थ होती है। किंतु इसी समय मे गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाना, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा मिथिला आदि में शैंकडों भक्त, संत, सूफी तथा जैन कवियों ने शताधिक भक्ति-सम्बधी ग्रन्थों का प्रणयन किया जो आज तक उपेक्षित रहा है।

१०. भाव पक्ष एवं कला पक्ष का सामंजस्य :-

रीतिसिध्द कवियों ने काव्य के कला पक्ष के साथ साथ भाव पक्ष पर भी पूरा बल दिया है, फलतः दोनों का अच्छा समन्वय इनके काव्य की एक सर्वमान्य विशेषता है। ये कवि कर्म के प्रति अधिक स्वस्थ और सन्तुलित दृष्टि रखते थे। फलस्वरुप काव्य के भाव और कला दोनों पक्षों को समान महत्व देते थे। एक ओर जहाँ इन रीति सिध्द कवियों ने अपनी कविता के भाव पक्ष या वर्ण्य को नवीनता और ताजगी देने की चेष्टा की,उसे चर्वित चर्वण मात्र

होने से बचाया, अपनी और अपने युग की सीमाओं तक सीमित रहने पर भी ऐहिकतापरक श्रृंगारी रचनाओं द्वारा रस–संचार और आनन्द सृष्टि का आयोजन किया, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने काव्य के कलापक्ष के वास्तविक संभार की ओर भी ध्यान दिया। इन कवियों ने भाषा की लक्षणा और व्यन्जना शक्ति पर अधिक ध्यान दिया और उसे अधिक विकसित किया। लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता बिहारी, रसनिधि आदि में रीतिबध्द आचार्यों की अपेक्षा अधिक है। बिहारी, रसनिधि, रामसहाय आदि रीतिसिध्द कवियों ने अपने दोहों को भावपूर्ण और सुगठित तथा सौन्दर्य–सम्पन्न करने के लिये काव्य की समास पध्दतिं का पर्याप्त उत्कर्ष दिखलाया है। भाषा को मृदुल, कोमल,नाद–सौन्दर्य से परिपूर्ण बनाने की इन्होंने चेष्टा की तथा प्रचलित कवित्त, सवैया के अतिरिक्त दोहों पर इन्होंने विशेष ध्यान दिया है।

रीतिमुक्त या स्वच्छन्द काव्य धारा

रीतिकाल में रीति–साहित्य शास्त्रीय बन्धनों से जकड़ा हुआ था इस युग के अधिकांश कवि काव्यशास्त्रीय परिपाटी पर चलकर काव्य रचना करते थे। राज दरबारों में इसी तरह के साहित्य का सम्मान था। इसीलिए अधिकतर साहित्यकार इसी धारा में बहते दिखाई देते हैं। कुछ कवि रीति के निर्वाह में भी अपनी प्रतिभा और अनुभूति को कुछ हद तक अभिव्यक्त करते थे। लेकिन इस युग में कुछ कवि ऐसे भी थे जो साहित्य की बाह्य रीतियों से मुक्त, अपनी अनुभूति की सही अभिव्यक्ति के धरातल पर विद्रोही थे। वे तत्कालीन साहित्य को रुढिबध्दता से अर्थात् 'रीति' से मुक्त करना चाहते थे इसीलिए वे 'रीतिमुक्त' कहलाये। ये कवि अपने को किन्हीं सीमाओं में न बाँध सके और एवं स्वतंत्र मार्ग पर पल पडे। यह बन्धनमुक्त चलने का विद्रोहात्मक स्वर ही इन्हें स्वच्छन्द कवि के रुप में स्थापित करता है। इस स्वतंत्र मार्ग पर चलने का एक कारण यह भी था कि ये उन्मुक्त चेतना के कवि थे। निती, प्रेम तथा आत्मानुभूत वेदना का गायन करने वाले स्वतंत्र–चेतना सदैव ही परम्पराओं का मुख–मर्दन कर अपनी एक नई राह बनाते हैं। इसी कारण इन कवियों के मन में भी परम्परा–विद्रोह ने कुलाल भर दी। परिणाम यह हुआ कि इन कवियों की निडरता और स्वच्छन्दता ने रीतिबध्द या रीतिसिध्द कवियों के व्यक्तित्व तथा कृतित्व को भी आड़े हाथों लिया। उन्होंने उस कविता परिपाटी, रीति परम्परा तथा उनकी दृष्टि को भी अनुपयुक्त कहकर ललकारा। साथ ही रीतिबध्द या रीतिसिध्द कवियों को आश्रय देने वालों को भी अपनी तीखी अभिव्यन्जना का शिकार बनाया। '' आपको न चाहे ताके बाप को न चाहिए'' कहने वाले इन कवियों ने दरबारी आश्रय को ठोकर मार दी और काव्य के प्रति सम्मान भाव ररवते हुए कहा कि–

''लोग है लागे कवित्त बनावत,
मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।''

आ. रामचन्द्र शुक्ल ने ऐसे कवियों को रीतिमुक्त और स्वच्छन्द प्रेम के उन्मत्त गायक स्वीकार किया है। रीतिमुक्त स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने काव्य में अपनी आत्मानुभूतियों का सहज उन्मुक्त प्रकाशन किया है। इसीलिए इनके काव्य में जो ताजगी और आन्तरिकता मिलती है, वह रीतिबध्द काव्य में नहीं। इन कवियों का भाव, भाषा प्रयोग और शैली–सभी दृष्टियों से रीति कवियों से पार्थव्य स्पष्ट है। रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने

अपनी रचनाओं में स्वच्छन्द रुप से 'प्रेम की पीर'' की अभिव्यक्ति की। इन्होंने लक्षण तथा लक्ष्य ग्रन्थ नहीं लिखे। मुक्तक शैली में इन्होंने श्रृंगार, नीति, वीर तथा भक्ति की कविताएँ लिखी। इस धारा में घनानन्द, आलम, बोधा, ठाकुर, लाल, भूषण, सूदन, वृंद, गिरधर, दीनदयाल गिरि, सबलसिंह, खुमान, मुरलीधर, द्विजदेव आदि के नाम महत्वपूर्ण है।

रीतिमुक्त काव्य की विशेषताएँ– यद्यपि १७ वी शताब्दी के साहित्य में रीति बध्द काव्य प्रणयन की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बलवती होती गई, किन्तु इसके समानान्तर काल में रीतिमुक्त काव्यों की भी रचना हुई। इस काल में कुछ ऐसे भी कवि हुए, जिन्होने रीति के बन्धन से मुक्त होकर साहित्य–सृष्टि की। इन्होंने केशव, मतिराम और चिन्तामणि के समान न तो कोई लक्षण ग्रंथ लिखा और न ही बिहारी की भाँति कोई रीतिबध्द रचना लिखी। इन रीति–मुक्त कवियों की संख्या पचास से भी अधिक है। इनमें से कुछ कवि ऐसे है, जिन्होंने लक्षणबध्द रचना नहीं की और वे अपने स्वच्छन्द प्रेम की पीर जनता को सुनाते रहे। इस वर्ग में घनानन्द, आलम, बोधा और ठाकूर आदि आते हैं। दूसरा वर्ग उन कवियों का है, जिन्होंने प्रबन्ध काव्य लिखे, जैसे लाल और सूदन आदि। तीसरे वर्ग में दानलीला और मान लीला आदि पर वर्णनात्मक प्रबन्ध–काव्य लिखने वाले आते हैं। जैसे–वृन्द, दीनदयाल गिरि और गिरधर दास आदि। पाँचवे वर्ग में ब्रह्मज्ञान, वैराग्य और भक्ति पर लिखने वाले कवि आते है। छठे वर्ग में वीरस के फुलकर पद्य लिखनेवाले आते है।

इन उपरोक्त कवियों के काव्य में– (१) भाव–पक्ष की प्रधानता है। (२) इनकी शैली अलंकारों के अनावश्यक बोझ से भी आक्रान्त नहीं हुई है। (३) भाषा के क्षेत्र में भी ये लोग अधिक सफाई से उतरे हैं। (४) इनके काव्यों में सामाजिकता की घोर अवहेलना भी नहीं है, और न ही रुग्ण श्रृंगारिकता है। इनका श्रृंगार चित्रण अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ, संयत और स्वच्छ है। (५) इनके काव्य के मूल में स्वान्त: सुखाय की प्रेरणा काम कर रही है, अत: उसमें लोक–संग्रह की परिपुष्ट भावनाएँ है। (६) रीति–मुक्त धारा में श्रृंगारी कवियों का श्रृंगार चित्रण एक भिन्न् पध्दति पर चला है।

१) स्वच्छन्द संयत प्रेम का निरुपण– रीतिमुक्त कवियों का प्रेम स्वच्छन्द और संयत है। उसे कहीं भी रीति के बंधे–बंधाये साँचों में ढालने का प्रयास नहीं किया गया है। उसमें भाव प्रवण हृदय की सच्ची अनुभूति है, कही भी कृत्रिमता नहीं और न ही कही कोई छिपाव और दुराव है तथा काइयाॅ और बाँकापन है। इनके प्रेम में शुध्द हृदय का योग है। यह प्रेम उनकी आत्मा की पुकार है। रीतिबध्द कवियों जैसा अंतरंग और बहिरंग सखियों का विधान रीतिमुक्त काव्य में नहीं। ये कवि प्रेम के स्वच्छन्द गायक है। इनके यहाँ रीति का विशेष आदर नहीं। अगर कही रीति का निर्वाह हुआ भी है तो परोक्षरुप से। इनका प्रेम एकनिष्ठ है, इसमें लोकापवाद की तनिक भी चिंता नहीं। इनके पास प्रेम की उदात्त अनुभूतियाँ है और उनका इन्होंने उदात्त रुप में वर्णन किया है।

स्वच्छन्द् प्रेम का अर्थ यह है कि इन्होंने विशुद्ध सौन्दर्यानुभूति प्रेरणा से जाति समाज एवं धर्म के बन्धनों की अवहेलना करते हुए, ऐसी नायिकाओं से प्रेम किया जो अन्य

जाति एवं धर्म से संबंधित थी। आलम, घनानन्द, बोधा मूलतः हिन्दू थे, लेकिन उनकी प्रेमिकाएँ–आलम की शेख, घनानन्द की सुजान, बोधा की सुभान मुस्लिम थी। ऐसी स्थिति में इन्हें प्रेम के क्षेत्र में पर्याप्त संघर्ष करना पडा, तथा साहस एवं त्याग का परिचय देना पड़ा। मित्रों के उपहास, समाज के बहिष्कार, आश्रयदाताओं के विरोध को सहन करते हुए इन्होने प्रेम के क्षेत्र में गंभीरता का परिचय दिया। बोधा अपनी प्रेयसी के लिए संसार के समस्त वैभव को दुत्कारते हैं। घनानन्द अपनी सुजान के लिए गाना गाते हैं, और आश्रयदाता के कोप को सहते हैं।

२) श्रृंगार के संयोग और वियोग पक्ष– वैसे तो इन कवियों ने श्रृंगार के उभय पक्षों का वर्णन किया है, किन्तु इनकी मनोवृत्ति वियोग पक्ष में अधिक रमी है। इनकी विरह विषयक धारणा अत्यन्त विलक्षण है। यहाँ संयोग में भी वियोग पीछा नहीं छोड़ता है। घनानन्द के शब्दों में–

'' यह कैसी संयोग न जानि परै जु वियोग न क्यौंहूँ बिछोहत है ?''

वस्तुतः इन कवियों का प्रेम–तृषा सदा बढती ही रहती है, चाहे तो मिलन यामिनी हो और चाहे विरह की अमावस्या। इन कवियों में प्रेम की अयाह पीर है और उस पीर को पहचानने के लिए ह्दय अवेक्षित है। घनानन्द के शब्दों में–

''समुझै कविता धन आनंद की, हिय आँखिन प्रेम की पीर तकी।''

इनकी प्रेम की पीर सूफियों से प्रभावित जान पड़ती है। इस धारा के प्रायः सारे कवि प्रेम के उपासक है। इनकी स्पष्ट घोषणा है– आनन्द अनुभव होत नहिं बिना प्रेम जग जान।

कै वह विषयानन्द कै प्रछानन्द लखन।।''

इन्होंने कृष्ण के सगुन–सलोने रुप को अपने काव्य का विषय बनाया है, अतः इन्होंने राधा और कृष्ण के संयोग पर के प्रेम की भी बड़ी मनोहर और मार्मिक झॉकियॉ प्रस्तुत की है, लेकिन कही भी मिलन पक्ष के असंस्कृत और अपरिष्कृत चित्र नहीं उतारे।

३) प्रेम का लौकिक – रीतिमुक्त कवियों का प्रेम उनके जीवन का प्रेम होने के कारण लौकिक है। उसमें राधा और कृष्ण के नाम डालकर प्रेम के अर्थ को कमजोर नहीं किया गया है। बिहारी का दोहा– ' मेरी भव–लाहा हरो राधा नागरि सोड़ 'में न तो ठीक ढंग से राधा के तन की छबि उभरती है और न ही उनकी भक्ति, किन्तु घनानन्द की मीठी मुस्कान से रस निचुडता है और उसके चलने की अदा में अनंग के वंग की वर्षा होती है। रस में प्रेम भी साफ झलकता है और वर्णन भी प्रेम की रुगाता या कमजोरी इसमें नहीं है, और न ही राधा और कृष्ण का नहाना ही बनाया गया है।

४) व्यक्तिपरकता – इस काव्यधारा में प्रेम की अभिव्यक्ति पूर्णतया व्यक्तिपरक है। यह किसी सामूहिक रीति या पध्दतिपर आधारित नहीं है। इसीलिए इन कवियों के प्रेम में आत्मनिवेदन का तक भाव है प्रेम प्रिय के प्रति समर्पित है। इनका प्रेम वासना से मुक्त है।

५) भक्तिभावना – वस्तुतः इस श्वास के सभी कवियोम को भक्त कवि नहीं कहा जा सकता। इन पर भी यही कथन चरितार्थ होता है कि,–

'आगे के कवि रीझि है तो कविताई,
न तु राधिका कन्हाई सुगरिन को बहाने है। ''

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद जी को ऐसे कवियों की रचनाएँ भक्तिपरक लगतीहै जिन्होनें रीतिबध्द पदार्पण किया है। यहाँ इन्हे उन्मुक्त भक्त कवि कहा जा सकता है, लेकिन इस धारा के सभी कवियों को नहीं। रसखान और घनानन्द को उक्त कोटि में रखा जा सकता है। इनकी भक्ति में साम्प्रदायिकता और संकीर्णता की भावनाएँ नहीं है। उन्होंने अनेक देवी, देवताओं के प्रति उदार आस्था प्रदर्शित की है।

६) **प्रकृति–चित्रण–** वैसे तो हिन्दी साहित्य के प्रथम तीन कालों में प्रकृति–चित्रण प्रायः उपेक्षित रहा है। रीतिकाल में प्रकृति सजीव रुप में चित्रित नहीं है। इन कवियों ने प्रकृति को उद्दीपन रुप में ही चित्रित किया है। सेनापति की रचना में प्रकृति कही–कही उद्दीपन के बन्धन से मुक्त अवश्य मिल जाती है। गुमान मिला का कृष्णचन्द्रिका नामक प्रबन्ध–काव्य इस दृष्टि से विशेष ध्यान देने योग्य है। इसमें कवि ने संस्कृत कवियों के समान प्रकृति के खुले दर्शन कराये है। गुमान के भाई खुमान का अप्रकाशित कृष्णायन भी इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है। द्विनदेव प्रकृति–चित्रण में स्वच्छन्द दृष्टि लेकर बाहर निकले है।'विरह–वारीश' में बोधा ने प्रकृति–वर्णन कुछ तो शास्त्र–बध्द और कुछ स्वच्छन्द वृत्तिबध्द रहा है।

७) **सांस्कृतिक झॉकी –** स्वच्छन्द दृष्टि के कारण इस धारा के कवि सांस्कृतिक बिम्ब को प्रस्तुत करने में समर्थ हो चुके हैं। ये कवि देश के आनन्दोल्लाय में भी ठाकुर्ने अपनी सांस्कृतिक रचनाओं में बुंदेलखंड के सांस्कृतिक जीवन का वैभवमय चित्र खडा किया है। इन्होंने अखतीज, गजनौर, होली आदि के बडे ही भावुक चित्र प्रस्तुत किये हैं। नरोत्तमदास हे स्वनाभों में उस समय का हीन–दीन भारत मुखरीत हो उठा है। रीति कवि ने सामूहिक क्रीडामों–सूला तथा होली आदि में विलासिता के स्वर को उच्च बनाये रखा है। इसमें आँख मिचौनी और चोर मिठीचनी जमकर वर्णन है, क्योंकि इसमें स्पर्षाजन्य कामात्मक सुख की उपलब्धी अधिकाधिक संभव थी।

८) **काव्य–पध्दति–** इन कवियों ने रीतिकाल के प्रचलित कवि समयों और रुढियों को अपनाया। रीतिबध्द, रीतिसिध्द और रीतिमुक्त सभी कवियों में नेत्र व्यापए संबंधी उक्तियाँ समान रुप से पाई जाती है। रीति बध्द कवियों के समान रीति–मुक्त कवि रसखान,आलम, ठाकुर और घनानन्द में खंडिता की उक्तियाँ मिलती हैं, क्योंकि ज्यो कवि दरबारी थे उन्हें उर्दू और फारसी की काव्य–रचना से होड लेनी थी। उन्होंने उर्दू कविता की माशूक की बराबरी में खण्डिता को पेश किया। स्वच्छन्द कवियों ने इस पध्दति का ग्रहण इसलिए किया कि प्रेम–वैषम्य के लिए उन्हें भी भारतीय काव्यपध्दति में यही बात अनुकूल दिखाई पडी। इन कवियों ने खण्डिता के हृदय को दिखलाने का प्रयत्न किया। विपरीत के कुत्सित चित्र प्रायः इन कवियों में नहीं मिलते। बोधा में कहीं–कहीं पर कुछ लाजारु रंग–दंग मिलता है। घनानन्द और ठाकुर आदि पर भी फारसी काव्य–पध्दति की रंगत देखी जा सकती है।

९) मुक्तक शैली– इन कवियों में मुक्तक शैली का बोलबाला रहा, किन्तु फुटकर रुप में प्रबंध रचनाएँ भी होती रही। आलम ने ' माधवानल–कामकन्दला'' सुदामा–चरित्र' 'श्याम–सनेही' नामक तीन प्रबन्ध काव्य प्रस्तुत किये। बोधा ने भी 'विरह–वारीश' नामक प्रबन्ध–काव्य प्रस्तुत किया। अन्य कई प्रबन्ध रचनाएँँइस काल में हुई।

१०) छन्द तथा अलंकार– इस धारा में प्राधिकारिता, कवित्त, सवैया और दोहा जैसे छन्दों का प्रयोग किया गया। यद्यपि बीच–बीच मेम छप्पय, बरवै, हरिपद आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है, किन्तु सभी रीति–कवियों की वृत्ति प्राधिकतर दोहा, सवैया और कवित्त में रमी रही। रीतिमुक्त धारा के कवियों ने अलंकारों का प्रयोग अपने प्रकृत रुप में किया है। इनके अलंकार कहीं भी पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए नहीं आये बल्कि इनके द्वारा हृदय की सूक्ष्म वृत्तियों के द्योतन के लिये सहायता मिली है। इनके यहाँ अलंकार साधन रुप में आये हैं, न कि साह्य रुप में घनानन्द की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं– 'नेह भीत्री बातें रसना पै उर आँच लागै ? यहाँ विरोधाभास अलंकार की सुंदर छटा है।

११) ब्रजभाषा– इन कवियों ने साफ–सुथरी भाषा का प्रयोग किया है। प्रेम के वर्णन की स्वच्छन्द पध्दति अपनाने के कारण रीतिमुक्त कवियों की भाषा और उसकी व्यंजना रीतिबध्द कवियों से भिन्न है रीतिबध्द कवियों में बिहारी, मतिराम और पद्माकर को छोड़कर दूसरे कवियों में भाषा की सफाई के दर्शन नहीं होते। भूषण और देव आदि ने तो स्वेच्छानुसार शब्दों का अंग–अंग दिया है। इनकी भाषा में प्रादेशिकता का पुट बना रहा। परंतु रीतिमुक्त कवियों में न तो भाषा के अंग–अंग की प्रवृत्ति है और न ही प्रादेशिक पुट। रसखान और घनानन्द ने तो ब्रजभाषा का ऐसा प्रयोग किया है जिसे ब्रजभाषा का साहित्यिक, परिनिष्ठित रुप स्वीकार किया जा सकता है।

इन कवियों की भाषा में उक्ति–वैचित्र्य, लाक्षणिकता, लोकोक्तियों और मुहावरों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। घनानन्द की भाषा की लक्षणिकता विशेष हृदयग्राही है। ठाकुर ने लोकोंक्तियों का अत्यंत सुन्दर प्रयोग किया है।

४.४ बोध प्रश्न :–

१. रीति बद्ध काव्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किजिए?
२. रीति सिद्ध काव्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किजिए?
३. रीति मुक्त काव्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किजिए?

◆◆◆◆◆◆

आधुनिक काल

१. आधुनिक काल की परिस्थितियाँ
२. भारतेन्दु युग
३. द्विवेदी युग
४. छायावाद
५. प्रगतिवाद
६. प्रयोगवाद
७. नई कविता
८. नवगीत

हिन्दी गद्य विधाएँ
१. हिन्दी उपन्यास

लेखक – डॉ. दत्ता मुरूमकर

आधुनिक काल

५.० इकाई की रुपरेखा :–

५.१ प्रस्तावना

५.२ आधुनिकता किसे कहा जाता है।

५.३ आधुनिक काल की परिस्थितियाँ किस प्रकार की थी।

५.० ईकाई का उद्देश :–

क. हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल का परिचय प्राप्त करना।

ख. आधुनिक काल की कौनसी कारक प्रवृत्तियाँ थी जिसने गद्य लेखन का आरंभ किया।

ग. आधुनिक काल के गद्य का स्वरूप किस प्रकार का है।

घ. हिन्दी भाषा और साहित्य की दृष्टि से यह काल संक्रमण का है।

ड. बांगला, मराठी के लेखन का प्रभाव कैसे हिन्दी पर पड़ा है।

च. आधुनिक काल का मूल्यांकन करना

५.१ प्रस्तावना :–

आधुनिकता एक नवीन प्रवृत्ति है । जो निरंतरता का बोध कराती है । जो नया है वह आधुनिक हो जाता है , नयी पीढी के लिए । आधुनिक काल वस्तुतः आधुनिक इसलिए है की भारत में ब्रिटिशों की नयी शासन पध्दति आयी और ब्रिटीशों के द्वारा नये साधनो, संस्थाओं का विकास हुआ । इन नये साधनों में डाक, रेल आदि है तो संस्थाओं में स्कूल, कॉलेज आदि । परिणामतः देश में जागरण का दौर आया । साहित्य में भी । कविता राजदरबार की कामीनी से निकलकर जनता के सुख–दुख से जुडी । और साहित्य के केंद्र में सामान्य मनुष्य आया । सामान्य मनुष्य की ठेठ सामान्य भाषा खडीबोली भी आयी । कविता की प्रकृति और भाषा दोनों ने नया रुपाकार ग्रहण किया । काव्य के स्थान पर गद्य का अविर्भाव बडा क्रांतिकारी रहा क्यों कि बाद में काव्य की भाषा गद्य का रुप धारण करती गई । आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल में हिन्दी की बोली भाषाओं का साहित्य, हिन्दी का साहित्य कहा गया परंतू आधुनिक काल में विशुध्द खड़ीबोली साहित्य की भाषा बनी । अमीर खुसरो तथा कबीर की कविता से निकलकर खड़ीबोली अंग्रेज अधिकारी, इसाई धर्मप्रचारक तथा आधुनिक प्रेस में पहुँची । सन १८०० इ. में कलकत्ता के फोर्ट विल्यम कॉलेज की स्थापना के बाद उर्दू और हिन्दी को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ । डॉ. जॉन गिलक्राईस्ट ने भारत में प्रशासन चलाने के लिए आनेवाले ब्रिटिश अधिकारीयों को हिन्दी पढ़ाना प्रारंभ किया, इसी कॉलेज से और उन्होंने यह कार्य करने हेतू दो हिन्दी अध्यापकों को नियुक्त किया। लल्लूलाल और सदल मिश्र। इनके अतिरिक्त खड़ीबोली

गद्य को विकसित करने में मुंशी सदासुखलाल नियाज तथा इंशाअल्ला खां का योगदान उल्लेखनीय है। इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी कहानी' प्रथम हिन्दी कहानी है । जो मौलिक एवं आदर्श कहानी है । ईसाई प्रचारकों ने अपने धर्म प्रचार हेतू बाईबल का अनुवाद हिन्दी में किया । इनके द्वारा प्रेस की स्थापना हो चुकी थी इसी का लाभ लेते हुए राजाराम मोहन राय ने 'बंगदूत', पं. जुगल किशोर शुक्ल ने 'उदंत मार्तण्ड' जो हिन्दी का प्रथम समाचार पत्र भी है, को चलाया । अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों के विरुध्द इनका उपयोग करते हुए, प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन भी चलाया गया । अंग्रेजों की स्वार्थी, शोषण परक नितियों को उघाड़कर बुध्दिजीवियों ने सामान्य जनता को जगाया । लोगों में असंतोष. विद्रोह का भाव पनपने लगा और लोग एवं बुध्दिजीवि, प्राचीन भारत का गौरव गान करते हुए देश की वर्तमान शासन व्यवस्था को समझकर स्वतंत्रता, अधिकार और स्वशासन की माँग करने लगे ।

पश्चिम के सम्पर्क में आने के बाद सामाजिक मूल्य, रुढियाँ, जड़ परंपरा, अंधश्रध्दा, अंधविश्वास आदि में परिवर्तन की दृष्टि विकसित होने लगी । स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह का समर्थन होने लगा तो बालविवाह, सती प्रथा, जातियता का विरोध कर स्वातंत्र्य, बंधुता, समता व भाईचारे के मूल्यों को समाज में विकसित किया जाने लगा । परिणामस्वरुप अनेक सामाजिक आंदोलन उभरकर आये । पूंजीवादी, सामंतवादी तथा विषमतामुलक व्यवस्था को निकालकर लोकतांत्रिक एवं समतामुलक व्यवस्था को लाने के लिए सुधारकों द्वारा प्रयास किये गये । आर्य समाज का एकेश्वरवाद और छुआछुत विरोध, हिन्दू धर्म पुनर्उत्थान, सुधार की भावना से ही उपजे है । यह स्पष्ट है की भारत एक नई अंगड़ाई ले रहा था, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक दृष्टी से । शोषण एवं वर्चस्व की व्यवस्था को उखाड़कर गतीशील, एवं जनहितकारी व्यवस्था को लाना श्रेयस्कर ही रहा है । इस दृष्टी से आधुनिकता ने भारत देश के अंग–अंग को झकझोरा और उसका नवनिर्माण किया । प्रत्यक्ष, परोक्ष रुप में ब्रिटीश शासन व्यवस्था, ईसाई धर्मप्रचार इसके कारक बने है । आधुनिक काल क्यों कहा जाता है इसके संबंध विद्वानों ने अपने मत रखे है –

- ✶ डॉ. नगेन्द्र ने आधुनिक काल को दो अर्थों में वैशिष्ट्यपुर्ण मानते है, 'एक मध्य काल से भिन्नता और दूसरा नविन इहलौकिक दृष्टीकोण के कारण इस काल को आधुनिक काल माना जाता है।'

१. पुनर्जागरण काल (भारतेंदु काल) १८५७–१९००
२. जागरण या सुधार काल (द्विवेदी काल) १९०० – १९१८
३. छायावाद काल – १९१८–१९३८
४. छायावादोत्तर काल
    क) प्रगति – प्रयोग काल १९३८–१९५३
    ख) नवलेखन काल १९५३ ....

शुक्लजी ने आधुनिक काल की समय सीमा (१९०० सं) १८४३ मानी है ।

हुकुमचंद राजपाल :– 'यह काल किसी प्रवृत्ति विशेष अथवा काव्यधारा का सूचक न होकर विविध धाराओं एवं काव्यरूपों के विकास का युग है।'

मध्यकालीन जड़ता को तोडते हुए आधुनिक काल का साहित्य मनुष्य के बृहत्तर सुख–दुख के साथ पहली बार जुड गया और उनकी नयी संवेदना की अभिव्यक्ती नये छंद–बन्ध में करने लगा। घोर श्रृंगारिकता एवं छंदबध्दता से कविता मुक्त हुई। ब्रजभाषा का स्थान खडी बोली ने ले लिया। चिन्तन धार में परिवर्तन आया। बौध्दिकता के साथ तर्क प्रधानता एवं वैज्ञानिकता ने कला, धर्म, दर्शन साहित्य. चित्र के प्रति नये दृष्टीकोन का विकास किया। पारलौकिकता का स्थान इहलौकिकता ने ले लिया। और साहित्य के केंद्र में सामान्य मनुष्य की भाव–भावना, संवेदना, सुख–दुख, आचार–विचार, मुल्य आदि आये। राजा केंद्रित आदिकाल से ईश्वर केंद्रित भक्तिकाल की यात्रा करते हुए फिर दरबारी संस्कृति चित्रण से भरा रीतिकाल समाप्त होकर मानवीय चिंताओ, चिन्तन को साहित्य में लाने का श्रेय आधुनिक कालीन साधनों, जैसे, रेल, टपाल, सडकें, आदि के साथ यंत्रयुग की शुरुआत को जाता है। अर्थात वैज्ञानिक दृष्टिकोन को जाता है ।

जिसमें सामाजिक पुर्नरचना के लिए योगदान देनेवाले राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस के योग्यतम शिष्य विवेकानंद, केशवचंद्र सेन, ॲनी बेझंट, महात्मा फुले, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जैसे समाज सुधारकों एवं देश निर्माताओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । उनके आंदोलनों नें कला, साहित्य एवं संस्कृति को प्रभावित किया है । इस अर्थ में हिंदू धर्म में पुनर्जागरण का सुधार लाने की भावना हिन्दी ने साहित्य को भी नयी दिशा दी यह स्विकार्य होगा ।

''सामंतवादी एवं पूंजीवादी टकराहट के बाद सामंतवादी ताकतें प्रायः समाप्त हुई'' और देश के नये वर्ग एवं नये अंग्रेजी शासकों ने ''इस देश की परम्परा को समझकर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का नवीनीकरण किया'' इसी कारण सामान्य मनुष्य एवं उसकी सामान्य भाषा द्वारा नये गद्य–पद्य का अविर्भाव इस काल में संभव हो पाया । शायद यही कारण है की आधुनिक साहित्य वैविध्यपूर्ण, बहुमुखी, एवं प्रतिभामुखी साहित्य है । हिन्दी साहित्य नये प्रश्नों, विचारों, मुल्यों, दिशाओं, भाषा को स्थापित करता हुआ अब तक विकसित होता आ रहा है । या बदलाव कोई युंही नही आया है इसके पीछे भारतवर्ष में बदलनेवाली सामाजिक, राजनितिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, श्रमिक एंव शैक्षिक पृष्ठभूमी कारगर रही है । यह बदलाव लाने का कार्यदायित्व जितना अंग्रेजों का उतना ही पश्चिम के संपर्क में आये भारतीय सुधारकों का भी रहा है । वस्तुतः इस बात को स्वीकारा जाना चाहिए की आधुनिक भारत का निर्माण एंव विकास अंग्रेजों की बदलौत हुआ है । वह भारत में नहीं आते तो नयी शिक्षा पद्धति भारत में न होती, न ही नयी सोच पैदा होती । यही कारण है की आधुनिक काल के पुरोधा साहित्यकार भारतेन्दू अपने साहित्य में यथा अवकाश अंग्रेजों की कुछ नितियों की प्रशंसा करते दिखाई देते है , तो उनके द्वारा होनेवाले शोषण का विरोध ।

आधुनिक काल के साहित्यिक विवेचन से पहले उक्त समय कि परिस्थितीयों को जानना जरुरी होगा ।

५.२ आधुनिक काल की परिस्थितियाँ :-

साहित्य युग विशेष से प्रभावित होता है इस मत को विद्वान स्वीकृत करते है और उसी कारण साहित्य में नयी प्रवृत्तियों का विकास होता है। इसके मुल में देशकाल की महत्वपुर्ण भूमिका होती है। वह परिवर्तन का साक्षी होता है और उसका प्रभाव ग्रहण करता है साहित्य एवं साहित्यकार। उक्त कालखंड में बदलनेवाली परिस्थितियों को जानना-समझा जरूरी है।

१. राजनीतिक परिस्थिती

कई विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के आधुनिककाल का प्रारंभ १९०० इ. वि. स्वीकारा है। किन्तु यह तब (सन १७५७) से ही आरंभ हो चुका था जब बंगाल के नबाब सिराजुद्दौला को अंग्रेजों के कंपनी सरकार ने प्लासी के युध्द में पराजित कराया था और संपूर्ण बंगाल पर एकाधिपत्य स्थापित किया था। कंपनी की सत्ता प्रस्थापित होने के बाद अंग्रेज अधिकारियों के अनगिनत अत्याचार भारतीयों पर बढ़े। परिणामस्वरुप भारतीय जनता में असंतोष फैलने लगा ? १८५४ में झाँसी को खालसा करने के बाद अंग्रेजों की कुटिलता का परिचय दृढविश्वास के रूप में भारतीय जनता के मन में बढ़ा। चरबीवाले करतुसों ने भारतीय सैनिकों के मन को ठेस पहुँचाई। अतः १८५७ में भारत का प्रथम स्वाधिनता संग्राम शुरु हुआ। लगभग एक वर्ष के भीतर-भीतर इस विद्रोह को दबा दिया गया और ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन खत्म करके सीधा ब्रिटिश सरकार का शासन भारत पर शुरु हुआ।

महारानी विक्टोरिया के डलहौजी के अन्यायपूर्ण नीति का विरोध भारतीयों के लिए नये युग जीवन की शुरुआत रही। यह उनके मन की सुखद भावना थी। इसलिए उसके मृत्युपरांत भारतीयों ने दुख प्रकट किया। १९ वी शती के अंत में अंग्रेजी राज्य प्रति भक्ति एवं समर्पण का भाव भारतीयों में रहा। उनमें सुधार लाने के नेमस्त प्रयास किये गये। परंतु अंग्रेजी सत्ता का दुर्दैव की वे अपनी अन्यायपूर्ण नीति को छोड नहीं पाये। उनके द्वारा होनेवाला आर्थिक शोषण और टैक्स लगाने के परिणाम स्वरूप भारतियों में विद्रोह का भाव बढ़ता गया। प्रार्थनाओं, नेमस्त मार्गो से अंग्रेज सरकार पर कुछ भी परिणाम नहीं हुआ और राजनैतिक राज्यप्राप्ति की आकांक्षा भारतीयों में बलवती हुई।

इसी दरम्यान १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना हुई और स्वाधीनता आंदोलन के लिए एक मंच और संगठनात्मक कार्यक्रम प्राप्त हुआ। जनता बडे उत्साह में आयी। लोकमान्य तिलक का अविर्भाव हुआ और अंग्रेजी सत्ता को हटाने का भाव बल पकडने लगा। इसी समय अंतराष्ट्रीय राजनीति में कुछ महत्वपुर्ण घटनाएँ घटित हुई। जैसे इटली के स्वतंत्रता युध्द, आयरलैंड के होमरुल आंदोलन तथा फ्रान्स की राज्यक्रान्ति जिसका प्रभाव भारतीयों के मन पर पडा। क्रान्तिकारी संस्था एवं संगठनों का विकास होने लगा। स्वाधिनता की भावना तीव्रतर होने लगी। जिसका प्रभाव भारतेन्दु के साहित्य में प्रतिबिंबित है।

सन १९०५ में नरम निती छोड़ गरम नीति ने स्वराज हमारा जन्मसिध्द हक है का नारा दिया। बंगाल का विभाजन भारतीयों के संदेहास्पद लगा और ब्रिटिश नीति की प्रतिक्रिया स्वरुप राष्ट्रीय भावना एवं ब्रिटिशों की भारत विरोधी नीति को जनता ने जाना। जनता इसी

समय प्राचीन भारतीय संस्कृति की और आकृष्ट होने लगी । वर्तमान स्थितियों के प्रती वे क्षोभ व्यक्त करने लगे (पृ. ३०६ खन्डेलवाल) नव नेतृत्व, कवियों ने दासता की बेडियों में जकड़ी जनता को अतीत का स्मरण दिलाकर स्वतंत्र व्यवस्था स्थापित करने के लिए उन्हे प्रेरित किया। एक ऐसे वर्ग में जागृति की लहर पैदा कर दी गयी जो शोषित–पीड़ीत, दलित, किसान, मजदूर था । कवियों ने भी उनके प्रति सहानुभुति प्रकट की । युग विशेषता के रुप में राष्ट्रीयता और मानवतावाद की लहरें सामान्यों में फूट पड़ी। ब्रिटिशों को समय–समय पर सुधारणा कानुन लागु करने पड़े १९०९ का मार्ले मिन्टो कानून इसी का परिणाम था परंतु इसी कानून ने १८५७ के समय एकता का प्रदर्शन करनेवाले हिन्दु–मुस्लिमों का अलग प्रतिनिधीत्व का मामला उठाकर विरोध डाला । अनेक प्रयासों के चलते फिर १९१६ में एकता का समझौता पारित हुआ। ठीक इसी समय प्रथम विश्वयुध्द छिड़ गया। युध्द में पूरी प्रतिबध्दता के साथ भारतीयों नें अंग्रेजों की मदद की । किन्तु १९१६ के रोलेक्ट अ‍ॅक्ट ने भारतीय जनता के अधिकार छिन कर उनके साथ पक्षपात किया। यही कालखन्ड आधुनिक हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है ।

रोलेक्ट एक्ट में एक ओर सुधार का भाव था तो दुसरी ओर दमन नीति । जिसका भारतीय जनता ने विरोध किया। सन १९२० में तिलक युग का अन्त हो गया गांधीयुग का अविष्कार हुआ। और राजनीतिक नेतृत्व पटल पर गांधी अवतरित हुए । गांधीजी शायद १८५७ के विद्रोह का सुक्ष्म अध्ययन कर के इस निष्कर्ष पर आये थे की सामान्य जनता को राजनीतिक स्वाधीनता आंदोलन में उतरना जरुरी लगा । ग्राम उध्दार का कार्यक्रम देश भर में छेड कर मध्यवर्ग को आंदोलन में उतारने में वे सफल हो गये । गांधीजी की यह सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि रही है । असहयोग, सविनय कायदेभंग, अहिंसा जैसे हथियारों से आजादी का लक्ष्य तय किया । भारतीय कॅाग्रेस के बुध्दिजीवियों ने संपूर्ण स्वराज्य की माँग कर औपनिवेशिकता राज्य की नींव हिला दी । जनता ने राष्ट्रीयता में भावना का पूरा विकास हो चुका था । असहयोग दो स्तरों पर था । एक विदेशी शासन का विरोध दुसरा स्वदेशी वस्तु का स्वीकार । खादी राष्ट्रीय भावना का प्रतीक बनी और गांधी ने मानववादी मुल्य जैसे अहिंसा, सत्याग्रह, अछुतोध्दार, हिन्दु–मुस्लिम एकता, ग्रामोध्दार, जमींदारी उन्मुलन आदि का बीजारोपन भारतीय मन में किया । निसंदेह रुप से गांधी ने आजादी के हिंसक आंदोलन को रचनात्मक आधार प्रदान किया । जो देशव्यापी चेतना को मुखारित कर राष्ट्रीय एकता एवं स्वतंत्रता आंदोलन को निखारा गया है।

इसी युग में बंगाल के कवि कुलगुरु रविन्द्रनाथ ठाकुर साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिशीलता एवं विश्वमानववाद की संकल्पनाओं को लेकर आए । जिन्होंने भारतीय संस्कृति एवं अध्यात्मिकता का प्रचार किया । कवि रविन्द्र और गांधीजी इस युग के दो सुर्य थे जिन्होंने युग को प्रभावित ही नही किया विप्लावित भी किया ।

स्वतंत्रता संग्राम बड़े जोर–शोर से चल पड़ा । द्वितिय विश्वयुध्द की समाप्ति के बाद स्वतंत्रता का सपना अधिक मुखर हुआ । सन १९४२ में भारत छोड़ो का नारा गुंज उठा । गांधी ने 'करो या मरो' का नारा जनता में फैलाकर उन्हें आजादी पाने के लिए प्रेरित किया। इसी समय ब्रिटन में भी सत्ता परिवर्तन हुआ और वहाँ के उदार दल की सरकार ने भारतीय स्वतंत्रता के प्रति सहानुभुति पूर्ण रवैया व्यक्त किया । इसी युग में समाजवादी विचारधारा का विकास

हुआ। पुंजीवाद के बढ़नें स वर्ग–संघर्ष बढ़ रहा था। रविन्द्र आदि के कारण मार्क्सवाद की विचारधारा भारत वर्ष में फैलने लगी थी। जेलभरो आंदोलन बढ़नें लगे थे इन सारे घटनाक्रम के चलते १५ अगस्त १९४७ में देश को आजादी प्राप्त हुई।

स्वतंत्रता के बाद मजदूरों–कृषकों में नव चैतन्य आया। एकता के साथ अन्याय को दूर करने के लिए आंदोलन होने लगे। इस समय मात्र विद्रोह का भाव किसी विदेशी सत्ता से नहीं था बल्कि स्वतंत्र स्वदेशी सरकार से था। पंडित नेहरु के पंचशील तत्वों ने देश को नई ऊँचाई प्रदान की। भारत तिसरे विश्व का निर्माण कर्ता साबित हुआ। वह गुट निरपेक्ष होकर अपनी सभ्यता, संस्कृती और शांतीप्रिय बुध्द के परचम फहराने लगा। 'वसुधैव कुटुंबकम्' की परिकल्पना को साकार करने में प्रतिबध्द हुआ। यही कारण है की आज के समय भी भारत को जबाबदेही राष्ट्र मानकर विश्व उनकी ओर देखता है। बिना किसी प्रकार के निर्बंध या बंधन डालते हुए उसके साथ अणुकरार तक कर चुका है। यह भारत की श्रेष्ठतम उपलब्धि है।

२. सामाजिक परिस्थिती :

अंग्रेजों ने शिक्षा, यातायात, यंत्र उपयोग से आधुनिक भारत की नींव डाली। कई भारतीय विद्रान पाश्चात्य समाज एवं शिक्षा ग्रहण कर उससे प्रभावित हो चुके थे। कईयों ने हिन्दुधर्म की कट्टर रुढ़ियों का विरोध कर जातियता को दुर करने का प्रयास किया। १८ वी शती के अन्त में ही भारत पाश्चात्य–ज्ञान–विज्ञान के संपर्क में आया। डॉ. नगेन्द्र ने कहा है – भारतीय ज्ञान गतानुगतिक और परम्परा मुक्त हो चला था जबकी पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान नये जीवन संदर्भो की ताजगी लिये था। भारतीय ज्ञान–विज्ञान का लक्ष्य आध्यात्मिक और पारलौकिक था, तो पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान का भैातिक और इहलौकिक। इस देश की विद्या वर्ग या जाति विशेष तक सीमित थी, पर पाश्चात्य विद्या सर्वसुलभ थी। ''नयी उद्‌भावनाओं का मार्ग अवरुध्द हो चला था, कुछ लोग वेदादि की अप्तता, वर्णाश्रम–धर्म की श्रेष्ठता, इहलौकिकता के प्रति अनासक्ति आदि को यथापूर्ण बनाए रखने के पक्षधर थे । ..... अब पहली बार रुढ़ियों की उपयोगिता के आगे प्रश्नचिन्ह लग गया था।'' जिसके चलते भारत आधुनिकता की ओर निकल पडा।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिन्दूधर्म की जड़ता और कट्टरपन को दुर करने के लिए आर्य समाज–संगठन बनाया। समुचे हिन्दूओं में जागृति की चेतना फैलायी। फिर एक बार हिन्दू धर्म को नये युगानुरुप बनाया और उसके उपयोगी होने को सिध्द किया। यही धार्मिक सुधार (हिन्दू धर्म सुधार) था। जयकिशन प्रसाद खन्डेलवाल इसपर टिप्पणी करते हैं, ''सचमुच यदि आर्य समाज के द्रारा क्रान्ति उपस्थित न की गई होगी तो हिन्दू समाज बहुत पिछड जाता और निश्चय ही दुर्बल हो जाता।'' इसी में हिन्दू समाज की उदारता और आर्य समाज की उपादेयता सिध्द हो जाती है। रुढियों का विरोध, कर्मकान्ड से मुक्ति, अंग्रेजी शिक्षा का प्रयोग, के साथ वेदादि की प्रेरणा स्वामी दयानंद ने भारत को दी। हिन्दी साहित्य के भारतेन्दू युग में सामाजिक रुढियों प्रति द्वंद भाव इसी कारण उपस्थित हो चुका है। जो प्रगतिवाद तक निरंतर बना रहा है। बाद में अज्ञेय ने फिर एक बार सामाजिक स्थिती को यथास्थितीवादी बनाये रखने में योग दिया है।

आर्य समाज की भाँती ब्राह्म समाज, रामकृष्ण मिशन, प्रार्थना समाज, थिओसोफिकल सोसायटी ने तत्कालीन सामाजिक कुप्रथाओं का विरोध किया जैसे, सती प्रथा का विरोध, विधवा विवाह का प्रचलन, पुर्नविवाह को मान्यता, जातिभेद को दूर करना, अंधविश्वास, समुद्रयात्रा, निषेध स्त्री शिक्षा का समर्थन, जाति–बहिष्कार का विरोध सुधारकों ने दर्ज किया है । हिन्दू धर्म में इस समय दोनों प्रकार के सुधारक, लेखक हुए है । एक जो इन सभी सुधारों को लाना चाहते थे तो दूसरा वर्ग इसका विरोध करता रहा । वस्तुतः हिन्दूओं का पुरोहित वर्ग, बाह्याचारों, बाह्याडम्बरों, बाह्य उपकरणों को पराश्रय देकर सड़ी गली रुढ़ियों, परम्पराओं, अंधविश्वासों, कुप्रथाओं, कुरितियों को कायम रखना चाहता था । जिसके चलते सामाजिक सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत हो सके। और समाज के एक बहुत बड़े वर्ग का शोषण किया जाता।

सुधारकों के कारण परम्परावाद बनाम आधुनिकता का दृष्टीकोण प्रखरता के साथ मुखर हुआ। यही कारण है की १९वीं शती के पूर्व और बाद वाले युग प्रवृत्तियों को लेकर परम्परावादियों एवं सुधारकों में वाद–विवाद, अलोचना की आलोचना दिखाई देती हैं। सुधारकों ने सामाजिक कुरितियों को दूर करने की प्रेरणा सामाजिकों दी। यही कारण है की सती बंदी स्त्री और शिक्षा ग्रहण कर रही थी , बालविवाह का विरोध होने लगा, अछुतों के प्रति सद्व्यवहार, दहेज जैसी कुप्रथा का विरोध, पाश्चिमात्य शिक्षा का अनुकरण मानवतावादी वृत्ति का विकास आदी के दर्शन सर्वसुलभ होते गये।

पूँजीवाद का विरोध करते हुए मार्क्सवादी विचारों का विकास भारत में इसी समय हुआ। जमीनदारी प्रथा के अभिशाप को दूर करते हुए वर्ग संघर्ष उभरकर आया। जिसमें किसान मजदूर वर्ग राजनिति से सुधार की ओर आकृष्ट हुआ। तत्कालीन समय के सुधारक नेता ने नारी के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त की, निर्धन एवं शोषित समाज विकास में सहायता की। शायद यहीं कारण हैं की 'आँचल में दूध और आँखो में पानी वाली' स्त्री छबी उभारना और उसें न्यायपूर्ण हक्क दिलाने के लिए सहानुभूति देना परमावश्यक लगता रहा है ।

गांधीजी की कई योजनाएँ देश की समस्याओं को सुलझाने का आधार बनी, जैसे, ग्रामोध्दार, भूदान आंदोलन, हिन्दू–मुस्लिम एकता, जमींदारी का विरोध, सत्याग्रह, अहिंसा भाव का विकास, धार्मिक समन्वय, अछुतोध्दार, सांस्कृतिक एकता आदि। ग्रामोध्दार कार्यक्रम द्वारा गांधीजी ने यंत्र का विरोध किया क्योंकी वह यंत्र को मनुष्य श्रम का शोषक मानते थे और कृषकों को इस अभिशाप से दूर रखना चाहते थे। स्वदेश भावना को भी उन्होंने विकसित किया। पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति का विरोध करने के लिए खादी को देशीयता के स्वरुप में उन्होंने भारतीय जनभावनाओं में प्रतिष्ठापित किया।

आर्य समाज ने भी वैदिक युग का पुनरुत्थान लाया। यही कारण हैं की इस काल में सामाजिक सेवावृत्तियों की संख्या अधिक रही। योगी अरविन्द ने साधना और दृढ इच्छा शक्ति से मानवतावाद तथा अध्यात्मवाद से मनुष्य को मनुष्य के रुप में विकसित किया।

ब्रह्म समाज के कारण बंगाल में जिस प्रकार नवयुगारंभ हुआ वह भारत के लिए प्रेरणापद बना। रुढिग्रस्त मानस को दूर कर निर्मल भावनाओं का जनविकास उन्होंने साध्य किया।

रविन्द्रनाथ टागोर की विश्व मानवतावादी दृष्टि, दुखनिवारण के प्रयास, अंतर राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय संस्कृति को उच्च स्थानारुढ़ किया। उनका आदर्श व्यापक और प्रभावशाली था। वे केवल मानव और मानवता का विकास चाहते थे।

विवेकानंद ने रामकृष्ण के विचारों को तथा हिन्दू धर्म को शिकागो विश्वधर्म सम्मेलन द्वारा विश्वभर में पहुँचाया और भारतीय सभ्यता, संस्कृति की श्रेष्ठता को विश्व के सामने लाया ।

महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिबा फुले ने किसानों और स्त्री गुलामगिरी के सवालों को उठाया। हंटर कमिशन के सामने शिक्षा के क्षेत्र में ब्राम्हणी वर्चस्व का विरोध जतलाकर बहुजनों के लिए शिक्षा प्रारंभ की। देश की पहली स्त्री अध्यापिका,शिक्षिका सावित्रीबाई फुले जो उनकी पत्नी रही, द्वारा स्त्री शिक्षा की देश में प्रथम नींव रखी। शुद्रातिशुद्र के लिए शिक्षा के महत्व को स्पष्ट किया। प्राथमिक शिक्षा अनिवार्यता के संबंध में वे कहते थे, ''में समझता हुँ कि जनसाधारण के लिए प्राथमिक शिक्षा एक निश्चित उम्र जैसे कम से कम १२ वर्ष तक अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए।'' उस समय प्राथमिक एवं सर्वसुलभ, सर्वजन के लिए शिक्षा के महत्व को महात्मा फुले ने जाना था । १८८२ में तिलक और आगरकर की जेल से रिहाई पर उनका एक साथ अभिनंदन कर के साम्राज्यवाद का विरोध और जातिवाद विरोध के बीच नवजागरण के सबसे बड़े स्तंभ वे रहे हैं । इसलिए उन्हें क्रान्तिसुर्य भी कहा गया ।

महादेव गोविन्द रानडे ने प्रार्थना समाज के जरिए बालविवाह, पर्दाप्रथा का विरोध किया। विधवा विवाह का समर्थन और स्त्री की स्वतंत्रता के लिए बड़ा मौलिक कार्य किया है ।

इस कालखन्ड में सामाजिक व्यवस्था में बड़े ठोस परिवर्तन लक्षित होते है। जिसके प्रभाव से समाज और साहित्य अछूता नहीं रह पाया। भारतेन्दू तथा द्विवेदी युग में यह स्पष्ट दिखाई देता हैं। इन दोनों युग के सामाजिक व्यवस्था के अंतर को स्पष्ट करते हुए खन्डेलवाल ने कहा है, ''भारतेन्दू युग में नवयुग की चेतना का विकास हुआ और सामाजिक अवस्था में परिवर्तन की पुकार से बड़ी अशान्ति फैल गई, द्विवेदी युग में यह अशान्ति शान्त हो गई और समाज सुधारक सामाजिक कुरितियों और रुढ़ियों का खण्डन करने के साथ ही सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए ठोस विचार और सुझाव प्रस्तुत करने लगे।'' भारत यथाशीघ्र सामाजिक विकास की ओर अग्रेसर हुआ। पाश्चात्य शिक्षा, यंत्रविकास और सुधारकों ने देश को आधुनिक बनाया। साहित्य में इन्ही का चित्रण हुआ है।

५.४ धार्मिक परिस्थिति :

ब्रिटिशों के भारत आगमन के बाद हमारे देश में धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव लक्षित होते हैं। विचार स्वातंत्र्य ने श्रम के नाम पर होनेवाले अनाचार, दुराचार, अनिष्ठ प्रथाओं परम्पराओं पर बड़े हमलें किये। लगभग धार्मिक स्थान अनाचार के अड्डे बने थे। अनेक धर्म यहाँ प्रचलित थे । वे कई सम्प्रदायों में विभाजित हो चुके थे। हिन्दू धर्म नें चातुवर्ण्य व्यवस्था के तहत् पीछड़ी जातियों का भारी शोषण किया। ब्राम्हणी वर्चस्ववाली व्यवस्था ने कई प्रकार के कर्मकान्डो के बलपर सामान्यों को ठगा। चंडो, मंहतों का सामाजिक

वर्चस्व, सद्भाव को कहीं पर भी रखता नहीं था। सहयोग की अपेक्षा शत्रुत्व को ही एक प्रकार से बढ़ावा मिलता रहा। लोग केवल श्रध्दालु नहीं बल्की अंधश्रध्दालु बने थे। ऐसे में ब्राम्हसमाज, प्रार्थना समाज, आर्यसमाज,थिओसोफिकल सोसायटी ने पुराने हिन्दू धर्म को नये साँचे में ढालने का कार्य किया। ऐसा करते समय कर्मकान्ड, रुढ़ियों, जातिप्रथा, आदि पर कुठाराघात किया।

आर्य समाज आदि में इसके सम्बन्ध में अंर्तविरोध स्पष्ट है । डॉ. नगेन्द्र ने कहा हैं, ''आर्य समाज वैदिक धर्म के मुल स्वरुप को बनाए रखना चाहता था।'' इसलिए वेदों की ओर चलों का स्वामी दयानंद सरस्वती का नारा खुब गुंजा। बावजूद आर्य समाज ने जातिप्रथा को तोडने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। हिन्दू धर्म का यह नया संस्करण मात्र एकेश्वर वाद, विधवा विवाह प्रचलन, बालविवाह विरोध, सती प्रथा विरोध, स्त्री शिक्षा एवं समानाधिकार का समर्थन करते हुए भारतवर्ष में नवजागरण फैलाने का कार्य करते हुए स्थापित हो रहा था। यही कारण है की नवजागरण को कुछ विद्वानों ने हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान के रुप में देखा हैं।

वस्तुतः आर्य समाज की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण हैं। दयानंद सरस्वती ने भले ही इसाई धर्म प्रचार की प्रतिक्रिया के रुप में आर्य समाज की स्थापना की। उन्ही में से आगे चलकर धर्म शुध्दि आंदोलन पैदा हुआ। साम्प्रदायिकता की नींव रेनेंसा में ही दिखाई देती हैं। बंगाल एवं महाराष्ट्र ने रुढ़िवादी, परंपरा में जकड़े भारत को आधुनिक बनाने का कार्य किया। जिससे नयी समस्यायें भी भारत में पैंदा हुई हिन्दु–मुस्लिम संघर्ष, साम्प्रदायिकता, हिन्दी–उर्दू विवाद आदि। फिर भी सामाजिक एकता, सद्भाव, सौहार्द्र तथा धार्मिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी बदलाव की ओर भारत बढ़ता गया। स्वामी दयानंद सरस्वती के दो महत्वपूर्ण कार्य एक राष्ट्रीयता का संचार एवं दूसरा राष्ट्रभाषा का प्रचार। विज्ञान की अति बौध्दिकता का विरोध कर भारतीय अध्यात्मवाद का उत्थान इसी युग में दिखाई देता हैं ।

आगे चलकर गांधीजी का समन्ववादी दृष्टीकोन जो बना यह उसकी पूर्वपिठीका ही हैं। कई धार्मिक रुढिया बदलने लगी, जैसे समुद्र को न लांघना, दहेज प्रथा का विरोध, पुंजीवादी या जमींदारी प्रथा का विरोध, घोर अंधविश्वासों का विरोध होने लगा। स्त्री शिक्षा का प्रबल समर्थन एवं दलितों प्रति सहानुभूति की भावना ने नये मानवीय दृष्टीकोन को विकसित किया। महादेव गोविंद रानडे के संबंध में डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है – वे मनुष्य की समानता चाहते थे। वे जाति–पांति की प्रथा के विरुध्द थे और अन्तरजातीय विवाह के पक्षधर थे। स्त्री शिक्षा पर उन्होंने बार–बार बल दिया हैं। उनके वस्तुनिष्ठ दृष्टीकोन, तर्क–पद्धति सामाजिक परिष्कार के प्रति अभिरुची आदि से स्पष्ट हैं कि वे पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित थे किन्तु पाश्चात्य मत को भी उन्होंने बिना तर्क के स्वीकार नहीं किया। दुसरे शब्दों में, वे भारतीय संस्कृति को नवीन वैज्ञानिक विचार–प्रणाली के अनुरुप ढालने का यत्न कर रहे थे। यही बात, विवेकानंद, स्वामी सरस्वती, राजाराम मोहन राय, ॲनी बेझंट के कार्य–विचारों में मुखर हुई हैं। प्राचीन भारतीय अतीत के प्रती गौरव की भावना इनमें रही किन्तु विदेशी वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठ दृष्टी, तर्क पद्धती को स्वीकार भी किया।

भारत को प्राचीन एवं मध्यकालीन संकीर्णता से बाहर निकलकर उसे आधुनिकता की ओर बढ़ाया। धर्म के प्रति नया नैतिक विश्वास बढ़ाया । धर्म के भीतर गतिशीलता का संचार

कर उसे पुनः सक्रिय किया ।

पश्चिमी रीति–नीति का स्वीकार करते समय मात्र इनमें अंतर्विरोध दिखाई देते हैं। डॉ. नगेन्द्र ने ठीक कहा हैं, ''इनके आदर्शो और व्यवहारों में सर्वत्र एकरुपता नहीं मिलती। उदाहरणार्थ, टैगोर परिवार ब्राह्म था। ब्राह्म समाज में मूर्तिपूजा के लिए कोई स्थान नहीं है, पर टैगोर परिवार खूब धूमधाम के साथ दुर्गोत्सव मनाता था। आर्यसमाज में वर्णव्यवस्था जन्मना नहीं, कर्मणा मानी जाती हैं, पर आर्य समाजियों में बहुत कम लोग मिलेंगे जो जाति के बाहर विवाह संबंध स्थापित करने में संकोच का अनुभव न करते रहे हो। दुसरा अन्तर्विरोध यह था कि राजा राममोहन राय, रानडे आदि बहुत से लोग ब्रिटीश राज्य को देश के लिए वरदान समझते थे, लेकिन प्रजा के दोहन, शोषण आदि का विरोध करते थे। समाज में एक ओर संस्कृतिकरण बढ़ रहा था, तो दुसरी ओर लौकिकीकरण। सभी सुधारकों को एक ओर विदेशियों के सामने अपने धर्म और संस्कृति की वकालत करनी पडती थी तो दुसरी ओर देशवासियों के सामने धर्म का नया अर्थापण करना पड़ता था।'' जो भी हो भारतीय धर्म में हिन्दू धर्म एक प्रकार की संक्रति काल से गुजर रहा था। धर्म का नया दृष्टीकोन अविष्कृत हो रहा था। यह सबकुछ ब्रिटीशों के कारण संभव हुआ इसे स्विकारने में कोई संकोच नही होना चाहिए। भारत के आधुनिकीकरण की यह प्रारंभिक स्थितियाँ थी। जिसमें धर्म को नये साँचे में ढालना जरुरी था। परिवर्तन की प्रकिया का यह अगाज ईसाईयों की देन रही हैं। गणतंत्र के अविर्भाव के साथ ही असाम्प्रदायिक जनवादी शासन की नींव पडी। समता, स्वतंत्रता, भाईचारे के साथ सामाजिक न्याय हक्क ने धर्म के स्वरुप को ही बदल दिया, वह तर्क के बल पर सड़ी–गली रुढ़ियों के वर्चस्व के विरुध्द आवाज देने लगा हैं। फिर भी धर्म के नाम पर मनुष्य भावनाओं को भुलने का कार्य सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों की ओर से बदस्तुर जारी हैं। यही कारण हैं की प्रगतिशील कहे जानेवाले महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री के हाथ गणेशजी दुग्धपान कर रहे हैं। राजस्थान विधान भवन परिसर में मनु–मुर्ती की प्रतिष्ठापना हो चुकी हैं। धर्मसंसद की घोषणा ने मानवता को पछाड़कर रखा हैं। अब संविधान नही, संहिताएँ होगी का नाद गूँज रहा है। सन १९९० के बाद का साहित्य इसी का प्रतिफलन हैं।

५.५ आर्थिक परिस्थितीयाँ :

साहित्य का इतिहास बदलती हुई अभिरुचियों और संवेदनाओं का इतिहास होता है, जिसका सीधा संबंध आर्थिक और चिन्तनात्मक परिवर्तन से हैं। अर्थात यह स्पष्ट है की आर्थिक स्थितियाँ मानव की सोच में परिवर्तन – निर्धारण करती हैं। इस बात को विद्वजनों ने स्वीकारा हैं की भारत में १८५७ के बाद अंग्रेजी नीति का आर्थिक ढाँचा विकसित हो रहा था। एक तरफ कच्चा माल इंग्लैंड भेजकर पक्के माल में परिवर्तन के साथ अधिक दाम में वह भारतीय बाजार में उतारा जाता था। इसी में भारतीय जनता को दोहरा शोषण स्पष्ट होता हैं। जिसके कारण मँहगाई, टैक्स, दरिद्रता और उपर से अकाल जैसी समस्याओं ने ब्रिटीशों के विरुध्द भारतीय जनता में असंतोष पैदा किया। स्वदेशी का स्वीकार और विदेशी का बहिष्कार जैसे आंदोलन उभरकर आये। राष्ट्रीय काँग्रेस के दादाभाई नौरोजी ने इस पर प्रकाश डालकर राष्ट्रहित की भावना को जगाया।

साम्राज्यवादी शासन ने औद्योगिक विकास तो किया परंतु पूंजीवादी व्यवस्था को भी मजबूत बनाया। अपने शासनानुकूल पुंजीपतियों को उन्होंने बढावा दिया। उद्योगों के कारण पारम्पारिक भारतीय उद्योग धंदे प्रायः नष्ट हो रहे थे और गाँव का कारिगर बेकार। किसानों पर माल गुजारी का बोझ लादा गया। परिणामतः ग्रामीण कारीगर एवं किसान शोषण की चक्की में पिसता गया। धीरे-धीरे मजदूर संगठन बने। वर्गसंघर्ष ने जोर पकड़ा। देशव्यापी दरिद्रता ने श्रमिक वर्ग को संघर्ष की प्रेरणा दी। श्रमिक वर्ग ने इसका विरोध किया। भारतेन्दु जैसे साहित्यकारों में पै धन विदेश चली जाती ख्वारी का भाव पैदा हुआ। राष्ट्रहित के लिए स्वातंत्रता संघर्ष अनिवार्य है की स्थिति पैदा हुई। कालांतरणमें पंचवार्षिक योजनाओं ने देश की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने में योगदान दिया हैं। अब शोषण जैसी स्थितियाँ नहीं रही हैं। सुधार हुआ हैं। आजादी के बाद यह मानचित्र बदलने लगा फिर भी समुचित उन्नति नहीं हो पाई। आजादी से सामान्यजन, कवियों का मोहभंग हो गया धूमिल उसकी फलश्रुति हैं। सरकार ने रोजगार गारंटी दी परंतू योजना के तहत मिलनेवाले एक रुपये का पंद्रह पैसे हिस्सा गरीब जनता के पास पहुँचता है इसे राजीव गांधी ने ही इसे व्यक्त किया है। वर्तमान में तो यह असमानता अधिक बढ़ी है। खाता-पिता किसान होरी के जमाने में चला गया हैं। फर्क कुछ इस तरह का है पहले महाजन, पुंजीपती किसानों के अनाज को लुटते थे, घर पर जप्ती लाते थे, आज यही काम आधुनिक बैंक और नौकरशाह कर रहीं हैं। होरी के जमाने में शायद किसान आत्महत्या करता होगा किन्तु यहाँ हजारों के आँकडे पार हो रहें हैं। पुंजीपती व्यवस्था ने एक होरी पैदा किया था औद्योगीकरण, उदारीकरण, ने कई होरी को जन्म दिया हैं। वर्तमान साहित्य इसकी अभिव्यक्ति हैं। हमने आर्थिक प्रगती की हैं पर बड़े उद्योगपति के रुप में, समृध्द किसान, मजदूर के रुप में नहीं। महाजनी, पूंजीवादी सभ्यता का जाल आज भी फैला हुआ हैं।

५.६ साहित्यिक परिस्थिती :

शुक्लजी के अनुसार साहित्य जनता की संचित चित्तवृत्तियों का प्रतिबिंब है का अर्थ हैं सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों का एवं मानवीय क्रिया-प्रकियाओं के साथ संवेदनाओं का प्रभाव साहित्यकारों के मन-मस्तिष्क पर होता हैं। इसी क्रोड में सृजन संभव हैं। गद्य युग की यही विशेषता रही हैं। परिणामतः साहित्य के विषय एवं उनके प्रतिपादन की शैली नितांत अलग हैं।

रीतिकालीन श्रृंगारिकता पूर्ण भुक्ति साहित्य की विशेषता हैं। अलंकरण की प्रवृत्ति कभी-कभी अनलंकृत में बदली, नारी का रुप बदला, प्रकृती ने स्थान पाया, वीर, श्रृंगार रस की जगह विद्रोह, करुण ने ले ली। ओज राष्ट्रीयता का पोषक हुआ। प्रेम की पुकार जन पुकार में बदली। ब्रजभाषा की जगह खड़ी बोली ने ले ली। मुक्तक, प्रबंध की जगह कहानी, उपन्यास का अर्विभाव क्रांतिकारी साबित हुआ। देश के जीवन में साहित्य का नया रुप और तेवर परिवर्तनकारी साबित हुआ। ईश्वर, राजा, प्रकृती की जगह मनुष्य और उसकी सुख-दुख की संवेदनाओं नें ले ली। प्रजा की चिन्ता साहित्य की मानवीय चिन्ता में मुखर हुई । यह नवयुगीन समय में साहित्य की कई विधाओं का जन्मदाता हुआ। कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, जीवनी, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथन, रिपोर्ताज, डायरी, पत्र इन विधाओं में मूर्त हुआ ।

पाश्चात्य साहित्य एवं साहित्य प्रवृत्तियो के साथ आलोचना पध्दितियों का विकास साहित्य को बृहत्तर बना दिया। अनुवाद का क्षेत्रविस्तार हुआ। बांगला, मराठी, गुजराती ही नहीं अंग्रेजी, रुसी का प्राबल्य बढ़ा। विश्वदृष्टि की व्यापकता ने साहित्य के विषयगत एवं कलागत मूल्यों में परिवर्तन लाकर नये साहित्यिक आंदोलनो को जन्म दिया। प्रगति–प्रयोग के बाद, अकविता, समकालीन कविता, कहानी–संमातर, अ–कहानी के दौर महत्वपूर्ण रहें हैं।

साहित्य लेखन की इतिहास दृष्टियाँ विकसित हुई। इसका लेखन, पुर्नलेखन, होने लगा। 'आधे' को पुरा करने के लिए दलित, महिला लेखन अपनी अस्मिता–अस्तित्व को लेकर केंद्र में आ चुका हैं। उनका जीवन–दर्शन साहित्य क्षेत्र को विशाल बना चुका हैं ।

५.७ उपसंहार :

भारतेन्दू की राष्ट्रीयता, द्विवेदी युग की समाज सुधार, भाषा सुधार भावना, छायावादी जीवन–दृष्टी के बाद प्रगतिशील अंदोलन में उपजा जनवादी साहित्यिक संस्कार, नये प्रयोग में बदला। वह नई संकल्पनाओं में सामने आया। संमातर हुआ। आज यह साहित्य कई मोड़ो से गुजरते हुए नितांत नये प्रश्नों को विभिन्न तेवर से उठा रहा हैं। दलित, स्त्री, साम्प्रदायिकता, संबंधी साहित्य ने राष्ट्र की चेतना को सामने लाया हैं। गद्य की शक्तिशाली चेतना ने उसे व्यापक एवं उचित रुप में प्रस्तुत किया हैं। संपूर्ण काल का मुल्यांकन थोड़े से शब्दों में संभव नहीं हैं परंतू नवीन संघर्ष की बुध्दिजिवी, मानवतावादी दृष्टी ने सामाजिक, राजनितिक, धार्मिक, आर्थिक क्षेत्रों की उथल–पुथल की अभिव्यंजना सार्थक ढ़ंग से की हैं। नवचेतना का यह लेखन बहुमुखी और युगानुरुप हैं। क्योंकी लेखन के क्षेत्र में पद्य के साथ–साथ गद्य का विकास, खड़ी बोली का सर्वाधिक प्रयोग, राष्ट्रीय भावना का विकास, सामाजिक क्षेत्र में मानवतावाद, नया जागरण, साहित्य का विविध मुखी प्रयोग एवं विकास, श्रृंगार से मुक्ति, प्रकृति का सुमधुर चित्रण, नये वादों का साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश, अंग्रेजी विद्वानों का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, जैसे प्रतीकवाद, अभिव्यंजनावाद, प्रयोग की शुरुवात के साथ–साथ ईश्वर, राजा, प्रकृति के लम्बे समय तक केंद्र में रहने के बाद सामान्य किसान, मजदूर, मोची, कुकुरमुत्ता जैसे विषयों पर प्रभावी जनजीवन से जुड़े विषयों पर लेखन इसी युग की देन हैं।

५.८ बोध प्रश्न :–

१. आधुनिक काल की परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।

◆◆◆◆◆◆

५-अ

भारतेन्दु - युगीन काव्य

५अ.० इकाई रूपरेखा

५अ.१ परिचय

५अ.२ काव्य प्रवृत्तियाँ

५अ.३ मूल्यांकन

५अ.४ उपसंहार

५अ.५ बोध प्रश्न

५अ.० इकाई का उद्देश्य

क. भारतेन्दु युगीन काव्य हिन्दी का आधुनिकता बोध से संपन्न प्रथम काव्य है।

ख. भारतेन्दु स्वंय में एक युग थे जिन्होंने कई सुधारवादी भावनाएँ साहित्य से प्रकट की है।

ग. स्वतंत्रता अंदोलन की जमीन तैयार करने में यह युग बेहद महत्वपूर्ण है।

घ. भारतेन्दु युगीन काव्य प्रवृत्तियों का अध्ययन करना।

ड. इन काव्य प्रवृत्तियों का मूल्यांकन कर आधुनिक हिन्दी कविता का आरंभ कैसे हुआ यह समझना जरूरी हैं।

५अ.१ प्रस्तावना/परिचय

भारतेन्दु युगीन कविता में भारतेन्दु ही प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उनकी कविता में सामाजिकता का आशय बड़ी मात्रा में मुखर हुआ हैं। सामंती परिवेश से कविता निकलकर आयी थी। इसलिए स्त्री के प्रति विलासीता की भावना खत्म होकर उसकी दशा सुधारने हेतू शिक्षा आदी पर बल दिया जाने लगा। विधवा विवाह, बालविवाह, अंधविश्वास आदि की कठोर आलोचना होने लगी, वर्णव्यवस्था का कुछ कवियों ने विरोध किया तो कुछ की दृष्टी यथास्थिती वादी ही रही। वस्तुतः भारतेन्दु युग में अन्तर्विरोध साफ झलकते हैं। राष्ट्रीयता, ब्रिटीश शासन, वर्णव्यवस्था, विधवा विवाह, जैसे मुख्य विषयों के संदर्भ में वे उभरकर आये हैं। जो भी हो परंतू नये युग की कविता संक्रमणावस्था से गुजर रही थी इसलिए कुछ कुरितियों का खण्डन, सामाजिक दुरावस्था प्रती दुख, आर्थिक शोषण प्रति विरोध, खेद, धन विदेशी जाने का विरोध जैसी कुछ प्रमुख घटनाओं का चित्रण कविता में आया हैं।

भारतेन्दु का युग साधारणतः डॉ. नगेन्द्र के अनुसार भारतेन्दु संपादित मासिक पत्रिका 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन वर्ष १८६८ ई. से, सरस्वती के प्रकाशन वर्ष १९०० ई तक हैं। अधिकंाश विद्वानों ने आधुनिक युग का प्रारंभ ही १८४३ से माना हैं। भारतेन्दु का जन्म १८५० में हुआ और मृत्यु १८८५। डॉ. नगेन्द्र ने ही कहा हैं की, 'कोई काव्यप्रवृत्ति ठीक किसी

निश्चित वर्ष प्रारंभ होकर किसी निश्चित वर्ष में समाप्त नहीं होती।' डॉ. रामचन्द्र शुक्ल भी १८६८ से १८८३ तक के २५ वर्ष को काल की नयी धारा– प्रथम उत्थान के रुप में स्वीकृत करते हैं। मिश्र बंधुओं ने भी १८६८–१८८८ इन १९ वर्षों को भारतेन्दु युग कहा हैं। डॉ. केसरीनारायण शुक्ल ने १८६५ से १९०० तक के ३५ वर्षों को भारतेन्दु काल माना है। मार्क्सवादी ऋषि डॉ. रामविलास शर्मा भी १८६८ से १९०० तक के काल को भारतेन्दु युग ही मानते हैं किन्तु अधिकांश विद्वानों ने डॉ.नगेन्द्र के कालखन्ड को (भारतेन्दु युग) योग्य एवं तर्कशुध्द रुप में स्विकार किया हैं।

रीतिकाल का अंत हमने १८४३ माना हैं तो १९४३ से १९६७ के बीच किस प्रकार का काव्य लिखा जा रहा होगा ऐसा प्रश्न पाठकों के मन में उभर सकता हैं। डॉ. नगेन्द्र ने उसका भी उत्तर दिया हैं, '१८४३ से १९६७ तक का कृतित्व न तो पूर्णतः रीतिकाल के प्रभाव–क्षेत्र के अन्तर्गत आता हैं और न इसमें भारतेन्दु–युग की पुनर्जागरणमूलक प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। अतः इसका अनुशीलन भारतेन्दु युग की पृष्ठभूमि के रुप में किया जा सकता है। क्यों की इस कालखन्ड में भक्ति, श्रृंगार, नीति, हास्य, वीर भावनाओं की साहित्य सृजना हो रही थी। काव्यशास्त्रीय ग्रंथो का सृजन भी हो रहा था किन्तु आधुनिकता से उसका जुड़ाव पूर्णतः नहीं था। नये ढंग का लेखन मात्र भारतेन्दु से ही प्रारंभ हो जाता हैं। भारतेन्दु युग की कविता का लक्ष्य किसी सामंत राजा को रिझाना, प्रसन्न करना नहीं था, लोक जागरण फैलाना था। इसलिए उन्होंने काव्य रुप भी बदले और काव्य प्रवृत्तियाँ भी। परिवेश तो बदल ही रहा था।

५अ.२ भारतेन्दु युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ :–

भारतेन्दु बाबु को आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रवर्तक माना जाता हैं। भाषा, काव्य रुपों की विविधता, नया जागरण संदेश उन्हीं की कविता द्वारा हिन्दी साहित्य में आया। इसलिए हिन्दी नवजागरण के साहित्यिक अग्रदूत भी उन्हें कहा जाता हैं। श्रृंगार और विलासिता के केंचूल को उन्होंने दूर किया था और कविता को जनसाधारण के निकट लाया। नायिका का नखशिख वर्णन, और विरह की व्याकुल का स्थान, देश की जनता की दुर्दशा का वर्णन, देश स्वाभिमान की भावना ने ले लिया। यही कारण है की श्रृंगार, अलंकार, रीति निरुपण, प्रकृति का उद्दीपन चित्रण प्राय: कम होता गया। भक्ति, नीति भी पिछड़ती गयी। जातीय, राष्ट्रीय प्रबोधन को पराश्रय मिला। राष्ट्रीय भावनाओं का देश भक्ति का चित्रण इस कालखंड में अधिक देखा जा सकता हैं। शिक्षा का महत्व, विधवा विवाह का समर्थन, बालविवाह का विरोध, अंग्रेजी राजनीति की आलोचना, राजभक्ति, गो–रक्षा जैसे विषय कविता के केन्द्र में आए। ब्रिटिशों ने भौतिक साधनों तर्क पद्धतियों शासन प्रबंधन से नया युग पहले ही लाया था। मुद्रण तंत्र का अविष्कार, समाचारपत्रों का विकास आदि ने जन–जागरण को फैलाने में महत्वपूर्ण भुमिका निभाई । समाजसुधार एवं देश सुधार की भावना पल्लवित–पुष्पीत होती गई।

भारतेन्दु काल के प्रमुख अन्य साहित्यकारों ने भी भारतेन्दु की प्रवृत्तियों को स्वीकारा और साहित्य सृजन किया। जिनमें महत्वपुर्ण है, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, जगन्मोहन सिंह, राधाकृष्ण दास, जगन्नाथदास रत्नाकर, नवनीत चतुर्वेदी

आदि। डॉ. नगेन्द्र ने राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना, भक्तिभावना, श्रृंगारिकता, प्रकृति चित्रण, हास्य–व्यंग, रीति–निरुपण, समस्यापुर्ति, काव्यानुवाद, कलापक्ष के अन्तर्गत आनेवाली प्रवृत्तियों का विश्लेषण अपने इतिहास में किया हैं।

१. देशभक्ति और राजभक्ति :–

भारतेन्दु युग में देशभक्ति के साथ राजभक्ति की प्रसार भावना का अविष्कार हुआ हैं। देशभक्ति के अंतर्गत ही राष्ट्रीयता का विस्तार मात्र उनकी उपलब्धि रहीं हैं। वीर प्रताप, छत्रसाल, राजा शिवाजी ने क्षेत्र विशेष वीरता, राष्ट्रीयता का प्रतिपादन किया। भूषण जैसे कवियों ने। उसी प्रकार का चित्रण किया परन्तु स्वयं बाबू भारतेन्दु ने क्षेत्रियता से ऊपर संपूर्ण राष्ट्र की नब्ज को टटोलने का प्रयास किया। इस काल के कवियों में देशभक्ति एवं राजभक्ति की भावना का कविता द्वारा अभिव्यक्त किय हैं। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार देशभक्ति की यह भावना बाद में मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत–भारती' में लक्षित हुई स्वयं भारतेन्दु की 'विजयिनी' विजय 'वैजयन्ती', प्रेमधन की 'आनंद अरुणोदय', प्रतापनारायण मिश्र की 'महापर्व', राधाकृष्णदास की 'भारत बारहमासा' और विनय शीर्षक कविताएँ देशभक्ति से पुरित एवं प्रेरित हैं –

''भीतर भीतर सब रस चूसै,
हंसि हंसि के तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि सज्ञन! नहीं अंगरेज।''

जैसी कविता लिखकर अंग्रेजों द्वारा किये जानेवाले शोषण का चित्र वे खींचते हैं । देशवासियों को जागृत करते दिखतें हैं ।

तो दूसरी ओर अंग्रेजों द्वारा देश की संपत्ती का होनेवाला दोहन देखकर मन भारी हो जाता हैं –

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी,
पै धन विदेश चल जात यह आति स्वारी।

का भाव उनकी कविता में व्यक्त हुआ हैं। भारतेन्दु युग की कविता राष्ट्रीय भावना की कविता हैं। विदेशी वस्तुओं के प्रयोग का बहिष्कार भी उन्होंने किया हैं। देश की जागृति के लिए बार–बार ईश्वर वंदना भी वे करते हैं। देश के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक पतन को देखकर वे अतीत का गौरव गान भी करते हैं। जिससे साम्प्रदायिक भावनाओं के विकास में आगे चलकर सहयोग मिलें। उनका हिन्दी–हिन्दू–हिन्दूस्तान वाला गुणगान इसी कोटि का हैं ।

अंग्रेजी राज के कारण भारत मुगलों के कठोर शासन से मुक्त हुआ, इसप्रकार का एक दृष्टिकोन भारतेन्दु की कविता में आया हैं। अत्याचार पूर्ण शासन की समाप्ति प्रती वे संतोष जाहिर करते हुए अंग्रेजों प्रति राजभक्ति/निष्ठा को भी इस समय की कविता व्यक्त करते हैं। इस देश में सुधार लाने की गुहार भी वे ब्रिटीशों प्रति लगाते हैं । एक ओर यह कविता देशभक्ति का परिचय देती हैं तो एक ओर राजभक्ति का । स्वंय भारतेन्दु बाबू को ब्रिटिश राज परम मोक्ष

का फल लगता हैं –

''परम–मोक्ष फल राजपद परसन जीवन माँही ।
बृटन देवता राजसुत पर परसहु चित चाहि।।''

विद्वानों को राजभक्ति प्रदर्शन के कारण रुप में कंपनी के अत्याचारपूर्ण शासन समाप्ति और नयी शासन एवं नयी व्यवस्था की स्थापना का स्विकार भी लगती हैं –

''लेकर राज कंपनी के कर सौ निज हाथन,
किए सनाथ भोली भारत की प्रजा अनाथन।''

में व्यक्त होती हैं । जिसमें राजभक्ति साफ झलकती हैं , महाराणी विक्टोरिया की घोषणा का स्वागत, विक्टोरिया की मृत्यू पर शोक, लार्ड रिपन के प्रति श्रध्दांजली आदि विषयों पर इस काल के कवियों ने कविता लिखी हैं । फिर भी 'प्रेमधन' जैसे कवि अंग्रेजों को भारत हित के लिए राज करने के लिए कहते हैं

''करहु आज सों राज आप केवल भारत हित,
केवल भारत के हित साधन में दीने चित ।''

विद्वानों का कहना हैं राजभक्ति के अंतर्गत आनेवाली कविता को देखकर कवियों पर राजद्रोह या साम्प्रदायिकता का दोष लगाना नहीं चाहिए। सही भी हैं परंतू इस काल के साहित्य ने साम्प्रदायिकता की प्रवृत्ति का बीजारोपन किया इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। नगेन्द्र के अनुसार भले ही 'यह नयी राजनीतिक चेतना की कविता हो' फिर भी यह कहना होगा की स्वतंत्रता के बाद भारत उत्तर नयी राजनीति से रुढ़ होकर सन १९९० के साहित्य, राजनीति में यहीं उभरकर आयी। इसी कारण नवजागरण को ही हिन्दूधर्म पुनरुत्थान के रुप में शंभुनाथ, वीर भारत तलवार जैसे विद्वानों ने देखा जो सही प्रतित होती हैं।

२. नयी सामाजिक चेतना :

युगीन कविता ने नयी सामाजिक समस्याओं पर कविता लिखी। जिसमें सामाजिक समस्याओं को दूर करते हुए, ब्राह्म समाज, आर्य समाज, के आंदोलनों का प्रभाव उक्त काल की कविता पर पड़े। विधवा विवाह का समर्थन, बालविवाह का विरोध, सती प्रथा का विरोध, छुआछूत प्रती उदारता का दृष्टीकोण, सड़ी–गली रुढ़ियों का विरोध, करने के लिए मध्यवर्ग के सामाजिक जीवन का चित्रण कविता में आया। एक तरह से यह कविता जनवाद की ओर दृष्टीपात करती हैं। भारतेन्दु युग के कवियों को समाजसुधार के कवि माना जाता हैं। जिस पर प्रश्न भी उठते हैं। कुछ कवि उदारता का परिचय नहीं देते। 'भारत धर्म' कविता में अंबिका दत्त व्यास द्वारा वर्णाश्रम धर्म का दृढ़तापूर्वक अनुमोदन और राधाचरण गोस्वामी द्वारा विभिन्न कविताओं में प्राचीन शास्त्र–नीतियों का समर्थन एवं विधवा–विवाह का विरोध ऐसे ही उदाहरण हैं। अर्थात यह स्पष्ट हैं की कुछ कवि समाजसुधार के आग्रही थे तो कुछ यथास्थितीवाद को बनाये रखने में धन्यता मानते थे।

स्वयं भारतेन्दु ने मात्र सुधारणावादी दृष्टीकोन अपनाया हैं। 'भारत दुर्दशा' जैसे नाटकों में वर्णव्यवस्था की संकीर्णता का विरोध उन्होंने किया हैं – बहुत हमने फैलाये धर्म, बढ़ाया छुआछूत का कर्म इनके समकालीन कवि बालमुकुन्द गुप्त ने भी समाजसुधार की दृष्टी अपनायी हैं। धनिकों को संबोधित करते हुए वे कहते हैं –

''हे धनिकों, क्या दीन जनों की, नहीं सुनते हो हाहाकार,
जिसका मरे पडोसी भूखा, उसके भोजन को धिक्कार।
भूखों की सुधि उसके जीं मे, कहिए किस पथ से जावे,
जिसका पेट मिष्ट भोजन से, ठीक नाक तक भर जावें।।''

वस्तुतः आर्य समाज की सामाजिक एवं धार्मिक सुधार वृत्ती का प्रभाव कुछ लेखकों पर स्पष्ट हैं। कुछ सहर्ष स्वीकारते हैं, कुछ नहीं। ऐसे ही वेद मार्ग छोडकर मुस्लिम धर्म संस्कृति को स्वीकारनेवालों की कटु आलोचना राधाचरण गोस्वामी करते हैं।

''यज्ञ,याग, सब मेट पेट भरन में चातुर
पितर पिन्ड नहीं देते यवन–सेवा में आतुर।
पढ़े जनम तैं फारसी छोड, वेद मारग दियो।
हा हा हा विधि वाम ने सर्वनाश भारत कियो।''

'हा हा हा' से स्पष्ट हैं की गोस्वामी की व्यथा कौनसी और किस प्रकार की रहीं हैं ।

प्रतापनारायण मिश्र भी स्त्री शिक्षा प्रति पक्षपाती रवैया अपनाते हैं, बालविवाह का विरोध भी करते हैं और विधवाओं के दुख से विलाप भी करतें हैं–

''निज धर्म भली विधि जानै, निज गौरव पहिचानै,
स्त्रीगण को विद्या देवै, करि पतिव्रता यश लावै।
झूठी यह गुलाब की लाली धोवत ही मिटी जाय,
बाल–ब्याह की रीति मिटाओ रहे लाली मुँह छाय।
विधवा विलपै नित धेनु कटैं कोऊ लागत हाय गोहार नहीं।''

पुराणपंथी दृष्टि के बावजूद भी कविता में बडी मात्रा में सुधारणावादी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। एक तरह से मानवतावादी विचारों–भावनाओं का सृजन कर्म इस दौर में शुरू हो चुका था, ऐसा कहा जा सकता हैं।

३. आर्थिक चिंताओं का प्रकटीकरण :–

ब्रिटिशों द्वारा की जानेवाली आर्थिक लूट को देखकर भारतेन्दु का मन भी बडा व्यथित हो चुका था। इसलिए कवियों ने स्वदेशी उद्योगों एवं वस्तुओं का प्रयोग करने का आव्हान किया था। भारतेन्दु ने 'प्रबोधिनी', कविता में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को प्रत्यक्ष प्रेरणा दी हैं। भारतीय परिपत्रक पर सवाल उठाते हुए भी ब्रिटीशों की आर्थिक शोषण नीति का विरोध प्रतापनारायण मिश्र जैसे कवियों ने किया हैं –

''अभी देखिए क्या दशा देशकी हो,
बदलता हैं रंग आसमां कैसे कैसे!''

सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों की ओर से भी, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार भाव भारतेन्दु में आया हैं । जिसमें वे मलमल और मारकीर का व्यवहार करनेवालों की आलोचना कटु शब्दों में करते हैं –

''मारकीन मलमल बिना चलत कछु नाहिं काम,
परदेसी जुलहान के मानहुँ भये गुलाम।''

तो ब्रिटिशों की साम्राज्यवादी नीति के प्रति गहरा क्षोभ भी कवियों नें व्यक्त करते हुए स्वतंत्रता की माँग की है –

''सब तजि गहौ स्वतंत्रता, नहिं चुप लाते खाब।
राजा करै सो न्याव हैं, पाँसा परे सो दाँव।''

या तत्कालीन भारतीय समाज की आर्थिक दुरावस्था देखकर कवि करुणार्द्र हो जाते हैं –

''रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत–दुर्दशा न देखी जाई।।''

भारत की आर्थिक दुर्गति को ब्रिटीश शासन कारणीभूत रहा हैं, इस बात को कवि भूलते नहीं और वे देशप्रेम भाव को भी व्यक्त करने से चुकते नहीं ।

४. जन–जीवन का चित्रण :–

डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार भारतेन्दु युग की जनवादी भावना उसके समाज सुधार में निहित हैं। आगे वे कहते हैं की, वह केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समता और भाईचारे का भी साहित्य हैं। भारतेन्दु स्वदेशी आन्दोलन के भी अग्रदूत न थे, वे समाज सुधारकों में से भी प्रमुख थे। स्त्री–शिक्षा, विधवा विवाह, विदेश–यात्रा आदि के समर्थक थे। .... भारतीय महाजनों के पुराने पेशे सूदखोरी की उन्होंने कड़ी आलोचना की थी, सर्वदा से अच्छे लोग ब्याज खाना और चुड़ी पहनना एक–सा समझतें हैं पर अब आलसियों को इसी का अवलंब हैं, न हाथ हिलाना पडे न पैर, बैठे बैठे भुगतान कर लिया। (कविवचन सुधा, २२ दिसम्बर १८७३)

कवियों ने मानवहित के लिए सामाजिक सुधार को अपनाते हुए कुप्रथाओं, धार्मिक मिथ्याचार, छल–कपट, स्वार्थपरायणता, आदि विषयों पर कविता द्वारा प्रहार किया हैं। अंग्रेजों के शोषण विरुध्द जागरण फैलाया हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव को आदर्श रुप में प्रस्तुत किया हैं। शासन सुधार की आकांक्षा भी जन–जीवन को व्यक्त करती हैं। अपनी कविता में यथार्थ चित्रण समाज जीवन का ही चित्रण हैं। जन–जीवन को उभारने हेतू उन्होंने लावणी, गजल, ठुमरी, मलार, दादरा जैसे लोकगीतों, संगीत का प्रयोग कविता में भारतेन्दु ने किया हैं। जनता में जागरण हेतू ग्रामगीतों द्वारा उन्नति का मार्ग इन्होंने स्वीकारा हैं।

५. श्रृंगार की कविता :–

रीतिकालीन भक्ति एवं श्रृंगार की परम्परा भारतेन्दु युग तक चली आयी थी। जिसका प्रभाव उनके साहित्य पर पड़ा हैं। भारतेन्दु वैष्णव परम्परा के उपासक थे। राधा–कृष्ण के प्रति उनमें अनन्य भक्ति थी। सदैव राजसी ठाँट–बाँट से रहते थे। इनमें अनेक गुण थे। पर विलासिता इनका सबसे बड़ा अवगुण था। एक बार इन्होंने कहा था –

''जगत जाल में नित बंध्यो, परयो नारि के कंद।
मिथ्या अभिमानी पतित, झुठो कवि हरिचन्द।।''

उन्होंने राधा–कृष्ण के प्रेम का वर्णन किया हैं, माधुर्य भक्तिपरक श्रृंगार चित्रण, रीतिकालीन पध्दति पर नखशिख, षड़ऋतु और नायिका भेद वर्णन, उर्दु प्रभाव संपर्क में वेदनात्मक प्रेमाभिव्यक्ति भारतेन्दु और प्रेमधन की रचनाओ में मिलती हैं। प्रेमसरोवर, प्रेममाधुरी, प्रेमतरंग, प्रेमफुलवारी आदि रचनाओं में भारतेन्दु ने भक्तिश्रृंगार और विशुध्द श्रृंगार का वर्णन किया हैं। सौन्दर्य, प्रेम, विरह की व्यंजना में कहीं, कहीं. ये दोनों उर्दु – काव्यशैली के प्रभाव में हैं।

प्रेमादर्श में वे घनानंद, रसखान, एवं पद्माकर जैसे रीतिकालीन कवियों का अनुसरण करतें हैं –

साजि सेज रंग के महल में उमंग भरी।
पिय गर लागी काम–कसक मिटाये लेत।।
ठानि विपरीति पूरी मैन मसूसन सों।
सुरत–समर जय पत्रहि लिखायें लेत।।
हरीचन्द उझकि उझकि रति गाढ़ी करि।
जोम भरी पियहि झकोरन हराये लेन।।
याद कर पी की सब निरदय घातें अजु।
प्रथम समागम कौ बदलो चुकाये लेत।।

उन्होंने रीतिकालीन कवियों की तरह यौन–विकृति जैसे स्वरति, समरति, चित्ररति, वस्त्ररति, पपडीपन, रति इत्यादि का वर्णन किया हैं। बिहारी, सुरदास जैसे साहित्यिक श्रृंगार की झलक भी इनकी कविता में पायी जाती हैं। बिहारी की तर्ज पर – इन दुखिया अँखियान को सुख सिरज्यो ही नाँही।

इन दुखियान को न सुख सपने हुँ मिल्यों
यों ही सदा व्याकुल विकल अकुलायेंगी।
बिना प्रान प्यारे भये दरस तिहारे हा,
देखि लीजों आँखे ये खुली रह जायँगी।।

सुरदास की तर्ज पर –

सखि ये नैना बहुत बुरे।
तब सों भये पराये, हरि सों जब सों जाइ जुरें।

मोहन के रस भर हैं डोलत तलफल तनिक दुरे।

अन्य कवियों में राधाकृष्ण दास, ठाकुर जगनमोहनसिंह, अंबिका दत्त व्यास में श्रृंगार वर्णन पाया जाता हैं ।

६. भक्ति भावना :–

हमने पहले ही कहा हैं की भारतेन्दु वैष्णव भक्त थे। राधा–कृष्ण के प्रती उनमें भक्ति थी। बल्लभ सम्प्रदाय में वह दीक्षित थे।

''मेरे तो राधिका नायिका हो गति
लोक दोऊ रहौ कै नसि जाओ।
मेरे तो साधन एक ही हैं,
जय नंदलाला वृषभानु कुमारी।''

उनके काव्य में विनय–भाव की भक्ति प्राप्त होती हैं। प्रेमधन ने 'अलौकिक लीला' नामक कविता में स्फुट भक्ति पदों को रखा हैं, अंबिका दत्त व्यास की 'कंसवध' जैसी प्रबंध रचना राधाकृष्णदास की विनयभावयुक्त कृष्ण स्तुती का उल्लेख भारतेन्दु युगीन कृष्णभक्ति काव्य के संदर्भ में आवश्यक है। इसके अलावा प्रेमधन की 'सूर्यस्त्रोत', भारतेन्दु की 'उत्तरार्ध भक्तमाल', और 'कार्तिकस्नान', प्रतापनारायण मिश्र की 'नवरात्र के पद', और राधाचरण गोस्वामी की 'नवभक्तमाल' उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

भारतेन्दु में भक्ति देशानुरागी भाव भी दिखाई देता हैं। अर्थात वह देशहित की कामना करता हैं। साम्प्रदायिक मत–मतान्तरो पर आधारित धार्मिकता के स्थान पर उन्होंने उदारता का परिचय दिया हैं। 'जैन कुतुहल' में उन्होंने धार्मिक विद्वेष की व्यर्थता को प्रतिपादित किया हैं। धर्मनिरपेक्षता का भाव उनमें है ऐसा कहा जाता है। फिर भी उसमें धार्मिक एकांगिता की चर्चा सामने आ रही हैं। उनकी धार्मिकता पर प्रश्न उठ रहें हैं। प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास जैसे कवियों में भी देशानुराग भक्ति को देखा जा सकता हैं।

८. प्रकृति चित्रण :–

रीतिकाल की तरह प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण का अभाव भारतेन्दु युगीन कविता में रहा है और वह स्वाभाविक है सौन्दर्य बोध में सहायक स्वतंत्र प्रकृति चित्रण का श्रेय किसी सीमा तक ठाकुर जगमोहनसिंह को ही दिया जा सकता हैं। भारतेन्दु समवेत अन्य कवियों ने परम्परा का निर्वाह किया गया हैं। ''अम्बिकादत्त व्यास की 'पावस पचासा', गोविन्द गिल्लाभाई की 'षडऋतु', और 'पावस पयोनिधी', आदि कृतियों में वसंत और वर्षा ऋतु का आलंबनात्मक चित्र मौजुद हैं।'' भारतेन्दु की 'प्रात समीरन', प्रेमधन की 'मयंक महिमा' और प्रतापनारायण मिश्र की 'प्रेम पुष्पांजली' में स्वतंत्र प्रकृति चित्रण हैं किन्तु सफलतापुर्वक नहीं ऐसा मत नगेन्द्र व्यक्त कर चुके हैं क्योंकि ''प्रकृति को श्रृंगारिक मनोदशाओं, सामाजिक उद्‌बोधन, नीति कथन आदि से संबंध्द करने की अनिवार्यता ने'' प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन इस काल में रूप ग्राहक नहीं

कर पाया परंतु रीतिकाल के उद्दीपक वर्णन को न स्वीकारते हुए संस्कृत काव्य में उपलब्ध नैसर्गिक सौन्दर्य वर्णन से प्रकृति का सजीव चित्रण उनके काव्य में आया हैं। पर्वत क्षृंखला का सौन्दर्य चित्रण इसी प्रकार का हैं–

''पहार अपार कैलास से कोटिन उंची शिखा लगि अम्बर चूम।
निहारत दीठि भ्रमै पगिया गिरि जाक उत्तंगता ऊपर झूम ।
प्रकाश पतंग सो चोटिन के बिकसें अरविन्द मलिन्द सुझूम।
लसै कटि मेखला के जगमोहन कारी घटा घन घोरत धूम।।''
(वही– पृ. ४५६)

९. हास्य–व्यंग्य :–

हास्य–व्यंग की अभिभक्ति भी इस युग की महत्वपूर्ण विशेषता हैं। हास्य–व्यंग को राष्ट्रीय समस्याओं से जोडने का प्रयास इस काल में हुआ हैं। पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन, सामाजिक अंधविश्वासो, रुढ़ियों, पर कवियों ने कठोर व्यंग्य किए हैं। उनमें विषय एवं शैली की भिन्नता भी रही हैं। निम्नलिखित विषयों पर इन कवियों ने हास्य–व्यंग लिखे हैं। एक प्राचीन रुढ़िगत विकृतियों पर, दो विदेशी संपर्क में भारतीयों की स्थिती पर, तीन भक्ति संबंधी संकीर्ण विचारों पर, चार विकृत सांस्कृतिक जीवन पर, पाँच राजनैतिक व्यवस्था पर महत्व आदि पूर्ण हैं। राजनैतिक व्यंग में उल्लेखनिय है – अंग्रेजो की शोषण नीति, भारतीयों की निष्क्रियता एवं नपुसंक मनोवृत्ति, पराधीन वृत्ति आदि। छह साहित्यिक एवं भाषागत विचार पर खासकर उर्दु के आग्रह पर। भारतेन्दु की तीन व्यंग शैलियाँ हैं – पैरोडी, स्यापा और गाली। डॉ. नगेन्द्र कहते हैं, 'बन्दरसभा' के गीतों की रचना उन्होंने उर्दु नाटक इन्दर सभा के गीतों की पैरोडी के रुप में की हैं। उर्दु का स्यापा उर्दु–फारसी के स्यापा, नामक काव्यरुप की शैली में लिखित हैं। है–हैं उर्दु हाय–हाय, कहाँ सिधारी हाय–हाय, आदि पंक्तियों में उन्होंनें बनारस अखबार के समाचार–शीर्षक उर्दु मारी गयी पर व्यंग किया हैं। 'समधिन मधुमास' की रचना 'गाली' व्यंगगीति की शैली में की गयी हैं। नये जमानें की मुकरी, समकालीन सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों पर लिखी हैं। साथ ही प्रतापनारायण मिश्र की हरगंगा, बुढ़ापा, कारष्टक, आदि प्रसिध्द रचनाएँ हैं। भारतेन्दु में अमीर खुसरो की मुकरी शैली स्पष्ट होती हैं। मद्यपान संबंधी व्यंग का उदाहरण है –

''मुँह जब लागै तब नही छुटे, जाति मान धन सब कुछ लूटे।
पागल करि मोहि करे खराब, क्यों सखि सज्ञन नहीं सराब।।''

१०. रीति–निरुपण के परम्पराबध्द ग्रंथो की रचना :–

रीति–निरुपण संबंधी परम्परा से संबंध ग्रंथो का लेखन भी इस कालखन्ड में हुआ हैं। भारतेन्दु युग में लछिराम, बह्मभट्ट, कविराजा मुरारिदान और बालगोविन्द मिश्र आदि रीति–निरुपण पध्दती ग्रंथ लिख रहे थे। जिसमें प्रमुख हैं लछिराम की महेश्वर विलास जिसमें नायिकाभेद एवं नवरस का विश्लेषण हैं, 'रामचन्द्रभूषण' अलंकार शास्त्र का ग्रन्थ है, 'रावणेश्वर कल्पतरु' सर्व–काव्यांग निरुपण कृती हैं। मुरारिदान का 'जसवन्त जसोभूषण' बृहत काव्य

शास्त्रीय ग्रंथ हैं। ''यह मुलतः अलंकार ग्रंथ हैं जिसमें काव्य–स्वरुप, शब्दशक्ति, गुण और रीति का सार मौजुद है। बालगोविन्द मिश्र का 'भाषा छन्द प्रकाश' में अड़तालीस मात्रिक–वार्णिक छन्दों का स्वरचित काव्य–लक्षण–उदाहरण प्रस्तुत है। अन्य दो उल्लेखनिय रचनाकार हैं प्रतापनारायणसिंह की 'रसकुसुमाकर' (१८९४) और कन्हैयालाल पोद्दार की 'अलंकार प्रकाश' (१८९६).

महत्वपूर्ण बात यह भी है की रीति–निरुपण की वृत्ती पिछड़ती जा रही थी और काव्य नये साँचे में ढ़ल रहा था। भारतेन्दु के बाद तो यह प्रवृत्ति रही ही नहीं।

११. समस्यापूर्ति परक काव्य रचना :

समस्यापूर्ति परक काव्य रचना इस काल में बडी लोकप्रिय रही हैं। बकायदा इस प्रकार की काव्य गोष्टियों का आयोजन किया जाता था और बड़े–बड़े कवि उसमें ससम्मान भाग लेते। कठिन से कठिन विषयों पर समस्यापूर्ति करायी जाती। कहा जाता हैं की, अम्बिकादत्त व्यास ने अपने कवि जीवन का आरंभ काशी से 'कविता वर्धिनी सभा में' पुरी अम्मी की कटोरिया–सी, चिरंजीवी रहें विक्टोरिया रानी, समस्या की पूर्ति करके सुकवि की उपाधी पायी थी। कानपूर की रसिक समाज, बाबा सुमेरसिंह द्वारा निजामाबाद (जिला आजमगढ़) की 'कवि समाज' काफी प्रसिध्द मंच हैं।

अम्बिकादत्त के पिता दुर्गादत्त व्यास का 'समस्यापूर्ति–प्रकाश' अम्बिकादत्त व्यास का 'समस्यापूर्ति सर्वस्व', गोविन्द गिल्लाभाई का 'समस्यापूर्ति प्रदीप', गंगाधर द्विजगंग का 'समस्या प्रकाश', नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह का 'पंचरत्न', तथा भारतेन्दु ग्रंथावली में समस्यापूर्तियों का संग्रह उपलब्ध हैं। प्रतापनारायण मिश्र की समस्यापूर्ति काव्य का एक उदाहरण देखिए –

वन बैठी है मान की मूरति–सी, मुख खोलत बोलें न 'नाही' न हां।
तुम ही मनुहारी कै हारि परे, सखियान की कौन चलाई तहां।।
बरषा है 'प्रतापजू', धीर धरों, अब लो मन को समझायो जहाँ।
यह ब्यारि तबै बदलेगी कछू, पपीहा जब पुछिहै पीव कहाँ?

१२. काव्यानुवाद का आरंभ :

काव्यानुवाद की परम्परा भी इसी युग से शुरु हो चुकी है। संस्कृत और अंग्रेजी के काव्यानुवाद बड़ी मात्रा में हुए है। सर्वप्रथम उल्लेखनिय हैं, राजा लक्ष्मणसिंह का 'रघुवंश' और 'मेघदूत'। भारतेन्दु ने 'नारद–भक्ति–सूत्र' और शांडिल्य के 'भक्तिसूत्र' को 'तदीय सर्वस्व' और 'भक्तिसूत्र वैजयन्ती' नाम से अनुवाद किया हैं। बाबू तोताराम ने वाल्मिकी रामायण का 'राम–रामायण', ठाकुर जगमोहनसिंह ने 'ऋतूसंहार' एवं 'मेघदूत', लाला सीताराम भूप ने 'मेघदूत', 'कुमार संभव', रघुवंश और ऋतूसंहार।

अंग्रेजी से श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ का 'हरमिट' और 'डेंजर्टेड विलेज' को 'एकांतवासी योग' तथा 'उजड ग्राम' नाम से अनुवाद किया हैं । भाषा, लालित्य, शब्दानुभाव,

सरलता को गुणों से ये संपन्न हैं ऐसा डा. नगेन्द्र ने कहा हैं ।

१३. काव्य रुपों की विविधता :

भारतेन्दु युग में काव्य रुपों के विविध प्रयोग रुढ हो गये कुछ परम्परागत, लोकगीत, संगीतात्मक थे तो व्यंग नये रुप में विकसित हुए किन्तु प्रधानता मुक्तक काव्य की ही रही हैं। उसके साथ प्रबंध गीति में भारतेन्दु के रानी छद्मलीला, देवी छद्मलीला, और 'तन्मयलीली' का उल्लेख किया जाता हैं। निबंध काव्य रुपों में 'विजयिनी विजय वैजयन्ती' तथा हिन्दी भाषा महत्वपूर्ण हैं। कुछ सतसई परम्परा के उदाहरण भी देखे जा सकते हैं। हरीऔध का कृष्णशतक (१८८२) अम्बिकादत्त व्यास का 'सुकवि सतसई' आदि।

प्राचीन पद शैली के आधार पर ठुमरी, मलार, दादरा, ईमन, आदि राग–रागिनीयों में काव्य रचनाएँ की गई हैं। लोकसंगीत की शैली काफी लोकप्रिय थी उदाहरणार्थ ''प्रेमघन और प्रतापनारायण मिश्र की कजलियाँ तथा भारतेन्दु (वर्षा विनोद) प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी और जगनमोहनसिंह की लाषनिया महत्वपूर्ण हैं।'' व्यंग में बंदर सभा, उर्दू का स्यापा एक नए शैली में आयी हैं। भारतेन्दु ने मुकरियों का लेखन भी किया हैं। ग़ज़ल का नवप्रयास 'रसा' उपनाम से भारतेन्दु द्वारा तथा 'अब्रु' उपनाम से प्रेमधन द्वारा किया गया हैं। इससे यह कहा जा सकता हैं की काव्य के परम्परागत रुपों में इस काल के कवियों ने बंधे न रहकर नये प्रयोग भी किये हैं।

१४. भाषा :

भारतेन्दु युग में काव्य के क्षेत्र में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ तो गद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली का। हिन्दी–उर्दु का विवाद इस काल के राजनीति की देन रही फिर भी भारतेन्दु ने हिन्दी के दायित्व को 'हिन्दी भाषा' नामक ग्रंथ लिखकर पूर्ण किया। उन्होंने ''उर्दु–फारसी की जटिलतम तत्सम शब्दावली का बहिष्कार भी किया'' काव्य में ब्रज के साथ–साथ अन्य बोली भाषा शब्दों के प्रयोग दिखाई देता हैं, जैसे भोजपूरी, बुंदेलखंडी, अवधी, आदि। इसके अलावा उर्दु–अंग्रेजी का प्रयोग भी किया गया हैं।

ब्रजभाषा और खड़ीबोली को लेकर आंदोलन चला। अयोध्याप्रसाद खत्री ने खडीबोली का आंदोलन (१८८८) में चलाया। कुछ कवियों ने विरोध भी किया। परिणामतः खडीबोली गद्य के साथ पद्य का विकास हुआ। आगे चलकर दिवेदी युग में यह विवाद खत्म हुआ। काव्य क्षेत्र में भी खडीबोली का प्रयोग होने लगा।

१५. छंद–अलंकार :

भारतेन्दु युगीन कवियों ने परम्परागत छंद–अलंकारो का प्रयोग अपनी कविताओं में किया हैं । जिसमें उल्लेखनिय हैं, आर्या, कुण्डलियाँ, दोहा, चौपाई, सोरठा, रोला, हरिगीतिका जैसे मात्रिक छंदो तथा कविता, सवैया, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, वंशस्थ, वसन्ततिलका जैसे वर्णिक छंदों का विविधमुखी प्रयोग ''लोकसंगीत का गाँवो में प्रचार–प्रसार करने के लिए

भारतेन्दु ने कजली, ठुमरी, खेमटा, कहरबा, गेल, चैती, अद्धा, होली, साँझी, लाबें, लावनी, बिरहा, चनैनी, आदि छंदो को उपयोग में लाया हैं। इस प्रकार के प्रयोग का आवाहन भी वे कवियों को कर चुके थे।'' किसी नये छंद का प्रयोग भले ही इन कवियों ने न किया हो परंतु काव्य की नई उद्भावना विषय एवं शैली के दृष्टि से मौलिक रही हैं ।

५अ.३ मूल्यांकन :

इस विवेचन–विश्लेषण से यह ज्ञान होता हैं, की भारतेन्दु समेत अन्य कवि अपने दाय का सुयोग्य निर्वाह कर चुके हैं। अपनी अनुभूती को माध्यम बनाकर, स्वभाषा, स्वधर्म, स्वजाति का प्रचार कर देशोन्नती, एवं राष्ट्रीय भावनाओं को जगाने का प्रयास प्रशंसनीय हैं । खड़ीबोली को काव्य–भाषा का माध्यम बनाया। उसमें काव्य के साथ, निबंध, नाटक, कहानियाँ, उपन्यास, लेख लिखे गये हैं। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं का संपादन, प्रकाशन भी इस युग की महत्वपूर्ण घटना हैं। जनवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति, लोकगीत शैली का स्विकार इस युग के महत्वपूर्ण मूल्य हैं। जीवन के यथार्थ को उन्होंने सामाजिक स्वर दिया, प्रत्येक विधा में। बहुत सारे अंतर्विरोध भी उनके काव्य में पाये जाते हैं। राष्ट्रीयता, राजभक्ति, राजद्रोह, नयी भाषा (खड़ीबोली), पुरानी भाषा (ब्रज) नये पुराने दृष्टिकोन, इन सब में समन्वय की भावना आदि।

भारतीय समाज, साहित्य, राजनीति के इतिहास में यह नवयुग, नवजागरण, के नाम से जाना जाता हैं। जिसके अग्रदुत स्वयं भारतेन्दु बाबु रहे हैं।

५अ.४ उपसंहार :

भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों ने विभिन्न स्तर पर जन जागरण का कार्य किया। साहित्यिक रचनाओं के जरिए वे स्वाधिनता आंदोलन से जुड़े रहें। उस बढ़ावा दिया। गद्य का नये रुपों में विकास हुआ। रंगमंच का आधुनिक अविष्कार भी इन साहित्यकारों ने, विशेष भारतेन्दु ने महसुस किया। जीवन के सत्यों को नैतिक साहस के बल पर जनता के सम्मुख रखा। तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, जीवन की सचाईयों से हमें रुबरु कराया। यह इस युग महत्वपूर्ण की देन हैं।

५अ.५ बोध प्रश्न :

१. भारतेन्दु युगीन काव्य की प्रवृत्तियों को अंकित कीजिए।
२. भारतेन्दु युगीन काव्य की विशेषताओं पर सोदाहरण चर्चा किजिए।

◆◆◆◆◆◆

५–आ

द्विवेदी युगीन– काव्य

५आ.० ईकाई की रूपरेखा
५आ.१ परिचय
५आ.२ काव्य प्रवृत्तियाँ
५आ.३ मुल्यांकन
५आ.४ उपसंहार
५आ.५ बोध प्रश्न

५आ.० ईकाई का उद्देश्य

क. द्विवेदी युगीन काव्य की प्रवृत्तियों का अध्ययन करना।
ख. द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्तियों का मुल्यांकन करना।
ग. द्विवेदी युग सुधार–काव्य से जुड़ा है। इसी काव्य में कई प्रकार के सामाजिक, साहित्यिक, भाषाज्ञान सुधार एवं संस्कार द्विवेदीजी ने हिन्दी साहित्य–समाज को दिए हैं।
घ. कई महत्त्वपूर्ण काव्य का लेखन इसी काव्य में हुआ है। उसे समझना जरूरी हैं।
ड. यह युग आदर्श एवं बौद्धिकता का क्यो, कैसे रहा यह देखना–परखना होगा।

५आ.१ प्रस्तावना/परिचय :–

आधुनिक कविता के क्षेत्र में द्विविदी युग को 'जागरण या सुधार काल' के नाम से जाना जाता है। 'सरस्वती' का प्रकाशन और द्विवेदी जी का संपादन क्रांतिकारी घटना के रुप में हिन्दी साहित्य में देखी जाती है। यह सही भी है। १९०३ में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का संपादन प्रारंभ किया। द्विवेदी युग का कालखंड भी १९०३ से १९१८ तक माना जाता है। द्विवेदी के व्यक्तित्व की गहरी छाप इस युग पर रही है। इस युग के वह पथप्रदर्शक, निर्माता, शिक्षक, लेखक, आलोचक, संपादक रहे है। भाषा की शुध्दता, व्याकरण आदि के क्षेत्र में भी उनका मौलिक कार्य रहा है। ''उन्होंने साहित्य और समाज को विशेष मोड़ दिया। विद्वानों ने उन्हें बिना डिग्री के आचार्य, बिना मुकुट के सरताज और महान युग प्रवर्तक कहा है। वे एक सफल अलोचक, निबंधकार, अनुवाद, संपादक थे। उनकी रचनाओं का महत्व भले ही न हो परंतु उनके द्वारा निर्मित साहित्य प्रतिभाओं, साहित्य कृतियों का बहुत अधिक महत्व है।

भारतेन्दु युग में 'भारत दुर्दशा' पर दु:ख प्रकट किया जाता रहा परंतु द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने दुर्दशा के साथ सामान्यों में स्वतंत्रता प्राप्ती की चाह निर्माण की। उसके लिए बलिदान का मार्ग सुझाया। इसके पहले ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियासॉफिकल

सोसायटी आदि का कार्य भारत वर्ष में फैल चुका था। इस कालखंड में संपूर्ण उत्तर भारत में आर्य समाज के सामाजिक आंदोलन की धूम मची थी। धर्म, समाज का पुनरुत्थान कार्य जोरों पर था। इधर कॉंग्रेस आजादी का अलख जगाने में काफी आगे बढ़ चुकी थी। ब्रिटिशों की ओर से होनेवाले शोषण से तिलक जैसे जहाल नेता ने देशभर में 'असंतोष' की भावना को फैलाया। निस्वार्थी समाज सेवकों का उदय भी इसी काल में हो चुका था। हर किमत पर समाचार पत्र प्रकाशन का कार्य इस काल के संपादकों ने जारी रखा।

ब्रजभाषा की जगह खड़ीबोली ने ले ली। श्रृंगार-भक्ति का स्थान देशभक्ति, समाजसुधार ने लिया। परंपरागत काव्य निरुपण शैलीयाँ बदली। भारतेन्दु युग में भाषा की जो अस्थिरता पैदा हुई थी वह यहाॅ पर खत्म हुई। काव्य के लिए शुध्द, व्याकरण सम्मत खड़ीबोली का प्रयोग किया जाने लगा। अचानक ही नहीं बल्की द्विवेदी की कठोर नीति के परिणामस्वरुप, कविता, अलोचना, श्रृंगार आदि में निखार और देशपरक समाजहितानुरुप प्रौढ़ता आयी। द्विवेदीजी ने गद्य-पद्य की शैली तथा विषय वस्तु में परिवर्तन लाया। मातृभूमि, स्वदेश गौरव, मानवतावाद, बुध्दिवाद को काव्य में प्रतिष्ठित किया। कविता में इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता आयी। राष्ट्रीय भावना का स्वर गूँज उठा, राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। नारी संबंधी दृष्टिकोन में परिवर्तन आया। सांस्कृतिक राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद का विकास भी इसी काल की देन है। मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी जैसे कवि द्विवेदी के व्यक्तित्व की देन है। गोपालशरण सिंह, गयाप्रसाद 'स्नेही', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', लोचनप्रसाद पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डे, इसी काल के महत्वपूर्ण कवि है। पुनरुत्थान युग का देश, समाज तथा साहित्य पर व्यापक प्रभाव पडा। यही कारण है की द्विवेदी युग में जागरण आया। नवीन परंपरा का उद्‌भव हुआ। द्विवेदी और सरस्वती का ऐतिहासिक महत्व इस काल में है।

५आ.२ द्विवेदीयुगीन काव्य प्रवृत्तियाँ :-

अंग्रेजों के दमन चक्र और कुटनीतिक शासन का विरोध करने के लिए इस युग में परंपरा को छोडकर, साहित्य में पौराणिक तथा ऐतिहासिक घटनाओं और चरित्रों को राष्ट्रीय भावना के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया। मध्यवर्ग के साथ निम्नवर्ग का चित्रण किया जाने लगा। परिणामत: किसान, मजदूर, स्त्री-दलितों का कष्टप्रद जीवन उभरकर आया। राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय भावना का स्वर मुखरित हुआ। प्रखर बुध्दिवाद के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नीर-क्षीर विवेक का आग्रह शुरु हुआ। मानवीय मुल्यों का आग्रह भी इसी काल में शुरु हुआ। भारतीय और युरोपिय दर्शन का संघर्ष प्रारंभ भी इसी काल की देन है। भारत के हृदय तथा युरोप को बुध्दि पक्ष मानकर उसके एकमेक होने की स्थिती को आदर्श माना जाने लगा। आर्य समाज का आंदोलन इस समय जोर पर था। गुरुकुल कांगडी की स्थापना हो चुकी थी। आर्यसमाज के नेतृत्व में डी.ए.वी कॉलेजस खुलने लगे थे। शिक्षा का सार्वत्रिक प्रचार-प्रसार हो रहा था। तर्क-बुद्धिवाद, मानवता, राष्ट्रीयता, स्त्री-शिक्षा, आदर्शवाद इस युग के मूल्य और प्रेरणा रही है। जिसका व्यापक प्रभाव साहित्य पर पडा।

द्विवेदी युगीन कविता के आधार बिंदू:–

१. बौध्दिकता का प्रतिपादन:–

ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसाफिकल सोसायटी के साथ भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने सामाजिक जागरण का बड़ा कार्य भारतेन्दु युग से ही शुरु किया था। वेद को तर्क प्रमाण पर कसकर उसकी नयी आलोचना आर्य समाज प्रस्तुत कर रहा था। चाहे वह अध्यात्मिक उन्नत्ति हो, कर्मकांड हो, स्त्री प्रश्न, हो इन सबके प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोन एवं नयी शिक्षा से प्राप्त दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया गया। परिणामत: पुराने को आँख मूँद कर न स्वीकारते हुए उसके प्रति विद्रोह का भाव प्रकट होने लगा। अनेकेश्वर की जगह एकेश्वर वाद इसका प्रमाण है। बुध्दिवाद के कारण ही देवी–देवताओं की ओर देखने की दृष्टि बदल गयी। कर्मकांड के थोथे पन को उजागर किया गया। रुढ़िवादिता एवं सड़ी–गली प्राचीन परंपराओं पर कुठाराघात किये जा रहे थे। देवता की अवतारवादी संकल्पना को नकारा जा रहा था। अलौकिता की जगह लौकिकता का चित्रण किया जा रहा था। एक तरह से यह बौध्दिकता का युग, तार्किक प्रणाली से सोचने–विचारने का युग प्रारंभ हो गया था। जातीवाद की आलोचना इसी कारण होती रही। प्रकृति तथा अलौकिक शक्ति के प्रति मानवीय दृष्टिकोन से देखा जाने लगा था। यह आग्रह भाषा के क्षेत्र में भी दिखाई देता है। बौध्दिकता इस युग की प्रधान प्रवृत्ती रही है उसका प्रभाव आनेवाले काल पर भी पडा।

२. मानवता का प्रकटीकरण :–

मानवतावाद की भावना का विकास भारतेन्द युग से ही प्रारंभ हो चुका था। साहित्य में जनवादी. प्रवृत्ति के संकेत इसी युग से प्राप्त होते है। शायद यही कारण रहा है की 'हरिऔध' के राम–कृष्ण आदर्श समाज–सुधारक और नेता है। मैथिलीशरण गुप्त के राम अवतारी न होकर आदर्श मानव है, जो निजकर्मो से इस धरती को स्वर्ग बनाने आये है। अर्थात पशुवत जीवन जीने वाले सामान्य मनुष्य के प्रती गहरी संवेदना का भाव इस युग के साहित्य में आया है। उसके प्रति स्नेह, सहानुभूती, कर्तव्य, क्षमा की भावना का अभिव्यक्तिकरण कवियों ने किया है। सर्वधर्म समता का बिगुल भी इसी काल में बजने लगा था। स्त्री–दुर्दशा के चित्र कविता में उतारे जा रहे थे '' अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में दूध और आँखों में पानी'' से उसकी कारुणिक अवस्था प्रकट कर, उसके प्रती क्षोभ ही व्यक्त किया जा रहा था। रविद्रनाथ के विश्वबंधुत्व की कल्पना इस समय का आदर्श रही है। साहित्य का सृजन आदर्श की प्रतिष्ठापना और मनुष्य महत्त्व के लिए किया जा रहा था।

३. आदर्शवाद :–

यह युग पाश्चात्य वैज्ञानिक एवं नये शिक्षा के संपर्क में आये भारतीय तथा परंपरागत कालबाह्य मुल्यों की टकराहट का रहा है। फिर भी जो जो अच्छा उसका स्वीकार करने की प्रवृत्ति भारतीयों में रही। वेदों को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने की भरसक कोशिशे आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, विवेकानंद तथा प्रार्थना समाज ने की थी। विवेकानंद ने तो भारतीय आध्यात्मवाद को हृदयवाद के रुप में पश्चिमी भौतिकवाद के सामने रखकर उसको प्रतिष्ठा दिलायी थी। यह सिधा–सिधा दो संस्कृतियों के भीतर की टकराहट थी। पश्चिम ने देश को

पिछडा और सड़ा–गला साबित कर दिया था। अज्ञानी, अंधविश्वासी करार दिया था। इस सबको दूर कर भारतीयता का गौरव गान करने की प्रवृत्ती इस काल में विद्यमान है। बुध्दिवाद पर अध्यात्म की अर्थात बुध्दी पर हृदय की विजय के रुप में भारतीय अध्यात्म परंपरा का समन्वय साधने की चेष्टा की जा रही थी। छायावाद में इसे प्रसाद ने कामायनी में अभिव्यक्त किया है। इसी को साहित्यकार आदर्श के रुप में स्थापित करते जा रहे थे। भौतिक सुख सुविधाओं की अपेक्षा मानसिक संतुष्टि की चर्चा चल रही थी। आर्यसमाज, ब्रह्म समाज, तथा राष्ट्रीय कॉग्रेस ने भी 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' को पराश्रय दिया था। एक तरह से इसके पीछे ईसाई मत के नकार का भाव भी छिपा हुआ था। रविद्रनाथ के मानवतावाद ने हिन्दी को बल प्रदान किया, यह सच्चाई है।

४. राष्ट्रीय भावना और राजनीतिक चेतना:–

द्विवेदी युगीन कवियों ने देशभक्ति संबंधी जागरण कविता द्वारा फैलाया है। इस युग की कविता राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत है। राष्ट्रीय स्वाधिनता आंदोलन को प्रेरित करने, देशवासीयों को उनकी गुलामी का अहसास कराने, उनकी निष्क्रियता, अकर्मण्यता की मनोवृत्ती को स्पष्ट करने का प्रयास कविता द्वारा हुआ है। लोकमान्य की राजनीतिक स्वतंत्रता की माँग, स्वदेशी वस्तु प्रति प्रेम आदि भावना का विकास कॉग्रेस की ओर से किया जा रहा था। साहित्य में भी इसके प्रतिबिंब आये है। देश प्रेम कविता का विषय हो गया, फिर कविता छोटी हो या प्रबंधात्मक। मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का 'प्रिय प्रवास' रामचरित उपाध्याय का 'रामचरित चिंतामणी' और सत्यनारायण कविरत्न का 'भ्रमरगीत' आदि रचनाएँ हिन्दी भाषा के गौरव ग्रंथ होने के साथ–साथ देशभक्ति और अतीत की ज्वलंत विभुतियों के भव्य निदर्शक भी है। इसमें वर्तमान भारतीय स्थिती पर करुणा प्रकट की है। और अतित को गौरवशाली बनाया गया है। इस युग की कविता ने किसी प्रकार की जातिगत, धर्मगत संकीर्णता को पराश्रय नहीं दिया। संपूर्ण भारत एक का भाव कविता में आया। इस व्यापक चेतना को फैलाने में ''हिन्दु–मुस्लिम, सिख, इसाई सब आपस में भाई–भाई'' का नारा फैलाया। जिसमे शिक्षित भारतीय जनता में नवसंचार हुआ और वह आजादी के आंदोलन में आत्मोत्सर्ग करने के लिए तत्पर हुआ। नयी राजनीतिक चेतना का भय ब्रिटिश शासन को भी था। इसलिए इस काल की पत्रकारिता पर कडे कानुन लागु किये गये थे। कविवर शंकर ने आत्मोत्सर्ग एवं स्वतंत्रता प्राप्ती के संदर्भ में अपनी कविता 'बलिदान गान' में कहा है–

''देशभक्त वीरो, मरने से नेक नही डरना होगा
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।''

प्रत्येक कवि देश की हीन–दीन दशा और उसके प्रती क्षोभ व्यक्त करता है। मिथ्या दंभ, अभिमान को निकालकर देश दशा पर ध्यान देने का आग्रह करता है। रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' की कविता ''आलस, फुट, खुदगर्जी, मिथ्या कुलीनता आदि अभिशापों की ओर भी इस युग का कवि दृष्टि डालता है और उसके निराकरण की कामना करता है''

भरतखण्ड का हाल जरा देखो है कैसा।
आलस का जंजाल जरा देखो है कैसा।।
जरा फूट की दशा खोलकर आँखे देखो।

खुदगर्जी का नशा खोलकर आंखे देखो।।
है शोखी दौलत की कहीं, बल का कही गुमान है।
है खानदान का मद कहीं, कहीं नाम का ध्यान है।।

द्विवेदी युग ने देशवासीयों को उनकी स्थिति से अवगत कराकर आजादी के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी। इसलिए उन्होंने कुप्रथाओ, बाह्याडम्बरों, सामाजिक कुरीतियो, देश दुर्दशा को कविता का विषय बनाया।

काँग्रेस में मध्यवर्ग का उदय एवं उभार देश में नयी राजनीतिक चेतना फैलाने में कारगर सिध्द हुआ। देशोन्नती के लिए सभी जाती वर्ग आग्रही रहे। ''बंग–भंग की भारत विरोधी और जाति–भेदीकरण की नीति से राष्ट्रीय भावनाओं से पूरित भारतीय जनता की आँखे खुल गई और वे अंग्रेजो को बड़े संदेह की दृष्टि से देखने लगे और इसकी प्रतिक्रिया स्वरुप तथा राष्ट्रीयता के अनुरुप सभी जातियों में भ्रातृत्व भावना का प्रचार हुआ। रुपनारायण पण्डेय की एक कविता इसी प्रकार की है''

जैन बौध्द पारसी यहूदी मुसलमान सिख ईसाई।
कोटि कंठ से मिलकर कह दो, हम सब है भाई–भाई।।
पुण्य भूमि है, स्वर्ग भूमि है, जन्म भूमि है देश यही।
इससे बढ़कर या ऐसी ही दुनिया में है जगह नहीं।।

५. सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की भावना :–

द्विवेदी युगीन कविता में देश के अतीत का गौरव गान बड़ी श्रध्दा, सहानुभूती और प्रेम के साथ किया है। स्वदेशी आंदोलन को जगाने के लिए इस प्रकार का वर्णन किया गया। वैसे हमने पहले ही कहा है की 'नवजागरण' हेतू हिन्दु धर्म, ग्रंथों की नयी व्याख्या कर उनका पुनरुत्थान इस युग में किया जा रहा। तत्कालीन समय में स्वाधीनता आंदोलन तो विकसित हुआ पर कुछ समय के बाद साम्प्रदायिक भावनाओं का विकास भी हुआ। भारतेन्दु एवं द्विवेदी युगीन साहित्य ने पाठकों, आम जनता के मन में, वर्तमान में जिसे हम 'हिन्दुत्व' कहते है उसका विकास करने में योग दिया ऐसा कहा जा सकता है। नाटक एवं उपन्यास, कहानी और एकंकी साहित्य के प्रमाण दिये जा सकते हैं।

इस समय के विद्वानों ने कहा है ''जहाँ भारतेन्दु युग में केवल प्राचीन के प्रति पुज्य भाव था और नवीन के प्रति निराशा, वहाँ द्विवेदी युग के कवियों में शक्ति और साहस का अपूर्व मिश्रण दिखाई पडता है।'' मातृभूमि की वंदना, उसे पुण्यभूमि के रुप में चित्रित करना आदि भाव जहाँ भारतेन्दु युग में निराशा के स्थान पर द्विवेदी युग में आशा और विश्वास का भाव भरते है। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत–भारती' जैसे काव्यों ने जोश एवं उत्साह का संचार किया। हर कंठ की वह भारत–जननी बनी उक्त युग में यह कार्य राजनीतिक चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। परंतू आनेवाले भविष्य को मात्र अतीत की ओर मोड़ दिया गया इसमें दो राय नहीं होनी चाहिए। बंकीमचंद्र की 'आनंदमठ' का प्रकाशन हो चुका था। हिन्दी के अधिकांश साहित्यकार बांगला से प्रभावित रहे है। 'आनंदमठ' के संबंध में बडी मार्मिक टिप्पणी वीर भारत तलवार ने की है, ''आनंदमठ (१८८२) में प्रकाशित इस उपन्यास में विद्रोही हिन्दू सन्यासियों के गुप्त संगठन का वर्णन है। ये सन्यासी मीरजाफर के शासन को 'मुसलमानी राज' मानकर

उसके ख़िलाफ़ लड़ते है, लेकिन कलकत्ते में प्रबल हो रहे अंग्रेजों के खिलाफ नहीं... (अंग्रेजी राज को मित्र बताते हुए उसके रहने और बनने में विद्रोहीयों ने सहयोग दिया ताकी) अंग्रेजों के बिना राजा हुए सनातन धर्म का उध्दार नही होगा।'' हर वर्ग में राजनीतिक चेतना जगाने का प्रयास काँग्रेस के साथ कवियों ने भी किया मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' रामनरेश त्रिपाठी आदि। श्रीधर पाठक विद्यार्थीयों को प्रेरित करते हुए लिखते है–

''अहो छात्रवर–वृद नव्य भारत–सुत प्यारे।
मातृगर्व–सर्वस्व मोदप्रद गोद–दुलारे।।
सतसेवा व्रत धार जगत के हरो क्लेश तुम।
देश प्रेम में करो प्रेम का अभिनिवेश तुम।।''

एक प्रकार से राजनीतिक चेतना को जगाने में प्रतिबध्द काव्य की रचना, काँग्रेस के आंदोलन को अपने कंधे पर लेकर चल रहा था। नयी राष्ट्रीय भावना का विकास हो रहा था।

६. धार्मिक कल्पना :–

इस काल की कविता में धार्मिकता की अलग कल्पना की गई है। बौध्दिकता के प्रभाव के कारण ईश्वर आदी के मानवीय रुपों की कल्पना की गई है। 'साकेत' में मैथिलिशरण गुप्त लिखते है–

''राम, तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या?''

आदर्श की प्रस्थापना करने हेतू 'राम' का मानव रुप की कल्पना मनुष्य के दु:ख, कष्ट, हरण हेतू की गयी साथ ही आर्य धर्म बनाकर, धरती को स्वर्ग बनाने की बात भी राम करने लगते है। आगे गुप्तजी कहते है–

''मैं आर्यें का आदर्श बताने आया,
जन–सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।
भव में नव वैभव प्राप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ नहीं मैं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।''

मानव की सेवा और सामन्ती सभ्यता के निंदा का भाव कवियों में रहा है। इसलिए उनमें मानव सेवा ही ईश्वर सेवा' का भाव विद्यमान है। जिस प्रकार 'साकेत' के राम मानव रुप में आये उसी प्रकार 'प्रिय प्रवास' (हरिऔध') के कृष्ण भी मानव सेवा करते दिखाए गए है। बुध्दिवाद के युग में अवतार वाद का प्रतिपादन करना द्विवेदी युग को असंभव था। इसलिए दीन–दलितों, दुखितों, श्रमजीवों में ईश्वर की कल्पना की गई और ईश्वर प्रेम, विश्व प्रेम में बदल गया ठाकुर गोपालशरण सिंह कहते है–

''जग की सेवा करना ही है, सब सारों का सार
विश्वप्रेम के बंधन ही में, मुझ को मिला मुक्ति का द्वार।''

वस्तुत: जीवन, जगत और प्रकृती में व्याप्त ईश्वर के प्रती कवि की अभिव्यक्ति भावना में रहस्यात्मकता आ गई। वही आगे छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति बन गई। धार्मिक भावना को जनसेवा, विश्वप्रेम से जोड़कर उसे कुछ अलग ढंग से विकसित किया गया।

७. नारी स्वातंत्र्य और उत्कर्ष :–

रीतिकालीन नारी के सौंदर्य वर्णन की परंपरा को जोरदार आघात द्विवेदी युग में मिला। नारी संबंधी मान्यताएँ बदलने लगी। विभिन्न सामाजिक कार्य करनेवाली संस्थाओं तथा काँग्रेस के राजनीतिक अंदोलन के परिणाम स्वरुप स्त्री के कोमल भाव की जगह कठोर, वीर भाव का चित्रण होने लगा। उनकी स्वतंत्रता का उत्कर्ष हुआ। पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर वह राजनीतिक आंदोलन में उतर चुकी थी। प्रचीन रुढ़ियो, परंपराओं को वे स्वंय तोड रही थी। जीवन और जगत के प्रती उनकी अपनी दृष्टि का विकास हो रहा था। अपनी स्वतंत्रता, अधिकार के प्रती वह सजग हो चुकी थी। पुरुषसत्ताक व्यवस्था को धक्का दिया जा रहा था। स्त्री जाति पर होनेवाले अन्याय– अत्याचारों के प्रति कवियों ने दृष्टि डाली। श्रीधर पाठक. मैथिलिशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि प्रमुख कवियों ने उसकी बदली चेतना द्वारा नवयुग लाने का प्रयास किया। साथ ही उसके प्रती अन्याय–अत्याचार की भावना को सामाजिकों से निकालने का तथा उसमें सुधार करने का भाव कवियों में रहा है। ईश्वर से प्रार्थना करते हुए श्रीधर पाठक लिखते है–

''दीनबंधु सदृष्टि कीजें बाल–विधवा और।''

नारी के नये रुपों को वे हमारे सामने लाते है वह जनसेविका, देशभक्त रागीनी, जननी के रुप में लोकसेविका के रुप में चित्रित की गई है।

मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों ने उनके उपेक्षित व्यक्तित्व को उत्कर्षित किया। साकेत की 'उर्मिला हो, या यशोधरा 'यशोधरा' या द्वापर की 'विधृता'। उनपर आधुनिक विचार–संवेदना की गहरी छाप रही है। साकेत की 'उर्मिला' तो सैन्य संगठन कर रावण से युध्द करने के लिए तत्पर है। गुप्त जी ने नारी को प्रतिष्ठा दिलाने के लिए ही उसका कारुणिक उत्कर्ष दिखलाया है–

''अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में दूध और आँखों में पानी।।''

के साथ उसे त्याग, संयम, आत्मोत्सर्ग, शक्ति से कठोर रुपों में भी चित्रित हुई है। इस काल में कोमल गुणों से नहीं बल्की शक्ति समृध्द, महान गुणों से पुरित हो चुकी थी। उसके व्यक्ति स्वातंत्र्य का अविष्कार हो चुका वह हर स्तर पर पुरुषों से समानता रखती है।

८. सामाजिकता की ओर उन्मुख :–

मानवता और आदर्शवाद की विचार प्रवृत्ति ने कविता अधिकाधिक सामाजिकता की ओर उन्मुख हुई है। समाज के सभी वर्ग पर कवि की दृष्टि पडी। सभी वर्गों की उन्नति का भाव कविता में आया है, जैसे स्त्री, दलित, कृषक, मजदूर, उनके विकास की भावना कविता में आयी है। सामाजिक सड़ी–गली रुढ़ियों, परंपराओं, शास्त्र का खंडण कर नया तर्क बुध्दि परक वैज्ञानिक विचार दृढ़ करने पर कवियों ने बल दिया है। स्त्री उध्दार, बालविवाह विरोध, विधवा विवाह समर्थन, दहेज प्रथा, शिक्षा समर्थन, आदि का खुलकर चित्रण कविता में हुआ है। मैथिलीशरण गुप्त इस दिशा में उल्लेखनीय है। कवियों को हिंदूधर्म की सामाजिक, सांस्कृतिक विकास की चाह थी इसलिए अतीत गौरव जातीय गौरव, जातीय प्रेम का भाव उनकी कविता में आया। काँग्रेस के व्यापक होते आंदोलन के साथ किसान, दलित, महिला वर्ग

जुड़ता जा रहा था। किसानों का संघटन एवं विकास का अजेंडा कॉँग्रेस के रडार पर था। किसानों को बड़ा महत्व कॉँग्रेस ने दिया। मैथिलीशरण गुप्त की 'किसान' कविता इसका उदाहरण है। अछुतोध्दार की भावना भी कविता का विषय रही है। इसी कालखंड में वर्णव्यवस्था पर तीखे प्रश्न खड़े हो चुके थे। सामाजिक कुरुपताओं को दूर करने के लिए कवियों ने व्यंग्य कविता का आश्रय लिया।

९. इतिवृत्तात्मकता :-

इस काल की कविता श्रृंगार के बोझ से मुक्त हुई। उसकी जगह देश प्रेम, सामाजिकता, आशावादिता ने लिया। स्वंय महावीर प्रसाद द्विवेदीजी का जीवन बड़ा कठोर, संयत, सात्विक एवं आदर्श था जीवन शुचिता के साथ काव्यशुचिता, भाषा शुचिता पर उन्होंने बल ही नहीं दिया बल्की उसके प्रती वे आग्रही थे। शायद ही कारण है की श्रृंगार की उच्छृंखलता का विरोध कर दाम्पत्य श्रृंगार को कविता में सुष्ठ रुप में स्वीकारा। परिणामत: कविता इतिवृत्तात्मकता की ओर मुड़ी। उसके लिए सरस गद्य शैली को युग ने स्विकारा। अत: कविता में लाक्षणिकता, चित्रमयता और वक्रोक्ति रही नहीं। विद्वानों ने ऐसा माना है की इस समय द्विवेदीजी के सामने दो शैलियाँ थी बंगाल की कोमलकांत पदावली और मराठी की वर्णन प्रधान इतिवृत्तात्मक शैली। उन्होंने दूसरी शैली को अपनाया। क्योकि वह उनके मन के अनुकुल थी और साथ ही वह नैतिकता के प्रचार तथा आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए भी उपयुक्त थी।'' परिणामत: इस काल की कविता में आकर्षण लालित्य कम हुआ वह शुष्क एवं निरस हुई। मुक्तक कविता की रचना का प्रचलन बढ़ा। 'साकेत' में ही गुप्तजी ने इसका प्रयोग किया'-

वेदने। तू भी भली बनी।
पाई मैंने आज तुझी में अपनी चाह घनी।।
X X X X
दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि, पतंग भी जलता है, हा ! दीपक भी जलता है।

कविता का यह गद्यात्मक रुप मैथिलीशरण गुप्त, ठाकुर गोपालशरण सिंह, लोचनप्रसाद पाण्डेय, मुकुटधर पण्डेय में आया। बौध्दिकता के कारण वह बोअील हुई प्रतिक्रियास्वरुप 'रहस्यात्मकता की खोज, रहस्योन्मुख प्रेम' के प्रति कवि भावना बढ़ी। प्रकृती वर्णन में भी यही भावना रही। गुप्त में भी यह संकेत मिलते है-

''तेरे घर के द्वार बहुत है किससे होकर आऊ मैं
सब द्वारों पर भीड बड़ी है कैसे भीतर जाऊ मैं।''

१०. प्रकृति-चित्रण :-

द्विवेदी युग का प्रकृति चित्रण बड़ा सच्चा और मनोयोग पूर्ण किया गया है। श्रृंगार काल में जो प्रकृति वर्णन किया गया है वह श्रृंगार भावना उद्दीपन हेतू हुआ है। भारतेन्दु युग में सौंदर्यानुभूति के अभाव में केवल अलंकारिक चित्रण की प्रधानता रही है। परंतू द्विवेदी युग में यह वर्णन संवेदनात्मक और चित्रात्मक रुपों में उपस्थित हुआ है। जिसमे अग्रसर है श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी' तथा रामचंद्र शुक्ल आदि। श्रीधर पाठक की कविता में तन्मयता और माधुर्य भाव सनिहित है, कश्मीर का वर्णन

कुछ इसी प्रकार का है–

''प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रुप सँवारति।
पल–पल पलटति मेष छनिक छबि छिन–छिन धारति।
बिहरति विविध विलास भरी जोबन मद में सनि।
ललकति किलकति पुलकति निरखति थिरकति बनठनि।''

आचार्य शुक्ल द्वारा ग्राम सौंदर्य वर्णन भी चित्रात्मक रुप में हुआ है–

''गया उसी देवल के पास से है ग्राम्य–पथ,
श्वेत धारियों में कई घास को विभक्त कर।
थूहरों से सटे हुए पेड और झाड हरे,
गोरज से धूमले जो खड़े है किनारे पर।''

रामनरेश त्रिपाठी ने उनके काव्य 'पथिक' और 'स्वप्न में नदी' में पर्वत, समुद्र आदि का दृश्य भव्य रुप में चित्रित किया है। उनके प्रकृति चित्रण में कहीं–कहीं रहस्यात्मकता भी पाई जाती है– 'हरिऔध' ने प्रकृति को पाँच रुपों में चित्रित किया है, '' आलम्बन रुप, उद्दीपन रुप, बिम्ब–प्रतिबिम्ब रुप, उपदेशात्मक रुप एवं आलंकारिक रुप। ''

इस काल के कवियों ने प्रकृति– वर्णन में भी उपदेशात्मकता की वृत्ति रखी शायद इसी कारण वह न मानवी, न प्रकृति के रहस्यों को खोल पाया, न सहज, सुंदर हो पाया। वह नीरस और शुष्क ही रहा है। प्रकृत्ति वर्णन भी इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति रही है।

११. अनुवाद

देशी और विदेशी साहित्य के अनुवाद की भारतेन्दू परंपरा का अधिक विकास द्विवेदी युग में हुआ। यह अनुवाद मात्र केवल पद्यात्मक नहीं गद्यात्मक भी हुआ और ठेठ खडीबोली में हुआ। स्वंय द्विवेदी जी 'सरस्वती' में अंग्रेजी कविताओं का अनुवाद प्रकाशित करते थे। बांगला के उत्कृष्ट ग्रंथों का अनुवाद इस कालखंड में हुआ। श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के हरमिट का 'एकांतवासी योग' तथा 'ट्रैवलर का' श्रांत पथिक' का पद्यानुवाद किया। डॉ. रवीन्द्र सहाय वर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी काव्य पर ऑग्ल' प्रभाव में लिखा है– ''द्विवेदी युग के हिन्दी काव्य में अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद विशिष्ट स्थान रखते है। १९०३ से १९०८ के मध्यवर्ती काल में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास के लिए अथक परिश्रम किया था। ये अनुवाद अनवरत रुप से सरस्वती में प्रकाशित होते रहे।'' शेक्सपियर, बायरन, ग्रे आदि की कविताओं के अनुवाद हुए है।

साथ ही बांगला और मराठी 'के अनुवाद भी किये गये।'' बांग्ला से साम्रगी ली गयी ती मराठी से शैली'' मैथिलीशरण गुप्त ने माईकेल मधुसुदनदत्त के मेघनाथ वध और वीरांगना तथा नवीनचंद्रसेन के 'पलासीर युध्द' का अनुवाद किया। सियारामशरण गुप्त तथा मुकुटधर पाण्डेय की कविताओं पर रविद्रनाथ ठाकूर की 'गीतांजली' के रहस्यवाद का प्रभाव दिखाई देता है। अनुवाद कार्य की परंपरा को समृध्द किया द्विवेदी युग ने।

१२. काव्य विषय एवं रुपों में विविधता :–

द्विवेदी युग में काव्य विषयों एवं रुपों में महत्वपूर्ण बदलाव आये है। रीतिकालीन परंपरा को छोड़कर अनेक नये विषयों को काव्य में स्थान दिया। द्विवेदी 'कवि कर्तव्य' निबंध में

लिखते है– चीटीं से लेकर हाथी पर्यन्त, पशु, भिक्षुक से लेकर राजपर्यन्त, मनुष्य, बिन्दू से लेकर समुद्र पर्यन्त, जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, अनन्त पर्वत– सभी पर कविता हो सकती है।'' जीवन जगत संबंधी विविध विषयों पर काव्य लेखन किया गया। विषय की कोई सिमा नही थी। डॉ. नगेद्र ने विषय सुची ही दी है– परोपकार मुरली, कृषक, सत्य, लड़कपन, ग्रन्थ–गुण–गान, प्रणय, ईर्ष्या, निद्रा, कलियुगी साधू, पुस्तक प्रेम, ब्रह्मचर्य, हिन्दी की अपील, बालक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, मूढ मानव, मेहंदी, नैकटाई, मनोव्यथा, कामना, विद्या, कुलीनता, पौरुष, शिशू–स्नेह, सुखमय जीवन, भारतीय छात्रों से नम्र निवेदन, लक्ष्मी–लीला, सपूत, ग्राम–गौरव, सज्जनों का स्वभाव, समालोचक–लक्षण दरिद्र विद्यार्थी आदि।''

इसके साथ ही आचार्य शुक्ल ने भी कुछ संकेत किये है– देशदशा, समाज–दशा, स्वदेश प्रेम,, आचरण संबंधी उपदेश, के साथ, त्याग, वीरता, उदारता, सहिष्णुता, पौराणिक–ऐतिहासिक प्रसंग पद्यबध्द हुए है जिसके बीच–बीच में जन्मभूमि प्रेम, स्वजातीय गौरव, आत्मसम्मान की व्यंजना करनेवाले भाषण रखे गये है।

गुप्तजी ने 'विकट घर', 'तिलोत्तमा', 'रंग में भंग', 'सौरन्ध्री', 'द्वापर', 'किसान', 'विश्व वेदना', 'काबा और कर्बला' में इसे विस्तार दिया है। कामनाप्रसाद गुरु की 'दुर्गावती' (सरस्वती, फरबरी १९१५) रामचरित उपाध्यय की 'देवसभा', 'देवदूत' इसके उदाहरण है।

काव्यरुपों की भिन्नता भी द्विवेदी युग की विशेषता है। खंडकाव्य, प्रबंधकाव्य, और प्रगति मुक्तकों का प्रयोग काव्य लेखन हेतू किया गया है। साथ ही मुक्तक के बजाय महाकाव्य, आख्यान काव्य, प्रेमख्यान काव्य, गीत काव्य और स्फुट गीतों का स्वतंत्र लेखन हुआ है। खड़ीबोली का प्रयोग गद्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण रहा है। गद्य साहित्य में घटनाप्रधान, चरित्र प्रधान, ऐतिहासिक तथा पौराणिक घटना और कथाओं को लेकर उपन्यास, कहानियों का लेखन किया गया है। अलोचना तथा निबंध साहित्य का समृध्द विकास भी इसी युग में हुआ है। कहने का तात्पर्य है की विषय एवं शिल्पगत विविध प्रयोग इस काल में हुए है।

१३. खड़ीबोली काव्य की भाषा:–

द्विवेदी युग में 'भाषा परिवर्तन' यह एक प्रमुख प्रवृत्ति है। ब्रजभाषा की जगह खड़ीबोली ने काव्य भाषा के रुप में स्थान लिया ''आज खड़ीबोली के भाषा–सौंदर्य, मार्दव और अभिव्यंजना क्षमता के दर्शन के पश्चात उसकी काव्योपयुक्तता विवादास्पद नहीं रह गयी है।'' जो लोग खड़ीबोली प्रयोग पर शाशंक थे उन्हें 'जयद्रथवध', 'भारत–भारती' ने उपयुक्तता समझायी/द्विवेदीजी ने भाषा तथा व्याकरण संबंधी त्रुटियों को दूर कर उसे प्रयोगसामर्थ्यशील बनाया। द्विवेदीजी ने गद्य–पद्य की भाषा भी एक–सी करने का आदर्श–रखा, इसका परिणाम कवियों पर हुआ। 'हरिऔध' जी जैसे कवियों में तो द्विवेदीजी के संस्कृतनिष्ठता का भी अभाव है उन्होने ठेठ हिन्दुस्थानी का प्रयोग 'प्रिय प्रवास' में किया–

''मदीय प्यारी अयि कुंज कोकिला
मुझे बता तू ढिग कूक क्या उठी।
विलोक मेरी चित्त–भ्रान्ति क्या बनी
विषादती संकचित्ता नीपीड़िता।''

द्विवेदीजी ने भाषा को समयानुरूप बदला। डॉ. नगेंद्र ठीक कहते है, 'जयंद्रथ वध' की प्रसिध्दी ने व्रजभाषा के मोह का वध कर दिया 'भारत–भारती' की लोकप्रियता खड़ीबोली की विजय–भारती सिध्द हुई '' ब्रजभाषा का वैभवशाली रुप धराशयी हुआ और खड़ीबोली ने विकास पाया। भाषा के बदलने से जो क्रांति हुई वह आगे हिन्दी साहित्य में स्पष्ट है। छंदोबध्दता को त्यागकर भी कविता जन के ओर अधिक निकट हुई।

१४. छंद–स्वछंद :–

खुद द्विवेदीजी छंदोबध्द तथा तुकबंदीवाली कविता के विरोधी थे इसलिए उन्होंनें स्वछंद को अपनाया। संस्कृत वृत्तों के अतुकांत या अनुप्रास को भी दूर किया गया। खड़ीबोली में ही विविध छंदों का सुंदर प्रयोग इस काल के कवियों ने किया। हिन्दी, उर्दू, संस्कृत को छंदों का भी प्रयोग उत्कृष्ट रूप से किया। मुक्तछंद की कविता का प्रयोग होने लगा। छायावादी अंतिम दौर में तो निराला ने 'मुक्तछंद' कविता का ही पुरस्कार किया। फिर भी श्रीधर पाठक ने लावनी तथा उर्दू, गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही' ने उर्दू, 'हरिऔध' ने संस्कृत, छंदो का प्रयोग किया। ब्रजभाषामें जिन कवियों ने रचनाएँ की उन्होंने रोला, छप्पय, कुण्डलिया, गीतिका, हरिगीतिका, नाटक,लावनी, सवैया, कवित्त आदी छंदों का प्रयोग किया है। अनेक कवि छंद विशेष का प्रयोग करते थे। परंतु इस काल का कवि भाषा के संस्कार कार्य में रत था। उन्होंने नये छंद निर्माण करने में कोई दिलचस्पी नहीं रही होगी।

५आ.३ मूल्यांकन :–

द्विवेदी युग में काव्य वैविध के साथ भाषा निर्णय भी किया गया। खडीबोली को अधिकाधिक परिष्कृत करने का महत्वपूर्ण कार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किया। उसके व्याकरण रूप पर बल दिया उसे काव्य उपयुक्त सिध्द किया। उसे स्थिर कर उसमें परिपक्वता लाई । मनुष्य हित, समाजहित, देशहित के साथ राष्ट्रीयता का विकास करने में द्विवेदीयुगीन कविता उल्लेखनीय है। मैथिलीशरण गुप्त जैसे 'राष्ट्रकवि' का निर्माण द्विवेदी युग की देन है। आतित का चित्रण, गौरव उनके कव्य विषय भले की रहे हो पर वर्तमान पर नजर आवश्य थी। आदर्शवाद, मानवतावाद, राष्ट्रवाद, बौध्दिकता के बल पर कविता का महल खड़ा किया। 'सरस्वती' का प्रकाश द्विवेदीजी का संपादन, पत्रकारिता, साहित्य, निबंध, आलोचना की दिशा में निर्णायक रहा। सत्य और न्याय का समर्थन,नारी सशक्तता, सामान्य जन–जीवन का चित्रण, मानवीय गुणों की महत्ता, गद्य–पद्य दोनों की शैली में परिवर्तन कविता की भूमि रही, जिससे वह समृध्द हुई।

द्विवेदी युगीन कविता सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की कविता रही है। डॉ. नगेद्र ने कहा है,'' इस युग की राष्ट्रीयता, साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता से ऊपर अति उदार और व्यापक राष्ट्रीयता है। मातृभूमि के लिये सर्वस्व– बलिदान, स्वार्थ, त्याग तथा पारस्पारिक वैमनस्य को दूर करने की अमोघ प्रेरणा देकर इन कवियों ने असंकीर्ण राष्ट्रीय भावना को विकसित किया तथा तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन को बल दिया। '' अनेक उच्चादर्शो को इस युग ने प्रतिष्ठापित किया। साहित्य और पत्रकारिता के सामने इसने युग उच्चादर्श रखा यही कारण है की इसे

'जागरण' या 'सुधार' काल के नाम से जाना जाता है। मर्यादा, प्रताप, प्रभा, सरस्वती, इन्दू जैसे प्रसिध्द राजनीतिक एवं साहित्य–संस्कृति संबंधी पत्रों का प्रकाशन इसी काल में हुआ। (खड़ीबोली) भाषा,व्याकरण विमर्श इसी काल की उपज है। द्विवेदी युग के कवियों ने कविता को आगे बढाया। व्यापक रुप में वह समाज–देश के वृत्त में फैल चुकी। 'गर्भरण्डा रहस्य'द्वारा नथुराम शर्मा 'शंकर' के काव्य ने हिंदू धर्म एवं समाज सुधार की भावना जगायी। विधवाओं की बुरी स्थिती तथा मंदिरों में चलनेवाले दुराचार का पर्दाफाश किया है। 'हास्यव्यंग' कविता का जबरदस्त हमला सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, छद्मावरण पर हुआ। सुधार और संघर्ष का यह काल रहा। आदर्शवाद तथा तर्क–बुध्दिवाद ने उनमें सुयोग्य समन्वय लाया।

५आ.४ उपसंहार :–

इस काल से भाषा एवं साहित्य संस्कार प्राप्त हुए। मौलिक कृतियों का सृजन हुआ। जैसे, प्रियप्रवास, जयद्रवध, भारतभारती, यशोधरा, पथिक,आदि। निबंध का विकास हुआ एक ओर सरदार पूर्णसिंह के उच्चकोटि के भावात्मक निबंध है तो दूसरी ओर गुलेरी जी के भाषाशास्त्रीय निबंध, अलोचना में तुलनात्मक, गवेषनात्मक, भावात्मक तथा शास्त्रीय समीक्षा पध्दतियों की नींव पड़ी। पद्मसिंह शर्मा, रामचंद्र शुक्ल, द्विवेदी इसी युग के प्रसिध्द अलोचक है। कहानीकारों में, प्रेमचंद, प्रसाद, कौशिक, गुलेरी सुदर्शन ने युग स्थापित किया। भारतेन्दु काल की अपेक्षा उपन्यास विधा में प्रगति हुई गोपालराम गहभरी, किशोरीलाल गोस्वामी, वृन्दावनलाल वर्मा, प्रेमचंद इसी युग में हुए हिन्दी के लिए विशाल आंदोलन खडा हुआ। १८९३ में काशी नागरी प्रचरिणी की स्थापना हुई। १९०० में देवनागरी आदालत में पहूँची। १८९७ में 'नागरी प्रचरिणी पत्रिका' शुरु हुई। डी. ए. वी. कॉलेजस के और विश्वविद्यालयों के जरिए हिन्दी अध्ययन, अध्यापन, की भाषा बनी। इतिवृत्तात्मकता ने साहित्य को प्रचारात्मक बनाया। आदर्श के मोह के कारण कविता का स्वाभाविक विकास अवरुध्द हो गया। अच्छी बातों का प्रचार होना अच्छी बात है पर कलात्मकता को नकारना साहित्य कला के लिए सर्वथा अयोग्य है, इसमें दो राय नहीं होनी चाहिए।

५आ.४ बोध प्रश्न :–

१. द्विवेदी युगीन लक्षणो को रेखांकित कीजिए।
२. द्विवेदी युगीन काव्य सुधार का काव्य है चर्चा कीजिए।

◆◆◆◆◆◆

छायावाद

६.० इकाई की रूपरेखा

६.१ छायावाद–नामकरण

६.२ छायावाद–परिभाषा और स्वरुप

६.३ छायावाद–काव्य प्रवृत्तियाँ

६.४ मूल्यांकन

६.५ उपसंहार

६.६ बोध प्रश्न

६.० इकाई का उद्देश्य

क. छायावाद का उद्‌भव एवं विकास कैसे हुआ?

ख. छायावाद किसे और क्यों कहा जाता है।

ग. छायावादी काव्य के लक्षण कौनसे है इसे देखना–परखना।

घ. छायावाद के महत्त्व को रेखांकित करना।

ड. छायावाद ने काव्य के विषय एवं शैली में नितांत परिवर्तन किया है।

च. छायावादी कविता का काव्य की दृष्टि से मूल्यांकन करना।

छ. छायावादी कवियों की जीवन दृष्टि का परिचय लेना।

६.१ प्रस्तावना/परिचय :–

दो विश्वयुध्द के बीच अर्थात् सन १९१४ से १९१९ तथा १९३९ से १९४४ के बीच जो कविता लिखी गयी उसे सामान्यत: छायावादी कविता के नाम से जाना जाता है। वस्तुत: यह स्वच्छंदतावादी कविता है, जिसकी अभिव्यक्ति का नाम हिन्दी साहित्य में छायावादी हुआ। छायावादी साहित्य कला एवं भाव के क्षेत्र में उभरकर आया हुआ महत्वपूर्ण एवं महान आंदोलन है। जो नवीन शिक्षा पध्दती, बांग्लासाहित्य का संपर्क, भारत में साम्राज्यवादियों की ओर से देश शोषण के लिए लाया गया यंत्रयुग का विरोध, विदेशी सत्ता प्रति विद्रोह, द्विवेदी युगीन नैतिकता, आदर्शवाद, इतिवृत्तात्मकता की स्थुलता प्रति सुक्ष्म विरोधी प्रतिक्रिया, स्वाधीनता तथा मानवीय मुल्यों की प्रतिष्ठा हेतू, नव कल्पना, बिंब–प्रतीक की सुंदर योजना द्वारा प्रकृति का मनोहारी वर्णन, प्रणायानुभूति की अभिव्यक्ति, सामंती मुल्यों का विरोध, नारी सौंदर्य वर्णन एवं उसकी क्षमता से मुक्ति के लिए अव्हान, संघर्ष के परिणामों, आयामों को उद्‌घाटित करने के लिए 'छाया' के रुप में उभरकर आया वाद 'छायावाद' के नाम से जाना जाता है। इसमें एक और सामाजिक सांस्कृतिक भावधारा के दर्शन होते है तो दुसरी ओर जीवन और जगत के प्रति नितांत वैयक्तिक, रागात्मक अनुभूतियों का अभिव्यक्तिकरण।

नयी आशा–आकांक्षा का यह नया काव्य हिन्दी साहित्य में अमुल्य स्थान रखता है। कविता को नयी दिशा देता है, भाषा के क्षेत्र में 'मुक्त छंद' या बंधनों से रहित की अपेक्षा कर उसे स्वच्छंद गीत–प्रगीतात्मक संगीतात्मक रुपों में, लय में व्यक्त करता है। प्रतीक और बिबों की नयी कल्पना एवं विस्तार भी इसी युग में हुआ। कई दृष्टियों से यह काव्य महत्वपूर्ण है।

६.२ छायावाद–नामकरण :–

आरंभ में आचार्य शुक्ल ने बांग्ला की अध्यात्मीकता, रहस्यवाद का विरोध कविता में किया। ''रहस्यवाद के कारण वे रवीद्रनाथ के काव्य से भी उन्हें विरक्ति थी। विशेष रुप से 'गीतांजली' से। उसकी रहस्यात्मक अभिव्यक्ति वे कतई बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे।'' महावीर प्रसाद द्विवेदी को भी छायावादी कविता से विरोध था उन्होंने मई १९२७ की सरस्वती में 'सुकवि किंकर' इस छदभ नाम से' आज कल के कवि और हिन्दी कविता' नामक लेख में छायावाद की भर्त्सना की थी उन्हें 'छायावादी कविता गोरखधंधा लगी थी.. उसे उन्होंने अस्पृश्य मानकर छोड दिया था। '' स्वंय द्विवेदी जी ने 'छायावाद' के अर्थ को समझाने की चेष्टा इसी लेख में की है– ''छायावाद से लोगों का क्या मतलब है कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी–कविता कहना चाहिए। '' शुक्ल और द्विवेदीजी ने छायावादी कविता का विरोध किया था किन्तु छायावाद यह नाम मात्र हिन्दी में प्रयुक्त हो रहा था। जिसका सर्वप्रथम प्रयोग १९२० में 'श्री शारदा' नामक पत्रिका में मुकुटधर पाण्डेय के लेखों में हुआ। उन्होंने 'हिन्दी में छायावाद' नाम से चार लेख लिखे थे। साथ ही किसी सुशीलकुमार द्वारा भी 'हिन्दी में छायावाद 'नामक दो लेख' सरस्वती में १९२१ को प्रकाशित हुए थे। संभव है इसका प्रयोग मुकुटधर पाण्डेय ने किया हो। क्रमश: मुकुटधर पाण्डेय ने अंग्रेजी या बांग्ला साहित्य में प्रयुक्त 'मिस्टिसिज्म' तथा सुशिलकुमार ने 'कोरे कागद की भाँती अस्पष्ट', निर्मल ब्रह्म की विशद छाया, वाणी की नीरवता, निस्तब्धता का उच्छवास एवं अनंत का विलास कहा है। '' मुकटधर पाण्डे द्वारा प्रयुक्त 'छायावाद' शब्द व्यंग्यात्मक माना जाना है।

आगे चलकर जयशंकर प्रसाद ने भी उसका नामकरण किया ''मोती के भीतर छाया जैसी तरलता होती है। वैसी ही कांती की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है।... छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति व अभिव्यक्ति की भंगिमा पर निर्भर करती थी। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विकृत्ति छायावाद की विशेषता है। अपने भीतर से पानी की तरह आंतर–स्पर्श करके भाषा–समर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति छाया.. कांतिमय होती है। ''

महादेवी वर्मा ने भी प्रसाद की तरह कहा– ''सृष्टि के बाह्याकार पर इतना लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छंद छंद में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे आज भी उपयुक्त लगता है।'' ''छायावाद'' नाम चल पड़ा सामान्यत: उसके विकास के चार कारण बनाये जाते है।' १. द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता से नाराजगी २. अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों का प्रभाव ३. रविन्द्रनाथ की स्वच्छंतावादी, रहस्यवादी कविता का प्रभाव ४. तत्कालीन सामाजिक,

राजनीतिक और आर्थिक परिस्थिति से उत्पन्न निराशा और उदासी। ठीक ऐसे समय कवि एकांतवासी 'योगी' हुए कल्पना उनका सहारा बनी। उस कल्पना, स्वप्न के भीतर जो महल खडा हुआ वह हिन्दी में छायावाद के नाम से जाना जाता है।

मात्र छायावादी कविता इस युग की देन नहीं वह द्विवेदी युग से ही प्रारंभ हो चुकी थी। श्रीधर पाठक, राम नरेश त्रिपाठी ने उस प्रकार की कविताओं का लेखन किया था। स्वच्छंदतावाद के तत्व उनकी कविता से ही प्राप्त होते है। ''यदी उनके काव्य, मिलन,पथिक और स्वप्न का विधिवत अध्ययन किया जाए तो उनमें अधिकांश 'छायावादी काव्यों' के सूत्र मिल जाएँगे। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। मसलन 'मिलन' काव्य की पंक्तियाँ– बीती, निशा, उषा उठ आई/पहन सुनहरा चीर। '' जिन्हें पढ़कर प्रसाद जी की 'बीती विभावरी जागरी' की स्वाभाविक रुप से याद आ जाती है। इसी प्रकार त्रिपाठी जी की 'नीचे समुद्र मनोहर/ऊपर नील गगन है। ' से 'कामायनी' की प्रारंभिक पंक्तियों ''नीचे जल था, ऊपर हिम था'' की स्मृति ताजा हो जाती है। त्रिपाठी जी ने 'आँसू' शीर्षक से भी कविता लिखी थी जिसकी प्रारंभिक पक्तियाँ प्रसाद के 'आँसू' की प्रारंभिक पंक्तियों से मिलती– जुलती है: छेड़ो मत निकल पड़ेंगे कह देंगे / इन आँसुओं में इतिहास है हृदय के। ' इसी प्रकार त्रिपाठी जी की ''आकर कौन हँस गया तम में' की प्रतिच्छवि 'कौन तम के पार रे कह' में देखी जा सकती है। कौन, क्या, कहाँ जैसे प्रश्नाकुल स्वर त्रिपाठी जी की कविताओं से ही शुरु होते है। जो छायावादी कविता के भी चरित्र निर्धारक स्वर बनते है। '' इस दृष्टि से छायावादी कविता लिखने वाले चार आधार स्तंभ है, सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा। इनके अलावा रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकार भट्ट, नरेंद्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'आंचल' हरिकृष्ण प्रेमी, जानकीवल्लभ शास्त्री, सुभद्रा कुमारी चौहान, विद्यावती कोकिल आदियों ने छायावादी काव्य प्रवृत्तियों से युग–काव्य लिखा।

६.३ छायावाद–परिभाषा :–

विभिन्न विद्वानों, कवियों ने छायावाद को परिभाषित करने का प्रयास किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है– ''छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना होगा १. तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्य–वस्तु से होता है अर्थात जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। जैसे पुराने संतों, साधकों के छायाभास और युरोपीय रुपात्मक आभास होते है। बंगाल में ब्रह्म समाज ने प्रवर्तित कर आध्यात्मीक प्रतीकवाद के अनुकरण पर गीत या भजन बनने लगे वे 'छायावाद' कहलाने लगे। बंगाल में रविंद्र के द्वारा यही शब्द साहित्य में आया। वहाँ से हिन्दी साहित्य में। '' इस प्रकार

''छायावाद का सामान्य अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत का कथन'' बाद में ''छायावाद शब्द का प्रयोग विशेष काव्यशैली या प्रतीकवाद शैली अन्य क्षेत्रों में प्रयुक्त होने लगी।''

'छायावाद' अध्यात्मीकता प्रेम को लेकर चला इसलिए वह रहस्यवाद के अंतर्गत ही आता है।

शुक्ल जी छायावाद की परिभाषा देते हुए जो कुछ भी स्पष्ट करते है उसका निष्कर्ष निम्न होगा–

१. भारतीय संतों, साधकों तथा युरोपीय आभासात्मक (प्रतीकवादी) कविता को बंगाल में छायावाद कहा जाने लगा वही धारा हिन्दी में आयी।
२. छायावाद एक विशिष्ट प्रकार की (प्रतिक) काव्य शैली है।
३. छायावाद और रहस्यावाद दोनों एक दुसरे के अंतर्गत आते है।
४. युरोप में जिसे 'रोमेंटिसिज्म' कहा गया उसे हिन्दी में 'छायावाद'।

पं. नन्ददुलारे वाजपेयी:– ''मानव तथा प्रकृति के 'सुक्ष्म' किन्तु 'व्यक्त' सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भाव छायावाद है। '' छायावाद एक ओर व्यक्त सौंदर्य दृष्टि से संबंध रखता है तो रहस्यवाद समष्टि सौंदर्य के अव्यक्त सौंदर्य दृष्टि से।''

''छायावाद' की मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है।''

''छायावाद में आधुनिक युगानुकुल आध्यात्मिकता की भावना है।''

''इसमें मानव और प्रकृति मुख्य विषय है, किन्तु इनका सुक्ष्म–सौंदर्य–दर्शन ही प्रमुख है।''

वाजपेयी ऐसे पहले आलोचक है जिन्होंने छायावाद को ठीक से पहचान कर उस काव्य को प्रतिष्ठा दी। मानवतावादी और आधुनिक दृष्टिकोन से उसका विश्लेषण किया। छायावाद की 'सौंदर्य दृष्टि की विशिष्टता' का प्रतिपादन किया। '' मानव अथवा प्रकृति के सुक्ष्म किन्तु व्यक्त सौंदर्य में अध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है। '' रहस्यवाद और छायावाद के अंतर को समझाते हुए 'उसे सांस्कृतिक अध्यात्मिकता' के ऊँचे स्थान पर प्रतिष्ठित किया। उनके मतानुसार छायावाद की मुल प्रेरणा मानवीय और सांस्कृतिक है। इसलिए वह रहस्यवाद फिर चाहे वह संतो का हो या युरोप का उसमे छायावाद भिन्न है। '' इसके नवीन मानवीय जीवन में आत्म–सौंदर्य की झलक देखी और इसलिए उसे आधुनिक युग की स्वतंत्र चिन्तन–धारा'' माना है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल की मान्यताओं का खंडण करते हुए बांग्ला से उसके आने को भ्रामक मानते है। उनके अनुसार –

१. छायावाद नाम बिना सोचे–समझे जल्द दिया गया था, जिसमें
   (क) ''मानवतावादी दृष्टिकोन प्रधान था (ख) कवि अपने विचारों को व्यक्तिगत चिन्ता और अनुभूति के रंग में रंगाकर अभिव्यक्त करते थे। (ग) उसमें मानवीय विश्वासों, आचारों, क्रियाओं चेष्टाओं के बदले तथा बदलते हुए मुल्यों को स्वीकारने की प्रवृत्ति थी। (घ) उसमें छन्द,अलंकार, रस, ताल, तुक जैसे परंपराबध्द से दूर रहने का भाव था। (ड.) उसमे शास्त्रीय रुढ़ियों प्रती कोई अस्था नही थी।''
२. छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम था, उसमें नयी शिक्षा के भाव है तथा वह केवल पाश्चात्य का प्रभाव नहीं है। कवियों की अभ्यंतरीक आकुलाहट नवीन भाषा–शैली में अभिव्यक्त हुई है। ''
३. सभी कवियों में थोड़ी– बहुत आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की व्याकुलता थी। अर्थात द्विवेदजी यह स्पष्ट करते है की छायावाद नितांत भारतीय सांस्कृतिक चेतना से मुक्त है परंतू उसपर पाश्चात्य प्रभाव है। मानवतावादी विचारधारा की वैयक्तिक चिन्तन भूमी, नवीन जीवन मूल्यों की स्वीकृति, नयी शैली में व्यक्त हुई है। '' उसमें

''मानवीय तथा सांस्कृतिक कारणों से उत्पन्न आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति हुई है।''

गंगाप्रसाद पाण्डेय:– ''किसी वस्तु में एक अज्ञात, ''सप्राण छाया की झाँकी पाना अथवा आरोप करना छायावाद है। '' अर्थात यह स्पष्ट होता है की रहस्यवाद. की अंतिम परिणति छायावाद है।

शांतिप्रिय द्विवेदी:– ''छायावाद एक दार्शनिक अनुभूति है। '' यह रहस्यावादी अर्थ में ही छायावाद को समझती है तथा अस्पष्ट भी है।

डॉ. रामकुमार वर्मा:– ''परमात्मा की छाया आत्मा पर पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा पर यही छायावाद है। '' वर्मा जी भी शुक्ल की तरह यह छायावाद को रहस्यवाद का अभिन्न रुप मानते है।

डॉ. नगेंद्र:– ''स्थुलता के प्रति सुक्ष्म विद्रोह'' के रुप में स्वीकारते है। यही परिभाषा सर्वाधिक रुढ़ है। सुत्र रुप में काव्य के क्षेत्र में जब–जब स्थुलता की स्थापना होने लगती है, तब उसके प्रती विद्रोह होने लगता है। वह शिल्प, भाषा, विषय इन तिनों काव्यांगों में स्थुलता जब प्रवेश करती है तब उसके प्रति विद्रोह सुक्ष्मता से स्थान ग्रहण करता है। वे उदाहरण भी देते है। द्विवेदी कालीन कविता विषय, भाषा और शिल्प की दृष्टि से बड़ी ही इतिवृत्तात्मक, अभिधाभूलक और स्थुल है। उसके प्रति विद्रोह स्वाभाविक ही था।

राजनीतिक रुप से ''छायावाद–युग भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग है। '' एक और जनता दासता के कारण अत्मकेंद्रित ही गई थी, रुढि ग्रस्त हो चुकी थी। ऐसे में ईसाई धर्म प्रचारक भी भारतीय धर्म की निस्सारता को प्रतिपादित कर रहे थे। '' एक ओर राजनीतिक क्षमता दूसरी ओर से सांस्कृतिक आक्रमण' ने चिन्तकों को सोचने के लिए प्रवृत्त किया। गांधी का प्रवेश राजनीति में हो चुका। साम्राज्यवादियों के प्रति विद्रोह भाव तीव्र हुआ तथा सत्याग्रह, अहिंसा, अध्यात्म, उपवास, मौन् जैसे धार्मिक, अध्यात्मिक जैसे सुक्ष्म मुल्यों के प्रतिश्रध्दा बढ गई डॉ. नगेंद्र ने इसे ही ''स्थुल से विमुख होकर सूक्ष्म के प्रति विद्रोह ''कहा है।

डॉ. रामविलास शर्मा:– छायावाद को मध्यवर्गीय चेतना मानकर लिखते है– ''छायावाद स्थुल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा वरन् थोथी नैतिकता, रुढ़िवाद और सामंती–साम्राज्यवादी बंधनों के प्रति विद्रोह कहा है। ''

वस्तुत: यह किसी भी प्रकार के बंधनों प्रती, विशेषत: साम्राज्यवाद, सामंतवाद, देशी पुंजीवाद के प्रति मार्क्सवादी विद्रोह के रुप में रामविलासजी देखते है।

अलोचकों के अलावा छायावादी कवियों ने भी 'छायावाद' की परिभाषा दी है।

जयशंकर प्रसाद:– ''छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौदर्य, प्रकृति–विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ है। '' प्रसाद जी छायावाद में स्वानुभूति की प्रवृत्ति, प्रकृती का सुंदर सजीव वर्णन, और शैली विविधता में युगानरुप वेदना की अभिव्यक्ति को स्वीकारते है।

सुमित्रानंदन पंत:– पंत छायावाद को युरोपीय रोमांटिसिज्म से प्रभावित मानते है। इसलिए उसमें ''वेदनानुभूति' रोमांटिक शोक'' के रुप आई है। वर्डस्वर्थ की कविता में प्राकृतिक सुंदरता के साथ प्राकृतिक करुण और निराशा के भाव झलकते है अर्थात प्रसाद

छायावाद को भारतीय संस्करण मानते है तो पंत युरोपीय। 'पल्लव' की भूमिका मे यह मत आया है''

महादेवी वर्मा:– ''छायावाद स्थुल की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुआ था। ... छायावाद ने कोई रुढ़िगत, अध्यात्म या वर्गगत सिध्दातों का संचय न देकर हमें केवल समष्टिगत चेतना और सुक्ष्मगत सौंदर्य सत्ता की ओर जागरुक कर दिया था, इसी से उसे यथार्थ रुप में ग्रहण करना हमारे लिए कठिन हो गया। '' महादेवीजी ने ''स्थुल की प्रतिक्रिया एवं सुक्ष्म सौंदर्य सत्ता की ओर जागरुकता', 'युगानुरुप वेदना की विवृत्ती, पलायन नही,' 'व्यक्तिगत आनुभूति की स्वच्छंदता'', प्रकृति के प्रती सर्वात्मवाद का अनुभव आदी की अभिव्यक्ति गीतात्मक रुपों में ठीक ढंग से हो सकती है, ऐसा माना है।

उक्त सभी परिभाषाओं से छायावाद का स्वरुप किस प्रकार का था यह स्पष्ट हो जाता है। सर्वसामत परिभाषा का अभाव रहा है। फिर भी प्रत्येक परिभाषा एक प्रवृत्ति को उजागर करती है किन्तु हम सामान्य रुप से कह सकते है की, छायावाद विशिष्ट अनुभूति की विशिष्ट अभिव्यक्ति है। कविता विषय, वृत्ति, शैली, भाषा, समष्टि, नारी, प्रकृति, और भी कुछ के संबंध में इस विशेष काव्य दृष्टि को हम पाते है। छायावाद एक युग विशेष घटना रही है। जिसे विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोनों से देखने, जानने समझने, के प्रयत्न किये है।

६.४ छायावाद : काव्य प्रवृत्तियाँ

परिभाषाओं देखते समय हमने छायावाद की विभिन्न प्रवृत्तियों का जिक्र किया है। फिर भी यह ध्यान रहे की काव्य की विषय वस्तु की खोज में छायावादी कवि बाहर नहीं झाँकता बल्की भीतर की और लौटता है। इसलिए वह सबसे पहले समाज से, प्रकृति से, उसकी ओर से नहीं बल्की अपनी ओर अर्थात दृष्टि से देखता है। दार्शनिक एवं अध्यात्मीक पक्ष के साथ नारी सौंदर्य राष्ट्रीय–सामाजिक भावना भी दिखाई देती है। उसकी महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों का विवेचन निम्न है–

१. वैयक्तिकता :–

यह छायावाद की प्रधान प्रवृत्ति है। आधुनिक साम्राज्यवाद, औद्योगिकता से पुरित शोषण सामंती व्यवस्था तथा भारतीय पुंजीवादी व्यवस्था के विकास में वैयक्तिकता का विकास हुआ है। बाद में इसका बृहद विकास दर्शन. सौंदर्यवर्णन, प्रकृति, रहस्यात्मकता, शिल्प, भाषा के विरोध व वर्णन मे व्यक्त हुआ है। द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता, स्थुल दर्शन के प्रती छायावाद में सूक्ष्म सौंदर्य और वैयक्तिक राग–विराग की स्थापना कविता में हुई। वैयक्तिकता के कारण स्वच्छंतावाद छायावादियों में पनपा। उन्होंने काव्य के भाव तथा कला पक्ष में नीती व्यक्तित्व को ही उतारा। सामाजिक रुढ़ियों के प्रति, आधुनिक शिक्षा के परिणाम स्वरुप विद्रोह हुआ। डॉ. नामवर सिंह लिखते है– पहले तो उसे पशु–पक्षियों की तरह प्राकृतिक जीवन में ही अपनी नीजता, स्वतंत्रता और आत्मभाव की संभावना दिखाई पड़ी, किन्तु बाद में जब कदम–कदम पर उसका संघर्ष सामाजिक रुढियों से होने लगा ती उसने अपने व्यक्तित्व को उसके प्रतिरोध में खड़ा किया।'' 'आत्मकथ्य' उसका विषय हो गया

'मैं' उसकी शैली हो गई। निराला ने तो स्पष्ट कहा–

मैंने मैं शैली अपनाई, देखा एक दु:खी निज भाई
दु:ख की छाया पड़ी हृदय में झट उभड़ वेदना आई।।''

अंग्रेजी शिक्षा से व्यक्ति की अस्मिता, विशिष्टता और उसके भीतरी अहं से व्यक्तिगत चेतना का विकास हो जाता है। इसलिए भी इस युग में 'वैयक्तिकता की चेतना' के दर्शन, धर्म, राजनीति, सामाजनीति, अर्थनीति जैसे जीवन के विविध क्षेत्रों में दिखाई देते है। परिणामत: यह 'मैं' अर्थात 'स्व' का काव्य हो गया, नीजी भावनाओं स्वप्नों का काव्य हो गया। उसकी अपनी दुर्बलताएँ भी उसने काव्य में रख दी। समाज भय से वे कुछ भी छिपाते नहीं, प्रणयानुभूति को भी नहीं। ''पंत जी ने 'उच्छवास', 'आँसू' और 'ग्रंथि' में प्रणयानुभूति की अबाध अभिव्यक्ति की। 'उच्छवास' की सरल बालिका कोई आध्यात्मिक सत्ता नहीं है, और न उसके साथ व्यक्त किया हुआ प्रणय–संबंध कोई अध्यात्मिक भावना है। सीधे शब्दों में 'बालिका मेरी मनोरम मित्र थी'। लेकिन समाज तो ऐसी चीजों को बर्दास्त कर नहीं सकता, इसलिए उस लांच्छन के विरुध्द अपने प्रेम की पवित्रता'' को भी घोषित करता है–

अभी तो अब तक पावन प्रेम
नहीं कहलाया पापाचार
हुई मुझको ही मदिरा आज
हाथ यह गंगा–जल की धारा।

प्रसाद पंत, महादेवी निराला में वैयक्तिकता अर्न्तमुखता से उपजी है, कभी वे अपनी अनुभूति का प्रभाव प्रकृति, वस्तु अथवा व्यक्ति पर देखते है तो कभी वस्तु, प्रकृति, अथवा व्यक्ति का प्रभाव अपनी अनुभूतियों पर। प्रसाद के 'लहर', 'झरना', 'आँसू' पंत के 'पल्लव', 'वीणा', ग्रंथी', निराला की 'गीतिका' सरोज स्मृति, वन बेला महादेवी की यामा, दीपशिखा आदि रचनाएँ इस प्रकार की है।

'कामायनी' का मनु व्यक्तिगत की खोज करता हुआ आकुलाता है वह कहता है–

वह गुहा ञ्ज मरु अंचल में हूँ खोज रहा अपना विकास ! ''आत्मविकास की टोह में निकला यह आधुनिक मनु धीरे–धीरे युगान्त तक जाते–जाते इतना व्यक्तिवादी हुआ ''मैं तो अबाधगति मरुत सदृश्य, हूँ चाह रहा अपने मन की!'' और अंत में यह स्वेच्छाचारी मनु संपूर्ण समाज के विरुध्द ही युध्द घोषित करता है। विचित्रता तो यह है की प्रजातंत्र की नांव प्रारंभ में उसी ने डाली, वही सर्व सत्ताधारी निरंकुश शासक हुआ और समाज विरोध के कारण अंत में घायल होकर समाज से दूर कैलास पर्वत पर पलायन करता है। ''व्यक्तिवाद के कई बिंदू छायावाद में है। कभी वह अपने ही व्यक्तित्व में वैयक्तिक है, कभी निर्जन प्रकृति में, कभी समाज मे, अपनी ही कल्पना–विलास में, सामाजिक–सामंती मूल्यों के विरुध्द असंतोष और निराशा में। जिसका परिणाम यह हुआ की वह व्यक्तिनिष्ठ बन गया। '' विश्व–व्यथा से व्यथित होने की बजाय अपनी व्यथा से विश्व–व्यथित होने की कल्पना करने लगा। '' इसका एक छोर रविंद्र की चित्रकारिता, में है तो दुसरा 'इतिवृत्तात्मकता' में परंतू इनकी व्यक्तिगतता रुग्णता की नहीं चेतना की सूचक है। उनकी व्यक्तिगता धीरे–धीरे सामाजिकता के पक्ष में उदात्तता का स्वरुप ग्रहण करती है। निराला की 'सरोज स्मृति' प्रसाद कामायनी, पंन्त की 'नौकाविहार', महादेवी की करुणा, दु:खवाद यह सभी समष्टिगतता के उदाहरण है।

व्यक्तिवाद की स्वच्छंदता का एक दुसरा पक्ष स्वच्छंदता या हलावाद की मस्ति भरे आलम में उभरकर आया।

२. सौंदर्य भावना :–

छायावादी सौंदर्य भावना रीतिकाल की तरह नारी के शरीर तक सीमित नहीं है, न द्विवेदी युग की तरह स्थुल, बल्की सुक्ष्म सौंदर्य के दर्शन उसमें होते है। वैयक्तिकता के कारण उनकी सौंदर्य दृष्टि का विस्तार हुआ। यह सौंदर्य बोध केवल प्रकृति चित्रण तक सीमित नही है, बल्कि मानवीय सौंदर्य बोध में 'स्थुल शारीरिकता की जगह स्वस्थ मांसल तथा भावात्मक शोभा भी है'' छायावादी कवियों के लिए नारी करुणा का सौंदर्य आकाश भाँती था–

''कपोलों में उर का मृदू भाव
श्रवण नयनो में प्रिय बर्ताव
सरल संकेतों में संकोच
मृदुल अधरों में मधूर दुराव''

इन पंक्तियों में नारी के बाह्याकार के साथ उसके सुंदर अंगों समवेत अंतरिक भाव–सौंदर्य की झाँकी दिखाई देती है। प्रसाद की 'कामायनी' में आया नारी लज्ञा का सौंदर्य हो, या निराला की 'सरोज स्मृति' में आया सरोज का भावात्मक, उत्कट, श्रृंगारीक एवं शुभ तथा नया सौंदर्य वर्णन–

''तू खुली एक उच्छवास–संग
विश्वास–स्तब्ध बँध अंग–अंग
नत नयनों से आलोक उतर
काँपा अधरों पर थर–थर–थर।''

सौंदर्य की अनेक कोटियाँ छायावादी कविता में आयी है। वस्तु, भाव, मन के अनुपम सौंदर्य का गहराई से अनुभव कवियों ने किया इसलिए 'आँसू' करुणा का, 'लहरें' उत्साह का और 'चाँदनी' परम सत्ता के संकेत देती है। सौंदर्य के प्रती वे बड़े तटस्थ भी है तो आत्मीय भी। प्रकृति सौंदर्य ने इन्हें मानविय सौंदर्य तक पहुँचाया। उनकी सौंदर्य भावना को उदात्त, भव्य और दिव्यता प्रदान की। एक ओर प्रसाद ने श्रध्दा के शरीरिक सौंदर्य का चित्रण रमणीय रुप से किया–

''नील परिधान बीच सुकुमार,
खिल रहा मृदुल अधखिला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघवन बीच गुलाबी रंग। ''

तो दुसरी ओर निराला 'प्रेयसी' में आदर्श को स्थापित करते है–

''दोनों हम भिन्न वर्ण, भिन्न जाति, भिन्न रुप,
भिन्न धर्म भाव, पर केवल अपनाव से, प्राणों से एक थे।''

वर्ण एवं जाती भिन्नता के बावजूद अपनत्व का यह प्रेममय आदर्श सामाजिकों के सामने वे रखते है।

३. प्रेम का स्वरुप :–

प्रेम के विभिन्न रुप छायावादी कविता में रहे है। नारी को 'प्रेम मुर्ती' के रुप में प्रतिष्ठित तो किया ही पर साथ ही प्रकृति प्रेम, मानव प्रेम, शिशु प्रेम, अज्ञान चिरन्तन के प्रति प्रेम, आध्यात्मिक प्रेम, मातृप्रेम, के विविध आयाम भी हमें दिखाई देते है। इन कवियों ने प्रेम के संबंध में रुढ़िवादी या परंपरागत प्रेम भाव को नकारा यही कारण है की उनका प्रेम विशाल–व्यापक है वे जाती,वर्ण, क्षेत्र के भीतर बंधे नहीं रहे। प्रेम वर्णन में भी वैयक्तिकता की भावना का आधिक्य रहा है। नारी प्रेम संबंधी वर्णन में भी स्थुलता पर बल नहीं बल्कि उनकी मानसिक दशाओं का चित्रण किया है। इसलिए उसमें सुक्ष्मता आयी है। मिलन की अनुभूति के अपेक्षा विरहानुभुतियों के चित्रण में वे अधिक सफल रहे है।

निराला ⟶ 'दोनों हम भिन्न, भिन्न जाति, भिन्न रुप, भिन्न धर्म भाव, पर केवल अपनाव से, प्राणों से एक थे।''

निराला का यह आदर्शभाव हो या प्रसाद का विरह भाव–

''विस्मृत हो वे बीती बातें, अब जिनमें कुछ सार नहीं।
वह जलती छाती न रही, अब वैसा शीतल प्यार नही।।
सब अतीत में लीन हो चलीं आशा', मधु, अभिलाषाएं।
प्रिय की निष्ठूर विजय हुई,पर यह तो मेरी हार नही।।''

हृदय की पीड़ा का कहीं, उल्लेख यहाँ नहीं पर प्रिय–प्रियेसी की भावनाओं का सौदर्य–विरह–वर्णन यहाँ है।

या महादेवी के भीतर की प्रेम भावना की लीनता स्पष्ट हुई है–

''तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या ?''

हो या प्रसाद का जल–स्थल, अवकाश में फैला परोक्ष सत्ता प्रती प्रेम, जो सृष्टी में सर्वव्यापी, अगोचर है–

भरा नयनों ने मन में रुप, किसी छालिया का अमल अनूप,
जल–थल–मरुत–व्योभ में, जो छाया है सब ओर!

प्रेमवर्णन के मार्मिक दृश्य योजना छायावाद की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। हृदय के सुक्ष्मातिसुक्ष्म भावनाओं का मनोरम चित्रण इन कवियों ने किया है।

४. रहस्यवाद:–

छायावादी रहस्यवाद ''प्राचीन आध्यात्मवादी भावना से आबध्द नहीं है, वह भावना के क्षेत्र में किसी भी प्रतिबंधों को स्विकारते नहीं। ''ठीक यहीं पर वह मध्यकालीन रहस्यवाद से अलग हो जाते है। रहस्यवाद की चार भूमियाँ मानी गयी है। पहली अलौकिक सत्ता के प्रति आकर्षण, दुसरी उसके प्रति दृढ़ानुराग, तिसरी विरहानुभूति की तिव्रता और चौथी है मिलन का आनंद। जो कबीर दादू दयाल में पायी जाती है। ''विरह में कबीर जैसे अक्खड़ साधक का हृदय भी हाहाकार का अनुभव करता है। उसके रोम–रोम से वेदना फूटती है, जिसे सहने की अपेक्षा मृत्यू आलिंगन बेहतर, श्रेयस्कर लगता है– या विरहिणी को मौत दे, या आपा दिखलाय। आठ पहर का दाझणाँ मो पै सह्या न जाय!!'' जैसी कठोरता, छायावादी काव्य में नहीं परंतू

उनकी दार्शनिक अनुभूति बाह्य पदार्थो की अपेक्षा आंतरिकता में अधिक है। महादेवी का प्रेम और वेदना से भरा रहस्यवाद इसी कोटि का है। यह बात सही है की रहस्यवाद प्रति तन्मयता, विरहानुभूति की तिव्रता का मध्ययुगीन काव्य की तुलना में अभाव है। वहाँ का रहस्यावादी कवि लैकिकता मे अलैकिकता की ओर बढ़ा और स्थुल से सुक्ष्मता की ओर किन्तु यहाँ छायावादीयों मे क्रम उलटा है। – ''वीणा' में पन्त रहस्यवादी थे, 'गुंजन' में 'पत्नी' या 'प्रेयसी' वादी और 'युगान्त' के बाद स्थुल भौतिकवादी बन गए।''प्रसाद की 'कामायनी' में भी दर्शन की शुष्कता है, निराला ने 'अद्वैत दर्शन' का पाठ किया पर कविता में उसे नहीं उतारा। महादेवी मात्र दृढता से रहस्यवाद की ओर अग्रेसर रही किन्तु कबीर की तरह नहीं। महादेवी की 'दीपशिखा ' व 'यामा' तथा प्रसाद की 'झरना' और 'लहर' में अज्ञात तत्व के प्रति माधुर्य भाव रहा है। महादेवी कहती है–

प्रिय चिरंतन है सजीन
क्षण–क्षण नवीन सुहागीन मैं।
तुम मुझमें प्रिय, फिर परिचय क्या?

प्रसाद का यह जिज्ञासामुलक रहस्यभाव–

हे अनन्त रमणीय कौन तुम?
यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे हो? क्या हो? इसका तो,
भार विचार न सह सकता।

महादेवी ने विरहानुभाव की, आत्मा–परमात्मा की पीड़ा –

''अलि कैसे उनको पाऊँ?
वे आँसू बनकर मेरे, इस कारण ढुल–ढुल जाते;
इन पलकों के बन्धन में में बाँध–बाँध पछताऊँ ।''

नंददुलारे वाजपेयी ने ''परंपरागत अध्यात्मिकता से मुक्त रहस्यवाद के होने की बात छायावाद ने की यह स्वतंत्र चिन्तन धारा के रुप में'' कविता में आयी है।

५. कल्पना शीलता:–

कल्पना काव्य के मुल में होती ही है। परंतू छायावादी कल्पना 'स्वप्न' या 'दिवास्वप्न' के रुप की है। ''छायावाद–युग की अधिकांश प्रतिभाएँ छायाजीवी है, उसी तरह अनेक पात्र कल्पनातीत' स्वप्नजीवी है। निराला की 'राम की शक्ति पुजा' इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। जिसे जीव संघर्षों में हारते हुए राम कल्पना के द्वारा शक्ति अर्जित करता है या आत्मविश्वास के लिए विजय की कल्पना करता है। अंर्तदृष्टि–दायिनी और जीवन शक्ति–दायिनी इन दोनों की अभिव्यक्ति छायावाद में हुई है। कामायनी का मनु वर्तमान के असन्तोष को देखकर अतीत में सुखमय होने की कल्पना करता है–

आह, कल्पना का सुन्दर वह
जगत मधुर कितना होता।

सुख स्वप्नों का दल छाया में
पुलकित हो जगता–सोता। ''

इस संसार में इन कवियों को जो भी श्रेष्ठ, सुंदर, उदात्त मधुभ, अपराजेय दिखता है उसे उन्होंने 'कल्पना' का नाम दिया है। पंत 'पल्लव' में कहते है– ''कोई भी गंभीर, व्यापक तथा महत्वपूर्ण अनुभूति काल्पनिक ही होती है। '' इसलिए उन्होंने 'बादल' को 'विपुल कल्पना से त्रिभुवन की', 'अंबुधि की कल्पना महान' आदि कहते है; 'नक्षत्र' की 'ऐ अनन्त की अगम कल्पना' बतलाते है, 'छाया' को भी '' गूढ कल्पना– सी कवियों की' मानते है, तो 'अनंग' को 'प्रथम कल्पना कवि के मन में' और 'अप्सरा' को भी 'अखिल कल्पनामयी अप्सरा' संम्बोधन करते है। इसी तरह प्रसाद जी भी हिमालय की उदात्तता बतलाने के लिए ही उपमान चुनते है– 'विश्व कल्पना–सा ऊँचा वह!'' निराला ने भी कविता को 'कल्पना के कानन की रानी' कहा है। अर्थात यह स्पष्ट है की इस कल्पना ने ही उन्हें रहस्यमय बनाया, अदृष्ट, असीम, अनंत की अनुभूति कल्पना ने ही उन्हें प्रदान की। डॉ. नामवरजी ने ठीक लिखा है– ''अतिपरिचित वस्तुओं में भी अपरिचित सौंदर्योद्‌घाटन की अन्तर्दृष्टि की तथा विरुप वस्तुओं को भी रुपमय बनाने की क्षमता प्रदान की, इसी ने कवि में नवीन ऐन्द्रिय–बोध जगाये और अभूतपूर्व संवेदनशीलता उभारी। '' कल्पना की इस अतिशयता के कारण ही छायावादी कविता को जन–जीवन से दूर या 'पलायनवादी' कहा जाता है।

६. मानवतावादी दृष्टि:–

इस काल खंड में रविंद्रनाथ और अरविन्द दो ऐसे महापुरुष हुए जिनकी विश्वमानवतावाद एवं कल्याण दृष्टि का प्रभाव युग पर पड़ा। साथ ही गांधीजी, स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस जैसे मानवहित की कामना करनेवाले चिंतकों का प्रभाव इस दौर की कविता पर पड़ा। युग की दासता की 'कारा' में 'बंदिनी' नारी के मुक्ति की कल्पना–भाव इस युग में महत्वपूर्ण हो उठा। नारी सौदर्य में तन–मन को अभिव्यंजित किया। उसे 'भोग्या' नही 'देवी, माँ, सहचरि' कहता है।

शोषितों के प्रति सहानुभूति भी व्यक्त करता है। निराला की 'भिक्षूक', 'विधवा', 'इलाहाबाद' के पथ पर' (तोडती पत्थर) में मानवतावादी दृष्टिकोन प्राप्त होता है। श्रम जीवियों के प्रती विशेष करुणा उनमें है। 'बादल राग' में किसानो प्रति गहरी संवेदना के कारण ही बादलों बुलाता है –

''तुझे बुलाता कृषक अधीर....
चुस लिया है उसका सार
हाड मांस ही है आधार।''

महादेवी भी अपनी करुणा में सबको समाहित करना चाहती है। या बुध्द के दु:खवाद के शाश्वत होने का प्रतिपादन करती है। 'कामायनी' में 'मनु' द्वारा प्रसाद 'आनंदवाद' और 'समरसत्ता' की चाह को व्यक्त करते है। पंत, निराला को दलितों, दु:खितों /शोषितों प्रती सहानुभूति रही है। इसलिए पंत मनुष्य को– 'मानव तुम सबसे सुंदरतम्' कहते है। किसी आलोचक ने ठीक कहा है की 'छायावाद में मानव स्वतंत्रता एवं गौरव की भावना है। '' उसकी स्वतंत्रता में ''मुक्ति और गौरव में सम्मान का भाव

है। छायावाद में यही मानवतावाद है।

७. प्रकृति चित्रण:–

प्रकृतिसौंदर्य की अनुपम राशी ही छायावादी कवियों ने बिखेरी है। प्रकृति का आलंबन, उद्दीपन, मानवीकरण, रहस्यमयी शक्ति आदि रुपों का वर्णन इस काव्य में हुआ है। '' छायावादी कवि ने प्रकृति के अन्त:स्पन्दन का सुक्ष्म अंकन किया'' है। फिर वह निराला की 'संध्या सुंदरी' का वर्णन हो अथवा 'जुही की कली' की निरागसता का। उसकी प्रत्येक अवस्था का मानवीकरण किया गया है। उसे चेतन रुप में देखा गया है। प्रकृति सौंदर्य के साथ ही रहस्यवाद, नारी सौंदर्य निखरा हुआ है। 'जुही की कली' ने प्रकृती वर्णन द्वारा पुरुष और नारी के संगम का ही चित्रण उभरकर आता है–

सोती थी
जाने कैसे प्रिय आगमन वह
नायक ने चुमे कपोल
डोल उठी वल्लरी की जड
जैसे हिंडोल!

प्रसाद ने 'कामायनी' में किया 'उषा का चित्रण'को लहर में 'पनघट में डुबी'', उषा नगरी' में देखते है–

बीती विभावरी जाग री।
अम्बर पनघट में डुबो रही
तारा घट उषा नगरी।

सभी कवियों ने जीवन की सभी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से की है। महादेवी की कविता 'सांध्य–गीत' में अपने जीवन और प्रकृति के बीच के साधर्म्य को व्यक्त करती है–

प्रिय सान्ध्य गगन, मेरा जीवन।
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया–सी काया वीतराग

प्रकृति वर्णन में वे नारी सौंदर्य और प्रेम भावना की व्यंजना करते है प्रमाद कहते है –

पगली हो संभाल ले कैसे छूट पडा तेरा अंचल।
देख बिखरती है मनिराजी अरी उठ बेसुध चंचल।'

प्रसाद द्वारा रात्री को किया गया यह संबोधन किसी नव–यौवना को जगाने और उसके सुध–बुध खो बैठने के श्रृंगारभाव का ही चित्रण है।

८. नारी सौंदर्य वर्णन :–

छायावाद में रीतिकालीन नारी सौंदर्य की नग्नता नही मिलती बल्कि प्रकृति के माध्यम से वह सहज एवं सरस बना पड़ा है। नारी सौंदर्य के मनमोहक वर्णन से छायावादी कविता भरी पड़ी है। नारी के श्रृंगार वर्णन में कवि की रुची रही है।

''छायावादी कवियों ने नारी को उसके प्रेयसी के रुप में ग्रहण किया, जो ह्रदय और यौवन की संपूर्ण विभूतियों से परिपूर्ण है तथा जो धरती के यथार्थ सौंदर्य एवं स्वर्ग की काल्पनिक सुषमा से सुसज्जित है। विवाह–बंधन में न पड़ते के कारण एक ओर तो वह लाज, उमंग और उत्साह से भरपूर है, दूसरी ओर वह स्वकीया–परकीया पचड़े से भी दूर है। '' प्रसाद, पंत निराला के काव्य में उसके शारिरिक–मानस सौंदर्य का वर्णन प्रकृति के माध्यम से ही किया गया है–

शशि मुख पर घूँघट डाले, अंचल में दीप छिपाए।
जीवन की गोधूली में, कौतूहल से तुम आए।।

में कुतुहल भाव नारी सौंदर्य में नयापन लाता है– या 'श्रध्दा' का शाररिक सौंदर्य वर्णन प्रसाद यों करते है–

''नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघवन बीच गुलाबी रंग।।''

स्त्री सौंदर्य वर्णन का यह सुष्ठ रुप बड़ा मनमोहक है। साथ ही पुत्री, माँ, शैशव के रुप में भी यह वर्णन किया गया है। कामायनी में नयी 'लज्ञा' का चित्रण तो बेजोड़ है किन्तु निराला ने अपनी पुत्री के सौंदर्य वर्णन का भी स्मरण 'शोकगीत', सरोज स्मृति में किया है। विवाह के शुभ कलश का जल पड़ने के बाद वह नवल रुप में 'निरालेपन' से सुशोभित हो चुकी है–

''तू खुली एक उच्छ्वास–संग
विश्वास–स्तब्ध बँध अंग–अंग
नत नयनों से आलोक उतर
काँपा अधरों पर– थर थर थर''

स्वंय निराला भी यह अनुभव करते है की,–

''श्रृंगार, रहा जो निराकार
रस कविता में उच्छवसित–धार
गाया स्वर्गीया–प्रिया–रंग
भरता प्राणों में राग–रंग
रति–रुप प्राप्त कर रहा वही
आकाश बदल कर बना मही।''

इसके संबंध में डॉ. नामवर जी ने लिखा है– ''अर्थात 'सरोज ही नहीं बल्कि उसका रुप भी कवि की सृष्टि है– कवि के निराकार भाव ही जैसे रुप धारण करके 'सरोज' बन गये ! भावात्मक दृष्टि से मूर्त रुप–चित्रण का यह उत्कृष्ट उदाहरण है– दृष्टिकोन अमूर्त है किन्तु दृश्य मूर्त है। ''

कभी–कभी नया ठाठ छायावादी कवी ने श्रृंगार–परंपरा का निर्वाह करते हुए बांधा है– मुक्त छंद की पहली कविता 'जुही की कली' में रीतिकालीन श्रृंगार का निर्वाह हुआ है–

''नयनों के डोरे लाल गुलाल–भरे, खेली होली।
जागी रात सेज प्रिय पति–सँग रति सनेह– रँग छोली,
दीपित दीप–प्रकाश, कंज छवि– मंजु–मंजु हँस बोली–

मली मुख चुंबन–रोली।

फिर भी रीतिकालीन का ठप्पा निराला या अन्य कवियों पर कभी लगाया जा नहीं सका उसका कारण है 'प्रकृति'। नारी के अशरीरी सौंदर्य की कल्पना सुक्ष्मता, रमणीयता को सामने लाता है।

९. वेदना और निराशा का काव्य :–

छायावादी कविता में वेदना का स्वरुप या तो समष्टिगत है आध्यात्मिक या नीजी दु:ख (जैसे निराला का जीवन) परंतू वेदना की सर्वाधिक अभिव्यक्ति प्रसाद, निराला एवं महादेवी के काव्य में हुई है। महादेवी अज्ञात प्रियतम प्रति मिलन सुख भी नहीं चाहती। वह कहती है– 'मिलन का मत नाम लो मैं विरह में चिर हूँ। 'महादेवी के दु:ख या वेदना के तीन कारण बताये जाते है। एक कल्पना प्रवणता 'यामा' की भूमिका में इसका जिक्र उन्होने किया है। दो, बौध्द धर्म के प्रति महाकरुणा एवं दु:खवाद के प्रति असीम अनुराग जैसे, ''मैं नीर भरी दु:ख की बदली'' में जीना चाहती है। बुध्द के दु:खवादी दर्शन का परिचय उन्हें बचपन में ही हो गया था। दु:ख को वे काव्य मानती है जो सारे संसार को एक सुत्र में बाँध देता है। महादेवी के दु:ख विषयक विचार है–

१. उनमें दु:ख का आकर्षण भौतिक सृमृध्दि की प्रतिक्रिया स्वरुप है।
२. बौध्द दर्शन के प्रभाव के कारण दु:ख प्रिय है
३. दु:ख संसार के एक सुत्र में बांधनेवाला काव्य है।
४. दु:ख के दो रुप होते है– एक संवेदनशील व्यक्ति की करुणा, दो आत्मा का क्रंदन। ये दोनों रुप उन्हें प्रिय है। '' और तीन चिरन्तन प्रिय के प्रति आकुलाहट भरा निवेदन सेवा का सक्रिय जीवन रहे। जिसे उन्होंने 'संकेतिक दम्पत्य भाव–सुत्र'से व्यक्त किया है'' मैं तुमसे हूँ एक एक है। जैसे रश्मि प्रकाश। मैं तुमसे हूँ भिन्न–भिन्न ज्यों घन से तड़ित विलास। प्रसाद के यह 'आँसू' में घनीभूत पीड़ा ही बरस पडी है –

''इस करुणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती,
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती।''

मात्र प्रसादजी की वेदना जीवन दर्शन के रुप में प्रकट हुई है। अध्यात्मिक वेदना की कलात्मक अभिव्यक्ति 'श्रध्दा' के चिंतन में आयी है –

''दृष्टि जब जाति हिमगीरी ओर,
प्रश्न करता मन अधिक अधीर।
धरा की यह सिकुड़न भयभीत,
आह कैसी है? क्या है पीर।''

पंत ने तो काव्य का मुल स्त्रोत वेदना को ही माना है–

''वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान

उमडकर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान''

निराला का जीवन तो बड़ी विषम सामाजिकता का रहा है। उनके काव्य में कहीं वह जीवन–दर्शन के रुप में आयी तो कहिं निराशा के रुप में।

ग्लानि और आत्मसंताप के रुप में वह प्रकट हुई है–

''दु:ख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ, आज जो नहीं रही।''

यह निराशा वह जीवन में भी अनुभव करते रहे। जीवन भी उन्हे शुष्क लगता है–

''स्नेह निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है।

इनकी वेदना और निराशा सर्वदेशीक– सार्वकालीक है। उसमें आत्मबध्दता होने के बावजूद असीम विस्तार है। वह समष्टिगत है परंतू कभी–कभी वे अधिक निराशा का अनुभव करते है, तो असंतोष, विषम दुनिया से दूर जाना चाहते है। जैसे प्रसाद–'ले चल मुझे भूलावा देकर मेरे नाविक धीरे धीरे'। यह वेदनानुभव एवं निराशा उनका यथार्थ भी है, कल्पना और आदर्श भी। इसलिए वह चिर भी है।

१०. बदलते जीवन मूल्यों की व्यंजना :–

छायावादी कविता में मूलत: विद्रोह रहा है। यह द्विवेदीयुगीन आदर्शवाद, नैतिकता, मानवता तथा भाषागत इतिवृत्तात्मकता के प्रती वह छायावादी युगीन कविता में उभरकर आया है। यह विद्रोह भारतीय पुंजीवाद, साम्राज्यवाद, सामंतवाद विरुध्द भी है। अर्थात उनकी दृष्टी परिवर्तन या बदलाव की रही है। हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते है– ''मानवीय आचारों, क्रियाओं, चेष्टाओं और विश्वासों के बदले हुए और बदलते हुए मूल्य को अंगीकार करने की प्रवृत्ति'' छायावादी कवियों में थी। इसलिए इस कविता में विद्रोह के भाव स्थानापन्न हुए है वे सौंदर्य, प्रेम, प्रकृति, नारी भावना, करुणा. मानवता, प्रेम, सामाजिक, राजनीतिक आदर्श, मान्यताएँ, मर्यादाएँ, विचार–स्वातंत्र्य धार्मिक बंधन, रुढ़ियाँ, परंपरा का विरोध कर वह नये मूल्यों का स्वीकार करते है। ''व्यक्तिवाद या व्यक्तिस्वातंत्र्य के आदर्श की स्थापना करता है'', ''बुध्दि के विरुध्द हृदय और स्थूल के विरुध्द सुक्ष्म'', ''यथार्थ के बंधनों से उबकर प्रकृति, रहस्य, कल्पना और क्रांति के स्वप्न लोक में पलायन करता है'', ''ह्रसोन्मुख पूँजीवादी, प्रवृत्तियों, कलावाद, निराशावाद, अहंवाद का विकास वह करता है। '', ''सामाजिक यथार्थवाद या प्रगति का प्रारंभ वह करता है।'', ''डॉ. शंभुनाथसिंह ने इन्हीं कारणों से छायावाद को मध्यवर्गीय चेतना का लौटना मानते है। यह मुल्यगत–परिवर्तन काव्य के भाव–भाषा–शिल्प पक्ष में स्पष्ट है। यही प्रवृत्ति छायावाद के सांस्कृतिक चेतना को हमारे सामने लाती है। हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने उसकी रहस्यात्मकता के साथ काव्य प्रवृत्तियों को ''भारतीय परंपरा में उद्भूत सांस्कृतिक चेतना'' के रुप में देखा है। रामविलास शर्मा भी साम्राज्यवाद, सामंतवाद, रुढ़िवाद के विरुध्द मध्यवर्ग का विद्रोह मानते है।

११. वैज्ञानिक दृष्टिकोन :–

विज्ञान के अविष्कारों ने भौतिक तथा बौध्दिक चेतना का विकास किया। जीर्ण पुरातन के नष्ट–भ्रष्ट होने की कल्पना छायावाद में 'वैज्ञानिक दृष्टिकोन को ही दर्शाती है। भौतिक प्रगति, बुध्दिवाद का विकास, मानवता की विजय', नयी संस्कृती अर्थात लोकतंत्र की स्थापना का भाव, द्वंद्वात्मकता अथवा संघर्ष विचार यह विज्ञानवादी दृष्टिकोन को ही स्पष्ट करते है। वैज्ञानिक दृष्टिकोन में 'तर्क' बहुत महत्वपूर्ण होता है। प्रसादजी की 'कामायनी' में पुरानी–नयी संस्कृति की टकराहट, भाव–बुध्दी का संघर्ष, मानवता की विजय इसी दृष्टि के परिचायक है। कामायनी मुलत: देव–असुर मानव–संस्कृति की टकराहट का काव्य है। निरकुंश शासन कर्ता के विरुध्द जनता का संघर्ष है। ''इडा सर्ग में देव–असुर संस्कृतियों का संघर्ष है (था एक पुजता देह दीन/दुसरा अपूर्ण अहंता में अपने को समझ रहा प्रवीण) फिर देव और असुरों की साँझी संस्कृति से टकरा कर नयी मानवीय संस्कृति विकसित होती है, जो नश्वर है, पर अपनी नश्वरता में ही सर्जनात्मक बनती है और प्रेम की नयी अभूतपूर्व क्षमता को विकसित करती है।'' वस्तुत: कामायनी प्रसादजी का उद्देश्य ही है.''.. मनु का उद्देश्य 'देव संस्कृति' के विकल्प रुप में 'मानव संस्कृति' की रचना है'' विजयमोहन सिंह के अनुसार मात्र 'वह विफल हो चुकी है' कामायनी में भौतिक शक्ति संचार से मानवता विजय का विचार स्पष्ट हुआ है –

''शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरे है, हो निरुपाय,
समन्वय उनका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय!''

शायद बिखरी हुई शक्ति नये लोकतंत्र से प्राप्त होगी, निरंकुशों, बर्बरों, तानाशाहों की, कामायनी के संदर्भ में मनु में विलासी 'देव–दम्भ' सब कुछ नष्ट होने का भाव है– ''विकल वासना के प्रतिनिधि वे सब मुरझाए चले गए'' स्वंय को देव संस्कृति का अवशेष समझते है तो अपने आपसे वितृष्णा उन्हें होती है– ''आज अमरता का जीवित हूँ। मैं वह भीषण जर्जर दंभ।''

अधिकांश अलोचकों ने इड़ा को 'बुध्दि', श्रध्दा को 'भावना' के संघर्ष रुप में देखा है। बुध्दि पर भावना की विजय 'कामायनी' का उद्देश्य, भारतीय संस्कृति की जयगाथा, पाश्चात्य संस्कृति विरोध में बखान किया है प्रसाद ने फिर भी बुध्दिवाद के महत्व को अंकित किया है–

''बिखरी अलकें ज्यों तर्कजाल।''
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशि खण्ड सदृश्य था स्पष्ट भाल।
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के तब विज्ञान ज्ञान।।''

नया विज्ञानमुलक दृष्टिकोन मानवजाती के लिए हितकर होगा का भाव, मानव के शक्तिशाली होने का भाव कवी मनुष्य में पैदा करता है। इसलिए पंत 'समर्थ शक्तिवान' के जीने का अधिकार मानते है'' तो निराला राम को शक्ति की 'काल्पनिक' पूजा बांधकर 'शक्ति अर्जित' करने का यत्न करवाते है ताकी वह

विजयीनी हो जाये। शक्ति का मूल्य छायावादी समय में बदल चुका था। वह ’मानवतावाद’ और ’व्यक्तिस्वतंत्रता’ में निहित हो गया था। जो व्यक्ति स्वतंत्र है वह मौलिक सृजन– अर्जन करता है। कामायनी में देवसंस्कृती का नाश और नये लोकतंत्र का उदय इसी की पृष्ठभूमि में बना है, ऐसा कहा जा सकता है।

१२. देश–प्रेम और राष्ट्रीय भावना का विकास

छायावादी कविता पर देश–समाज से दूर होने का आरोप लगाया जाता है परंतू ऐसा नहीं है। जागरण काल में जनसामान्य में स्वतंत्रता प्रती प्रेम एवं ललक भी इन कवियों ने निर्माण की। इसलिए कुछ विद्‌वानों ने कहा है’’ छायावादी काव्य में व्यक्तिवादीता मात्र व्यक्तिवादिता बनकर नही आया बल्कि राष्ट्र प्रेम की भावना ने उसे असामाजिक होने से बचा लिया। ’’ अनेक कवियों में स्वतंत्रता प्रेम स्पष्ट हुआ है। कभी वह अतीत गौरव के रुप में है तो कभी बलिदान, उत्सर्ग के रुप में तो कभी ’जीर्ण–पुरातन’ में हलचल ’उथल–पुथल’ में है। कभी केवल स्वतंत्रता प्रेम में उभरकर आया है–

’’अरुण यह मधुमय देश हमारा’’

हो अथवा ’’हिमाद्री तुंग श्रृंग से प्रबृध्द शुध्द भारती या ’किरण’ नामक कविता का संदर्भ प्रकारान्तर से भारतीय गौरव से है, जो उस समय ब्रिटिश अधिपत्य से धुसरित हो गया है। कवि को यह उम्मीद भी है कि ’भला उस भोले सुख को छोड और चुभोगी किसका भाल’’ प्रसादजी को लगता है ’पराधीनता की बेडियों को काटकर भारत फिर एक बार स्वतंत्रता को पायेगा, खोया गौरव वापस लौट आयेगा।

सुमित्रानंदन पंत की ग्रामवासिनी भारत माता की उदासी, दीनता, विषण्णता निर्वासितता का चित्र लेकर उपस्थित होती है–

‘‘भारतमाता
ग्रामवासिनी !
खेतो में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला–सा अंचल
गंगा यमूना में आँसू जल
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी
दैन्य जडित, अपलक नत चितवन,
अधरों में चिर नीरव–रोदन
युग–युग के तबसे विषण्ण मन
वह अपने घर में प्रवासिनी।’’

इस कविता में कवि देश की विपन्न स्थिति के प्रति करुणार्द्र ही है। निराला में भी राष्ट्रीयता की भावना प्रबल है। उनकी राष्ट्रीय भावना के दो पक्ष है १. राजनीतिक २. सांस्कृतिक ’जागो फिर एक बार’ तथा ’शिवजी का पत्र’ राजनीतिक है तो ‘यमुना’ खड़हर के प्रति ; ‘दिल्ली’ आदि कविताएँ सांस्कृतिक राष्ट्रीयता से संबंधीत है। ’तुलसीदास’ भारती वंदना को श्रध्दा पूर्वक प्रस्तुत करती है–

भारति, जय विजय कर,
कनक–शस्त्र–कमल धरे....
स्तव कर बहु अर्थ भरे।

या माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की चाह' में स्वतंत्रता के लिए उत्सर्ग अभिलाषा का गीत–

''मुझे तोड लेना वनमाली
उप पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।

इसमें राष्ट्रीय आंदोलन के लिए प्रेरणा, क्रांति की भावना की 'चाह' भरी हुई है। रहस्यात्मकता, वैयक्तिकता के साथ–साथ राष्ट्रीयता की भावना भी छायावादी कवियों में है।

१३. गीतितत्व :

छायावादी कविता और कवि प्रेम और सौंदर्य की भावना से पुरित है। उनकी इन्ही भावनाओं के कारण वैयक्तिकता और आत्माभिव्यक्ति काव्य में हुई। यही कारण है की सहज एव तीव्र भावों का प्रकटिकरण गीतात्मकता के रुप में स्पष्ट हुआ है। स्वानुभूति छायावादी काव्य का मूलाधार है उनका काव्य चाहे छंदबध्द हो या मुक्त छंद का उसमें गीततत्व के माधुर्य एवं सौंदर्य भरा पड़ा है। निराला छायावाद के सशक्त और प्रौढ़ गीतकार माने जाते है। आचार्य शुक्ल के अनुसार ''संगीत को काव्य और काव्य को संगीत के निकट लाने का प्रयास निरालाजी ने किया।'' निराला की गीत–दृष्टि को पाँच भागों में रखा जा सकता है। १. प्रार्थनापरक गीतः– इसमें उन्होने कामना की भावना व्यक्त हुई है। जननी का दिव्य सौंदर्य–मुग्ध गान मांगलिक भावनाओं से ओतप्रोत है। २. नारी सौंदर्य परक गीत:– इसमें उन्होंने मानवीयता की दृष्टि से नारी के विभिन्न भाव–सौंदर्य का मनोहर वर्णन प्रस्तुत किया है 'प्रिय भामिनी जागी', 'स्पर्श से लाज लगी,' 'मौन रही द्वार', 'नयनों के डोरे', लाल गुलाल भरे खेली होली' आदि गीत इस कोटि के उत्कृष्ट उदाहरण माने जाते है। ३. प्रकृति परक गीत:– इनमें प्रकृति की सौंदर्य मणीराशी विपुल मात्रा में बिखर पड़ी है। प्रकृति का श्रृंगारीक सौंदर्य वर्णन निराला की अपनी खासियत है। '' सुखी ही यह डाल वसन वासन्ती लेगी; सखी वसन्त आया मेघ के घन केश,' रंग गई, पग–पग धन्य धरा–धरा'' आदि उनके प्रसिध्द गीत है। 'संध्या सुंदरी' का सर्वोत्तम गीत तो प्रसिध्द है ही। ४. दर्शन परक गीत:– हमने पहले ही स्पष्ट किया है की निराला पर अद्वैतवादी दर्शन का प्रभाव रहा है। अधिकांश गीतों में वो उतर आया है– 'पास ही रे हीरे की खान, खोजता कहाँ फिरे नादान, तुम्ही गाती हो अपना गान, पाता रे मैं सम्मान' आदि गीतों में दार्शनिक भावनाओं का वर्णन आया है। ५. और अंत में राष्ट्रीय गीतः– भी बहुताधिक मात्रा में गंभीरता से पाये जाते है। '' भावावेश या व्यर्थ जोश–खरोश'' उनके राष्ट्रीय गीतों में नहीं है। कहीं माँ भारती की वंदना है, कहीं जागरण का स्वरनाद, कहीं सुखद भविष्य की कामना है। ''जागो फिर एक बार,' 'वर दे वीणा वादिनी,' आदि'' गीत राष्ट्रीयता

और भारतीय जनमानस मे रचे–बसे है वस्तुतः निराला की 'गीतिका' इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

प्रसादजी के 'कामायनी' में भी गीत है –

''तुमुल कोलाहल कहल में
मैं हृदय की बात रे मन !
विकल होकर नित्य चंचल
खोजती जब नींद के पल
चेतना धक–सी रही तब
मैं मलय की वात रे मन।

साथही ''बीती विभावरी जागरी !'' ''जैसा प्रिया को जगाने का श्रृंगारप्रधान मनोभाव है,वैसे सुक्ष्म पृष्ठभूमि से समुची चेतना के जगाने का उपक्रम।'' पर पूरा गीत कविता भाव में आया है–

''अधरों में राग अमंद पिये,
अलकों में मलयज बंद किये–
तु अबतक सोई है अली।
आँखों में भरे विहाग री।

या सुमित्रानंद पंत के गीतों का भावात्मक सौंदर्य 'प्रतिक्षा'में उभरकर आया है–

''कब से बिलोकती तुमको,
उषा आ वातायन से ?
संध्या उदास फिर जाती,
सूने गृह के आँगन से
लहरें अधीर सरसी में
तुमको तकती उठ–उठकर
सौरभ समीर रह जाता
प्रेयसि, ठंड साँसे भर।''

गीतों के पाँच तत्व गीने जाते है, गेयता–संगीतात्मकता, वैक्तिकता, अनुभूति की ताजगी और सच्चाई, भावों की घनीभूत तीव्र अभिव्यक्ति, प्रभावोत्पादकता आदी छायावादी गीतों में भावानुभूति के साथ गेय–संगीतात्मक,लयात्मकता के बंध आये है।

१४. बिंब प्रतीकात्मक शैली

छायावाद में बिंब प्रतीकात्मक शैली का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है वस्तुतः छायवादी कवियों की अभिव्यंजना क्षमता हिन्दी साहित्य में अनूठी है। उसकी शैली में बिंब प्रतीक के साथ चित्रात्मकता, लाक्षणिकता, व्यंग्यात्मकता, गीतात्मकता मुक्तक का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है

बिंब–

कल्पना, रहस्यवाद और वैयक्तिकता के कारण छायावाद में बिंबों का प्रयोग सभी कवियों ने किया है नामवर सिंह जी ने छायावाद में प्राप्त वर्ण, ध्वनि, गंध, स्पर्श,

रस आदि के अत्यंत सुक्ष्म ऐन्द्रिय बोध का परिचय दिया है '' वर्ण सौंदर्य के रुप में 'अग्निशिखा' के रंग को स्पष्ट स्पष्ट करते हुए प्रसादजी उसे 'मधु पिंगल तरल अग्नि' कहते है तो हिम–संसृति पर पड़ते हुए आलोक का वर्ण–सौंदर्य कल्पना द्वारा विशद करते है –

''सित सरोज पर क्रीड़ा करता
जैसे मधुमय पिंग पराग।''

'' इसी प्रकार अरूण–अधर पर धवल मुस्कान की वर्णच्छायाएँ अलगाते हुए कहते है कि जैसे रक्त किसलय पर –

''अरूण की एक किरन अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम।

दूसरी ओर पंत '' पावस–कालीन पपीहा, झींगुर, दादुर, बादल, बूँदें, निर्झर आदि से उठनेवाले विभिन्न प्रकार के स्वर बिंबों का चित्र'' प्रस्तुत करते है।

''पपीहों की वह पीन पुकार
निर्झरों का भारी झर् झर्
झींगुरों की झीनी झनकार
घनों की गुरु– गंभीर–घहर
बिन्दुओं की छननी–छनकार
दादुरों के वे दुहरे स्वर।
ह्दय हारते है विविध प्रकार
शैल– पावस के प्रश्नोत्तर

निरालाजी ने अनमिका की 'प्रेयसी' में प्रणय के प्रथम उदय–काल की मन:स्थिति का बिंब इस प्रकार खिंचा है –

''दूर थी
खिंचकर समीप ज्यों मैं हुई
अपनी ही दृष्टि से,
जो था स्मीप विश्व
दूर दूरतर दिखा।''

इस प्रकार के कई बिंबों का प्रयोग कमायनी में हुआ है। 'काम सर्ग' में तो 'चाक्षू' बिंबों द्वारा ही स्वप्न और यथार्थ धुलमिल जाते है । '' इड़ा' सर्ग के प्रारंभ में प्रसाद जब कहते है, 'किस गुहा से अति अधीर

झंझा प्रवाह सा निकला
यह जीवन विक्षुब्धमहासमीर ''

तो 'अति अधीर', 'झंझा प्रवाह', और 'विक्षुब्ध ' जैसे शब्दों में जी विकलता और आवेग है, मनु के मानस की विक्षुब्धता को तो व्यक्त करते ही है कथा में अन्तर्निहित 'तनाव' को भी बरकरार रखते है। इसी प्रकार 'इड़ा' के लिए जब ' बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल '' जैसे बिंब का प्रयोग किया जाता है तो सामान्यता इड़ा

'बुध्दि' का व्यंजक मानी जाती है।'' श्रध्दा को भीतरी–बाहरी सौंदर्य की संपूर्णता में उतारने के लिए प्रसाद ने 'मूर्त' अमूर्त बिंबों का प्रयोग किया है। श्रध्दा के लिए '' कौन तुम ? संसृति– जलनीधि तीर तरंगों से फेंकी मणि एक ?'' और 'प्रथम कवि का ज्यों सुंदर छन्द '' और 'हृदय की अनुकृति बाह्य उदार' का प्रयोग करते है परंतू श्रध्दा सदेह मुर्तिमान नहीं हो पाती तब उसके लिए ''नील परिधान बीच सुकुमार/ खुल रहा मृदुल अधखुला अंग/खिला हो ज्यों बिजली का फुल/ मेघवन बीच गुलाबी रंग'' कहा गया तो 'इडा' के विपरीत श्रध्दा के बालों से घिरे चेहरे के लिए कहा गया 'घिर रहे थे घुँघराले बाल अंस अवलंबित मुख के पास' ''कामयानी में, कमल, चंद्रमा, हिरणी, शावक, भीन, जैसे बिंबों–प्रतिकों की भरमार है।

प्रतिक

प्रतिकों के द्वारा कोमल अभिव्यक्ति छायावादी कवियों ने की है। मूर्त के लिये अमूर्त उपमान 'बिचारी अलके ज्यों तर्क जाल 'का प्रयोग करते है तो अमूर्त के मूर्त उपमान प्रयोग में 'कीर्ति किरण–सी नाच रही है। 'का तथा ''स्वभाव की शीतलता बतलाने के लिए 'चाँदनी का स्वभाव में वास 'कहना और विचारों का भोलापन दिखाने के लिए 'विचारों में बच्चों को साँस 'लिखना नूतन–प्रतिक–व्यंजन का उदाहरण है।'' इसी प्रकार गद्‌गद के अल्हाद अभिव्यक्ति के लिए 'खिला पुलक कदम्ब–सा था भरा गद्‌गद बोल ' और प्रवासिनी–प्रिया की मधुर याद को प्रकट करने के लिए प्रिया को दूर की तान से उपमानीत करना– अनुपमता का सुचक है। प्रवासित 'रत्नावली' के लिए निराला की उपमा–

''वह आज हो गयी दूर तान
इसलिए मधुर वह और गान''

छायावादी कवियों में पंत ने तो छोटे–छोटे विशेषणों में अदभूत चमत्कार पैदा किया है – नील झंकार, गंध–गुंजित, तुतला उपक्रम, मूर्च्छित आतप, तुतला भय, तुतला उपक्रम मूर्च्छित आतप तुतला भय तुमुल तम आदि '' निराला ने तुमुल नाद संध्यासुंदरी की प्रतिकात्मकाता उत्तम है।

चित्रात्मकता :– चित्रात्मकता छायावाद की महत्वपूर्ण विशेषता है जैसे महादेवी ने विराट उपमाओं के सहारे सुंदर चित्र खिंचे है–

''तम–तमाल वे फुल
गिरा दिन पलकें खेलीं।''

और

''अवनि, अम्बर की रूपाली सीप में
अरल मोती–सा जलधि जब कॉपता
प्रसाद– शशि मुख पर घूँघट डाले, ऑचल में दीप छिपाए।
जीवन की गोधुलि में कौतुहल से तुम आए''

इस प्रकार का प्रयोग कर छायावाद को केवल काव्य नहीं बल्की संगीत, चित्र गीत बना दिया। उसे प्रभावोत्पादक बनाया। आचार्य शुक्ल जैसे छायावाद विरोधी आलोचकों ने उनके बिंब, प्रतीक, शैली का भुरी–भुरी प्रशंसा की है। इसी के कारण

छायावाद जाना जायेगा का विचार भी वह व्यक्त करते है।

१५. भाषा :–

द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मकता के विरोध में सौंदर्य से मुक्त कोमल–कांत पदावली का प्रयोग छायावादी कवियों ने किया है। छंदबध्दता के विरोध में 'मुक्त छंद' की अवधारणा को निराला ने लाया है। इनकी भाषा में नाद, लय, माधुर्य है। नाद, संगीत का बड़ा उपयोग कविता में हुआ है। इस प्रकार की विशेषता लयात्मकता ब्रज में नहीं खड़ी बोली में लायी है। उनका शब्द संस्कार संस्कृत काव्य से होते हुए मध्ययुगीन ब्रज भाषा के संस्कारों में आकार पाया गया। रविंद्रनाथ तथा अंग्रेजी की रोमैंटिक शब्दावली के पढ़ते पढ़ते ''पतझर की भाषा... कुसुमित शब्दों से लद गयी।'' शब्द संयोजन में छायावादी कवि शिल्पी की भूमिका निभाता है। जिसका जिक्र पंत की 'पल्लव' की भूमिका में मिलता है। पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी के शब्दों के बारे में नामवरजी कहते है– पन्त के शब्द अपेक्षाकृत छोटे, असंयुक्त वर्णवाले, हल्के तथा वायवी है। प्रसाद के शब्द अधिक प्रगाढ, मधुमय और नादानुकृतिमय है। महादेवी के शब्दों में रुपये की–सी स्पष्ट ठनक और खनक है और निराला में सन्धि–समास युक्त विविध जाति और ध्वनिवाले शब्दों में भी अनुप्रासमय व्यंजन–संगीत उत्पन्न करने की चेष्टा है।'' खड़ी बोली को नादात्मक, माधुर्य से मुक्त करने के लिए शब्दों के प्रती 'अनावश्यक मोह' और उसकी 'फिजुलखर्ची' कल्पना के कारण आयी है। ''भावोच्छ्वास की प्रधानता के कारण छायावादी वाक्य प्रवाह से शब्दों का क्रम प्राय: गड़बड़ा गया। प्रसाद की भाषा में इस तरह के दूरान्वयवाले वाक्य बहुत मिलते है। इसके अतिरिक्त भाषा को कोमल बमाने के लिए प्राय: सभी छायावादी कवियों ने 'है', तथा 'था' आदि सहायक क्रियाओं का बहिष्कार किया।'' इस प्रकार की भाषा का 'नवकविता' का एक उदाहरण भी नामवरजी ने दिया है–

''तरुवर के छायानुवाद सी
उपमा सी, भावुकता सी
अविदित भावाकुल भाषा सी
कटी छँटी नव कविता सी''

जिसमें निष्क्रिय वाक्यों की श्रृंखला ही दिखाई देती है और कुछ नहीं। 'कामायनी' की भाषा के संबंध में तो दिनकर ने लिखा है– कामायनी में खड़ीबोली का जितना असमर्थ रुप प्रकट हुआ है, उतना और किसी काव्य में नहीं मिलेगा '' खड़ीबोली मुक्तकों की स्वतंत्र रचना मात्र छायावाद की देन है। 'कामायनी' ही इसका प्रमाण है। निराला ने भी 'गीतिका' की भूमिका में लिखा है, मैं खड़ीबोली में जिस उच्चारण–संगीत के भीतर से जीवन की प्रतिष्ठा का स्वप्न देखता आया हूँ, वह ब्रजभाषा में नहीं।'' निराला में संस्कृत की तत्सम शब्दावली का अधिक्य रहा है। 'राम की शक्तिपुजा' जैसा काव्य इसका उदाहरण है।

६.४ मूल्यांकन :-

द्विवेदीयुगीन उपदेशात्मकता, इतिवृत्तात्मकता, स्थुलता की जगह छायावाद ने सुक्ष्मता, सौंदर्य, कल्पना के सहारे सामाजिक यथार्थ की प्रतिष्ठा काव्य में की। विषय तथा विषयाभिव्यक्ति के बंधनों को तोडकर 'मुक्त' 'स्वच्छंद' हो गये। प्रेम-नारी के प्रती भोगवादी मांसलता के स्थानपर उसकी मनो अवस्था का चित्रण कर उसे उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया। प्रकृति के भव्य-दिव्य रूप को सुक्ष्म दृष्टि से संपन्न किया। उसके भीतरी शक्ति को पहचानकर उसके अस्तित्व की सत्ता को काव्य में स्थापित किया। एक दृष्टि से यहीं से 'आधुनिक रहस्यवाद' का प्रारंभ हो जाता है। सामाजिक शोषितों, कृषको प्रती संवेदना दिखलायी। नारी के अस्तित्व को स्विकार कर उसकी भोग्य छबि को दूर किया। उसकी अंतरंगता को काव्य का विषय बनाया। गीत-प्रगीत शैली क स्वीकार कर काव्य को भावानुकुल बनाया। 'कामायनी' जैसा महाकाव्य, निराला की 'मुक्तछंद अवधारणा' ने खड़ीबोली प्रयोग में चार चाँद लगाये। छायावादी युग आधुनिक हिन्दी कविता में स्वर्ग युग माना जाता है। सामाजिक, राष्ट्रीय भावना की परोक्ष अभिव्यक्ति छायावाद को असामाजिक होने से बचा पायी। स्वप्नों की अधिकता तथा रहस्यवाद के कारण वह कल्पना लोक में जा पहूँची थी। उसे यथार्थ पर उतारा गया। उत्तरछायावादी युग में पंत ने छायावाद का 'युगान्त' लिखा प्रसाद ने 'कामायनी' के अंत में 'विलासिता की संस्कृति के नष्ट' होने की, नये युग के आने का घटना का जिक्र किया। निराला ने तो 'कृषको की अधीरता से लेकर, कुकुरमुत्ता जैसी लम्बी व्यंग्यात्मकता को लाकर रहस्य,सुक्ष्म की 'छाया' को दूर किया। महादेवी भी शाश्वत दुःखों से नाता जोड़कर 'अबला सिवा करुण-गीतियाँ' लिखने लगी।

छायावाद ने भावना और विचार, कला और साहित्य के क्षेत्र में भारी परिवर्तन लाये। इसलिए शुक्ल, नगेद्र ने उसके चिर-स्मरण रहने की बात की' हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उसमें सांस्कृतिक परंपरा को देखा। भारतीय सामाजिक परंपरा से उसे जोड़ा। भाषा के क्षेत्र में तो उसने अद्‌भूत क्रांती लायी। डॉ. देवराज के शब्दों में 'आधुनिक हिन्दी काल को सुकर शब्दकोश और कोमल मधुर अनुभूतियाँ छायावाद की ऐतिहासिक देन है।

६.५ उपसंहार :-

छायावादी काव्य प्रवृत्तियों से यह बात हमारे सामने आती है की यह काव्य घोर व्यक्तिवादी है और उसका केंद्र स्वंय कवि का आत्मकेंद्र रहा है परंतू उनकी व्यक्तिवादीता जनता की आशा-निराशा के बीच अभिव्यक्त हुई है। इसलिए वह समाज से दूर नहीं है। यह निश्चित है की सामाजिक संतोष से भागकर वह स्वप्नलोक में जा बैठा, एकांतता की शरण ली परंतू उसके पीछे का कारण भी तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक जीवन ही है। उसमें वेदना और निराशा के भाव राष्ट्रीय अंदोलन की असफलता के कारण आये थे। फिर भी वह उससे दूर नहीं रहा। 'अरूण यह मधुमय देश हमारा' जैसी मातृभूमि पर गर्व करने की प्रवृत्ति छायावादीयों में रही है। किसी विद्वान ने कहा है अनुभूति में यह साहित्य भक्तिकालीन साहित्य की समकक्षता

में आता है और कलात्मकता में रीतियुग की तुलना में आता है। इस परंपरा में भावों की कोमलता, अनुभूति की गहराई और जीवन के प्रती एक संवेदना है। यह कविता व्यक्तिवादी कविता है परंतू आधुनिक प्रयोगवादियों जैसा कुंठाग्रस्त एवं संकीर्ण नहीं है।'

एक ओर 'आँसू' और 'तुलसीदास' जैसे खंडकाव्य है तो दूसरी ओर 'कामायनी' जैसा महाकाव्य। इसके अतिरिक्त पंत की 'परिवर्तन' निराला की 'राम की शक्तिपुजा' प्रसाद की 'प्रलय की छाया' महादेवी की दीपशिखा, यामा जैसी उल्लेखनीय कृतियाँ इसी युग में सृजित हो पायी है।यह अन्तर्मुखी साहित्य बहिर्मुखी चेतना जगता है।

६.६ बोध प्रश्न :-

१. छायावाद की काव्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
२. छायावाद के संबंध में कवियों, आलोचकों के विचारों का परिचय दीजिए।

◆◆◆◆◆◆

७

प्रगतिवाद

(१९३६-१९४३)

७.० इकाई की रूपरेखा

७.१ प्रगतिवाद उद्‌भवकी पृष्ठभूमि

७.२ प्रगतिवाद- अर्थ स्वरूप

७.३ प्रगतिवादी साहित्यकार

७.४ प्रगतिवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि

७.५ प्रगतिवाद की प्रवृत्तियाँ

७.६ मुल्यांकन

७.७ उपसंहार

७.८ बोध प्रश्न

७.० इकाई का उद्देश्य

क. प्रगतिवाद के उद्‌भव एवं विकास को जानना-समझना।

ख. प्रगतिवाद के अर्थ एवं स्वरूप को विश्लेषीत करना।

ग. प्रगतिवादी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।

घ. प्रगतिवादी साहित्य के मानदंड को देखना-परखना।

ड. प्रगतिवादी काव्य वैशिष्ट्यों का परिचय लेना।

च. प्रगतिवाद ने साहित्य को कैसे सामाजिकता की ओर उन्मुख किया। याह बोध लेना।

छ. प्रगतिवाद साहित्य में आम आदमी की समस्याओं को रेखांकित करता है।

७.१ प्रगतिवाद उद्‌भव की पृष्ठभूमि :-

सामाजिक चेतना से मुक्त, एक आंदोलन के रुप में १९३६ में जिस काव्यधारा का छायावाद की क्रोड से ही जन्म हुआ उसे प्रगतिवादी या प्रगतिशील आंदोलन कहते है। जिसकी प्रेरणा मार्क्सवाद में रही है। यह आधुनिक किसी साहित्य में यथार्थवाद के लेकर आया। विषय-सामाजिक स्थितियों पर पहार करते हुए साहित्य का संबंध जीवन निर्माण से इसी समय जोड़ा गया। छायावाद से ही तात्काल पंतजीने छायावाद के 'युगान्त' की घोषणा कर 'युगवाणी' को जाना, अपनाया यह 'युगवाणी' कृषकों, दलितों, श्रमीकों सर्वहरा बहुजनों की वाणी का सुगपात था। अगाज था। पंतजी ने ही कहा था '' प्रगतिवाद वर्ग वैषम्य को दूर कर श्रमिकों तथा कृषकों की मंगल भावना से प्रेरित है। उसमें पूँजीपतियों तथा शोषकों के विरुध्द क्रांति का आहवान करनेवाला विद्रोह का स्वर है'' महापंडित राहूल सांस्कृत्यायन ने भी कहा था- ''प्रगतिवाद

कोई संकीर्ण संप्रदाय नहीं है। प्रगतिवाद कला की अवहेलना नहीं करता। यह तो कला और उच्च साहित्य के निर्माण में बाधक रुढ़ियों को हटाकर सुविधा प्रदान करता है। यह रुढ़िवाद और कूपमांडूकता विरोधी है। '' युग की आवश्यकता के रुप में प्रगतिवाद को देखा गया अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय युगीन परिस्थितियों ने इसे विचार के क्षेत्र में स्थापित किया। बाद में यह राजनीतिक गलीयों से होते हुए साहित्यिक क्षेत्र में आयी।

भारत में स्वतंत्रता संग्राम गांधीजी के नेतृत्व में जोरों पर था किन्तु गांधी की 'अहिंसा' क्रांतीवीरों के लिए अपर्याप्त लग रही थी। परिणामता विद्रोह, क्रांती स्वरों को तात्काल मार्क्सवाद के रुप में गांधी विरोधी तथा गांधीवाद में कसम खाने वालों ने स्विकारा।

काँग्रेस और गांधी ने किसान–मजदूरों में एकता पैदा की थी। उसके शोषण को भी जाना था परंतू उसे दूर करने के कारगर उपाय वाली कोई व्यवस्था उनके पास नहीं थी। मार्क्सवाद ने वही विकल्प उसे दिया था तो वह स्पष्ट नही था। पुंजीवाद, साम्राज्यवाद और सामंतवाद को एक साथ विरोध कर उसे मिटाने का, ध्वस्त करने का भाव क्रांति भावना के रुप में मार्क्सवाद ने दिया।

भारतीय सामाजिक, धार्मिक क्षेत्र में सढ़ी गली परंपराएं, कुरीतियाँ, रुढ़ीवाद, अंधविश्वास एवं मनुष्य को पूर्ण रुपेन गुलाम बनाये रखनेवाली भावना, ब्राह्मणी विचारधारा–व्यवस्था ने स्त्री एवं दलित को प्रताडित किया था। आर्य, ब्राह्मो समाज के आंदोलन केवल सुधारवादी थे परिवर्तनकामी नहीं। 'द्विवेदीयुग में भी यही आदर्श मानवता का रहा। परिणामतः उसके विरुध्द भी प्रगतिवाद ने अगाज किया। उनके दुःख, दर्द, पिड़ा को अभिव्यक्ति साहित्य के क्षेत्र में पहली बार मिली। प्रस्थापित मनुष्यता विरोधी व्यवस्था के विरुध्द क्षुब्ध भावनाओं, चेतनाओं को व्यक्त करने का अवसर प्रगतिवाद ने ही दिया। पहली बार साहित्य सर्वसामान्य की प्रगति के लिये लेखन कर रहा था।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर १९१७ में रुस की क्रांती हो चुकी थी उसने साम्राज्यवाद का खात्मा किया था। सत्ता सर्वहारा के हाथों आयी इस क्रांती के मुल में मार्क्स के विचार रहे थे। वर्गहीन समाज रचना के आदर्श को लेकर रुस, साम्राज्यवादी तथा केवल पुंजी के। श्रेष्ठ मानकर उसके जरिए शोषण करने वाली ताकतों का विरोध करनेवाले नये विश्व का पाथेय बना हुआ था। ''राजनीति के क्षेत्र में द्वितीय विश्वयुध्द और फासिज्म का नग्न रुप बडा भयावह हो उठा था इसका विरोध करने के लिये मार्क्सवाद का स्वागत हुआ। '' दुसरे महायुध्द के परिणाम स्वरूप उभरा राजनीतिक संकट, सन १९३०–३२ की विश्वव्यापी आर्थिक मंदी, बेरोजगारी, पुंजीवाद के कारण बढ़ता शोषण, दरिद्रता का फैलता साम्राज्य, बढ़ती आर्थिक विषमता ने वर्ग संघर्ष को तीव्र बनाया इसके विरोध में किमान मजदूरों ने उनके शोषण के लिये कारण–भूत प्रवृत्तियों, व्यवस्था के विरुध्द में आंदोलन चलाया।

भारत में भी सर्वहारा के सामने कुछ ऐसे ही संकट थे। ब्रिटिश और भारतीय विषमता–मुलक समाजव्यवस्था ने दलित, पीड़ीत, कृषक, मजदूरों की हालत खस्ता हो रही थी। वे निरंतर दरिद्रता, भुख से तड़प रहे थे, बिलबिला रहे थे। उनका आर्थिक और सामाजिक शोषण हो रहा था उन्हे विपन्नावस्था में रखने के धार्मिक, ईश्वरीय अस्त्र–शास्त्र का उपयोग किया जा रहा था। ऐसे में 'धर्म अफीम की गोली है' का विचार उनके विद्रोह का कारण बना, 'क्रांती ही परिवर्तन' ला सकती की भावना पर उन्हें विश्वास हुआ। रुस क्रांती का आदर्श उसके सामने था। विश्व उसकी और तेजी से बड़ रहा था। भारतीय सर्वहारा–बहुजन अभिजनों के

विरुध्द खड़े हो चुके थे। वे भी एक ऐसी व्यवस्था की तलाश में थे जहाँ मनुष्य का शोषण न हो, मनुष्य–मनुष्य में अंतर न हो, सभी समाज स्तर, सुख,आनंद से जीयेंगे का भाव 'प्रगतिवाद' ने भारतीय जनमानस में पैदा किया। उसकी शुरूवात साहित्य में 'ग्राम्या' से होती है, ग्रामीणों से होती है, सर्वहारा से होती है। विश्व साहित्यकार भी जनवाद को अपना रहा था। इसी समय अंग्रेजी साहित्य में 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' का बोलबाला गुंज रहा था। सन १९३५ के आस–पास ही ई.एम. फार्स्टर की अध्यक्षता में पेरिस में, 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसियशन' नामक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का पहला अधिवेशन हुआ। जिसमें भारत से डॉ. मुल्कराज आनंद और सज्जाद ज़हीर शामिल थे। उन्होंने लंदन में 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की थी। जब वे भारत आये १९३६ में ही प्रेमचंद की अध्यक्षता में 'प्रगतिशील साहित्य' का प्रचार–प्रसार करने के लिए लखनऊ में पहला अधिवेशन संपन्न हुआ। इसी साहित्य आंदोलन और अधिवेशन के दुसरे अध्यक्ष रविन्द्रनाथ ठाकूर थे। परिणामतः 'प्रगती' का भाव भारतीय भाषा में सज्जाद जहीर द्वारा 'उर्दू' और रविन्द्रनाथ द्वारा 'बंगाल' में आया। बंगाल की लहर देश भर में फैली। और हिन्दी में वह 'प्रगतिवाद' के नाम से १९३६ में ही आया।

प्रगतिवाद ऐसा पहला साहित्यिक आंदोलन है जो सामाजिक, राजनीतिक क्रोड में से आंदोलन के रुप में ही उभरकर आया। उसके साहित्यविषयक मानदंड पहले ही स्थापित थे। जीवनार्श उनके सामने था व्लतित्व उसके अनुरुप उभरकर आया। उसकी श्रेष्ठता के संबंध में डॉ. हजारीप्रसाद दिवेदी ने कहा– समष्टि मानव की मुक्ति के लिए, उसको प्राधान्य देते हुए प्रगतिवाद आया। जब–जब ऐसे बड़े आदर्श के साथ मनुष्य का योग होता है तब–तब वह साहित्य नये काव्य रुपों की उद्‌भावना करता है। इस बार भी ऐसा ही हुआ। ''प्रगतिशील साहित्य ने संसार के भौतिक स्वरूप को, उदात्त स्वरूप को, चेतनमय स्वरूप को हमारे सामने लाया। तर्क द्वारा उसके विकास की प्रत्येकावस्था को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया। इसलिए वह रहस्यवाद, ईश्वर, भाग्यवाद का विरोध करता है। विश्व परिवर्तनिय होने की बात करता है '' परिवर्तन सृष्टि का नियम है, यही परिवर्तन, साहित्य में, मानवता के विकास में, सनातन रूढ़ियों के विरोध में, सनातन धर्म, ईश्वर के विरोध में प्रगतिवाद स्थापित करता है।

डॉ. नामवर सिंह ने बड़ी सजगता एवं गहराई से उसकी जाँच–पडताल की है। कुछ विचार निम्न है जो 'प्रगतिवाद' के महत्त्व, आवश्यकता और सुनहले, सुखमय भविष्य के लिये जरुरी है–

१. 'प्रगतिवाद के इन बीस वर्षों का इतिहास साहित्य में स्वस्थ सामाजिकता, व्यापक भावभूमि और उच्च विचार के निरन्तर का विकास इतिहास है, जो केवल राजनीतिक जागरण से आरंभ होकर क्रमशः जीवन की व्यापक सम्स्याओं की ओर, आदर्शवाद से आरंभ होकर क्रमशः स्वस्थ सामाजिक यथार्थवाद की और अग्रसर होता जा रहा है।'
२. '' प्रगतिशील साहित्य कोई स्थिर मतवाद नहीं है, बल्कि यह एक निरंतर विकासशील साहित्य–धारा है। ... यह साहित्य लेखक की स्वयंभू अन्तःप्रेरण से उद्‌भूत नहीं होता, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के क्रम में वह भी परिवर्तित और विकसित होता रहता है।''
३. ''प्रगतीवाद का आरम्भ साहित्य में आर्थिक और राजनीतिक आंदोलन के रुप में हुआ।''
४. ''छायावाद यदि इस सदीं के सांस्कृतिक पुनर्जागाण की उपज था तो प्रगतीवाद

राजनीतिक जागरण की।''

५. भक्ति–आंदोलन के बाद फिर उस तरह का अखिल भारतीय साहित्य–संगम प्रगतिवाद के ही युग में संभव हो सका।''

६. ''प्रगतिशील लेखकों ने अपने समकालीन साहित्य में भी फैले हुए आध्यात्मिक कुहासा, कुंठावादी गानों और यौनसंदर्भ को साफ करने में बड़ा कार्य किया।''

७. ''यदि प्रगतिवादी समीक्षा–प्रणाली न होती तो ये अस्वस्थ साहित्यिक प्रवृत्तियाँ साहित्य के विकास में कितनी बाधा पहुँचाती, यह कहना कठिन है।''

८. ''श्रेष्ठ रचना करने के लिये साहित्यकार को अनिवार्य रुप से जनता का पक्षधर होना ही पडेगा।''

९. ''जिन साहित्यकारों ने पीड़ित, दलित और सताए हुए का पक्ष लिया था और इसी तरफदारी के कारण उनमें उच्चकोटि की मानवतावादी भावनाएँ थी। जब कि समाज में स्वार्थों का संघर्ष हो तो मानवता दलित लोगों के पक्ष में होती है, तटस्थता में नहीं होती।''

१०. ''श्रेष्ठ साहित्यकार रोज नहीं पैदा होते और न श्रेष्ठ कृतियाँ हर क्षण लिखी जाती है। वे सम्पूर्ण ऐतिहासिक विकास का परिणाम होती है। उनके पीछे जातीय उत्थान की शक्ति होती है।''

११. और अंत में इस आंदोलन रुपी जन अभियान के संबंध में बड़े आत्मविश्वास, और प्रतिबध्द के संबंध में दृढता से वे कहते है– ''इस विराट जनवादी अभियान में जो रुका सो छूटा : जिसने इसका विरोध करने की हिमाकत की, वह गया और जिसने इसके उद्देश्य और कार्य में संदेह प्रकट किया, वह संदेहवादी टुटा। वे गुरु द्रोणाचार्य हो चाहे भीष्म पितामह, वे कर्ण हो अथवा जयद्रथ– इस महाभारत के विरोध पक्ष में जाकर उन्हें गतश्री होना ही है। अपने पूर्व वैभव के द्वारा आज वे चाहे जितने बड़े प्रतीत हो रहे हो, लेकिन यदि इतिहास विधाता के अनेक– बाहूदरवक्त्रनेत्र–वाले विराट वजु की वाणी सुने तो पता चलेगा कि ये तमाम महारथी वस्तुतः मारे जा चुके है, इतिहास ने भीतर से इनका सारा तेज हर लिया है।''

यह वाक्य–सुत्र उनके भीतर का प्रगतीवाद संबंधी गजब का आत्मविश्वास उसकी ताकत, श्रेष्ठता को ही अभिव्यक्त करते है। साहित्य को जनता के साथ, और साहित्य में उपेक्षितों के सुख–दुःख की भावनाओं को प्रकट करने की उनकी ललक को स्पष्ट करते है। और अंत में आचार्य हजारीप्रसाद की युग दृष्टि को व्यक्त करते है साथ ही अपनी प्रतिबध्दता और समीक्षा कौशल– औजार को भी। दिवेदी भारतीय भविष्य को देखकर कहते है– 'प्रगतिशील आंदोलन बहुत महान उद्देश्य से चलित है। इसमें सांप्रदायिक भाव का प्रवेश नहीं हुआ तो इसकी सम्भावनाएँ अत्याधिक है। भक्ति आंदोलन के समय जिस प्रकार एक अदम्य दृष्य आदर्श–निष्ठा दिखाई पड़ी थी, जो समाज को नये जीवन–दर्शन से चालित करने का संकल्प वहन करने के कारण अप्रतिरोध्य शक्ति के रुप में प्रकट हुई थी उसी प्रकार यह आन्दोलन भी हो सकता है।'' आज प्रगतिवादी आंदोलन के सामने दक्षिणपंथी, देशीवादी, प्रतिगामी ताकतें राजनीतिक

क्षेत्र में जनाधार, साहित्य के क्षेत्र में प्रक्षिप्त, परोक्ष विस्तार पा रही है। ऐसे उसम उसे और अधिक संघर्षशील करना प्रगतीशील साहित्यकार का दायित्व है।

७.२ प्रगतिवाद : अर्थ, स्वरूप :-

'प्रगति' का अर्थ विकासोन्मुखता की ओर बढ़ना, व्यवस्था के साथ समाज, मनुष्य में परिवर्तन लाना, जीवन को गतिशील बनाना, स्वस्थ, सुंदर बनाना है। राजनीति में कम्यूनिष्ट पार्टी का यही लक्ष्य रहा है। तो साहित्य में प्रगतिवाद का। जो किसी भी प्रक्रियावादी प्रस्थापित व्यवस्था का विरोध करता है। लम्बे समय तक 'चतुवर्गफलप्राप्ती' अर्थात धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिये साहित्य लिखा जा रहा था। अब सामान्य मनुष्य की प्रतिष्ठा, उसके जीवनकी जरुरी समस्या, उसके चकनाचूर होने वाले सपने, भावनाएँ, संवेदनाएॅ, हर्ष, सुख, दुःख की पीड़ाएँ, सर्वहारा के लिये प्रगत शस्त्र के रुप में उनके हाथ में आयी। साहित्य मनोरंजनार्थ का भाव निकालकर सामाजार्थिक हितार्थ को अभिव्यक्त किया जाने लगा। विद्‌वानों ने इसे भी स्पष्ट कर दिया है की 'राजनीति के क्षेत्र में जो साम्यवाद है, वही साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद है।''

यह स्पष्ट हो चुका है की राजनीति के क्षेत्र से प्रगतिवाद साहित्य के क्षेत्र में आया है। जनता का संघटन, उनमें संघर्ष भाव, यथार्थवादी मुल्यों की प्रतिष्ठा, प्रस्थापित व्यवस्था बदलने के लिये क्रांती भावना-चेतन, को जगाना उसका लक्ष्य है। वर्ग हीन समाज व्यवस्था की स्थापना उसका उद्देश्य है, सबको संगठीत होकर लढ़ना, संघर्ष करना जरुरी है तभी प्रगति संभव है। प्रगतिवादी साहित्य इसी जनवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति है।

छायावाद के कल्पनालोक, रहस्यवाद से उबकर कई कवि प्रगतिवाद को अपना चुके है। राष्ट्रीय अंदोलन कर्ता भी समाजवाद के सपने भारतीयों में जगा रहे थे। स्वप्नजीवी लोक, कलाकार, साहित्यकार इस प्रखर आंदोलन की ओर आशा भरी निगाह से देख रहे थे। छायावाद के युग 'में' असफल होते असहयोग जैसे आंदोलन ने देशवासीयों में जो उदासी, निराशा पैदा की थी उसे दुर करने में प्रगतिवाद का बड़ा सहयोग रहा है।

प्रगतिवाद ने देश, समाज, व्यक्ति में बौध्दिक, अध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक, भाग्यवादी, ईश्वरीय क्षमता से मुक्त होने की प्रेरणा दी। कल्पना की जगह यथार्थ, आदर्श कि जगह यथार्थ, स्वप्न की जगह यथार्थ, रहस्य की जगह लौकिकता, वैयक्तिता की जगह सामाजिकता, प्रकृति की जगह मनुष्य को लाने का सारा श्रेय प्रगतिवाद को ही जाता है।

७.३ प्रगतिवादी साहित्यकार :-

छायावाद के सुकुमार कवि पंत ने ही छायावाद का 'युगान्त' कर जनवादी विचारों की 'युगवाणी' को अपनाया। 'ग्राम्या' में ग्राम सौंदर्य, ग्राम वधु, ग्राम स्त्री-पुरुष के साथ किसान, टिटवी, धोबियों के प्रती सहानुभूति व्यक्त की। निराला ने नयी भाषा दी, शोषकों पर व्यंग किया, पूंजीवाद, धर्मवाद, जातियता का विरोध किया। भिक्षुक, कुकुरमुत्ता, गर्म पकौडी, डिप्टीसाबह, तोडती पत्थर, कुत्ता भौंकने लगा, नये पत्ते, खजोहर, महगू महँगा रहा, आदि

कविताओं से प्रगतिवाद को आगे बढ़ाया। १९४३ में 'अणिमा', बाद में अर्चना ( ), आराधना ( ) में संत रविदास, प्रसाद, बुध्द, विजयालक्ष्मी पंडित पर कविताएँ लिखी।

छायावादी यों को छोड़कर स्वतंत्र प्रगतिवादी आंदोलन से उपजे कवियों ने जनवादी विचारधारा को जनमानस में बिठा दिया। जिनमें महत्वपूर्ण है – केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रांगेय राघव, डॉ. रामविलास शर्मा, भवानीप्रसाद मिश्र, शिवमंगल सिंह 'सुमन', नरेन्द्र शर्मा, अंचल, त्रिलोचन, अमृतराय, आदी। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, तथा त्रिलोचन की विशिष्टता प्रगतिशील साहित्य में रही है। परवर्ती कवियों में 'मुक्तिबोध, केदारनाथ सिंह ' जैसे उत्कृष्ट कवियों की विचारधारा भी इसी दर्शन से बनी–बुनी है। वस्तुतः हिन्दी कविता को समृध्द, विस्तृत, और युगचिंताओं से व्याप्त किया प्रगतिवादी कविता ने।

कथा–साहित्य के क्षेत्र में वह पहले से ही था। उर्दू की प्रगतीशीलता को प्रेमचंद ने हिन्दी में बीजारोपीत किया। बाद में भैरवप्रसाद, गुप्त, शिवप्रसाद सिंह, राजेन्द्र यादव, रामदरश मिश्र, मार्कंण्डेय, भीष्म सहानी, चंद्रकिरन सोनरिक्सा ने बडी भौतिक यथार्थवादी रचनाएँ दी। यशपाल, अश्क, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, रांगेय राघव ने अनेक उपन्यासों में मध्यवर्ग को चित्रित किया। प्रगतिशिल कथाकारों में ऐतिहासिक उपन्यासों का लेखन भी किया यशपाल की 'दिव्या' राहूल सांकृत्पायन की 'वोल्गा से गंगा' सिंह सेनापति, जय यौधेय आदि।

आलोचन के क्षेत्र में शुक्ल की 'लोकमंगल की साधनावस्था' लोककल्याण भावना से पुरीत है। शिवदानसिंह चौहान, शांतिप्रिय द्विवेदी, प्रकाशचंद्र गुप्त, डॉ. रामविलास शर्मा, आदी उल्लखनीय है। परवर्ति काल में मुक्तिबोध, वर्तमान में डॉ. नामवर सिंह ने सामाजिक, जनवादी रचना, सुंदरता, भौतिक दिशा–निर्देशन प्रगतिशील आलोचना में लायी है।

यह सारा साहित्य वैज्ञानिक, तर्कदृष्टि से युक्त है। सामान्य जनता से प्रतिबध्द है। प्रेमचंद ने सहित्य के नये भाव–बोध को व्यक्त किया था, प्रथम अधिवेशन में– '' साहित्य केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं है। वही सहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधिनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन सच्चाई का प्रवेश हो और जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे।''

७.४ प्रगतिवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि :–

हमने पहले ही स्पष्ट किया है की प्रगतिवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि का मुलाधार 'मार्क्सवाद' है। जो द्वंदात्मक भौतिकवाद एवं अतिरिक्त मुल्य सिध्दांत के रुप में भी जाना जाती है। यह सामाजिक व्यवस्था को आर्थिक दृष्टिकोन से देखती है। व्यवस्था का संघर्षात्मक रुप ही वर्ग संघर्ष के रुप में स्वीकार किया गया है। जिसमें एक वर्ग श्रमिकों का है तो दुसरा श्रमिकों का शोषण करनेवाला। इस वर्ग वाद का मुल मार्क्स के द्वंद्वात्मकतावाद के भीतर है। जो समाज धर्म, दर्शन, संस्कृति, इतिहास, प्रकृति के 'उत्क्रांति'या विकास के संबंधों कों नितांत वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोन से देखता है। विज्ञान में तर्क महत्वपूर्ण होते है जो हर विचार, वस्तु, घटना, व्यवस्था के बारे में प्रश्न खड़ा करते है। इसी प्रणाली से विकास होता है। वस्तुतः मार्क्स ने हीगेल के द्वंद्ववाद, फायारबाख के भौतिकतावाद और चालर्स हाल के वर्गसंघर्ष को आधार बनाकर मानव सभ्यता के इतिहास को बड़े वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। उनके

राजनीतिक एवं आर्थिक सिध्दांतों ने नयी सभ्यताओं को जन्म दिया।

मार्क्स की विचारधारा को हम तीन भागों में बांट सकते है–

१. द्वंद्वात्मक भौतिक विकासवाद
२. मुल्य–वृध्दि का सिध्दांत
३. मनुष्य–सभ्यता के विकास की व्याख्या

मुलतः यह विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद या मार्क्सवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद और दर्शन के क्षेत्र में द्वंद्वात्मक भौतिकतावाद के नाम से जानी जाती है। उसे ही साहित्य के क्षेत्र में हम प्रगतिवाद या प्रगतिशील नाम से अभिहित करते है। अपने विचारों का महल मार्क्स ने तीन बातों पर खड़ा किया है, एक सर्वहारा का कल्याण, उसके विकास के लिये संघर्ष, और समाज में व्याप्त वर्गीय भावना का नाश या उन्मुलन। इसलिये उसे सामाजिक यथार्थवाद के नाम से भी पहचाना जाता है।

१). द्वंद्वात्मक भौतिकतावाद :–

दुनिया भर के लगभग धार्मिक, आध्यात्मिक विचारकों ने सृष्टि उत्पत्ति के मुल में किसी अलौकिक या अध्यात्मिक शक्ति के होने को स्वीकारा है। जिसे ईश्वर कहा जाता है। ईश्वर ने सृष्टि की उत्पत्ति की ऐसी मान्यता है परंतू मार्क्स ऐसा नही मानते। उनके अनुसार सृष्टि की उत्पत्ती नहीं हुई बल्कि उसका ‘विकास’ हुआ है। इस प्रकार वे भौतिक जगत के निर्माण की प्रक्रिया को वैज्ञानिक दृष्टिकोन से प्रतिपादित करते है। इसलिए मार्क्सवाद ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नर्क, धर्म, पुनर्जन्म आदि को स्वीकारता नहीं। मानव–हृदय को चेतना एवं विवेक द्वारा ज्ञात तथा विश्लेषित, या अनुभूत तत्वों पर सृष्टि विकास की संकल्पना निर्मित है, किसी अलौकिक या अध्यात्मिक शक्तिपर नहीं। यहाँ इस बात का भी ध्यान रहे की उत्क्रांतिवाद के जनक डार्विन नें सृष्टि, मनुष्य, आदि के विकास संबंधी सिध्दांत का प्रतिपादन कर चुके थे।

मार्क्स के अनुसार दो भौतिक शक्तियों के द्वंद्व से तिसरी भौतिक वस्तु का निर्माण हो जाता है। प्रकृति में यह संघर्ष निरंतर जारी रहता है। इसे प्रतिपादित करने के लिए ही उन्होने वाद (Thesis) प्रतिवाद (Anti thesis) और प्रतिवाद का प्रतिवाद या संवाद (Synthesis) कहा है।

१. वाद का अर्थ है हर वस्तु के ’विरोध’ तत्व उसी वस्तु में निहित रहते हैं, मात्र वे कुछ काल के लिये दबे रहते है।
२. प्रतिवाद का अर्थ है कालांतरण में वाद स्थिति वस्तु में निहित विरोधी तत्व ही उस वस्तु का विरोध करने लगते है। अर्थात दोनों में द्वंद्व शुरु हो जाता है।
३. संवाद का अर्थ है वाद, प्रतिवाद का संघर्ष रुप। जो किसी तीसरी वस्तु, परस्थिति का सृजन करती है। जो उस दो परिस्थितियों से भिन्न होती है। और इस तीसरी परिस्थिति में उस दोनों परस्थितियों के कुछ तत्व, अंश उपस्थित होते है। प्रकृति, परिस्थिति, सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, दर्शन आदि का विकास इसी द्वंद्वात्मक संघर्ष से होता है।

२). मूल्य– वृध्दि का सिध्दांत :–

किसी भी वस्तु के मूल्य विकास में मार्क्स के अनुसार चार अंग निर्धारित होते है।
१. मूल पदार्थ २. स्थुल–साधन ३. श्रमिक का श्रम और ४. मूल्य वृध्दि। उदाहरण के लिये पाँच रुपये के कोका कोला को रासायनिक प्रक्रिया द्वारा बोतल में बंद करने के लिये अगर २० रुपये खर्च आ रहा है तो उसका मूल्य तीस रुपये हो जाता है। अर्थात यहाँ पच्चीस रुपये की मूल्यवृध्दि हो जाती है इसमें उत्पादन सामग्री अर्थात यंत्रों की घिसाई आदि का खर्च पाँच रुपये कम कर दे तो भी वास्तविक लाभ २० रुपये होता है। यह सारा लाभ श्रमिक को मिलना चाहिये परंतू आज भी उत्पादन कंपनीयाँ यह हडप कर लेती है। पुंजीवादी युग में भी मिल–मालिकों द्वारा यही हुआ। जिसमें समाज में दो वर्ग तैयार हुए एक शोषक दुसरा शोषित। मार्क्स ने किसान, मजदूरों को शोषितों की श्रेणी में रखा और मिल–मालिक, पूँजीपती वर्तमान में उत्पादन कंपनीयों के मालिक 'शोषक' हो जाते है। मार्क्स उत्पादन साधनों के साथ श्रम मुल्य पर शोषितों का अधिकार होने की बात करते है। ऐसे में 'वर्ग संघर्ष' पैदा हो जाता है। उत्पादन कर्ताओं को मिलने वाले लाभ में असमान बंटवारा हो जाता है। शोषकों के उचित लाभ मिलता नहीं ऐसे में शोषण को प्रोत्साहन मिल जाता है। इस प्रकार का शोषण मानवता पर कलंक है।

३) विश्व–सभ्यता के विकास की नई व्याख्या :–

विश्व इतिहास लेखकों ने विभिन्न जातियों, देशों का इतिहस लिखते समय प्रायः जाति, वर्ण, राष्ट्र के रुप में वर्गीकृत दृष्टिकोन अपनाया है। मार्क्स ने मात्र मानव जाति का इतिहास लेखन करते समय उसे केवल दो भागों में विभाजित किया है १.शोषक वर्ग– जैसे पुंजीपति, मालिक २. शोषित वर्ग– किसान, मजदूर अर्थात श्रमिक वर्ग आदि। वर्ग संघर्ष के इतिहास को मात्र उन्होंने चार युगों में विभाजित कर उसके ऐतिहासिक कथा को हमारे सामने रखा है।

पहला युग है 'दासप्रथा' का जिसमें श्रमिक के व्यक्तित्व, उसके श्रम, उत्पत्ति के साधन और उत्पादन इन चारों पर मालिकाना हक्क एवं अधिकार मालिक का ही रहा।

दुसरा युग 'सामंती प्रथा' का जिसमें मजदूर के व्यक्तित्व को तो आजादी मिल गई परंतू बाकी तीन बातों पर शोषकों का ही अधिकार रहा।

तीसरा युग 'पूंजीवाद' का जिसमें मजदूर के व्यक्तित्व तथा उसके श्रम पर उसका अधिकार हो गया परंतू अन्य दो पर मात्र शोषकों का ही अधिकार रहा।

चौथा युग 'साम्यवादी युग' होगा जिसमें मार्क्स के अनुसार मजदूरों की प्रतिनिधी सरकार का उत्पादन के सभी साधनों पर नियंत्रण होगा और उसके परिश्रम के अनुरुप उसे लाभ या फल मिलेगा। मार्क्स चाहता है की उसके द्वंद्वात्मक, भौतिकतावादी, वर्ग संघर्ष तथा साम्यवाद के सिध्दांतों का प्रचार–प्रसार किया जाए। जिससे शोषक वर्ग को नष्ट करना संभव होगा। इसके लिये हिंसात्मक क्रांति का समर्थन भी वह करता है।

मार्क्स का मानना है की ''संपत्ति का विभाजन व्यक्ति पर न होकर व्यक्ति की सामाजिक उपयोगिता के आधार पर होना चाहिए। ''साम्यवादी व्यवस्था का मूलतत्व यही है। जो शोषितों को शोषकों के विरुध्द क्रांति का अवाहन करता है। एक ऐसी समाज व्यवस्था का निर्माण वह चाहता है जिसमें समान विचारधारा, आकांक्षा, प्रयत्न, सुखभोग के साधन,

अधिकार, और सुख–सुविधायें उपलब्ध हो सकेगे। इसी प्रकार का समाज प्रगतिवादी समाज होगा प्रगतिवादी साहित्य का लक्ष्य भी यही होगा।

अतः जो साहित्य प्रतिक्रियावादी पूँजीवादी प्रवृत्ति, मनोवृत्ति और व्यवस्था का विरोधी हो वह प्रगतिवादी साहित्य है। ऐसा साहित्यिक मानदंड ही स्थापित हो गया। मार्क्स के परवर्ति काल में इसी प्रकार का साहित्य लिखा गया। मार्क्सवाद को जनता दरबार में पहूँचाया गया। बाद में राजनीतिक आंदोलन आदि के मार्ग से साम्यवादी व्यवस्था स्थापना का लक्ष्य तय किया गया। रुस उसका उदाहरण है। यहाँ के साहित्यकारों ने मार्क्स तथा बोल्शेविक क्रांती विचारधारा को अपनाकर साहित्य सृजन किया। सामान्य जनता के मन में राज्य संचालन, सत्ता प्राप्ती की अभिरुची का निर्माण किया। आर्थिक विषमता को दूर कर वर्गविहीन समाज स्थापना की मान्यताओं,भावनाओं का प्रचार–प्रसार किया जाने लगा। परिणामतः कट्टरपंथीयों की ओर से सन १९३२ के लगभग रुसी साहित्यकारों पर प्रतिबंध लगाया गया। श्रमिकों में क्रांति भावना जमाने हेतू उन्होंने साहित्य में एक नये वाद को प्रतिष्ठित किया जिसे हम सामाजिक यथार्थवाद के नाम से जानते है। सन १९३५–३६ में हुए प्रगतिशील लेखक संघ द्वारा कुछ इसी प्रकार की विचारधारा को भारतीय साहित्य में स्थान मिला किन्तु वह रुस की तरह क्रांतिकारी साहित्य नहीं हुआ इसका खेद है। उसका भारतीय संस्करण हुआ उसकी क्रांति को राजनीति में हिंसात्मक कार्रवाई के रुप में देखा गया। और उसके कार्यकर्ता को हिंसक वृत्ति के रुप में। पूर्ण रुपेन माक्सर्वाद को भारत में शायद ही मान्यता मिली होगी, यह कहना साहस का काम होगा परंतू विचार, अर्थ साहित्य के क्षेत्र में उसने अपनी पैठ बना ली। यहाँ वह दृढ भी हुआ है। इस विराट जनाभियान की ताकत ही नामवरजी ने रेखांकित की है और यह सच्चाई भी है की हिन्दी में हर दूसरा लेखक प्रगतिवाद से जुड़ता है या जोड़ा जाता, या जुड़ने की चाहत रखता है। वस्तुतः स्थिति तो यह है की प्रगतिवाद के सहारे ही वह समाजमान्य, प्रसिध्द, या बड़ा हो जाता है। कुछ उच्चवर्गीय साहित्यकार भी प्रगतिवाद का झंडा फहराते नजर आ रहे है। उसमें प्रतिबध्दता, इमानदारी और मनोरंजन कितना है यह स्वतंत्र अध्ययन किया विषय हो जायेगा।

हिन्दी साहित्य में छायावाद के बाद प्रगतिवाद ने साहित्य विषय सिमाओं को विस्तार दिया। साहित्य समाजोन्मुख हुआ। वस्तुतः पंत जैसे छायावादी कवि ने ही इसका अग़ाज किया नयी 'युगवाणी' का प्रारंभ किया। उत्तरोत्तर व्यक्तिवादी अहं भावना का पिष्टपेषण लेकर निराला ने भी इसे ऊँचाई प्रदान की। 'कुकरमुत्ता' को सर्वहरा और गुलाब की शोषकों का प्रतिक बनाया। तो इसी प्रकार का रामवृक्ष बेनीपूरी ने 'गेहूँ और गुलाब' निबंध लिखा। साहित्य की लगभग महत्वपूर्ण विधाओं में यह 'वाद' यथाशीघ्र पहूँचा।

७.५ प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ :–

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो चुका है की प्रगतिवाद ने समाजवादी व्यवस्था का लक्ष्य साहित्यकार के सामने रखा। छयावाद के स्वप्नजीवी कवियों ने ही उसका विरोध कर प्रगतिवाद को अपनाया। कविता में कल्पना की जगत वास्तविकता, वैयक्तिकता की जगह ''सामाजिकता को सन १९३० के बाद अपनाया जाने लगा।'' प्रगतिवाद के नाम पर पंतजी ने मार्क्सवाद और गाँधीवाद, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद, सामुहिकता और वैयक्तिकता,

बहिर्जगत और अन्तर्जगत, भाव और रुप वगैरह का समन्वय करना चाहा जिसमें छायावादी परंपरा का आग्रह स्पष्ट है। इसी तरह प्रगतिवाद के नाम पर दिनकर, भगवतीचरण वर्मा और नवीन ने जो विनाश और विध्वंस का अव्हान किया उसमें पूर्ववर्ती व्यक्तिवाद की अराजकतावादी तथा विपथगा मनोवृत्ति का ही विस्फोट है। प्रगतिवाद के नाम पर अमृतलाल नागा, नरोत्तम नागर आदि 'उच्छृंखल' दल के लेखकों ने यौन विकृतियों का नग्न उद्‌घाटन किया, वह भी स्पष्ट रुप से छायावादी अशरीरी भावनाओं की मांसल तथा शरीरिक प्रतिक्रिया है और इस उच्छृंखलता के मूल में भी वही व्यक्तिवादी अराजकता है। इन सभी प्रवृत्तियों के सम्मिलित प्रभाव में निराला ने जो 'अणिमा' के करुणा भरे प्रार्थना गीत गाये, एकाकीपन पर विलाप किया, 'कुकुरमुत्ता' के क्षुद्र मुख से अहं–भरी घोषणाएँ की और रवीन्द्रनाथ की 'विजयिनी' की पैरोडी करते हूए खजोहरा– पीड़ित बुआ का रेखाचित्र खींचा– यह सब उनके छायावाद– युगीन संस्कारों का ही कहीं बढ़ाव और कहीं प्रतिक्रिया है। ... प्रगतिवाद के आरंभ में यह जो अध्यात्मवाद, अराजकतावाद विकृत यथार्थवाद अथवा प्राकृतिकवाद की प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती है, उनका रिश्ता मार्क्सवाद से बहुत दूर का है। '' मार्क्सवादी संस्कारों में पली बढ़ी नयी पीढ़ी के रुप में हमारे सामने केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जून, शिवमंगलसिंह सूमन, डॉ. रामविलास शर्मा, भवानीप्रसाद मिश्र, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, केदारनाथ सिंह जैसे कवि सामने है। जिन्होंने प्रगतिवाद पर गहराई से साहित्य सृजन किया उसकी प्रवृत्तियों को हमें देखना है–

१. सामाजिक यथार्थवादी दृष्टि :–

कल्पना, स्वप्न, एकांत जीवन में जीने के छायावादी कवियों के अंतर्मुखी चेतना की जगह वस्तुनिष्ठ एवं सामाजिक यथार्थ की दृष्टि – अभिव्यक्ति मार्क्सवादी कविता की मुख्य प्रवृत्ति है। 'क्या होना चाहिए' की जगह 'क्या है' इसकी खोज यह कविता करती है। आदर्श और सामाजिक यथार्थ की भावना '' भारतेन्दु तथा द्विवेदी युगीन कविता में भी है पर वे सामाजिक समस्याओं का समाधान वैज्ञानिक दृष्टिकोन से, देने में असमर्थ रहे है। मार्क्सवाद ने यह कार्य किया। '' जीवन को भौतिक दृष्टि से देखकर उसमे चेतना भरने के प्रयास मार्क्सवादीयों की ओर से ही हुए है। जीवन सच्चाई के रुप में वे सौंदर्य के साथ कुरुपता, नग्नता, गंदी, बीभत्सता को भी ग्रहण करते है। यही कारण है की यह साहित्य यथार्थ 'विषय' रुपों के कारण अच्छा और सच्चा लगता है समाज के सबसे उपेक्षित की विड़म्बना, उपहास, को साहित्य के केंद्र में लाया गया। संकीर्णता के घेरे में से निकलकर 'भू' स्वर्ग को देखना पंतजी ने ही प्रारंभ किया –

''ताक रहे हो गगन ?
मृत्यू – नीलिमा गहन गगन ?
अनिमेष अवितवन, काल–नयन ?
निस्पंद, शून्य, निर्जन, निपवन
देखो भू को
जीव – प्रसू को – ''

जैसे ही 'भू' स्वर्ग को प्रगतिवादी कवियों ने देखा कई कविता विषय बने मुक्तिबोध का यह कथन सत्य है की, –

'' जीवन में आज के

लेखक की कठिनाई यह नहीं कि
कमी है विषयों की
वरना यह कि आधिक्य उनका ही
उसको सताता है
और वह ठीक चुनाव नहीं कर पाता है !! ''

जीवन की विरुपता ने साहित्य में सौंदर्य भरा। एक ओर काव्य विषयों में परिवर्तन आया रहस्य, वैयक्तिक प्रेम, कल्पना का कानन, आदर्श की जगह मनुष्य का संघर्षशील जीवन, मैटमैला भारती का मैला आँचल, भूख से तडपती गस्त लगाती छिपकली, चिलचिलाती धूप में पत्थर तोडनेवाली स्त्री, धर्म, ईश्वर प्रती क्षोभ, कल कारखानों में काम करनेवाले श्रमिक, किसान की दरिद्रता, उनके अशिक्षित बच्चे,अंधविश्वास से भरा एक सामाजिक तबका, आदि विभिन्न वर्गों के भाव–भावनाओं, संवेदनाओं, सुख–दुःखों, स्वप्नों, अकांक्षाओं का चित्रण साहित्य में आया। तो दुसरी और '' गाँवों के जीवन में घुसते ही अपनी वैयक्तिता को भूलकर गाँव में रहनेवाले तरह–तरह के लोगों को देखता है और उनका चित्र उकेरता है। अहीर की निरक्षर लड़की चम्पा, भोरई केवट, प्राइमरी स्कुल के मास्टर दुखरन झा, चना–चबेना खानेवाला चन्दू, चित्रकुट के बौडम यात्री वगैरह'' नागार्जुन के 'दुखरन झा' और उनके स्कुल का चित्र कुछ ऐसा ही है–

'' धुन खाए शहतीरों पर की बारहखडी विधाता बाँचे
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर विसतुइया नाचे
बरसा कर बेबस बच्चों पर मिनट–मिनट में पाँच तमाचे
इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के साँचे। ''

नामवरजी ने इस पर बड़ी सढ़िक टिप्पणी करते हुए कहा है, क्यों ? वह उसकी तनखा से पूछिये। ''

तो तीसरी ओर पूंजीपतीयों, सेठ, साहुकारों, मालिकों की क्रुरता, हृदयहीनता की शल्य–क्रिया भी कविता में हुई है। पूंजीवादी सभ्यता शहर से गाँव गलियों तक फैली है। उसकी विलासिता, अमानवीय वृत्ति, शारिरिक मानसिक शोषण से प्रताड़ित शोषक जनजाती का यथार्थ उद्घाटन कविता में हुआ है। कल्पना– कानन की कविता रानी, धरती के सुख दुःख के साथ जुड़ गयी। नागार्जुन मुक्तिबोध जैसे कवि इसके श्रेष्ठ उदाहरण है।

२. क्रांति का आह्वान :–

हमने पहले ही स्पष्ट किया है की प्रगतिवादी कविता वर्गहीन समाज की साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना चाहती है। इसके लिये मार्क्सवादी कवियों ने आर्थिक विषमता को दूर करने की शर्त रखी है और इसे तभी दूर किया जा सकता है जब सामाजिकों में हिंसात्मक क्रांति भावना को फैलाया जाए। पूँजीवादी सभ्यता को नष्ट किया जाए। 'क्रांति' सम्यक समाज स्थापना का माध्यम या साधन है। उसी के गीत कवियों ने गाये है। इसके लिये डॉ. रामविलास शर्मा सर्वसामान्य किसानों, मजदूरों को इकठ्ठा करना चाहते हैं, उन्हें प्रस्थापित व्यवस्था की क्रूरता से परिचित कराना चाहते है, उनमें असंतोष के बीज बोना चाहते है तभी क्रांती की फसल उगायी जा सकती है ''का विचार व्यक्त करते है। प्रगतिवादी अधिकांश कवियों ने क्रांति भावना

का चित्रण शोषकों में स्फुर्ती भरने, अपनी स्थिति से अवगत होने, अपनी शक्ति का परिचय पाने, अपने अस्तित्व को जानने के लिये कविता में किया है। यह क्रांति सामाजिक और राष्ट्रीय दोनों रुपों को अभिव्यक्त करती है। क्रांति की यह भावना वर्ग–व्यवस्था के विनाश हेतू आंतर्राष्ट्रीय रुप में व्यक्त होती है। इसलिए वह विश्वमानवतावादी, शांतावादी है। ''केवल आपद्धर्म के रुप में वह हिंसा का स्वीकार करने को प्रस्तुत है। ''इसलिए यह क्रांति ध्वंसात्मक नहीं सृजनात्मक है। नवनिर्माण से पूरित है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दुर्व्यवस्था से पीड़ित है कवि 'नवीन' ऐसे ही विप्लव का गान करता है –

''कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल–मुथल मच जाए।
नियम और उप–नियमों के ये बन्धन टूक–टूक हो जाएँ
विश्वंभर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जाएँ
शांति दण्ड टुटे– उस महारुद्र का सिंहासन थर्राए,
उसकी पोषक श्वासोच्छवास, विश्व के प्रांगण में घहराए,
नाश, नाश हो ! महानाश की प्रलयंकारी आँख खुल जाए।''

या प्राचीन वर्ण–सभ्यता, व्यवस्था, का नाश हो जाए। मानवता का दुःख नष्ट हो जाए,नई व्यवस्था स्थापित हो जाए का आग्रह कवि करता है। समग्र परिवर्तन की भावना कवियों में है। जिससे स्वस्थ समाज निर्मित किया जा सकता है। 'जीर्ण पुरातन' के 'नष्ट' होने और नये नुतन का 'पल्लवित'होने के लिए कवि पंत का स्वर प्रखर हो चुका है–

'' नष्ट– भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंस– भ्रंश जग के जड़ बन्धन।
पावक जग घर आवे नुतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन।''

या भारत भुषण का 'जागते रहो' स्वर गुँज उठा है।

३. बौध्दिकता का आग्रह :–

प्रगतिवादी कवि ने वैज्ञानिक दृष्टि का परिचय देते हुए बौध्दिकता को अपनाया है। कविता में प्राचीत रुढ़ियों, परंपरा एवं मान्यताओं का खंडन हुआ है। इनकी बौध्दिक दृष्टि, भाग्य, भगवान, कर्म, पुनर्जन्म, आत्मा, परमात्मा, अंधविश्वास आदि कारणों से होनेवाले शोषण विरोधी रुप में व्यक्त हुई है। शोषण प्रवृत्तियों को दूर करने हेतू ही निराला की 'कुकुरभुत्ता' जैसी कविता में व्यंग्यात्मकता का तीव्र स्वर व्यक्त हुआ है। नागार्जुन जैसे कवि ने भी 'जर्जर समाज' और 'आजादी का वैषम्य' स्पष्ट करते हुए व्यंग्य में कहा है –

''कागज की आजादी मिलती
ले लो दो दो आने में।''

प्रगतिवादी कवि तर्क, प्रश्न, के जरिए कार्य–कारण भाव का प्रतिपादन करते हुए प्रत्येक विचार, घटना, को विशद करते है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी भी कविता के क्षेत्र में बौध्दिकता का आग्रह, प्रतिपादित कर चुके थे परंतू उनमें अतीत के प्रति भवुकता का आधिक्य ज्यादा रहा है। वह परंपरागत व्यवस्था का अनुपालन करते हुए आदर्श को व्यक्त करते थे परंतू प्रगतिवादीयों ने

मात्र यथार्थ को सामने लाने में सब को संदेह के घेरे में लाया, सब पर प्रश्न उपस्थित किये इसीलिए सामाजिक अपप्रवृत्तियों का विरोध वे तिव्र ढंग से कर पाये। उनकी व्यंग्यात्मक कविता में यह अधिक मात्रा में मुखर हुआ है।

४. व्यंग्य की प्रधानता :-

सामाजिक कुरीतियों, परंपराओं, विषमताओं को साहित्य में उभारने हेतू व्यंग्य का प्रयोग किया गया है। इन कवियों के व्यंग्य में सामाजिक सुधार की भावना निहित है। उनके व्यंग्य विषय में पूंजीपति, विलासी, व्यक्तित्व, उनके शोषण की प्रवृत्ति, राजनीति, झूठी लिडरशिप, आर्थिक सामाजिक विषमता को लक्ष्य किया गया है। तो सर्वहरा के दुःख,दैन्य का वर्णन भी किया है। निराला की 'भिखारी' कविता इसी प्रकार की है। 'कुकुरमुत्ता' के 'अबे ! सुन बे ओ गुलाब' में आया गाली का स्वर विषमता के प्रति आक्रोश भाव को व्यक्त करता है। कवि दिनकर ने भी सामाजिक विषमता का चित्रण करते हुए लिखा है-

श्वानों को मिलता दूध-दही, बच्चे भूखे तड़पाते है।
माँ की हड्डी से ठिठुर चिपक, जाडों की रात बिताते है।।
युवती की लज्जा वसन बेच, जब ब्याज चुकाये जाते है।
मिल- मालिक तेल फुलेलों पर, पानी-सा द्रव्य बहाते है।।

मुक्तिबोध, नागार्जुन, भगवतीचरण वर्मा आदि कवियों की कविता इस दृष्टि से उल्लेखनिय है। नागार्जुन की ख्यातीलब्ध कविता 'प्रेत का बयान' व्यंग का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। जिसके संबंध में नामवरजी ने लिखा है- ''नेतालोग जो अक्सर कहते है कि हमारे यहाँ भूख या अकाल नहीं है; पर उस यमराज तथा एक मरे हुए मास्टर की बातचीत के द्वारा यहाँ कितना सुंदर व्यंग किया गया है। नरक के मालिक यमराज 'प्रेत का बयान' लेते हुए पुछता है कि कैसे मरा तू ? जवाब में 'नाचकर लम्बे चमचों- सा पँचगुरा हाथ, रुखी पतली किटकिट की आवाज में' प्रत अपना पुरा पता बतलाते हुए करेमों की पत्तियाँ खाने की आधी ही कथा कह पाता है कि दण्डपाणि महाकाल अविश्वास की हँसी हँसकर कहते है- '' बडे अच्छेमास्टर हो ! आए हो मुझको भी पढ़ाने !! वाह भाई वाह ! तो तुम भुख से नहीं मरे?'' इस पर हद से ज्यादा जोर डालकर प्रेत कहता है कि ''और और और और भले नाना प्रकार की व्याधियाँ और भले नाना प्रकार की व्याधियाँ हो भारत में किन्तु-किन्तु भुख या क्षुधा नाम हो जिसका ऐसी किसी व्याधि का पता नही हमको !'और भाप का आवेश निकल जाने के बाद शांत-स्मित स्वर में फिर कहता है- कि जहाँ तक मेरा अपना संबंध है, सुनिए महाराज-

''तनिक भी पीर नहीं
दुःख नहीं, दुविधा नहीं
सरलतापूर्वक निकले थे प्राण
सह न सकी आँत जब पेचिश का हमला ...

५. रुढी-प्रथा परंपरा का विरोध :-

सृष्टि की निर्मिति नहीं बल्की उत्पत्ती हुई है, विकास हुआ है यह विचार रखकर मार्क्स ने ईश्वर की सत्ता, आत्मा, पुनर्जन्म, भाग्यवाद का कड़ा विरोध किया। ईश्वर के नाम पर

होनेवाले शोषण को उजागर किया। धर्म को आफिम कहकर उसका भी नशा उतारा। मनुष्य और मनुष्यता को श्रेष्ठ मानकर उन्होंने सामाजिक वर्ग, वर्ण,जात विषमता को मानवीयता पर कलंक कहा। इसलिए मार्क्सवाद में काला–गोरा, शूद्र–ब्राह्मण, अनार्य–आर्य, श्रेष्ठ–कनिष्ठ भावना का थोथा रुप स्पष्ट हुआ है। मुलतः वह ईश्वर में आस्था नहीं रखता इसलिए धर्म,व्यवस्था, के साथ उससे जुड़ी रुढ़ियों, गलत परंपराओं, मान्यताओं, विश्वासों का विरोध करता है। आज के समय में मंदिर–मस्जिद, गीता–कुरान का कोई महत्व नहीं है। ईश्वर और धर्म के प्रति क्षोभ भावना को महेन्द्र भटनागर व्यक्त करते है–

''जड़के पास
खंडित और कुरुपा
जो रंगा सिंदूर से हनुमान –सा पाषाण
टिककर गोद में बैठा
कि जिसकी अर्चना करते मनुज कितने
नयन ही परिक्रमा करते
व आधी रात को आ
खात जिसको चाटते।''

धर्म–रुढ़ियों के प्रति कई कवियों ने प्रतिक्रियावादी विचार रखे है। उसके रुढ़िग्रस्त स्वरूप की आलोचना की है। ऐसी कविताओं में प्रमुख है, पंत की 'जहाज' केदारनाथ अग्रवाल की 'चित्रकुट के यात्री' रामविलास शर्मा की 'मूर्तियाँ' आदि। इन कवियों के अनुसार मनुष्य पहले मनुष्य है का विचार व्यक्त किया है।

'' मैं हिन्दू है, तुम मुसलमान
पर क्या दोनों इन्सान नहीं
दोनों ही धरती के जार्य
हम अनचाहे मेहमान नहीं''

रुढी, प्रथा, परंपराओं की बेडियों से मनुष्य मनुष्यता को मुक्त करने की चाह प्रगतिवादी कवियों में रही है। प्रगति का अर्थ भी यही है।

६. शोषितों का करूण गान :–

किसी भी प्रकार की गुलाबी में होनेवाला शोषण मानव जाति के लिये घोर अभिशाप है। यह नहीं होना चाहिए ऐसा मार्क्सवादी कवि चाहता है। समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिये जनता में उसके प्रति सहानुभूति निर्माण करने के लिये उसका कारूण गान कविता में आया है। दुसरे अर्थ में वह उन्हें सचेत भी करता है अपनी दयनीय दशा से उन्हें अवगत कराता है। चंद्रकिरण सौनरिक्सा कहती है –

''दुनिया के मजदूर भाईयों, सुन लो एक हमारी बात।
सिर्फ एकता में ही बसता, इस दुनिया के सुख का राज।। ''

किसानों, मजदूरों अर्थात शोषितों में एकता होगी तो ही वह शोषण से मुक्ति पायेगें मुक्तिबोध ने भी यही कहा है –

'' कभी अकेले मे मुक्ति नही मिलती

यदि वह है तो सबके ही साथ है।''

दलितों,शोषतों का करूण गान करते हुए निराला ने भिक्षुक में लिखा है –

'' भिक्षुक खिंचा हुआ शब्द चित्र वह आता
दो टुक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।''

या कल, कारखानों में काम करनेवाले श्रमिक, मालिक के लिए सभी प्रकार सुख – सुविधा के साधन जुटाकर देते है और स्वयं मात्र उससे दूर रहते है। भुख से बेहाल, फटेहाल 'दरिद्री नारायण' किसान मजदूर का चित्र कविता में आया है

''ओ मजदूर, ओ मजदूर
तू सब चीजों का कर्ता, तू ही सब चीजों से दूर
ओ मजदूर, ओ मजदूर,
इस खलकत का खलिक तू है,
तु चाहे तो पल में कर दे,
इस दुनिया को चकनाचुर
ओ मजदूर, ओ मजदूर।''

यही पीडित मानव 'बंगाल के अकाल' पर बेहाल हो जाता है, जर्जर हो जाता है और निराला कहते है –

'' बाप बेटा बेचता है, भूख से बेहाल होकार।
धर्म धीरज प्राण खोकर, हो रही अनरीति बर्बर
सारा राष्ट्र देखता है।''

या दीन–दलितों की हीन–दीन दशा पर 'अंचल' लिखते है –

''वह नस्ल जिसे कहते मानव
पीड़ा से आज गई बीती।
बुझ जाती तो आश्चर्य न था
हैरत पर कैसे जीती।''

शोषितों की पीड़ा की मार्मीक अभिव्यक्ति इस काल की कविता की खास प्रवृत्ती है।

७. शोषकों प्रति घृणा और रोष :–

शोषक वर्ग में मालिक, पूँजीपति, व्यापारी, ज़मिनदार, उद्योगपती आदि को मार्क्स रखता है। ये सभी शोषण परक व्यवस्था को बनाये रखने की कोशिश करते है तो प्रगतिशील कवि इस प्रकार की व्यवस्था का घोर विरोध करता है। प्रगतिवादी कवियों ने शोषकों की घोर निंदा की है, आलोचना की है–

'' फिर विवश उठी वह कंगालिन,
शोषण का चक्र घुमाने को
अपने बच्चे के आँसु पी,
कुत्तों का दूध जुटाने को
फिर भी प्रलय नहीं होता
फटती न किसी की छाती है।

मंदिर में देव नही काँपते
धरती न रसातल जाती है।
पर कौन जगत में निर्धन को,
जो दहल उठे, जो उठे कांप
नरपाल पालते कुत्तों को
लक्ष्मी पति लक्ष्मी के गुलाम''

पूंजीपति और मजदूर का एक तुलनात्मक चित्रण करनेवाली 'अंचल'जी की कविता 'किरण बेला' भी शोषक–शोषित का वर्णन करती है–

'' एक हवेली में उतराता, एक पड़ा क्वार्टर में सड़ता
उसे चाहिए रोज नई, यह सांझ हुए नित घर आलड़ता
धन के नाजायज वितरण से एक लिये श्रम जर्जर काया
और दूसरा पुश्तैनी उपभोग स्वत्व को सुविधा लाया।''

इस प्रकार की सामाजिक विषमता को उभारने में प्रगतिवादी कवि ने बल दिया है। दिनकर की एक कविता का उदाहरण 'श्वानों को मिलता दूध, दही, बच्चे भूख से तडपते है' को हमने पहले देखा है। निराला ने 'कुकुरमुत्ता' में इसका सशक्त चित्रण किया है–

''अबे ! सुन बे ओ गुलाब !
भूल मत जो पाई खुशबू रंगों आब
खून चूसा खाद का तुने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।''

यहाँ कवि उच्च वर्ग, धनिकों का धिक्कार कर रहा है उसे अशिष्ट, कैपिटालिस्ट संबोधित कर उसे निचा दिखा रहा है और अपना महत्व, तथा पिड़ा को व्यक्त कर रहा है।

८. नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोन :–

प्रगतिवाद ने नारी को भी पुरुषसत्ताक, ईश्वरी, तथा धर्म व्यवस्था के कारण शोषित माना है। वह भी केवल विलास की वस्तु के रुप में प्रयुक्त हुई है। उसकी नैतिकता का मानदंड उसका शरीर रहा है परंतू कवि पंत ने ही उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को महत्व देकर उसे प्रतिष्ठा दिलायी है–

''योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित।''

असहाय जीवन जीनेवाली नारी 'अबला की छबि द्विवेदी युग में गुप्तजी ने अंकित की थी परंतू वह दासता से मुक्त नहीं हो पायी थी। प्रगतिवाद ने उसकी प्रगति का पुरस्कार किया उसे बंधनों से मुक्त करने का आवाहन किया–

''खोलो हे मेखला युगों से कटि–प्रदेश से, तन से,
अमर प्रेम ही बंधन उसका वह पवित्र तन–मन से। ''

पं. नरेद्र शर्मा ने भी वेश्याओं के प्रति साहानुभूति प्रकट कर, उसके पतन के लिए समाज को जिम्मेदार ठहराया है–

''गृह सुख से निर्वासित कर दी हाय ! मानवी बनी सर्पिणी,

यह निष्ठुर अन्याय, आओ बहिण।''

प्रगतिवादी कवि नारी प्रेम को स्वस्थ, सामजिक, पारिवारिक प्रेम में व्यक्त करता है। उसमें कहीं पर भी उच्छृंखलता, स्वेच्छाचार, यौनाचार, कुंठा नहीं है। डॉ. नामवरसिंह ने कहा है– ऐसा नहीं है कि प्रगतिशील कवि को प्रेम संबंधी दुःख–दर्द नहीं सताता। सताता है। वह भी आदमी है और इस व्यवस्था में उसे जहाँ आर्थिक कष्ट है, वहाँ उन आर्थिक कष्टों के कारण अथवा उनके अलावा अन्य प्रकार की भी मानसिक व्यथाएँ होती है। घोर निर्धनता में उसे अपनी प्रिया का 'सिंदूर–तिलकित भाल' याद आता है।... संपूर्ण प्रगतिवादी कविता में इस 'सिंदूर–तिलकित भाल' की शूचिता के दर्शन नहीं हो सकते...परंतू स्वच्छंद प्रेम वर्णन में संयम और स्वस्थ मनोवृत्ति है। त्रिलोचन का उत्साहवर्धक प्रेम का एक चित्र देखिए –

''यों ही कुछ मुसकराकर तुमने
परिचय की वह गाँठ लगा दी
    था पथ पर मैं भूला भूला
    फूल उपेक्षित कोई फूला
    जाने कौन लहर थी उस दिन
    तुमने अपनी याद जगा दी
कभी–कभी यों हो जाता है
गीत कहीं कोई गाता है
गुँज किसी उर में उठती है
तुमने वही धार उमगा दी
    जड़ता है जीवन की पीड़ा
    निस्तरंग पाषाणी क्रिड़ा
    तुमने अनजाने वह पीड़ा
    छबि के शर से दूर भगा दी ! ''

यही प्रेम भावना कवियों में सामाजिक प्रेम भावना जगा देती है। ''मुझे जगत्– जीवन का प्रेमी/ बना रहा है प्यार तुम्हारा '' का भाव उनमें जागता है। सामाजिक प्रेम की यह पीड़ा, निराशा को वह अकेला भोगना नहीं चाहता। उससे ऊब कर, नारी प्रेम में थोड़ी–सी निजात पाने की कोशिश करता है। आगे चलकर के यही प्रेम, देश, अंतर्राष्ट्रीय, सामाजिक प्रेम में विकसित हो जाता है।

९. राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय भाव –

राष्ट्रीय भावों में मार्क्सवाद की राष्ट्रीय भावना या देश प्रेम गांधीजी के अहिंसात्मक आत्मक्लेशमूलक या आदर्शमुलक दृष्टि के विरोध में जनक्रांति की भावना से ओतप्रोत है। भारतेन्दु युग में देश प्रेम का करूण गान, राजभक्ति में लीनता था तो द्विवेदीयुग में राष्ट्रीय जागृति का भाव देश में फैलाया गया। यह कभी बंग से प्रभावित रही तो कभी अंततोन्मुख प्रवृत्ति से। छायावाद में देशगान और बलिदान की भावना स्वतंत्रता आंदोलन को चेतना के पृष्ठभूमि में हुई है। तो प्रगतिवाद में सर्वहारा वर्ण की गुलामी की मुक्ति स्वरूपा हिंसात्मक क्रांती के साथ 'ग्राम प्रेम' को देश प्रेम में अभिव्यक्ति मिली है। वह अपने 'विप्लव' स्वरों से शोषण करनेवालों पर टुट

पड़ता है। उसके लिए वह बलिदान भी करने के तैयार और तत्पर है परंतू वह केवल जनक्रांती ही नहीं है बल्कि राष्ट्रीय आजादी के क्रांती गीत भी इन कवियों ने गाये है। सन १९४२ की क्रांति, आजाद हिंद फौज, नौसैनिक विद्रोह भी उनकी कविता में स्वर पाये है। जिसमें उल्लेखनिय है, ''निराला की 'बेला', जगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद' की 'अगस्त क्रांति का गीत', १९४२ के क्रांती पर महेंद्र भटनागर की 'जयहिंद', नरेद्र शर्मा की 'आदेश' और एक गीत– जयहिंद, आजाद हिंद फौज पर महेन्द्र भटनागर की बदलता युग, 'सुमन' की आज देश की मिट्‌टी बोल उठी है, शमशेर बहादूर सिंह की 'शहीद कहीं हुए है' आदि नौ सैनिक विद्रोह पर लिखी''गई है।

प्रगतिवादी कवियों ने 'ग्राम प्रेम' में देश प्रेम को अभिव्यक्त किया है। उसके संबंध में नामवर सिंह ने कहा है, ''पहले की देशभक्ति सामान्योन्मुखी है तो प्रगतिशील–युग की देशभक्ति विशेषोंन्मुख है और इसलिए अधिक ठोस और वास्तविक है, यह विशेष के भीतर से ही सामान्य को प्रकट करती है। प्रगतिशील कविता का यही यथार्थवाद है। मार्क्सवादी कवि की दृष्टि देश के साथ ही अपने गाँव तथा जनपद के प्रति भी अपार प्रेम रखती है। ''नागार्जुन की 'तरड़नी' कविता द्रष्टव्य है। 'सुमन' की 'न्युयार्क की शाम' महेन्द्र भटनागर की 'आजारी का त्यौहार जैसी कविता में स्वतंत्रता बाद टूटे स्वप्नों के प्रति आक्रोश भाव पैदा हुआ है। एक तरह से बाद की कविता में यह आजादी के प्रति मोहभंग की स्थिति को व्यक्त करनेवाली कविताओं में से है–

'' लज्जा ढकने को
मेरी खरगोश सरीखी भोली पत्नी के पास
नहीं है वस्त्र
कि जिसका रोना सुनता हूँ सर्वत्र।...
मेरे दोनों छोटे मूक खिलौने से दुर्बल बच्चे
जिनके तन पर गोश्त नहीं है
जिनके मुख पर रक्त नहीं है
अभी–अभी लडकर सोये है
रोटी के टुकडों पर
यदि विश्वास नहीं हो तो
अभी तुम उनकी ठंडी सिसकी सुन सकते हो
जो वे सोने में रह–रह कर भर लेते है।''

अंतर्राष्ट्रीयता की भावना : भी कवियों ने अभिव्यक्त की है। वह अपने दुःख को सार्वकालिक रुप में प्रकट करता है क्योकि पूंजीवादी, सामंतवादी, दासप्रथा, भांडवली शोषण परक व्यवस्था केवल भारत में ही नहीं बल्कि विश्व में फैली है। इसलिए वह रुस और रुसी क्रांती विचारों को मानवता उध्दार रुप में देखते है। उसकी प्रशंसा करते है, उसका मार्ग अनुसरण करते है। शिवमंगल सिंह 'सुमन की 'मास्को है दूर अभी', 'चली जा रही है बढ़ी लाल सेना' जैसी कविताओं में वह व्यक्त हुआ है–

''बर्लिन अब नजदीक है
फासिस्तों की काल–रात्रि में घोर घटा घिर आई।

चली लाल सेना ज्यों चलती सावन में पुरवाई।''

या नरेंद्र शर्मा कहते है–

'' लाल रूस है ढाल साथियों! सब मजदूर किसानों की,
वहाँ राज है पंचायत का, वहाँ कहाँ है बेकारी।''

संपूर्ण विश्वमानव प्रति वह अपनी मंगल कामना को प्रकट करता है। पूंजीवाद के विरुध्द जुझनेवाली यह शांतीमुलक विचारधारा है। वैसे मार्क्स ने दुनिया को दो वर्गों के विभाजित कर एकता को स्थापित किया था। भारत के मार्क्सवादी अपना नाता रुस के साथ जोड़ते है। इसी में उनकी विश्वमानवतावादी भावना दिखाई देती है।

१०. समसामयिक समस्याओं का अंकन :–

प्रगतिवादी कवि देशी–विदेशी समस्याओं प्रति सजग रहा है। मार्क्स दर्शन मुलतः जीवन–परिवर्तन का क्रियात्मक दर्शन है। संघर्ष उसका स्थायी भाव है वर्ग विहीन रचना उसका लक्ष्य है। ऐसे में समसामयिक प्रश्नों पर वह लिखता रहा यह उसकी सजगता का प्रमाण है। विश्व पटल पर वह साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, से संघर्ष करता है। देशी–विदेशी महत्वपूर्ण घटनाओं पर उन्होने लिखा है। १९४२ की क्रांती, बंगाल का अकाल, द्वितीय विश्वयुध्द तथा उससे उत्पन्न परिस्थिति की विभीशिका, नौ–सेना का विद्रोह, आजाद हिंद फौज,स्वाधीनता संग्राम, साम्प्रदायिक दंगे, भारत विभाजन, आज़ादी प्राप्ति,गांधीजी की हत्या, कश्मीर समस्या, चीन का आक्रमण, आदि देशी घटनाओं पर उन्होंने कविता लिखी है।

अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं में विश्वघटनाओं, में शोषित मानवता को प्रति कवियों में सहानुभूति की वाणी रही है। हीरोशिमा की बरबादी, कोरिया युध्द, आदि समस्याओं का चित्रण किया है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की मृत्यू ने इन संवेदनशील कवियों को झकझोरा और शिवमंगलसिंह 'सुमन', माथूर जी ने उनपर कविता लिखी। नागार्जुन ने 'महाशत्रुओं की दाल न गलने देंगे' जैसी कविता लिखकर भारत में बढ़ते कट्टरवादियों की करतुतों तथा बापू के प्रति आकुलाहट को व्यक्त किया है–

बापू मेरे ....
अनाथ हो गई भारत माता...
अब क्या होगा...
हाय ! हाय ! हम रहे कहीं के नहीं
लुट गये
... रो–रो करके आँख लाल कर ली धूर्तों ने

''चन्द्रकुँवर वर्त्वाल ने हिरोशिमा की बर्बादी पर आँसू बहाते हुए अमरीका को कोसा है''

''हिरोशिमा का शाप–
एक दिन न्यूयार्क भी मेरी तरह हो जायगा;
जिसने मिटाया है मुझे वह भी मिट जायगा।...
देख लो लंदन मुझे पेरिस मुझे तुम देख लो;
है सभी के भाग्य में इस भाँति मिटना लिखा।''

इसी प्रकार देश में बढ़ती विषमता, बेरोजगारी, भुखमरी, लूट, टैक्सचोरी, महँगाई, अकाल, महामारी जैसी घटनाओं से यह कवि द्रवित हो जाता है। साम्प्रदायिक दंगो में भारत लम्बे समय से झुलस रहा है। प्रगतिवादी साहित्य मात्र मानव– एवं उसका मुक्ति का भी साहित्य होने के कारण धर्मांधता, साम्प्रदायिकता, जातियता का विरोध व्यक्त करता रहा है। भारत में १६ अगस्त १९४६ को कलकत्ता, नोआखाली, बिहार, पंजाब आदि स्थानों पर भीषण नरसंहार हुए। कवियों ने मानवतावादी भावना से इस प्रकार की कट्टरता का, पागलपन का विरोध किया है और नये युग–निर्माण की भावना व्यक्त की है। पंजाब हत्याकांड पर डॉ. रामविलास शर्मा ने कुछ ऐसा ही भाव व्यक्त किया है–

'' नयी फसल देशी फिर धरती लपटों से झुलसाई।
स्वार बनेंगे लुट और हत्या के ये व्यवसायी।
पाँचों नदियाँ एक साथ खीचेंगी यह हरियाली।
लपटों के बदले होगी उगते सुरज की लाली।''

अतीत और परंपरा को भी कवियों ने वर्तमान संदर्भों में देखने का सम्यक प्रयास किया है। भारतेन्दु या द्विवेदी युग की तरह वे उसके अतीत प्रति अंधा मोह नहीं रखते और न उनमें पुनरुत्थान की भावना काम करती है। अतीत चित्रण अंधविश्वासी नहीं बल्कि नवनिर्माण की दृष्टि से किया गया है। दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' और 'रश्मिरथी', रांगेय राघव के 'मेधावी', जैसे प्रबंध काव्य तथा गिरिजाकुमार मायूर की 'बुध्द', 'सुमन' की 'जल रहे है दीन', 'जलती है जवानी', रांगेय राघव की 'सेतुबंध' जैसी कविताएँ उल्लेखनिय है। समसामयिक समस्या चित्रण में कवियों ने व्यंग्य, हास–परिहास का उपयोग किया है। नागार्जुन की 'कागज की आजादी मिलती ले लो दो–दो आने में ' बडी प्रसिध्द पंक्तियाँ है।

११. प्रगतिवाद का कला कौशल :–

प्रगतिवादी काव्य जनसाधारण का काव्य है। इसलिए उसकी अभिव्यक्ति भी जनसाधारण की ही रही है। उन्होंने अभिव्यक्ति पक्ष से ज्यादा अनुभूति पक्ष पर जोर दिया है। प्रगतिवाद के प्रवर्तक सुमित्रानंदन पंत ने ही कहा है–

''तुम वहन न कर सको, जन मन में मेरे विचार।
वाणी मेरी चाहिये क्या तुम्हें अलंकार।।''

यह भाव ही अलंकरण की प्रवृत्ति, छंदोबध्दता की शैली को जनसाधारण में साहित्य के माध्यम से, मार्क्सवादी विचारों को पहूँचाने, उन्हे सजग करने, क्रांति के लिये तैयार करने में बाधा के रूप में देखता है उन्हें परिवर्तन की लड़ाई लढ़नी है इसके लिये मात्र वे स्वाभाविक चित्रयुक्त शैली को अपनाते है–

''खुल गये छंद के बंध, प्रास के रजत पाश,
अब गीत मुक्त औ, युगवाणी बाती अयास।''

इसलिये प्रगतिवादी कविता की भाषा सहज, सरल, बोधगम्य है। छंद क्षेत्र में गीतों और लोकगीतों के साथ मुक्तक, अतुकांत का प्रयोग किया है। प्रगतिवादी काव्य में पहले पहले, गाँव का खुरदुरापन, खिलंडदपन था बाद में उसमें कोमलता और सरसता का संचार हुआ फिर भी अधिकांशत: वह कठोर, व्यंग्यात्मक, विद्रोही, अनगढ़ रूपों के लेकर ही चली है। इन कवियों ने सर्वजन की सर्वसम्मत भाषा का प्रयोग किया है।

७.६ मूल्यांकन

सन १९३६ से १९४५ के महज दस वर्षो में प्रगतिवाद ने हिन्दी क्षेत्र को बड़ा समृध्द किया है। हिन्दी कविता में पहली बार विस्तार से दलित, मजदूर, नारी का नया स्वतंत्र व्यक्तित्व, जीवन की सारी कुरूपताओं, बीभत्सता, करुणा के साथ कविता में आया है। सामाजिक यथार्थवादी दृष्टी ने नये विषयों को कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक को समृध्द किया है। अलोचना के समाजशास्त्रीय, मार्क्सवादी मानदंड तो आज भी रचना को जकड़ लेती है। देश में नये मध्यवर्ग का उदय एवं विकास प्रगतिवाद से जुड़ा है। श्रेष्ठ साहित्य प्रगतिवादी साहित्य यह धारणा दृढ़ की है। सामाजिक परिवर्तन की क्रांती, लड़ाई को कुछ समय तक तो प्रगतिवाद ने बढ़ाया है। आज भी बढ़ा रहा है। नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में कहे तो, प्रगतिवाद ने हमारे युवकों को नई तेजस्विता प्रदान की और एक नया आत्मबल दिया। साहित्य के सामाजिक लक्ष्यों का विज्ञापन करनेवाली यह एक विज्ञापन पध्दती है। ''समाज सुधार की तीव्र भावना उसमें प्राणस्वरूप रही है।

अनेक विद्वानों ने इसे प्रचारात्मकता का साहित्य कहा है। यह केवल समाजवाद, साम्यवाद का प्रचारक रहा है। यह जितनी शीघ्रता से साहित्य में आया उतनी शीघ्रता से नये 'प्रयोग' ने इसे खत्म भी कर दिया वह स्थिर नहीं हो पाया। प्रचारात्मकता के कारण कलात्मकता की प्रायः हत्या हो गई। काव्य विषयों में पुनुरुक्ति आयी, विषय एवं शैली नीरस हो गयी। व्यक्ति के अंर्तजगत की बजाय बर्हिजगत का वर्णन विवेचन किया गया। भारत में अध्यात्मिकता पुरजोर विरोध कर उसकी जगह वैज्ञानिक दृष्टिकोन, वर्ग रहित समाज की स्थापना करना उसका लक्ष्य असंभव हो गया। वस्तुतः भारत में एक बात ऐतिहासिक रूप से दिखाई देती है की जिस किसी जीवन दर्शन में हिंदू–धर्म उसकी अध्यात्मिकता का विरोध, बहिष्कार किया गया। तात्काल उसके प्रति, प्रतिक्रिया, प्रतिक्रांती उभरकर आयी है। हिंदूओं के मन पर यह आघात, या वर्णव्यवस्था को पूर्ण रुपेन न छोडने की मानसिकता भी उसके पीछे रही है। हमारे यहाँ वेद विरोधी भौतिकतावादी चार्वाक, वेद विरोधी वैज्ञानिक मार्ग प्रतिपाद करने वाले दुनिया के मार्गदाता, शांती के दूत बुध्द, और कालांतरण में धर्म आफिम का संदेश लेकर आया, धर्म विरोध करनेवाला मार्क्सवाद प्रायः अधिक समय फल–फुल न सके परंतू ये विचार सामाजिकों में दृढ रहे है। हो सकता है इस प्रतिक्रांती का अगला निशाणा दलित साहित्य हो क्योकि वह भी ईश्वर, अध्यात्मिकता, धर्म आदि गुलामी का विरोध करता है।

प्रगतिवादी रचनाकार भी अपने लक्ष्य से कैसे विमुख हुए है इसका जिक्र डॉ. नामवर सिंह जी ने किया है। फिर भी वे आचार्य कृतकार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में प्रगतिवाद को महान, श्रेष्ठ, संकल्पों का वहन करनेवाला आंदोलन मानते है। फिर भी वे साशंकित है की इसमें 'साम्प्रदायिक भाव का प्रवेश न हो' तो 'भक्तिकाल' की तरह यह भी नये जीवनादर्श अप्रतिरोध शक्ति के रुप में इस आंदोलन का विकास होगा। अब समय भी आ चुका है की ऐसा हुआ है या नही इसका अनुसंधान करने का।

७.७ उपसंहार :–

प्रगतिवादी साहित्य ने कविता, कथासाहित्य, आलोचना के क्षेत्र में सामाजिक यथार्थवादी सौंदर्यदृष्टि को स्थापित किया रचना के भीतरी सौदर्य को देखने के बजाय उसमें आये आत्मसौंदर्य के स्त्रोत को देखना चाहा। उसकी सुंदरता के स्त्रोत समाज का वह तबका रहा है जो सदियों से अभाव, दरिद्रता, अज्ञान, और गुलामी में अपना जीवन जीता आया है। इसलिए वह सतत उनका पक्षधर रहा है इसलिए यह मनुष्य के प्रती मानवतावाद का साहित्य रहा है। यह साहित्य काल्पनिक, कोरे मन या आत्महंता से दुर समाजमन का रहा है। विश्वभर में इस प्रकार के साहित्यकार, जो प्रगतिशीलता को लेकर उभरे फिर चाहे वे तोल्सताय, गोर्की हो या प्रेमचंद, नागार्जुन हो वह श्रेष्ठ और प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके है।

कथा साहित्य में राहुल सांकृत्यायन,यशपाल, नागार्जुन, रागेय–राघव, भगवतीचरण वर्मा, आलोचना में शिवदानसिंह चौहान, डॉ. रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, अमृतराय, नामवर सिंह जैसे आलोचकों की समृध्द परंपरा रही है। गणपतिचंद्र गुप्त ने प्रगतिवाद की न्यूनताएँ स्पष्ट की है। एक 'भारत जैसे देश में अध्यात्मिकता का तिरस्कार या बहिष्कार, दो मार्क्स के अनुसार कोई भी व्यवस्था अंतिम नहीं होती,साम्यवादी पर भी यह लागु होती है, वह भी अपूर्ण सिध्द हुई, तीन समाजवाद की और काँग्रेस का बढ़ना, मार्क्स के प्रभाव को न्यून करना रहा, चार मार्क्सवाद को हमारे साहित्यकारों ने बुध्दि का विषय बनाया हृदय का नहीं, उनकी रचनाओं में शुष्कता आयी, अनुभूति की तरलता का आभाव आया, सच्चाई तो यह है की प्रगतिवादी वर्ग के नेता साहित्यकार स्वंय किसी पुंजीपति से कम नहीं है, पहाड़ियों के वैभवपूर्ण वातावरण में बैठकर निश्चिन्तता से मजदूरों के दुःख दर्द के गीत लिखे जा सकते है, किन्तु उनमें अनुभूति की सजीवता आ जाए आवश्यक नहीं। फलतः प्रगतिवादी साहित्य हमारे हृदय को स्पर्श नहीं करता, पाँच 'मतिभ्रम से अनेक कथाकारों ने नग्न–चित्रण को मार्क्सवाद मान लिया परिणामतः लेखक की प्रतिष्ठा को धक्का लगा, छह स्वंय प्रगतिवादी अलोचकों में पारस्पारिक मतभेदों के कारण वह सुदृढता, परिपक्वता एवं उच्चता प्राप्त नहीं कर पायी, सात भाषा–शैली की दृष्टि से काव्यस्तर नीचे गिर गया। परिणामतः गुप्तजी के अनुसार ''लगभग बीस वर्ष की अवधि में भी वह ऐसी कोई विशिष्ट रचना नहीं दे सका जिसे हम 'कामायनी' या 'गोदान' के स्तर पर रख सके। संपूर्ण साहित्य में कोई ऐसी देन नहीं जिसे हम अविस्मरणीय कह सके।'' परंतू हमें इस बात का ध्यान रखना होगा की मुतिबोध की 'अंधेरे में', ब्रह्मराक्षस जैसी कविता, उनकी आलोचना के साथ डॉ. नामवर सिंह, का योगदान निश्चित प्रगतिशीलता की कमी कवियों को भर सका है। दोष कई रहे होंगे फिर भी हम आज तक देख रहे है की प्रगतिशीलता का जामा पहनकर ही हिन्दी में उच्चता पाई जा रही है। प्रयोगवाद तथा अज्ञेय ने भी इस काव्य पर कुछ मार्यादाएँ लायी। लेकिन वर्तमान में केदारनाथ सिंह, स्वंयप्रकाश जैसे लेखक उसको आगे ले जा चुके है। सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई में यह आंदोलन बडा व्यापक एवं महत्वपूर्ण हो चुका है। सर्वसामान्य के प्रती गहरी संवेदना इसी काव्य की देन है। आध्यात्मिकता की आड में फैले पाखंड़ को दूर कर समाज, देश में 'नवजागरण' का रहा अधूरा कार्य प्रगतिवाद ने पूरा किया ऐसा कहना गलत नहीं होगा। क्योंकि बाद में देश की स्थितियाँ जैसे–जैसे बदली साहित्यिक प्रवृत्तियाँ भी बदली। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली, पंचायत राज, वैज्ञानिक दृष्टि का

विकास, गांव की बदहाली के जगह खुशाली आदि का विस्तार इस अंदोलन का परिणाम कहा जा सकता है। एक तरफ राजनीतिक दबाव और दुसरी तरफ सामाजिक विस्तार एवं आधार पाने का संघर्ष इसे झेलना पड़ा। प्रशंसा की जगह इसकी सुनियोजित बदनामी अधिक हुई। समाज निष्ठा के कारण व्यक्तिमन की भाव–भावनाओं को विस्तार नहीं मिल पाया। जहाँ तक हो सकता है बहेतरीन एवं स्वस्थ दृष्टि का विकास सामाजिक, राजनीतिक, साहित्य, के क्षेत्र में प्रगतिवाद द्वारा ही साध्य एवं संभव हुआ है।

७.८ बोध प्रश्न :–

१. प्रगतिवादी कविता की दार्शनिकता का परिचय दीजिए।
२. प्रगतिवादी काव्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

◆◆◆◆◆◆

८

प्रयोगवाद

(1943-1960)

८.० इकाई की रूपरेखा

८.१ प्रयोगवाद : उद्भव–नामकरण

८.२ प्रयोगवाद : पाश्चात्य प्रभाव

८.३ प्रयोगवाद : प्रमुख प्रवृत्तियाँ

८.४ मूल्यांकन

८.५ उपसंहार

८.६ बोध प्रश्न

८.० इकाई का उद्देश्य

क. प्रयोगवाद के उद्भव के कारणों की जाँच–पड़ताल करना।

ख. प्रयोगवाद कैसे पाश्चात्य विचारों से प्रभावित हुआ यह जानना।

ग. प्रयोगवादी काव्य वैशिष्ट्यों का अध्ययन करना।

घ. प्रयोगवाद ने शिल्प के स्तर पर मौलिक प्रयोग कविता में करने शुरू किये उसे देखना।

ड. प्रयोगवादी कविता का मूल्यांकन करना।

८.१ प्रयोगवाद: उद्भव की पृष्ठभूमि :–

१९४३ मे अज्ञेयजी के संपादकत्त्व में 'तार सप्तक' प्रथम का संपादन हिन्दी कविता मे 'प्रयोग' प्रवृत्ति को लेकर, महत्त्वपूर्ण घटना रही है। वस्तुत: यह कालखंड अनेक नामों से जाना जाता है 'प्रयोगवाद', 'प्रपद्यवाद', 'नई कविता' आदि । बिहार के तीन कवियों नलिनविमोचन, केशरी नारायण शुक्ल, नरेश ने 'नकेनवाद', या 'प्रपद्यवाद' का प्रवर्तन किया। यह प्रयोगवाद का विरोधी होते हुए भी उसी की एक शाखा है। जिस पर अनेक विदेशी वादों का प्रभाव स्पष्ट रहा है। जिसमे प्रमुख है अति यथार्यवाद (आन्द्रे बेरन और उनका मित्र फिलीप सोपोल्ट १९२०), प्रतीकवाद (फिगारों पत्रिका द्वारा बैदिलेअर, अर्थर बैंरिम्बो, वरलेन, मलार्मे, पाल वेलरी १८८५), बिंबवाद (टी. ई. ह्यूम, एजरा पाऊंड, रिचर्ड एलडिंग्टन, एफ. एम. फ्लिन्ट– १९०८), दादावाद (चित्रकार जीन अर्प तथा अन्स्र्ट मार्क्स– १९१६), अस्तित्त्ववाद (सोरेन किर्केगार्ड, एफ नीत्शे, मार्टिन हैड्डगर और जे. पी. सार्त्र– १८१३–१९०५) मनोविश्लेषण (सिग्मंड फ्रायड, युंग, एडलर–) आदी। इसका मतलब यह है की हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्यवादों का प्रभाव पडने लगा था, या यों भी कहा जा सकता है कि हिन्दी के कवि, कथाकार पाश्चातों की साहित्य प्रवृत्तियों का अनुकरण 'प्रयोग' कर रहे थे । प्रयोग तो साहित्य

का वैशिष्ट्य है चाहे वह आदिकाल हो या भक्ति, रीति, छायावाद, प्रगतिवाद हो। कोई भी काल या काव्यांदोलन नये प्रयोग के बगैर स्थापित नहीं होता। अज्ञेय ने कुछ नये और अनजाने कवियों को लेकर प्रथम सप्तक का प्रकाशन किया। जिसके कवि है– प्रथम सप्तक में –

१. अज्ञेय, २. गजानन माधव मुक्तिबोध, ३. गिरिजाकुमार माथुर, ४. प्रभाकर माचवे, ५. नेमिचन्द्र जैन, ६. भारत भूषण अग्रवाल, ७. रामविलास शर्मा

दुसरे सप्तक में– १. भवानी प्रसाद मिश्र, २. शकुन्तला माथुर, ३. हरिनारायण व्यास, ४. शमशेर बहादूर सिंह, ५. नरेशकुमार मेहता, ६. रघुवीर सहाय, ७. धर्मवीर भारती

तीसरा सप्तक में– १. प्रयागनारायण त्रिपाठी, २. कीर्ति चौधरी, ३. मदन वात्स्यायन, ४. केदारनाथ सिंह, ५. कुँवरनारायण, ६. विजयदेव नारायण साही, ७. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना.

हम जानते है की उपर्युक्त सभी कवि 'प्रयोगवाद' काल में प्रकाशित' तार सप्तक से हिन्दी जगत में आये परंतू गौर कि जानेवाली बात यह भी है कि परवर्ती काल में वे उसी के साथ प्रतिबध्द नहीं रहे। अज्ञेय ने मात्र 'नये प्रयोगकाल' का प्रवर्तन किया। काव्य के वर्ण्य विषय तथा शिल्प में कुछ नयापन लाया और नये प्रयोगधर्मीता से एक आंदोलन चलाया गया। अज्ञेय की कविता जिस समय–क्रोड की उपज है उसे ध्यान में रखकर ही प्रयोगवाद को जाना जा सकता है। इस पर कठोर दोषारोप करनेवाले बहुत से प्रतिष्ठित आलोचकों ने इसके मूल्यहीन होने की घोषणा है।

अज्ञेय का व्यक्तित्व, व्यक्ति स्वतंत्रता से लबालब भरा है। उसे ही वे सर्जनात्मकता की कसौटी भी मानते है और 'सत्य का अन्वेषण' उसी से संभव है, सामाजिकता की परख भी उसी से की जा सकती है का दावा करते है। संकट का बोध, सत्य की खोज़ की ओर व्यक्ति को प्रवृत्त करता है और रचनाकार आत्मरक्षा हेतू व्यक्तिवादीता की ओर बढ़ने लगता है। अज्ञेय में यह संकट–बोध भीतरी एवं बाहरी दोनो प्रकार का है। भीतरी संकट समाज में कवि को न मिलनेवाला सम्मानजनक स्थान रहा है। व्यक्तिवादी प्रवृत्ति में सन्मान पाने की 'युयुत्सता' होती है और न मिलने पर लेखक पलायन कर जाता है परंतू इसमें सामाजिक प्रतिरोध, पीड़ा–बोध में व्यक्त होता है। 'पीड़ा, दु:ख और जीवन की अपूर्णता' पर मध्यवर्ग और उच्चवर्ग से उपर उठकर सोचने की कोशिश अज्ञेय करते है। अज्ञेय के भीतर कही पर भी जड़ न पाने की विवशता प्रबल है। 'नदी के द्वीप' उसका उदाहरण है। डॉ नामवर सिंह ने कहा है– अपने वर्ग के धनी–मानी और प्रतिष्ठित लोग निर्धन कवि को अपने बीच सम्मान देते नहीं और किसान–मजदूरों के बीच उतरकर सम्मानित होना उसके लिए हेठी ही है; न वह इनका गीत गा सकता है, न उनका। ... इसलिए वह इन सबसे परे रहकर काल्पनिक 'निष्पक्षता' का व्रत लेता है। लेकिन धीरे–धीरे इस 'निष्पक्षता' का भी वृत्त टूटता है और वह अंत में अपनी मंशा साफ–साफ इन शब्दों में प्रकट करता है कि वह 'परिस्थिति' के भीतर ही अपने लिए एक 'संतोषजनक' परिस्थिति गढ़ सकता है। यह 'परिस्थिति' और कुछ नहीं वस्तुत: वह मध्यवर्गीय प्रवृत्ति ही है। इस कवि की सारी जागरुकता यही सिखाती है कि किसी नवीन समाज–व्यवस्था में ही किसी तरह दिल बहलाने की चेष्टा करनी चाहिए या तो वह समाज–व्यवस्था थोड़ी और भी लचीली होकर कवि के अनुकुल हो जाये अथवा स्वयं कवि ही थोड़ा–सा और झुककर उस समाज–व्यवस्था के अनुकुल हो जाए, दूसरे शब्दों में किसी प्रकार निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति की आर्थिक और सामाजिक स्थिति कुछ अच्छी हो जाए–वह सेठों की तरह धनी भले न हो, परंतू स्वत:

समर्थ अवश्य हो जाये। मतलब यह कि किसान–मजदूर चुल्हें–भाड़ में जाएँ, निम्न मध्यवर्ग का यह बुद्धिजीवी व्यक्ति कुछ और ऊँचे चढ़ जाए। '' मध्यवर्ग से उसका शत्रु भाव खत्म हुआ इस प्रस्ताव पर', उसे संरक्षण प्राप्त हो' केवल इस टुकड़े पर उच्च–मध्यवर्ग का सारा अत्याचार और अपनी सारी पीड़ा भुलाई जा सकती है। ''... फिर मध्यवर्गीय कवि के साथ धोखा हुआ, उसका मोहभंग हुआ... उसकी इस एकाकी याचना पर मध्यवर्ग ने ध्यान नहीं दिया। ऐसी स्थिति में उसने अपने को सर्वथ: ''नि:सहाय अनुभव किया'' 'विस्थापित हुआ'... मध्यवर्गीय परिवेश से सामाजिक रुप में कटकर भी मानसिक रुप से यह कवि उसके मोह को छोड़ने में जितना असमर्थ है, उतना ती असमर्थ जन–जीवन के साथ तदाकार होने में भी है।''फलत: इस प्लावन के सम्मुख उसका 'स्थिर समर्पण' है। इस 'स्थिर समर्पण' में भी वैयक्तिक 'ऐठ' निहित है।'' फिर भी उसमें दृढ़ विश्वास है की उसका अस्तित्व सुरक्षित रहेगा। अपनी इस 'त्रिशंकू' स्थिति के प्रति उसमें 'स्थिर समर्पण,' एकाकीपन 'और' निष्क्रिय परितृप्ति' में डुबे'' रहना पड़ा, अपने आपको गौरवन्वित करने के लिए उसने 'दु:ख' का 'फलसफ़ा' गढ़ा'। यही उनका दार्शनिक सुत्र है– 'दु:ख सब को माँजता है। '' इस प्रकार उनकी आंतरिक बनावट–बुनावट उन्हे अकेलापन, विद्रोह, भौंडा–यौन–प्रदर्शन, मनोविज्ञान आदि से जोड़ता है। अपना 'अहं', 'क्षणवाद', निराशा, पलायनवृत्ती, 'सामाजिक अनुपयोगिता' के विरुध्द अपनी उपयोगिता को प्रमाणित करने' का प्रयत्न वह करते है।

रामस्वरुप चतुर्वेदी के विचारों को इसके संबंध में, देखना होगा, ''द्वितीय विश्वयुद्ध के समय लगभग सभी राष्ट्रों ने आत्मसंरक्षण के लिए भीतरी दबाव को तीव्र रुप से महसुस किया उसी का परिणाम 'विज्ञान और प्रविधि' के विकास में हम देखते है। आंतरिक्ष–यात्रा का आयोजन, अणुशक्ति का अविष्कार तो युध्दकालीन मन:स्थिति के दबाब में अधिक हुआ। युध्द काल के उखड़े हुए मुल्य विवाह, परिवार, धर्म, परंपरागत नैतिकता आदि मौलिक संदर्भो में – फिर नही जम सके क्योकि महायुध्द तो समाप्त हो चुका था पर अंदर–ही अंदर सुलगाते रचनेवाला हर दम तैयारी में रखनेवाला मनोभाव, युध्द, शीतयुध्द शुरु हो चुका था, जो कभी खत्म न होनेवाला और मानवीय प्रवृत्तियों पर दबाब बढ़ानेवाला रहा। इस प्रकार की मनोवृत्ति का प्रभाव क्षेत्र बढ़ता गया। भारी उद्योग और प्रविधि की लपेट भी बढ़ती गई। जीवन में संकट कालीन स्थिति की सामान्यत: आई। ... अनुभूति का ज्ञान होने लगा अर्थात मानवीय सौहार्द्र में उत्तरोत्तर कमी तथा एक तरह की कठोरता का विकास हुआ। मनुष्य का मनुष्य से संपर्क बढ़ा, जहाँ व्यक्ति से व्यक्ति को मिलने के लिए लम्बा समय और संघर्ष होता था वहाँ तीव्रता बढ़ी, यह बढ़ती मूल्यहीन स्थितिता का प्रधान कारण बना, मानवीय संवेदनशीलता पर बहुत बड़ा दबाब रहा जिसमें अनुभूति का क्षरण होता है, और स्नायविक रोगों की बढोत्तरी।'' सृजनात्मकता और व्यक्तित्व का संरक्षण ही अज्ञेय को जरुरी लगा और उसे व्यक्तिवाद से साधने का, 'एकांत' से साधने का प्रयास उन्होंने किया। '' शायद यही कारण है की वे व्यक्तिवाद के विरूद्ध व्यक्ति स्वतंत्रता को महत्त्व दिया है। अज्ञेय ने अपने कृतित्व में बुनियादी तौर पर मानव व्यक्तित्व की इस स्वाधीनता, सर्जनात्मकता और दायित्व को सूक्ष्म और प्रभावी रूप में अंकित किया है।'' यह पहचान ही व्यक्तित्व के अस्तित्व की सबसे बड़ी सार्थकता है। इसीलिए 'नदी के द्वीप में' उखड़ जायेगे, कहीं जम जायेगे का भाव व्याप्त है। अज्ञेय का व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रयोगवाद' की प्रवृत्ति का बोध कराते है। यह प्रयोग संभवत: अधिकतर शैली के क्षेत्र में संस्मरणीय है।

८.१ नामकरण

प्रयोगवाद यह संज्ञा प्रयोग प्रयोगवादी कवियों के कुछ वक्तव्य के कारण ही प्रचलित हुई है। वैसे अंग्रेजी कविता में 'प्रयोग' के लिए 'एक्सपेरिमेंट' शब्द प्रयुक्त हुआ। हिन्दी में वही प्रयोग के रुप में रुढ़ हुआ परंतू ''अंग्रेजी में 'प्रयोगवाद' अर्थात 'एक्सपेरिमेंटलिज्म' नामक कोई वाद नहीं है।'' वर्तमान युग–विज्ञान जिस प्रकार तर्क और युक्ति द्वारा पदार्थो का विश्लेषण करता है उसी प्रकार प्रयोगवाद मानव शरीर और मस्तिष्क–तत्व का विश्लेषण करता है। मानसिक भावनाओं का विश्लेषण करने के लिए वह अनेक प्रयोग कविता के क्षेत्र में करता है।''

''प्रयोगवाद का अर्थ कुछ विद्‌वानों ने 'रुपवाद' अथा फॉर्मलिज्म' लिया है परंतू यह उसकी एक शाखा मात्र है। प्राय: सभी प्रयोगवादी कवियों ने केवल रुप–विधान पर ध्यान नहीं दिया, दिया भी तो वे संख्या में नगण्य है।'' प्रयोगवाद कोरे रुपवाद से व्यापक प्रवृत्ति तथा विचारधारा का काव्य है। कम– अधिक मात्रा में यह 'ऱ्हसोन्मुखी मध्यवर्गीय मनोवृत्तियों तथा विचारधाराओं' का वाहक है। 'ऐतिहास रुप में वह उत्तर–छायावाद की समाजविरोधी अतिशय व्यक्तिवादी मनोवृत्ती'' का काव्य है।

प्रयोग के द्वारा नया सत्यान्वेषण उसकी विशेषता रही हैं, जो पुराने सत्य, परंपरागत रुप में स्थापित किये जा चुके थे, काव्य विषय, शैली, उपमान , प्रतीक, भाषा, शब्द के रुप में उसका नया अन्वेषण प्रयोगवादी कविता में किया गया है। प्रयोग वाद के संबंध में विभिन्न प्रयोगवादी लेखकों की विचारधारा से उसका अर्थ ग्रहण किया जा सकता है–

धर्मवीर भारती– ''जहाँ तक इस काव्य ने नई परिस्थितियों से प्रभावित नई अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए नया काव्य रूप, नई कल्पनाएँ, नई गठन खोजी वहाँ तक यह काव्य निश्चय ही विकास और प्रगति में न केवल सहायक सिध्द हुआ है वरन वह एक बहुत महत्वपूर्ण चरण रहा है।''

मदन वात्स्यायन– ''उषा देवता से लेकर गधे तक, नग्न यौन भावना से लेकर सामाजिक क्रान्ति तक, देहाती अमराई से लेकर कल–पुर्जो तक, अवचेतन से लेकर स्थुल के अनुत्तेजित चित्रण तक इतना व्यापक विस्तार शायद पहले किसी 'वाद' की कविता में नहीं हुआ।''

लक्ष्मीकांत वर्मा– ''प्रयोग का उद्देश है मान्य सत्य का परीक्षण और परीक्षण द्वारा सत्य के नये आधारों का अन्वेषण। प्रयोगकर्ता चमत्कार, रुढ़ि अथवा अंधविश्वासों को नहीं मानता। किसी भी सत्य को अंतिम सत्य के रुप में नहीं स्विकारता। कोई कह रहा है, इसलिए भी वह उस पर विश्वास नहीं करता। वह उस अनुभव से खुद गुजरना चाहता है। क्षण–प्रतिक्षण की अनुभूतियों को भी वह महत्त्व देता है। प्रखर बौध्दिकता और विवेक ही उसका बहुत बड़ा आधार है। प्रयोग एक माध्यम मात्र है, उद्देश्य है सत्य की खोज।'' इस दृष्टि से 'प्रयोग' नया 'वाद' रहा है।

प्रयोगवादी कविता के लिए कुछ लोगों ने 'नई कविता' का नाम दिया तो कईयों ने इसमें समान प्रवृत्तियों को भी पाया है।

जिस प्रकार छायावादी कवियो की अरुची के बावजूद छायावाद नाम चल पड़ा उसी प्रकार प्रयोगवाद' भी प्रयुक्त हुआ। दुसरा सप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने ही उसका विरोध

करते हुआ लिखा है– ''प्रयोगवाद कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे है। न प्रयोग अपने आप में दृष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है, कविता भी अपने आप में दृष्ट या साध्य नहीं है। अत: प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना कवितावादी'' कहना।

डॉ. नामवर सिंह ने प्रयोगवाद में केवल शिल्पगत प्रवृत्ति को नकार कर उसमें जीवन–दृष्टी के प्रयोग दर्शन का विचार प्रतिपादित करते हुए कहते है– 'वाद' के विरुध्द विद्रोह प्रयोगशील कवियों की पहली विशेषता है। अज्ञेय के उपर्युक्त कथन का आधार लेकर वे आगे कहते है, 'वाद' का विरोध करते हुए प्रयोगशील कवि राजनीतिक व दार्शनिक किसी भी 'वाद' का निषेध करते है, वाद अर्थात 'मतवाद' या सिस्टम। प्रयोगवादी यह मानते है की जब वाद स्वीकारा जाता है तो कवि की व्यक्तिगत एवं विचारगत स्वतंत्रता में बाधा पड़ती है क्योकि विचार की दृष्टि से 'वाद' एक बंद प्रणाली है। प्रयोगाशील दृष्टि का सुत्रपात ही इस धारणा से हुआ कि पूर्वनिश्चित कोई भी वाद सत्य तक पहुँचाने में समर्थ नहीं है। '' वाद से बचने की कोशिश में ही सत्य का निरंतर अन्वेषण अनिवार्य हो जाता है, और वह हर एक को स्वयं करना पड़ता है। इस दृष्टि से प्रत्येक व्यक्तित्व सत्यान्वेषण के लिए स्वतंत्र है। अर्थात प्रयोगशीलता 'व्यक्तिगत अन्वेषण' की वस्तु है। नामवरजी ने इसे गाँधीजी की तरह का 'सत्य प्रयोग' माना है। जाने – अनजाने प्रयोगवादियों ने इस सिध्दांत को स्वीकारा। गांधी की तरह प्रयोगवादी भी 'सत्य को आन्तरिक' तत्व मानते थे। बुध्दि की अपेक्षा अनुभव को प्रधानता देते हैं इसे ही प्रयोगवाद में बौध्दिकता का आंदोलन कहा गया।''

काव्य के भीतर प्रयोगवादियों ने 'साहस' और' जोख़िम' के प्रयोग किये जिसे अज्ञेय ने 'गोताखोर' की उपमा दी। इन कवियों ने सत्यान्वेषण के प्रयोग अभिव्यक्ति और अनुभूति के क्षेत्र में किये है। उनका मानना है की नये प्रयोग के लिए नयी भाषा और नया अभिव्यक्ति रुप जरुरी होता है। इसीलिए काव्य के वस्तु एवं शिल्प दोनों में प्रयोग है।'' कहना न होगा कि हिन्दी काव्यशास्त्र के इतिहास में यह एक नयी काव्य दृष्टि थी।

सौंदर्यबोध की नयी परंपरा में 'प्रयोग' की नई व्याख्या रघुवीर सहाय ने स्पष्ट की है– ''सीढ़ियो पर धूप में संग्रह में यथार्थ, नयी सामाजिक चेतना, नये मानव–संबंध, नये काव्य–तत्व के लिए नये छंद, भाषा आदि में किसी भी धरातल पर नहीं होता। ... ये कार्य क्षेत्र है।.. रचना एक और ही धरातल है जहाँ एक सम्पृक्त बुद्धिजीवी व्यक्ति में अत्यन्त मौलिक एवं अत्यंत चिरंतन कुछ आन्तरिक तत्व काम करते है। वे तत्व क्या है? अपने से ऊपर उठ जाने की इच्छा...'' अत: सहाय के अनुसार' अपने व्यक्तित्व की खोज' भी प्रयोग नहीं है,'' कला की अपनी सौन्दर्य–परम्परा में कवि द्वारा इन कलात्मक अनुभव के क्षणों का रखना ही प्रयोग है'' अन्तत: 'प्रयोग' कलात्मक अनुभव का क्षण है। इस प्रकार 'प्रयोग' शब्द और 'वाद' दोनों का विस्तार हिन्दी की कविता में हुआ। अज्ञेय के बाद रघुवीर जैसे कवियों ने उसे ऊँचाई प्रदान की। उनकी दृष्टी में परिवर्तन आया उन्होंने विचारधारा की 'वाद' की राजनीति से मुक्त किया। विचार उन्हें मिथ्या प्रतीत हुए, भावनाएँ भावूक लगने लगी। एन्द्रिय बोध– या संवेदन ही यथार्थ लगने लगे। परिणामत: एन्द्रिय–बोधानुभव की प्रतिक्रियाएँ काव्य में आयी ऐसे में सुख के क्षणों में मादक उन्माद और दु:ख के क्षणों में अंध विद्रोह अथवा निरुद्देश्य निराशा' कविता में आयी। आगे चलकर नये कविता में क्षणावादी दृष्टि आयी यह प्रयोगवाद की व्यापक जीवन दृष्टि का

'विस्तार समझा गया। धर्मवीर भारती ने प्रयोगवाद की सीमाओं या कहें उसके सत्य को प्रकट करते हुए कहा की ''प्रयोगवादी कविता में भावना है, मात्र हर भावना के आगे एक प्रश्नचिन्ह लगा है। इसी प्रश्नचिन्ह को आप बौद्धिकता कह सकते है; सांस्कृतिक ढांचा चरमरा उठा और यह प्रश्न उसी की ध्वनि मात्र है।''

जैसा की हमने पहले कहा है। द्वितीय विश्वयुध्द, के बाद विश्वभर में मूल्यों का विघटन तीव्र हुआ। विज्ञान, यंत्र, प्रसार माध्यमों ने संवेदनाओं की अभिव्यक्ति-अनुभूति में जटिलता आयी। परंपरागत जीवन मूल्यों-नये परिवेश में अत: संघर्ष तनाव भरा, व्यक्तिवाद, बौद्धिकता, विद्रोह, यौन ग्रंथियों में उसको बांधने का प्रयास प्रयोगवादी कवियों ने किया। व्यक्तिवादी अनुभूति को समष्टि में कलात्मक क्षण विशेष अभिव्यक्त करने की बात, रघुवीर सहाय, लक्ष्मीकांत वर्मा ने की है।

प्रयोगवादी काव्य दृष्टि को समझाने के लिए अज्ञेय के विचारों को जानना आवश्यक है। प्रयोगवादियों के सामने संवेदना, अनुभूति, अभिव्यक्ति, व्यक्ति, समष्टि, जैसे साधारण शब्दों में बड़ा अर्थ भरने की प्रवृत्ति, भाषा प्रयुक्ति की सीमा, अभिव्यक्ति के क्षेत्र में उन्हें खलती रही यही कारण है की विराम संकेत, सीधी-तिरछी लकीरें, छोटे-बड़ें टाईप का सीधे-उलटे अर्थो में प्रयोग, लोग-स्थानों के नामों, अधुरे वाक्य.... उलझी संवेदना को पाठकों तक पहुँचाना उसका साध्य रहा है। इसलिए प्रयोग उनके लिए केवल साधन है, साध्य नहीं। इसलिए प्रयोग की निरंतरता पर उन्होंने बल दिया। प्रयोगवादीयों ने सम्प्रेषणीयता को महत्व दिया। भाव सम्प्रेषण की दृष्टि से अनोखे प्रयोग प्रयोगवाद की विशिष्टता रही है। इसलिए छायावाद के शिल्प का, भाषा का सुक्ष्म विरोध प्रायोगवाद में स्पष्ट है।

८.२ प्रयोगवाद : पाश्चात्य प्रभाव :-

वस्तुत: प्रयोगवादी कवियों की नई पीढ़ी पाश्चात्य भाषा, साहित्य एवं संवेदनाओं की जानकार थी। उसी के कुछ प्रयोग हिन्दी साहित्य के इस युग में हुए है। स्वयं अज्ञेय पर अस्तित्ववादी, मनोविश्लेषणवादी, टि. एस. इलिएट, डी. एच. लारेन्स, के साथ जपानी अदि कवि एवं कविता का प्रभाव स्पष्ट है। कविता, कहानी उपन्यास निबंध में यह अधिक मुखर हुआ है 'डी. एच. लारेंस की 'Birds', Beasts and 'Flowers' संग्रह की कविता 'Snake' का प्रभाव उनकी कहानी 'साँप' पर रहा है। भोलाभाई पटेल ने अपने शोध ग्रंथ 'अज्ञेय! एक अध्ययन' में उसका विस्तार से विचार किया है। गणपतिचंद्र गुप्त ने भी बिंबवाद, दासवाद, प्रतिकवाद, अतियथार्थवाद, अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद जैसे विभिन्न सांप्रदायो के प्रभाव का उल्लेख प्रयोगवाद तथा 'नई कविता' के संदर्भों में किया है। फ्रायड़ की दमित वासना, कुंठा, अस्तित्ववाद का क्षणवाद, निराश, लघु मानव की प्रतिष्ठा, प्रतिकवादियों की वैयक्तिकता, रुग्णता दुरुहता, भाषा रुपों का प्रयोग, दादावादियों की तरह परंपरागत, संस्कृति एवं सभ्यता का विरोध प्रयोगवाद में हुआ हैं। इसलिए उसे कभी 'रुपवाद', कभी 'प्रपद्यवाद', कभी 'नई कविता के नाम से जाना गया दार्शनिक मनोवैज्ञानिक प्रभाव सिधा अज्ञेय पर रहा। अन्य कवियों ने शायद उनसे ग्रहण किया होगा। इसलिए परवर्ति काव्य में जिस तरह छायावाद को छोड़कर कुछ कवि प्रगतिवाद को अपना चुके थे उसी तरह प्रगतिवादीयों ने प्रयोग को अपनाया और कुछ

प्रयोगवादी भी अंत: तक प्रयोगवादी नहीं रहे, कुछ प्रगतिवादी, जड़ो की और लौटे तो कुछ 'नयी कविता' में उग आये।

अज्ञेय का प्रगति के विरुध्द 'प्रयोग', वाद के विरुध्द विद्रोह, 'अहं' से 'ऐठ' से भरा ही क्यों न हो हिन्दी साहित्य जगत में मात्र चर्चित एवं विलक्षण प्रभावी रहा है। मध्यवर्ग के यथार्थ, उनकी सर्व प्रकार की ऱ्हासोन्मुखता और कुंठा, उदासी, निराशा, आस्था से भरा यह काव्य आत्मनिष्ठ संकीर्णता के बावजूद महत्वपूर्ण हो चुका है। उसकी सामान्य प्रवृत्तियों को देखना यहाँ हमारा अभिष्ट है।

८.३ प्रयोगवाद : प्रवृत्तियाँ

प्रयोगवादी कविता के जन्म के दो कारण माने गये है। एक सामाजिक और दुसरा साहित्यिक। मध्यवर्ग एवं उच्चवर्ग के पाटों के भीतर कवि पिसता जा रहा था या इस प्रकार का अनुभव कर था। सामाजिक जीवन में आयी गिरावट, परंपरा की जकड़ बंदी से छुटने की छटपटाहट, मुल्यों के नकार को उनकी संवेदनाओं ने ग्रहण किया। इस कविता को मध्यवर्ग की ऱ्हासोन्मुख जीवन का चित्रण करनेवाली कहा गया। प्रयोगवाद तक आते-आते छायावाद के कोमल लक्षणा प्रधान एवं संस्कृतनिष्ठ वाायवीय कल्पना में कविता ने सार्थकता तथा अर्थवत्ता खो दी थी, तो प्रगतिवाद ने किसान-मजदूरों के यथार्थ चित्रण में अनिवादिता तथा प्रचारात्मक नारेबाजी की क्रांतियुक्त सामाजिकता के नाम पर सपाटबयानी, यांत्रिक अभिव्यक्ति की थी। ध्यान रहे प्रयोगवादी कवि भी मध्यवर्गीय रहे हैं। वे अपनी कोमल संवेदना तथा परिस्थिति के दबाव में इनका 'व्यक्ति' मानस-तनाव बढ़ता चला गया। सामाजिक बंधनों तथा आर्थिक संकटों का अनुभव वे करने लगे। अपने आपको वे समाज से कटा हुआ, हारा हुआ, और कहीं जड़ा हुआ न पाने लगे, टुटा हुआ देखने लगे। व्यक्ति स्वतंत्रता की सार्थकता को उन्होंने पहचाना उसी के आधार पर नयी समष्टि के साथ तादाम्य स्थापित करने की चेष्टा उन्होंने की परंतू उनके हाथों मोहभंग ही हर बार आया। डॉ. नामवरजी ने 'कविता के नये प्रतिमान' में स्पष्ट किया है की, ''समकालीन संकट की स्वीकृति, मानसिक विभाजन का प्रतिरोध और यथार्थग्राही, यथातथ्य काव्य-भाषा का निर्माण-ये तीनों कार्य १९३८ ई. के आसपास ही शुरु हो गए थे। सिध्दांत के स्तर पर छायावादी भावूकता, काल्पनिकता और आदर्शवाद और उत्तरछायावादी बेफिक्री से भरी अल्हड़ता की निस्सारता सिध्द हो चुकी थी। आवश्यकता थी तो उसे सामुहिक प्रभावशाली रुप देने की। सन १९४३ में 'तारसप्तक' का प्रकाशन उसी आवश्यकता की पूर्ति है।''

सप्तक के सभी कवि अपनी-अपनी दृष्टी से अलग थे जैसे स्वंय अज्ञेय ने कहा है- 'वे सब किसी स्कुल के नहीं है किसी एक मंजिल पर पहुँचे हुए भी नहीं है, अभी राही है- राही नही, राहों के अन्वेषी। उनमे मतैक्य नहीं है, सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग-अलग है- जीवन के विषयों में समाज, धर्म और राजनीति के विषय में काव्य-वस्तु और शैली के, छंद और तुक के, कवि दायित्वों के प्रत्येक विषय में उनका आपसी मतभेद हैं। यहाँ तक कि हमारे जगत के ऐसे सर्वमान्य और स्वयंसिध्द मौलिक सत्यों को भी वे समान रुप से स्वीकार नहीं करते जैसे लोकतंत्र की आवश्यकता, उद्योगों का सामाजीकरण, यांत्रिक युध्द की

उपयोगिता, वनस्पति घी की बुराई अथवा काननबाला और सहगल के गानों की उत्कृष्टता आदि।'' यही कारण है की परवर्ती काल में मुक्तिबोध, भवानीप्रसाद, शमशेर, रामविलास जैसे कवि प्रयोगवाद से अलग जीवन–संघर्ष, विचारधारा से जुड़ते गये। अज्ञेय से अलगता ही उनका वैशिष्ट्ये हो गयी।

इन कवियों ने काव्य के कला एवं भाव पक्ष में नये प्रयोग से नवयुग लाया। जो रुढ़ता का विरोध कर नव–अन्वेषण का समर्थन करता है। वस्तुत: वे परंपराओं का विरोध नहीं करते, किन्तु उनमें आयी रुढ़ तथा निर्जीव तत्वों को त्यागकर नए जीवंत तत्व कविता में भरना चाहते है। नये का अन्वेषण व्यक्तिगत सत्य से व्यापक और उत्कर्षकारी होता है ऐसी धारणा इनकी रही है। इसी से वे समष्टि सत्य तक पहुँचना चाहते है। इसके लिए वे बौध्दिकता का पुरस्कार करते है। प्रत्येक अनुभूति में बौध्दिकता को भावूकता के स्थान पर रखते है। मध्यवर्ग की समस्त कुंठा, जड़ता, अनास्था, पराजय, मानसिक संघर्ष को वे बौध्दिकता से ही व्यक्त करते है। यथार्थ का नग्न रुप, रुग्ण रुप भी उनकी कविता में आया है। अत: अभिव्यंजना के लिए नये प्रतीक, उपमान, बिंब, भाषा–शैली में मनोविश्लेषण आदि का स्वीकार प्रयोगवाद की नई कविता से अलग प्रवृत्तियाँ है।

१. व्यक्तिवाद:–

प्रयोगवादी व्यक्तिवाद छायावादी व्यक्तिवाद से अलग है। प्रयोगवादी घोर व्यक्तिवादी है। उनका व्यक्तिवाद ''दो सीमान्तों के बीच फैला हुआ है। उनमें से एक सीमान्त है मध्यवर्गीय परिवेश के प्रति मध्यवर्गीय कवि का वैयक्तिक असंतोष और दूसरा सीमान्त है– जन–जागरण से डरे हुए कवि की आत्मरक्षा की भावना। कुल मिलाकर यह चरम व्यक्तिवाद ही प्रयोगवाद का केन्द्र–बिंदू है और विभिन्न राजनैतिक, नैतिक, सामाजिक मान्यताओं के रुप में यह संकीर्ण व्यक्तिवाद अपने को व्यक्त करता है।''

प्रयोगवादी कवि अपने आपको मध्यवर्ग से कटा हुआ महसूस करता है। जिसके परिणाम स्वरुप वह अधिक अहं वादी, आत्मकेंद्रित होता गया।आत्मरक्षा के लिए ही वह अपने आप में सिमटकर रहने लगा। उनका अस्तित्व उन्हें कहीं नहीं दिख रहा था। हर जगह सामुहिकता के दबाव में वह बौनापन महसूस कर रहा था। इससे दूर करने की चाह भी उनमे रहीं है। ऐसे में छोटा हो कर रहना और विराट व्यक्तितत्व धारण कर लेने का भाव प्रयोगवाद की विशेषता है। जैसे धर्मवीर भारती कहते है–

''हर मनुष्य बौना है लेकिन
मैं बौनों में बौना ही बनकर रहता हूँ
हारो मत, साहस मत छोडो
इससे भी अथाह शुन्य में
बौनों ने ही तीन पगों में धरती नापी''

कवि अपनी वैयक्तिकता से सुरक्षित रहना चाहता है किन्तु समुह दबाव में यह असंभव लगता है। फिर अनुकुल समय पाकर अपने आपको समाज में जड़ा पायेगा का विश्वास भी रखता है। अज्ञेय की 'नदी के द्वीप' इसी प्रकार की है–

''हम नदी के द्वीप

.... स्थिर समर्पण हमारा....
फिर छनेंगे हम... कहीं फिर पैर टेकेगें
कहीं फिर भी खड़ा होगा नये व्यक्तित्व का आकार''

वस्तुत: प्रयोगवादी कवि अपनी सामाजिक उपयोगिता को वैयक्तिकता से सिद्ध करना चाहते है। ''पलायनवादी प्रवृत्तियों का विरोध करके आरम्भिक व्यक्तिवादी प्रयोगवाद ने ''प्रतिरोध'' और 'युयुत्सु–भाव' का नारा दिया।'' संभव है यह प्रगतिवाद की 'अति सामाजिकता के विरोध में अति व्यक्तिवादी हो गये। छायावाद का व्यक्तिवाद अलौकिता तथा रहस्यवादी भावना में बदलता है किन्तु प्रयोगवादी व्यक्ति संकीर्णता के कारण अपने में ही सिमटकर रह जाता हैं। फिर अपने दु:ख, पीड़ा बोध को माँजना' शुरु करता है जैसे अज्ञेय ने कहा ''दु:ख सबको माँजता है'' फिर कहा की वह, ''सबको मुक्त होने की सीख देता है,'' उन्हे यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें। '' 'दु:ख आत्म की शुध्दी करता है की भावना से भी उसका विश्वास उठता गया और 'स्थिर समर्पण' करता चला'', गया परंतू उसमे में भी व्यक्तिगत अहं ही अधिक रहा। यह 'अहं' ही उसे सामाजिक होने से रोकता है। किन्तु उसका मन मात्र उसका आकांक्षी रहा है। ''अज्ञेय प्रारंभ से मध्यवर्ग के विरुध्द वैयक्तिक असंतोष उगाल रहे थे'' वस्तुत: अज्ञेय का व्यक्तित्व ही मध्यवर्ग का है प्रकारांतर से यह कह सकते है कि यह मध्यवर्ग की सच्चाई का आईना हैं।

२. निराशा और अनास्था :–

निराशा और अनास्था प्रयोगवादी कवियों की दुसरी प्रमुख विशेषता है। डॉ. नामवरजी ने उसके मुल में 'अहंवाद' को माना है। जिसको वे पहचानते भी है–

अहं! अन्तर्गुहावासी! स्वरति! क्या में चिन्हता
कोई न दूर्जो राह?
जानता क्या नही निज में बध्द होकर है नहीं निर्वाह?

इसलिए वे जीवन से पलायन नहीं करते है बल्कि निराशा के विभिन्न स्तरों की अभिव्यक्ति करते हैं। वस्तुतः यह निराशा वर्तमान युग–जीवन के प्रति अनास्था के कारण आयी है। वे जीवन में व्याप्त यांत्रिकता, सामाजिक अस्वीकार्यता, से विफलता के अनुभव रुप में उनके व्यक्तित्व में आयी है। एक प्रकार की कुंठावस्था उनमें पैदा हो जाती है। उन पर व्यंग्य करती है। इस प्रकार के दु:ख को वे मूकता से सहने के अलावा कुछ कर भी नहीं सकते थे–

''मुझपर व्यंग्य करती है
मेरी ही परछाइयाँ
दर्द ये किससे कहूँ''

का भाव सर्वेश्वर जैसे कवि मन में निर्माण होता है। छायावाद की तरह इनकी निराशा अध्यात्म या प्रकृति सौंदर्य की ओर नहीं मुड़ती न ही प्रगतिवादयों की तरह इसे दूर करने के लिए क्रांती का हथियार उनके पास है। इसलिए वे उनके कारणों का अन्वेषण करते है। इसको दूर करने का विश्वास व्यक्त करते है, यहीं पर हम कह सकते है की जीवन यथार्थ से यह कवि भाग खड़ा नहीं होता बल्कि अपनी सार्थकता, औचित्य को प्रमाणित करता है–

''दीप है हम..

यह नहीं है शाप। यह अपनी नियति है।
यदि ऐसा कभी हो
यह स्त्रोतस्विनी है ही कर्मनाश। कीर्ति नाशा घोर
काल–प्रवाहिनी बन जाये
तो हमें स्वीकार है वह भी। उसी में रेत होकर
फिर छनेगें हम। जमेगें हम। कहीं फिर पैर टेकेगें
कही फिर खड़ा होगा नये व्यक्तित्व का आकार।''

निराशा, अनास्था को आस्था में परिवर्तित करने का साहस इन कवियों में है। अज्ञेय, मुक्तिबोध एक प्रकार से संघर्ष का रास्ता अपनाते है।

३. बौद्धिकता का प्राधान्य :–

प्रयोगवादी कवियों ने अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति में बौद्धिकता का अधिक प्रयोग किया। भावना या रागात्मकता कहीं पर भी नहीं है जहाॅ है वहाँ वह प्रश्नांकित है। इसी प्रश्न को धर्मवीर भारती ने बौद्धिकता कहा है। बौद्धिक युग में बौद्धिक दृष्टि का स्वीकार यह कवि करते है। अज्ञेय ने अपनी कविता 'हरी घास पर क्षण भर' में बौद्धिकता को प्रतिष्ठित किया है। समाज से ये भयभीत मन प्रेम की भावूकता की जगह बौद्धिकता या 'विशेष तर्कवाद' को व्यक्त करते– है की दुनिया सोच सकती है' ''कोई न जाने क्या सोचे इसलिए वह कहते है–

''चलो उठे अब
अब तक हम थे बंधु
सैर को आए–
और रहे बैठे तो
लोग कहेंगे
धुँधले में दुबके दो प्रेमी बैठे है।
वह हम भी हो भी
तो यह हरी घास ही जाने।''

शायद इसी बौद्धिकता के कारण ही की अज्ञेय ने केशवदास की प्रशंसा की और अंग्रेजी कवि बेन जानसन से उनकी तुलना कर उनकी श्रेष्ठता को स्वीकारा। शुक्ल जी ने केशव को हृदयविहीन कहा था अज्ञेय 'केशव की कविताई' शीषर्क संवाद दृष्टाव्य है''

बौद्धिकता का परिणाम ही है की वह छायावाद की किशोर भावूकता को छोड़कर अपनी प्रिया को 'कलगी बाजरे' की कहता है– अगर मैं तुमको ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका/ अब नहीं कहता, यह शरद के भोर की नीहार न्हायी कुँई/ टटकी कली चम्पे की/ वगैरेह तो / नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सुना है/ या कि मेरा प्यार मैला है/ बल्कि केवल यही थे उपमान मैले हो गये है/ देवता इन प्रतीकों के कर गए है कूच।''

४ लघुता के प्रति दृष्टिपात :–

एक ओर प्रयोगवादी कवियों ने अपने आपको लघु अर्थात सामान्य उपेक्षित मानव के रुप में काव्य में चित्रित किया है तो दुसरी ओर लघु और शुद्र प्राणीयों को उच्च मानव रूप में रखकर उनके सौंदर्य का, विशेषता का, मानवता का वर्णन किया है। लघु मानव की दमित

वासना, सुख दु:ख और अस्तित्व की लघुता इनकी विशेषता है। लघु वस्तुओं का चित्रण कविता में आया ''पहली बार कंकरीट के पोर्च', 'चाय की प्याली', 'सायरन', 'रेडियम की घड़ी', 'चुड़ी का टुकड़ा', 'बाथरुम', 'गरम पकौड़ी', 'बाँस की टुटी हुई टट्टी', फटी ओढ़नी की चिंदियाँ', 'मूत्र–संचित मृत्तिका के वृत्त में तीन टाँगों पर खड़ा नतग्रीव धैर्यधन गदग', 'बच्चे', 'दइमारे पेड़' बाटा चप्पल', 'साइकिल', फ्रेंच लेदर, 'कुत्ता', 'वेटिंग रुम', होटल. 'दाल', तेल. 'हींग', 'हल्दी', 'फटा कोट' आदि– से इनकी कविता बनी है। अनन्त कुमार 'पाषाण' की कविता–

''दिन मर गया है, में भी मर गया हूँ,
हींग और हल्दी से वासित मेरी बीबी मगर अभी जिंदा है!
और उसके पेट में कुछ और नयी जिन्दगी है,
मेरा कोट फटा है उसने ही सिया है।''

इस प्रकार उदात्तता की जगह क्षुद्रता का वर्णन प्रयोगवादीयों ने किया है। छायावाद की कल्पनाशिल्पता की जगह इन कवियों में यथार्थ वाद का आग्रह रहा है। ''उदाहरण के लिए छायावादी कवि ने जहाँ चाँदनी का बड़ा भव्य चित्रण किया है वह प्रयोगवादी ने 'शिशिर की राका–निशा' का यथार्थ प्रस्तुत किया है–

''वंचना है चाँदनी
झूठ वह आकाश का निरवधि गतन विस्तार
शिशिर की राका–निशा की शान्ति है निस्सर
दूर वह सब शांति, वह सित भव्यता, वह
शून्य के अवलेप का प्रस्तार–
इश्वर केवल झिलमिलाते
चेत–हर, दुर्धर कुहासे की हलाहल–स्निग्ध मुट्ठी में
सिहरते से, पंगु, टुण्डे,
नग्न बच्चे, दइमारे, पेड!

राका–निशा के भीतर की कुरुपता का चित्र यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार साधारण से साधारण विषयों को कविता में प्रयोगवाद ने उपस्थित किया है। आलोचकों ने इस प्रकार की साधारणत: की आलोचना भी की है।

५. यथार्थ की कुरुपता का चित्रण :–

प्रयोगवादी कवि अतियथार्थवादीता को ग्रहण कर जीवन की कुरुपता को, विकृति को सहीं ढ़ंग से सामाजिकों के सामने लाना चाहता हैं। आलोचकों ने इसे नग्न सौंदर्य चेतना या विकृत रुचि भी कहा है किन्तु इस प्रकार की कुरुपता का, असुंदरता के चित्रण में भी वह सौंदर्य–रुची दिखाता है। अज्ञेय कहते है–

''मूत्र– संचित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टाँगों पर खड़ा नत ग्रीव
धर्म धन गदहा।''

अथवा मद्राराक्षस कहते है–

''मुहब्बत एक गिरे हुए गर्भ के बच्चे सी होती है
चाहत वह, मजबूरी हो सकती है,
जिसे मरीज खाँस कर थूक न सके।''

मध्यवर्गीय विवशता से उपजी यथार्थता प्रयोगवादी कविता की प्रमुख विशेषता है। अतियथार्थ ने कविता को नग्नता की ज़मी पर लाकर यहा किया है।

६. अति नग्न यथार्थवाद :–

छायावादी कवियों ने अपनी नग्न भावनाओं को प्रकृति सौंदर्य के भीतर व्यक्त किया है। शायद कवि सामाजिक बंधनों को स्वीकार्य समझता हो परंतू प्रयोगवादी कवियों ने सामाजिक दृष्टि से प्रतिबंधित या अव्यक्त काम वासना के नग्न यथार्थ को अपनी कविता में लाया है। अपनी कुंठाओं, दमित वासनाओं अतृप्त इच्छाओं का खुलकर वर्णन प्रयोगवाद की विशेषत: है। काम जीवन का उत्स है, परंतू प्रयोगवादी कविता में वह विकृत भौंडे रुप में प्रस्तुत किया है। वस्तुत: अज्ञेय आदि पर फ्रायड, लारेन्स का प्रभाव अत्याधिक रहा है। अनंतकुमार पाषाण की कविता में भी यह देखने के लिए मिलता है –

''मेरे मन की अँधियारी कोठरी में
अतृप्त आकांक्षा की वेश्या बुरी तरह खाँस रही है।
...
पास घर आये तो
दिन भर का थका जिया मचल–मचल जाये।''

या शकुंतला माथुर की कविता 'सुहाग बेला' –

''चली आई वेला सुहागिन पायल पहने...
बाण विद्ध हरणी सी
बाँहों में लिपट जाने की,
मोती की लड़ी समान।''

संभोग वृत्ति का चित्रण यहाँ किया गया है। सुहागिन को 'बाण विद्ध हरणी' बनाया है, बाण को पुरुषेन्द्रिय की उपमा दी गई है। यौन भावनाओं का चित्रण खुलकर प्रयोगवादी कवितो में हुआ है।

७. प्रेम का स्वरुप :–

प्रयोगवादीयों के प्रेम में नग्नता, मांसल–बोध, अधिक है। छायावादी कवियों का प्रेम शालीनता में बंधा था, इसलिए उन्होंने चिर विरह को व्यक्त किया किन्तु प्रयोगवादी कवि विरह नहीं चाहता वह मांसल उत्तप्त शरीर पाने के लिए उत्सुक है। प्रेम का यह नया रुप फ्रायड, लारेन्स के प्रभाव से हिन्दी में आया। अज्ञेय 'सावन मेघ' में इसी प्रेम को व्यक्त करते है–

''धिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले,
भूमि के कंपित उरोजों पर झुका–सा
विशद, श्वासहत, चिरातूर
छा गया इंद्र का नील वक्ष–

वज्र सा, यदि तड़ित् से झुलसा हुआ–सा।
आह, मेरा श्वास है उत्तत्प–
धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार–
प्यार है अभिशप्त
तुम कहाँ हो नारी ?''

'सावन मेघ' यहाँ काम–व्यग्र पुरुष का रुपक है तो 'स्नेह से प्लावित' बीज के कवितव्य से उत्फुल, सत्य–सी निर्लज्ज, नंगी ओ 'समर्पित' जो धरित्री है, वही नारी है।

काम को इन कवियों ने पाप नहीं माना, न ही शाप बल्की वह उसके जीवनानंद भोग से परितृप्त होना चाहता है। कनुप्रिया में धर्मवीर भारती कुछ उसी भाव को व्यक्त करते है–

''अगर मैंने किसी के होंठ के पाटल कभी चूमे,
अगर मैंने किसी के नैन के बादल कभी चुमे,
अगर मैंने किसी की मदभरी अँगडाइयाँ चूमी,
अगर मैंने किसी की साँस की पुरवाइयाँ चूमी,
महज इससे किसी का प्यार मुझपर पाप कैसे हो ?
महज इससे किसी का स्वर्ग मुझपर शाप कैसे हो ?

इनका यौन–सुख–शारिरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर चलता पलता है। उसे वे क्षणभंगुर नहीं मानते, न ही इससे संतुष्ट होते है। ऐन्द्रिय सुख के सौंदर्य पर वे खुलते और खिलते है। इसलिए बार–बार उसकी कामना करते है–

''कौन कहता है कि ऐंद्रिक सुख
सीमित है, भंगुर है ;
तुम्हे पाकर
हर रुप, रस, गंध, गान में
जाने कैसी यह अनंतता अगाधता गा गई है:
कि हर भोग के शेष में
अनायास किसी नुतन भोग का
कल्प–काम कमल खिल उठता है:
हर रुप–सौंदर्य के डोर पर पहुँचते ही
और भी नवीनतर, गहिनतर, विपुलतर
सौंदर्य–लोक का द्वार औचक ही खुल पड़ता है।''

डॉ. नामवरजी के शब्दों मे कहे तो, ''छायावाद का छुई–मुई सा प्रेम अब मांसल रुप में प्रकट होने लगा। '' सौंदर्य अब दुर से देखने की चिज नहीं रहा. भोगने और तृप्त होने का हो गया।

स्वंय अज्ञेय ने अपनी अनेक कविताओं में नारी, प्रेम,मादकता, ऐन्द्रिकता के चित्रण किये है। 'नख–शिख', और देहवल्ली इसके उदाहरण है।

''तुम्हारी देह
मुझको कनक–चम्पे की कली है
दूर ही से
स्मरण में भी गंध देती है।''

तो प्रिया याद में वे पराजय बोध का अनुभव करते है। अज्ञेय का बौद्धिक, अभिमानी ह्रदय प्रेम में भावक हो नहीं पाता डॉ. नामवर ने ठीक लिखा है की 'अज्ञेय जैसा कि दर्द अभिमानी कवि ही इस पराजय की विकलता का अनुभव कर सकता है।'' यह अभिमान उन्हें आँसू भी बहने नहीं देता–प्यार में अभिमान की कसक पर होने नहीं देती'' कविता में वह विकलता व्यक्त करते है।

प्रणय के खुलकर चित्रण के साथ प्रेम में बौद्धिकता आयी है। अज्ञेय ने 'तारसप्तक' की भूमिका में कहा है,'' आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति सेक्स संबंधी वर्जनाओं ने आक्रांत हैं, उसका मस्तिष्क दमन की गई सेक्स की भावनाओं से भरा हुआ था। इसलिए उसकी सौंदर्य भावना भी सेक्स से पीड़ित है। और यही कारण है कि प्रयोगवादी कवि में न तो प्रेम का सामाजिक रुप है, न रहस्यात्मक आवरणवाला और न छायावाद का–सा सुक्ष्म एवं भावात्मक।'' मनोविश्लेषण का स्वच्छंद रुप इनकी कविताओं में भरा पड़ा है।

८. क्षणवाद :–

क्षण भाव को जीवन की शाश्वतता के रुप में और साहित्य सृजन के रुप में प्रयोगवादी कवियों ने देखा है। व्यक्ति जीवन में क्षणभर का सुख संपूर्ण जीवन को परीतृप्ति देता है। क्षणभर का अनुभव कविता सर्जन करने की क्षमता देता है। फिर 'तत्क्षण', 'जागरण के क्षण', देशकाल मुक्ति के क्षण को लेकर अनेक कविता अज्ञेय ने लिखी है। जैसे 'सर्जना के क्षण', मैंने देखा एक बूँद'. होते है क्षण' कविताएँ महत्वपूर्ण है– 'सर्जना के क्षण कवि के अनुसार लम्बे नही होते'–

'' एक क्षण–भर और;
लंबे सर्जना के क्षण कभी भी हो नहीं सकते।
बूँद स्वाती की भले हो
बेधती है मर्म सीपी का उसी निर्मम त्वरा से
वज्र जिससे फोडता चट्टान को
भले ही फिर व्यथा के तम में
बरस पर बरस बीतें
एक मुक्ता–रुप को पकते''

'मैने देखा एक बूँद' में तत्क्षण का दर्शन और अभिव्यक्ति के रुप दिखाई देते है–

''मैने देखा
एक बूँद सहसा
उछली सागर के भाग से:
रंगी गयी क्षणभर
ढ़लते सुरज की आग से।''

या जागरण के क्षण की खोज को देखा जा सकता है–

''बरसों मेरी नींद रही।
वह गया समय की धार में जो
कौन मुर्ख उसको वापस माँगे ?
मैं आज जाकर खोज रहा हूँ

वह क्षण जिसमें जागा हूँ। ''

देश–काल मुक्त क्षणों को न हम दोहरा सकते है, 'न तो अपनी इच्छा से ला सकते है –

''उनका होना, जीना, भोगा जाना
है स्वैरसिध्द, सब स्वत:पूर्त
– हम इसीलिए तो गाते है।''

अर्थात क्षण अपने आप में परिपूर्ण है समग्र है–

''एक क्षण! होने का
अस्तित्व का अजस्त्र अद्वितीय क्षण!
होने के सत्य का
सत्य के साक्षात का
क्षण के अखंड पारावार का
आज हम अचमन करते है।''

धर्मवीर भारती की कनुप्रिया की राधा भी प्रेम जीवन की तन्मयता के क्षणों में ही जीवन की सार्थकता देखती है। उसके अलावा जीवन की सार्थक क्या होगी का प्रश्न ही वह पुछती है–

''अच्छा मेरे महान कनु
मान लो कि क्षणभर को
मैं यह स्वीकार करती हूँ
कि मेरे ये सारे तन्मयता के गहरे क्षण
सिर्फ भावावेश थे
सुकोमल कल्पनाएँ थी
रंगे हुए आकर्षक शब्द थे....
तो सार्थक फिर क्या है कनु?''

क्षण की क्षणिकता, जीवन की अनंतता के रुप में प्रयोगवादी कविता में चित्रित हुई है। क्षण का बड़ा महत्व लेखक, सामान्य, प्रेमी सहृदय के लिए होता है। उसकी पहचान अज्ञेय ने है।

९. विद्रोह की भावना :–

प्रयोगवादीयों का विद्रोह काव्य के कला एवं भाव पक्ष दोनों के प्रति है। मध्यवर्ग ने मध्यवर्गीय कवि की ओर ध्यान ही उस काल में नहीं दिया तो मध्यवर्ग का यह कवि विद्रोह के तीव्र उद्गार व्यक्त करता है। वस्तुत: छायावाद की कल्पना और सौंदर्य से मुक्त कमनीय भाव–भाषा और प्रगतिवाद की अत्याधिक सामाजिकता के प्रती प्रयोगवाद का विद्रोह व्यक्त हुआ है। निराला के 'कुकुरमुत्ता' का विद्रोही समय और समाज प्रयोगवादी काल में भी रहा है। अज्ञेय खुले रुप में 'जनाव्हान' में शोषको के प्रति आह्वान करते है–

''ठहर, ठहर, आततायी! जरा सुन ले–
मेरे क्रुध्द वीर्य की पुकार आज सुन ले!

रागातीत, दर्पस्फीत, अतल, अतुलनीय,
मेरी अवहेलना की टक्कर सतहार ले–
क्षण भर स्थिर खड़ा रह ले–
मेरे दृढ पौरुष की एक चोट सह ले!''

या अजित कुमार की कविता 'कवियों का विद्रोह' में भी यह भाव विद्यमान है। खासकर उपमानों के क्षेत्र में–

''चाँदनी चन्दन सदृश्य''
हम क्यों लिखे?
मुख हमें कमलों सरीखे क्यों दिखे।
हम लिखेगें :
चाँदनी उस रुपये सी है कि जिसमें
चमक है पर खनक गायब है।
हम कहेगें जोर से
मुँह–घर– अजायब है
जहाँ पर बेतुके, अनमोल, जिन्दा और मुर्दा
भाव रहते है।''

अज्ञेय की 'कलगी बाजरे की' में भी विद्रोह भाव स्पष्ट हुआ है।

१०. व्यंग्य की प्रखरता :–

प्रयोगवाद में सामाजिक, यंत्र युगीन, आधुनिक समाज, शहरी सभ्यता आदि पर अज्ञेय जैसे कवियों ने व्यंग्य कटु उक्तियों से प्रहार किया है। समाज तथा व्यक्ति जीवन में आयी विसंगती को भी व्यक्त किया गया है। सामाजिक जीवन में पलती विद्रुपता, शहरों में बढ़ती वेश्यावृत्ती आदि पर व्यंग किया है। 'शोषक भैया' जैसी व्यंग प्रवण रचनाओं में कवि का आवेग या आक्रोश इस कदर तिखा बना है–

''डरो मत, शोषक भैया,
पी लो।
मेरा रक्त ताजा है
मीठा है
हृद्य है।
पी लो शोषक भैया,
डरो मत।
....
मुझसे क्या डरना?
वह मैं नहीं, वह तो तुम्हारा–मेरा संबंध है
जो तुम्हारा काल है
शोषक भैया। ''

या नगर सभ्यता के प्रति अज्ञेय की व्यंग्यात्मक, प्रतिक कविता 'साॅप' महत्वपूर्ण

है। जंगल का साँप तो सभ्य है, उसका विष अब नगरवासियों ने लिया है, डँसना वे ही सिखाते है–

साँप!
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ– (उत्तर–दोगे?)
तब कैसे सीखा डँसना–
विष कहाँ पाया?

अथवा महानगर में रात होते होते अँधेरे में स्त्री अपनी वे देह बेचने के लिए खड़ी रहती है 'महानगर : रात' जैसी कविता किस प्रकार नगरवासियों में कचरे प्रती आकर्षक व्यंग्यात्मक हो उठी है–

''धीरे धीरे धीरे चली जाएँगी
सभी मोटरें, बुझ जाएँगी
सभी बत्तियाँ, छा जाएगा
एक तनाव भरा सन्नाटा
जो उसको अपने भारी बूटों से रौंद रौंद चलने वाले
वर्दी धारी का
प्यारा नहीं, किंतु वांछित है।''

इसी सन्नाट्े में कोई स्त्री देह बेचने के लिए खड़ी है। व्यंग्य का एक और सुंदर रुप 'बाँगर और खादर' में आया है। यहाँ उसका रुप ठंड़ा है, परंतू तीक्ष्ण है। प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि कवियों ने व्यंग्य बड़े सुंदर लिखे है।

११. शिल्प की नवीनता :–

प्रयोगवादी कविता का कलापक्ष अभिव्यंजना की दृष्टी से हिन्दी कविता के लिए एक ओर बेहद जटिल, दुरुहता से भरा है तो दुसरी और विलक्षणता के चमत्कार हेतू सपाटबयानी से। शब्द प्रयोग की दृष्टि से वह बडा बौद्धिक क्रियाएँ करता है। कभी रीतिकालीन कवि केशव ने किया था। अज्ञेय ने उनकी तुलना अंग्रेजी कवि बेन जानसन से की है।'' यही कारण है की उन्होंने नयी प्रतिक योजना, काव्य में की टेढ़ी–मेढी, आडी, तिरछी, डैश जैसी रेखाओं का प्रयोग किया है। अज्ञेय ने ही तार सप्तक की भूमिका में कहा था की उलझी हुई अनुभूतियों को परंपरागत भाषा, प्रतीक, उपमायँ,. रुपक आदि के द्वारा व्यक्त करना कठिन है। इसीलिए उन्होंने नयी भाषा–शिल्प को भी गढ़ा। भाषा, बिम्ब, प्रतीक, नवीन उपमानों के साथ शैली के नये–नये प्रयोग प्रयोगवादी कला पक्ष का विशिष्टता है।

अ. भाषा :–

प्रयोगवादी कवियों का मानना रहा है की नये कवियों की भाषाभिव्यक्ति पुरानी भाषा में नहीं हो सकती। भाषा का प्रयोग प्रयोगवादियों के सामने एक समस्या के रुप में खड़ी थी। अज्ञेय के अनुसार भाषा की क्रमश: संकुचित होती हुई सार्थकता की चूल फाड़कर उसमें नया,

अधिक व्यापक, अधिक सार–गर्भित अर्थ भरना चाहता है। '' और यह अहं के कारण नहीं बल्की भीतरी गहरी माँग के कारण। इसलिए ''आरंभीक दिनों में अज्ञेय, मुक्तिबोध नेमिचंद्र जैन आदि की रचनाओं में एक प्रकार के बुद्धि–प्रसूत बड़े–बड़े क्लिष्ट और दुरुच्चार्य शब्दों के प्रयोग की बहुलता दिखाई पड़ती है। छायावादियों के शब्द जहाँ कल्पनाकलित कुसुम–कोमल थे, वहाँ आरम्भिक प्रयोगवादी कविता के शब्द अनगढ़ ठोकरों–से कड़े थे। अज्ञेय का उनदिनों का उदाहरण देखिए–

''निविडा अन्धकार, एक अकिंचन निष्प्रभ, अनाहुत, अज्ञात, द्युति–किरण, आसन्न–पतन बिन जमी ओस की अंतिम ईषत्करुण, स्निग्ध कातर शीतलता अस्पृष्ट किन्तु अनुभूत, शत–फण बुभुक्षा के कोलाहल का आस्फालन, प्रस्वेदश्लथ संभार, आत्म–लय के रुद्र–ताण्डव का प्रमाथी तप्त अवाहन, घनावृत्त ऐक्य... आदि।''

नामवरजी इनके द्वारा प्रयुक्त भाषा पर आगे भी कहते है– धीरे–धीरे आतंकमय विशषणों का यह समस्त संभार उस दर्पस्फीत आवेग के साथ क्रमश: कम हुआ और अब वे सीधे–सादे हल्के–फुल्के '' शब्दों का प्रयोग करने लगे–

''भोर का बावरा आहेरी, लालकनियाँ, कलम–तिसूल, विफल दिनों की कलौंस, छोरियाँ, गोरियाँ, भोरियाँ वगैरह।'' तात्पर्य यह की बाद के दिनों में प्रयोगवादी कवि जन भाषा के निकट आता है और उसी का काव्यभाषा में प्रयोग करता है। फिर वह कलगी बाजरे की, कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है (अज्ञेय) 'भूंजा हुआ पापड़, चमक है पर खनक गायब है, (अजितकुमार) सिर पर जुता पैर में टोपी, (लक्ष्मीकांत वर्मा) थर्मामीटर के पारे–सी, बिजली के स्टोव–सी सर्वेश्वर ई से ईश्वर, उ से उल्लू (नरेश मेहता) मैं कनफटा हूँ हेटा हूँ, ललटेन नयन, (मुक्तिबोध) आदि। भाषा में अधिक अर्थ भरने हेतू उसे अपर्याप्त पाकर विराम–संकेतों, आड़ी– तिरछी रेखाओं छोडे बड़े टाईप, सीधे–उलटे अक्षर, अधूरे वाक्यों का प्रयोग, डैश तथा डैश, डैश, डैश कोष्टक में बात कहना आदि का प्रयोग किया है–

खामोश
हो;
होश...... न खो;
रो, मगर–जी।
जिन्दगी संसार की आखिर
    तू ही।
ओ साबिर
    खिला परवर यह
    बे– रुही
आखिर
वह भी है
तू– ही!
तू– ही!
तू– ही!

शमशेर की कविता का यह उदाहरण दृष्टाव्य है, 'प्रयोगवादी कवियों में शमशेर की

वाक्य–योजना सबसे विलक्षण है। शमशेर वाक्य नही, प्राय: शब्द लिखते; है, 'उक्त उदाहरण मे विषय वस्तु में निहित लय को यथातथ्य रुपांतर करने की जो कोशिश शमशेर में दिखाई पड़ती है, वह किसी प्रयोगवादी कवि में नहीं है।'' एक और उदाहरण प्रयोगवादियों के वैचित्र्य प्रदर्शन का रहा है। यह प्रकृति भी बड़ी हस्यास्पद है। अज्ञेय की 'हवाई यात्रा'–

''अगर कहीं मैं तोता होता।
तो क्या होता?
तो क्या होता?
तोता होता।
(अल्हाद से झूमकर)
तो तो तो तो ता ता ता ता
(निश्चय के स्वर में)
होता होता होता।''

आ. बिम्ब :–

प्रयोगवादी कवियों पर बिंबवाद का प्रभाव रहा है। वस्तुत: बिंब का सामान्य अर्थ है मानव–प्रतिमा जो ज्ञानेद्रियों से रुप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द से संवेदनाएँ ग्रहण करती है, ये प्रतिमाओं के रुप में मन में आवस्थित रहते है। कवि मन विभिन्न संवेदनाओं के संयोग से बिंब निर्मिती करते है। एजरा पाऊंड तथा बिंबवाद के प्रवर्तक टी. ए. हयूम से यह परंपरा हिन्दी में आयी। कविता सुंदरता के लिए कम से कम शब्दों में चित्र के प्रस्तुतीकरण को सफल बिंब प्रयोग माना जाता है। प्रयोगवाद में यौन बिंब–प्रतीकों की भरमार है। ये हमारे परंपरागत सौंदर्यबोध पर आघात करते है। अज्ञेय की 'शिशिर की राका निशा' का यंत्र बिंब देखिए–

''निकटतर–धंरुनी हुई छत, आड में निर्वेद
मूत्र संचित मृत्तिका के वृत्त में
तीन रांगों पर खडा, नतग्रीव
धैर्यधन गदहा
निकटतम
रीढ़ बंकिम किए, निश्चल किंतु लोलूप
 खड़ा बंद बिलार–
पीछे गोयठों के गंधमय आबार।''

इस प्रकार के बिंब–प्रतिकों के संबंध में स्वंय अज्ञेय ने कहा था कि, आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन–वर्जनाओं का पुंज है' आदि। संश्लिष्ट बिंब का एक और उदाहरण–

''साँस। बुझता क्षितिज।
मन की टूट–टूट पछाड खाती लहर
काली उमड़ती परछाइयाँ
तब एक
तारा भर गया आकाश की गहराइयाँ''

धर्मवीर भारती ने भी इस प्रकार के प्रयोग किये है–

''थका हुआ बादल
पश्चिम के श्याम निरावृत्त शिखरों पर
शीतल कपोल पर
क्षण गहरी नींद सो गया''

अथवा

''नितांत कुमारी घाटीं
इस कामातूर मेघधूम के
औचक आलिंगन में पिसकर
रतिश्रांत–सी मलिन हो गई!
थका हुआ बादल।''

मुक्तिबोध में आधुनिक जीवन की विषमता की आनुभूति की लेकर यह प्रस्तूत बिंब–

''मैं कनफटा हूँ, हेटा हूँ
शेव्रलेट–डाज के नीचे मैं लेटा हूँ
तेलिया लिबास में पुरेजे सुधारता हूँ
तुम्हारी आज्ञाएँ होता हूँ।''

इ. प्रतीक–योजन :–

अज्ञेय, शमशेर आदि कवि प्रतीकवाद से प्रभावित है। प्रतीक अनुभूति का वह संक्षिप्त रुप होता है जो कथ्य को नया एवं व्यापक संदर्भ प्रदान करने में सक्षम होता है।''छायावादी लाक्षणिक वक्रता से आगे बढ़कर अत्याधिक सांकेतिक प्रतीकों का प्रयोग ''उन्होंने किया है।''यथार्थ की कटुता, नग्नता और भयंकरता से बचने के लिए प्राय: से संकेत गर्भी प्रतीकों का प्रयोग करते है। .. अज्ञेय के प्रतीक उन्हीं के शब्दों में यौन प्रतीक थे'

''घिर गया नभ, उमड आए मेघ काले
भूमि के कंपित उरोजों पर झुका–सा
विशद, श्वासहत, चिरातूर
छा गया इंद्र का नील वक्ष
वज्र सा, यदि तडित से झुलसा हुआ सा।''

परंतू बाद में उन्होने सामाजिक, आत्मा–परमात्मा संबंधी, व्यक्ति अस्तित्व संबंधी प्रतीकों का प्रयोग किया है। 'यह दीप अकेला' में 'दीप और 'पंक्ति' ये दो शब्द व्यक्ति और समाज के प्रतीक है–

''यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।''

यह संपूर्ण कविता प्रतीकवादी है।' नदी के द्वीप' भी 'अस्तित्व–संकट' का प्रतीक है। अन्य प्रयोगवादी कवियों के संबंध में नामवरजी ने कहा है, की वे प्रतीकवादी न होते हुए भी भावों और वस्तुओं के सुक्ष्म चित्रण के लिए अनेक सुन्दर अप्रस्तुतों का विधान किया है– धीरे–

धीरे झुकता जाता है शरमाए नयनों–सा दिन, सिनेमा की रीलों–सा कसके लिपटा है सभी कुछ मेरे अन्दर, दिल की धड़कन भी इतनी बेमानी जितनी यह टिक–टिक करती हुई यही, निकल रही छिपकली–सी लड़की दरवाजे से, हल्की मीठी चा–सा दिन, चाँदनी की उँगलियाँ चंचल क्रोशिए से बुन रही थी चपल फेन–झालर बेल मानों, मौन आहों में बुझी तलवार तैरती है बादलों के पार, खोखली बन्दूक से ढंडे पडे दो हाथ!'' शमशेर, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, मुक्तिबोध आदियों ने प्रतीकों का सुंदर प्रयोग किया है। भारती के 'अंधा युग', 'कनुप्रिया' घटना, चरित्र की दृष्टि से प्रतीक ही बने है। साथ ही कुंवरनारायण की 'आत्मजयी' नरेश मेहता की 'संशय की एक रात', शंम्बुक आदि।

ई. छंद और लय:–

प्रयोगवादी कविता में मुक्तछंद लय का प्रयोग किया गया है। छंद लय के कारण इनकी कविता में गीतात्मकता आयी है। कहीं कहीं, नये स्वर, वर्ण विषय का प्रतिपादन करते है। अज्ञेय की 'माँझी बनशी न बजाओ', गिरीजाकुमार माथुर हेमन्ती, पुनो आदि धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' का यह उदाहरण देखिए

''थके हुए है हम,
इसलिए नहीं कि
कहीं युध्दों में हमने भी
बाहुबल दिखाया है
प्रहरी थे हम केवल
सत्रह दिनों के लोमहर्षक संग्राम में
भाले हमारे ये
ढालें हमारे ये
निरर्थक पडी रहीं
अंगों पर बोझ बनी
रक्षक थे हम केवल
लेकिन रक्षणीय कुछ भी नहीं था यहाँ।''

अज्ञेय–

''तुम हॅसी हो
जो न मेरे ओठ पर दीखे
मुझे हर मोड़ पर मिलती रही है।
धूप
मुझ पर जो न छाई ही,
किंतु जिसकी ओर
मेरे रुध्द जीवन की कुटी की खिड़कियाँ खुलती रही है।''

उ. नवीन उपमान :–

परंपरागत उपमानों को न स्वीकारते हुए प्रयोगवादियों ने नये और वैज्ञानिक साधनों–उपकरणों का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया है। मध्यवर्गीय गृहिणी का चित्रण करते हुए सर्वेश्वर कहते है–

''थर्मामीटर के पारे–सी
चुपचाप जिसमें भावनाएँ चढ़ती उतरती है
अखंड कीर्तन की
थकी हुई अस्पष्ट धून–सी
जिसकी जिंदगी है...
प्यार का नाम लेते ही
बिजली के स्टोव सी
जो एकदम सुर्ख हो जाती है।''

प्रयोगवादीयों ने नेत्रों के लिए रीतिकालीन, छायावादी खंजन–नयन, मीन जैसे प्रयोग नहीं किये। उन्हें आज के मनुष्य के पैर खंभे जैसे लगते है, जिनपर नेत्रों की लालटेन टँगी है–

''अतर्मनुष्य
रीक्त–सा गेह
दो लालटेन से नयन
निष्प्राय स्तंभ
दो खड़े पाव''

अथवा अति नवीन उपमानों का वे प्रयोग करते है–

''मेरे सपने इस तरह टूट गए
जैसे भुंजा हुआ पापड''

प्रयोगवाद नये उन्मेष का काव्य रहा है। अनेक आलोचकों ने उसपर जमकर हमला किया उसे वैयक्तिक, सामाजिकता से दूर, बुद्धिग्रस्तता से बोझिल आदि माना परंतू यह थी मध्यवर्ग की वास्तविकता। उनमे आयी हीन–दीनता, अनास्था, कटुता, अंतर्मुख, पलायन आदि जिस का चित्रण प्रयोगवादीयों ने किया है। यह भौंडी नग्नता जीवन का एक पक्ष हमारे सामने लाती है। जैसा की हमने पहले ही कहा है द्वितीय विश्वयुध्द के बाद मूल्यों में तीव्र टूट आयी उसे पाटना असंभव हुआ विश्व के साथ भारत में भी यही स्थितियाँ आयी इसलिए यहाँ सामाजिक ढ़ाँचा खासकर, परिवार, विवाह संस्था पर उसका आघात हुआ। सो उसी का आत्मनिष्ठ चित्रण कविता में आया है। हर बड़ा कवि अपनी कविता के साथ अपना सौंदर्यशास्त्र गढता है, या यूँ कहे सौंदर्यशास्त्र के साथ कविता, अज्ञेय ने भी यही किया। 'दु:ख सबको माँजता है' की व्यक्तिनिष्ठ भावना से एक अपना पैमाना बनाया जिससे समष्टि पर अनुभव के रुप में कविता में अभिव्यक्त किया, उसका प्रयोग किया।

८.४ मूल्यांकन

प्रयोगवादी 'अन्वेषण के राही' यों ने, विशेषत: अज्ञेय ने उक्त कालीन स्थितियों के प्रति विद्रोह, विक्षोभ व्यक्त किया परंतू इसमे मूल्य विघटन, विज्ञान का प्रभाव, मनुष्य अस्तित्व संवेदना पर उभरा प्रश्नचिन्ह, यंत्रयुग, राष्ट्रीय वातावरण के साथ साहित्य पर पाश्चात्य काव्यांदलोंना का प्रभाव, बौद्धिकता, उस के आगे सदैव लगा प्रश्न चिन्ह, मनोविश्लेषण से उपजा आत्मालोचन भाव, आधुनिकता बोध, काव्यशिल्प में नुतनता का आग्रह प्रयोगवाद की अन्य विशेषताएँ रही है। एजरा पाऊंड, बॉदलेर, इलियट, डी. एच. लारेन्स का बहुताधिक प्रभाव स्वयं अज्ञेय पर रहा किन्तु पाश्चात्य विचारों के प्रभाव से मुक्त होकर अज्ञेय भारतीय बौद्ध मत के मौन को अपनाते है। दुनिया भर के विचारों दर्शनों का पठन-पाठन करने के बाद वे बौध्द मत के 'मौन' को ' असाध्य के बीच रखते है। कुछ विद्वानों की और से अज्ञेय की जन्मशताब्दी वर्ष में आयोजित संगोष्ठियों में मैंने सुना है की अज्ञेय की कविता 'मौन' रही जबकि मुक्तिबोध मुखर हो गये। क्योकि मौन तोड़ने के बाद 'अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे, मठ और गढ़ तोड़ने होगें का जुझारन भाव या वृत्ति अज्ञेय की कविता में नहीं है। इसलिये वह सामाजिक दृष्टि से उपादेय नही है। परंतू ऐसा नहीं है। आप बारीकी से 'अरी ओ करुणा प्रभामय', आँगन के पार द्वार में व्यक्त रुझान को देखेंगे तो अज्ञेय में जपान के चीन के जेन मत की संवेदना रही है। जीवन की आंतरिकता में उत्पन्न यह अध्यात्मिक रुझान उनके अंतिम काव्य संग्रहों में स्पष्ट है। उनकी जपान यात्रा, हायकू का लेखन भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। वस्तुत: भारत से ही बौध्द मत चीन, जापान पहूँचा। अज्ञेय उससे अप्रभावित नहीं रह सके। अस्तु:।

प्रयोगवादी कवियों ने हिन्दी कविता के इतिहास में सुक्ष्म भाव संवेदना, नये उपमान, गहन अभिव्यंजना के द्वारा, इमानदार किन्तु नितांत वैयक्तिक भावनाओं को व्यक्त किया है। 'आत्मनिष्ठा'के बावजूद समाज के एक अंग की यथार्थ मन: स्थिति को प्रभावित किया है। ''

बौद्धिकता के कारण कविता में भावनात्मकता का आभाव पैदा हो गया, छायावादी कल्पनापरक सौंदर्य उत्फुल्लता की जगह जीवन यथार्य से भरी कुंठा, निराशा, वासनात्मकता की अभिव्यक्ति हुई। काव्य बड़ा कठिन हो गया। 'नवीनता के स्थान पर अकाव्यात्मक तत्वों को स्थान दिया'' क्लिष्ट शब्दों, विशेषणों का मनमाना प्रयोग' 'अश्लील एवं अरुचिकर दृश्यों का अंकन'. 'कविता के नाम पर शब्दों के साथ खिलवाड' इसके दोष माने गये है। गणपती चंद्र गुप्त ने तो यहाँ तक कहाँ है की.' काव्य-शास्त्र में काव्यगत दोषों के जितने भेद बताये गये है, उन सभी के सुन्दर एवं उपयुक्त उदाहरण प्रयोगवादी नयी कविता में मिल जाते है। ' काव्य में होने वाले नये 'प्रयोगों' पर इस प्रकार के दोष लगाना अनुचित इसलिए माना जा सकता है की वे नितांत नये शब्दों में नयी संप्रेषणिय अभिव्यक्ति सहजता से करना चाहता है। इस दृष्टि से प्रयोगवादी कविता अच्छी एवं सच्ची है।

८.५ उपसंहार :

अपनी अनेक विशेषताओं के कारण वह चर्चित रहा। उन्ही कुछ विशेषताओं को अपनाकर 'अन्वेष के राहीयों ने' 'नयी कविता' का आंदोलन चलाया। कुछ व्यक्तिवादी कवि फिर प्रगतिवाद, साम्यवाद, की और मुड़े तो कुछ ने नयी कविता के बीच अपनी राह ढूँढ़ निकाली। काव्यांदोलन मात्र चर्चित रहा।

८.६ बोध प्रश्न :-

१. प्रयोगवादी काव्य विशेषताओं को अंकित कीजिए।
२. प्रयोगवादी कविता को सोदाहरण समझाइए।

◆◆◆◆◆◆

९

नई कविता

९.० इकाई की रूपरेखा
९.१ नई कविता: उद्‌भव की पृष्ठभूमि
९.२ नई कविता: प्रारंभ एवं नामकरण
९.३ नई कविता एवं कवि की विशिष्टता
९.४ नई कविता की प्रवृत्तियाँ
९.५ नई कविता: मुल्यांकन
९.६ उपसंहार
९.७ बोध प्रश्न

९.० इकाई का उद्देश्य

क. नई कविता की विशिष्टताओंका अध्ययन प्राप्त करना।
ख. नई कविता कैसे विकसित हुई यह जानना।
ग. नई कविता यह नाम क्यों दिया गया यह देखना।
घ. नई कविता प्रयोगवाद से किन अर्थों में अलगता रखनी है यह समझना।
ड. नई कविता में लघु मानव की संकल्पना किस प्रकार प्रतिष्ठित हुई इसको रेखांकित करना।
च. नई कविता की काव्य प्रवृत्तियों का अध्ययन करना।
छ. नई कविता का मूल्यांकन करना आवश्यक है।

९.१ नई कविता: उद्‌भव की पृष्ठभूमि:–

प्रारंभ में ही इस बात को स्पष्ट करना जरुरी है की प्रयोगवादी तथा नई कविता में कुछ समानताएँ भी है तो विभिन्नताएँ भी किन्तु इसका उद्‌भव मात्र प्रयोगवाद के अस्वीकार में ही हुआ है। जैसा की नामवर सिंह ने कहा है, 'प्रयोग' शब्द को वाद–दूषित पाकर 'नई कविता' नामक संज्ञा का प्रचलन हुआ। १९५१ में दूसरा सप्तक के प्रकाशन के साथ 'नई कविता' के जिन सिध्दांतो का सूत्रपात किया, गया उनका विस्तार तीसरा सप्तक के प्रकाशन–काल १९५९ तक अबाध गति से होता रहा।'' जगदीश गुप्त और लक्ष्मीकांत वर्मा ने प्रयोग' से व्यापक भूमि पर 'नयी कविता' का नाम प्रचारित किया। इसके मुल में आधुनिक युग का वह संपूर्ण परिवेश उभर कर आया है। जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक, यांत्रिकता के साथ कुछ विदेशी काव्यांदोलन महत्वपूर्ण है। नयी कविता की पृष्ठभूमि को देवराज ने दो स्तरों पर रखकर देखा है एक राष्ट्रीय और दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय। इसमें न केवल राजनीति है बल्की विदेशी साहित्यिक एवं सामाजिक, नैतिक मूल्यबोध भी है। नई कविता सामाजिकता के वैविध्यपूर्ण

मानवमुल्यों की उदात्त परंपरा को लेकर चलती है। जिसमें त्रासदी, विडम्बना, घुटन, संत्रास, क्षणवाद, अस्तित्वबोध, अंतर्विरोध से उपजा 'आत्मसंघर्ष' एक ओर है तो दूसरी ओर इन नयी परिस्थितियों से उपजी संवेदनाओं की संप्रेषणीय अभिव्यक्ति का प्रश्न महत्वपूर्ण हो चुका है। इस काव्यधारा के विकास में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ कारणभूत रही है।

द्वित्तीय विश्वयुध्द से उपजी मूल्यहीनता ने राजनीति से नैतिकता को खत्म किया। सामाजिक स्थिति में सोचनीय स्थिति उत्पन्न हो गयी। पारिवारीक, सामाजिक ढ़ांचा प्रायः दह गया और प्रायः व्यक्तिवाद का जोर बढ़ता गया। भारतीय राजनीति में गांधी–नेहरु प्रभ्रति ने अपना–अपना अलग प्रभाव छोड़ा। स्वतंत्रता पूर्व स्थिति में स्वतंत्रता जैसे–जैसे नजदीक आती गई हमारे नेताओं में आन्तरिक संघर्ष तीव्र होता गया। '' यह संघर्ष केवल नेताओं में ही नहीं. 'नेताओं और जनता के बीच तथा बूढ़ी और युवा पीढ़ी के बीच'', भी उभरकर आया। जब तक गांधी का नेतृत्व नई पीढ़ी ने पाया तब तक ठीक था परंतू बाद में नवयुवकों का शोषण होने लगा, प्रत्येक नेता अपने स्वार्थ के लिए उन्हें प्रयुक्त करने की फिराक में रहने लगा। ताकी उनका पलड़ा भारी हो'' ''सन १९४२ की क्रांन्ति में ही आंदोलन की तीन शक्ले थी, एक तो उनकी जो नवयुवको को केवल खपनेवाली सामग्री समझकर, उनका इस्तेमाल करके, उन्हें फेंक देने में विश्वास करनेवाली नेता पीढ़ी थी तो दुसरे वे थे जो उनकी सच्ची और इमानदार भावनाओं को तोड–फोडकर जन–युग और जन–युध्द के नाम पर अंग्रेजी सरकार की खिदमतगारी करने और कराने के लिए तत्पर थे अर्थात यह वर्ग कम्यूनिस्ट पार्टी का था, जो सही और सच्चे अर्थों में अंग्रेजी शासन के प्रति विद्रोह करने वालों को खुले आम अराजकतावादी और जंगखोर के नाम से संबोधित करता था। इसके अतिरिक्त एक तीसरा वर्ग भी था, जो उस समय देश के नवयुवकों में ऐसा उत्साह भरना चाहता था, जो सब कुछ देकर बढती हुई अंग्रेजों की गुलामी की प्रक्रिया को समाप्त करने में सहायक हो। '' लक्ष्मीकांत वर्मा–हिन्दी साहित्य के पिछले वीस वर्ष–३, कल्पना– मई १९६७ अंक ५. पृ–१२' से उद्धृत परिणाम यह हुआ की राजनीति में 'सुविधापरकता' तथा 'मूल्यहिनता' का उद्भव गांधी के समय ही हो चुका था। समाज एवं साहित्य में भी वह प्रवेश कर गये। देवराज ने इसे सन १९३५ से १९४५ के बीच पैदा हुए संक्रमणकालीन स्थिति में साहित्यिक–सांस्कृतिक क्षेत्र में उत्पन्न भ्रमात्मक मूल्यों का विकास'' कहा है। जिसमें एक ओर गांधी की गतिशील राष्ट्रीयता तो दुसरी और नेहरु की शब्दाडम्बर वाली काल्पनिक किन्तु बड़े जोर शोर से स्थापित अंतर्राष्ट्रीयता की दो धाराओं का विकास हुआ ऐसा मानते है।

उसके परिणाम लक्ष्मीकांत वर्मा के शब्दों में कई अगंभीर किन्तू गंभीरता का परिचय देकर नये वाद स्थापित हुए वे, यथार्थ वाद के नाम पर संपूर्ण जीवन के व्याख्याता कम्युनिस्ट पार्टी ने इसका लाभ उठाया, परिणामत: प्रगतिवाद ने अपने नितांत आत्मविश्वास के कारण और व्यापक वृत्त का आधार छोडकर विशुध्द पार्टी की राजनीति के आधार पर अपने वृत्त में लेखक वर्ग को कसना शुरु किया, इसी को आधार मानकर जो प्रगतिवादी आंदोलन खड़ा हुआ वह राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक संदर्भ से हटकर एक विशिष्ट राजनैतिक स्वर में ढ़लने लगा, फिर अनिवार्यता बौद्धिक वर्ग को साहित्यिक स्तर पर उन मूल्यों की ओर उन्मुख होना पड़ा जो साहित्य की विधागत एवं संपूर्णता को स्थायित्व देती है।''

स्वाधीनता के बाद देश के सामने अनेक समस्याएँ खड़ी हुई। एक और स्वाधीनता का उल्हास था तो दुसरी ओर हिंसा का तांडव। 'साम्प्रदायिक दंगें एवं शरणार्थी की समस्याने

भयंकर रुप ग्रहण किया। 'राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या' के रुप में कश्मीर प्रश्न उलझता गया परिणामत. पहला भारत–पाक युध्द हुआ। ' जिसने भारत की आर्थिक स्थिति को पर्याप्त प्रभावित किया। ' गांधी हत्या भारतीयों के श्रध्दा, विश्वास, मूल्यो की हत्या साबित हुई। विकास योजनाओं ने सुखमय वातावरण पैदा तो किया परंतू शरणार्थियों ने आर्थिक संकट को जन्म दिया, खाद्यान्न के अभाव की समस्या सामने आयी, स्वतन्त्रता–प्राप्ति से पूर्व भारत में कार्यरत अंग्रेज अधिकारियों के लिए साढ़े नौ करोड रुपये इग्लैंड को देने के लिए विवश होना पड़ा'' गांधी के आग्रह पर पाकिस्तान को... करोड देने पड़े तथा साथ ही सरकार द्वारा देश में विदेश पुंजी निवेश की सुविधा प्रदान की। इससे भारतीय सम्पत्ति भारी मात्रा में विदेश जाने लगी। '' नेहरु युग से सामान्य जनता में आज़ादी आयेगी, खुशहाली आयेगी, दरिद्रता, गरीबी, भूखमारी, बीमारी दूर होगी का 'भ्रम' टुटता गया। ऐसे में सन १९६२ में चीन का आक्रमण, भारत को मिली असफलता, खोखली विदेश नीति का पर्दाफाश हुआ। फिर मार्च १९६५ में पाक ने भारत पर आक्रमण किया, भारतीय सेना ने जीत हासिल की परंतू रुस, अमरीका के हस्तक्षेप के कारण ताशकंद में शास्त्रीजी को असम्मानजनक समझौता करना पडा, कुछ घंटों बाद में वह काल के आधीन हो गये। इंदिरा गांधी सत्ता में आयी। २० अगस्त १९६९ में राष्ट्रपती चुनाव ने काँग्रेस को विभाजित किया इंदिरावाला इण्डीकेट' और दुसरा सिण्डीकेट बना ''यही से दलील तानाशाही और व्यक्तिपुजा के नये युग का प्रारंभ हुआ।'' फिर १९७१ में बांग्लादेश स्वतंत्रता के लिए भारत–पाक युध्द हुआ, १० हजार पाकिस्तानी सेना के साथ बड़ा भूभाग भारत के अधिकार में आया, इंदिरा का 'दुर्गा' रुप बाद वाले चुनाव में उसको भारी मतो से जीत दिला चुका, फिर एक बार 'शिमला समझौते' ने सेना की जीत को हार में बदल दिया। ''

वस्तुत: शिमला–समझौता भारत की बहुत बड़ी कूटनीतिक हार सिध्द हुई '' उससे बुद्धि जीवियों को गहरा धक्का लगा''.... देश में अशान्ति बढ़ती जा रही थी। भ्रष्टाचार, भााई–भतीजावाद, जातिवाद रिश्वत खोरी, कामचोरी अपनी चरम सीमा की ओर बढ़ रहे थे। बेरोजगारी, शिक्षित नवयुवकों में निराशा, कुंठा और अपराधवृत्ति जागा रही थी... इसी समय १९७४ में जयप्रकाश नारायण ने युवकों की भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन यात्रा गुजरात से प्रारंभ कर बिहार में आयी.. 'संपूर्ण क्रांति' की घोषणा की गयी। '' इस समय का वातावरण इंदिराविरोधी धरणों, जुलूसों के तणाव से भरा था। २६ जून १९७५ को समस्त विरोधी पार्टियों द्वारा प्रधानमंत्री पद का त्यागपत्र मांगने के लिए दिल्ली के रामलीला मैदान पर विशाल रैली का आयोजन किया गया। ठीक एक दिन पहले सरकार की ओर से इंदिरा जी ने २५ जून १९७५ को देशभर में आपातकाल लागू कर दिया गया। १२ जून १९७५ को इलाहाबाद न्यायालय ने उनके विरुध्द फैसला दिया था। उन्होने त्यागपत्र न देकर देश पर आपातकाल लाद दिया।'' १९ महीने आपातकाल देश में रहा। नेताओं को जेल में ठूँस दिया गया, भारी दमन से जनता भी गुजरी। १९७७ में उसका विद्रोह चुनाव के भीतर से आया। खुद इंदिराजी रायबरेली से चुनाव हार गयी। 'जनता पार्टी' नामक खिचड़ी दलों वाली सरकार सत्ता में आयी। जिसे 'दूसरी आजादी' कहा गया। उनमें प्रधानमंत्री पद को लेकर संघर्ष छिड़ गया मोरारजी देसाई, चरणसिंह और जगजीवनराम स्वंय को दावेदार मानते थे। जे.पी–कृपलानी के हस्तक्षेप से देसाई प्रधानमंत्री तो बने परंतू ढ़ाई साल में वह सरकार टुट भी गयी। बाद में चरणसिंह को समर्थन देने का वादा कर इंदिराजी ने बहुमत के आभाव वाली इस सरकार से अपना समर्थन वापिस ले लिया। 'कुल चोविस दिन के इस राजनीतिक नाटक में इतिहास में पहली बार देश को ऐसा

प्रधानमंत्री मिला जो संसद में जा ही नहीं सका। '' सन १९८० के चुनाव में फिर इंदिराजी को 'विवश होकर जनता ने' चुनाव में जीत दिलायी। प्रादेशिक दल जोर से उभर रहे थे, बीजेपी (जनसंघ), लोकतांत्रिक समाजवादी पार्टि, भारतीय लोकदल, संजय विचार मंच, के साथ तेलगुदेशम, क्रांन्ति रंगा, दलित पैन्थर उल्लेखनीय है। द्रमुक, अन्ना डी.एम.के,अकाली दल, नेशनल कान्फ्रेन्स, मुस्लिम लीग तो पहले से भी थे परंतू 'इससे बे रोक-ठोक अस्थिरता का वातावरण पैदा हुआ।'' यह राजनैतिक अस्थिरता, एक दलिय लोकतांत्रिक निरंकुशता और व्यक्तिपुजा की परंपरा का सबसे दु:खद पहलू है- सांसदी, विधायको और सरकारी अधिकारियों में जनोन्मुखता का अभाव। '' परिणामत: जनता के साथ बुद्धिजीवी वर्ग आहत हुआ। नयी कविता को इन्ही परिस्थितियों ने बनाया। एक ऐसी पीढ़ी कविता में आयी जिसने स्वंय, कुंठा, घुटन, तनाव, अविश्वास, भ्रष्टाचार, अनाचार, दुराचार, ध्वंस- को भेगा-जिया था। नयी कविता ने चाहा की 'मनुष्य को यांत्रिक अनस्तित्व को समाप्त करके प्राकृतिक अस्तित्व को पाना है, सन १९५२ से लेकर आज तक (अर्थात- १९६२-८०) के आम चुनावों में इस देश में जो परिवेश उभरा, जिस प्रकार की नैतिकता जन्मी, जिस प्रकार की जीवन-व्यवस्था पनपी उस सबको नये कवि ने काव्य का विषय बनाया।''

''राष्ट्र नायकों ने भारत वर्ष को सम-भाव, स्वतंत्रता और समानता के आधार पर विकसित करने की घोषणा की भी किन्तु स्थिति विपरीत ही रही। इस काल में देश में अनेक वर्ग पैदा हो गए। एक वर्ग नेताओं का-जो स्वार्थ साधना में राष्ट्र को भूल गया, दूसरा वर्ग सरकारी अफसरों व क्लार्को का-जो प्रतिदिन फाइलों के अम्बार में दबता और जनता से दूर होता चला गया तीसरा वर्ग शोषक वर्ग-जो रुपया और सोना अपनी तिजोरी में ठसाठस भरने में लग गया, चौथा श्रमिक वर्ग-जो दिन-रात मशीनों में खटने और शोषण का शिकार होने के लिए विवश हो गया, पाँचवा वर्ग उन ठेकेदारों का-जो जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं को वेद-सम्मत कहकर-अस्पृश्यता और साम्प्रदायिकता फैलाने में व्यस्त हो गया तथा छटा वर्ग उन मरियल किसानों का जो खण्डहर की भाँति मरना शुरु हुआ आज सबके बीच मर रहा है, लेकिन राजनेताओं के द्वारा सबसे अधिक भुना जा रहा (है) था। नयी कविता के कवियों ने इनमें से प्रत्येक वर्ग को अभिव्यक्ति प्रदान की। इस कविता में जो संघर्ष उभरा है, वह परिवेश से कटा हुआ एकाकी संघर्ष नहीं है, प्रत्युत समग्र पीढी का सामान्य संघर्ष है। '' नयी कविता जिस संघर्ष से गुजरती है उसे 'आत्मसंघर्ष' कहा गया है। एक नयी सौंदार्यानुभूति कविता में अभिव्यक्त हो रही थी। जिसके कई स्तर थे। एक सतही एवं 'वास्तविक संदर्भो से हीन होकर,' अपनी कुंठा, बेचैनी, निराशा, को अभिव्यक्त कर रही थी तो दुसरी इस 'आत्मग्रस्तता' का विश्लेषण कर वर्गीय सौंदर्यानुभूति के आधार पर 'सेंसर अभिरुची' वर्ग विशेष में पनप रही थी उसके 'आंतरिक विसंगतियों के विरुध्द आत्मीय संघर्ष किया।'' नामवर के अनुसार ऐसे कवियों में मुक्तिबोध सर्व प्रमुख एवं एक मात्र है। वे आंतरिक एवं सामाजिक संघर्ष सिध्दांत के प्रति निष्ठावान थे और परवर्ती काव्य में यह दोहरा संघर्ष क्षीण हो रहा है। यह जानकर उन्होंने काव्यसृजन-प्रक्रिया के विश्लेषण पर बल दिया। '' 'ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान' को नयी कविता में होने का विचार प्रवर्तन किया और अभ्यांतरिक तलाश प्रारंभ की, कई बार, निर्वासन, पीड़ा, अवसाद, निराशा, बेचैनी, संघर्ष से उपजी आशा मुक्तिबोध की कविता में 'अंधेरे में' उत्पन्न भटकन को रेखांकिन करती है। एक और संघर्ष, तो दुसरी ओर पहचान या शिनाख्त से यह कविता उपजी है। दुधनाथ सिंह की 'अपनी शताब्दी के नाम' भवानीप्रसाद की 'त्रिकाल संध्या'

कुछ ऐसी ही कविताएँ है।

सामाजिक कारण

द्वितीय विश्वयुध्द के भयंकर परिणाम राजनीति के साथ सामाजिक जीवन में उभरकर आये। सामाजिक, पारिवारिक, विवाह संस्था का विघटन हुआ। मूल्यों का विघटन इस समय की बड़ी समस्या के रुप में सामने आयी। परिणामत: राजनीतिक ताण्डव से भरा कोलाहलपूर्ण वातावरण एक और था तो दूसरी और 'चरमरा चुका सामाजिक ढ़ांचा था। जिसमे प्रयोगवादीयों में पलायन की भावना उभरी तो नई कविता के कवि ने उसका विश्लेषण कविता में किया। परंपरा विरुध्द आधुनिकता, नये और पुराने मुल्य, नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी, नव संस्कृति और पूरानी 'बूर्जआ' संस्कृति' के भीतर की टकराहट ने व्यक्ति और समाज के भीतर तणाव भरा संघर्ष उत्पन्न किया नयी कविता इसी भावभूमि में पली–बढ़ी है। व्यक्तिवाद का जोर था तो परंपरागत तथा आधुनिक मूल्य हास्यास्पद हो चुके थे।

औद्योगिकरण के साथ नागरीकरण बढ़ता गया। गाँव उजडते गये, मुल्यू टुटते गये। व्यवसायों में परिवर्तन आया। संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ, एकल परिवार बढ़ते गये। एक और भीड़ बढ़ी परंतू दूसरी ओर उस भीड़ में भी व्यक्ति अकेला हो गया। व्यक्ति–व्यक्ति के भीतरी 'रागात्मक' संबंध तथा 'घनिष्ठता' का अभाव बढ़ता गया। भीड़ में अपरिचयता के कारण उच्छृंखलता आयी। जहाँ पहले जुआ, शराब, नशा, बूरी समझा गया वहाँ यह खुले रुप में खाना– पीना के रूप में आम हो गया। साधारण सी बात हो गयी। ''यौन–जीवन अनियंत्रित हो गया बाद में इसी अनियंत्रितता ने 'फ्रि सेक्स' आन्दोलन को जन्म दिया। '' एक तरह से जीवन में अव्यवस्था आयी।

औद्योगिकरण ने सामाजिक विघटन भले ही लाया हो किन्तु कुछ नये मुल्यों का विकास भी किया। विभिन्न जाती–धर्मों के लोग जो पहले गाँव में कटघरे में थे वे यहाँ खुले हो गये। पारस्पारिक परिचय और नजदीकियाँ उनमें बढ़ती गयी। धार्मिक–जातिगत संकिर्णता दूर होती गयी। ''सांस्कृतिक अज्ञानता और अजनबीपन की स्थिति समाप्त हुई तथा एक ऐसी संस्कृति का विकास हुआ जिसमें रुढ़ियों, सामाजिक–धार्मिक दूराग्रहों'' और परंपरागत संकीर्णता में बांधने वाले सामाजिक मूल्यों का कोई स्थान नहीं रहा। परिणामत: नयी कविता को औद्योगिक युग के तनाव असन्तोष, नये सत्यों की खोज की व्यग्रता और यांत्रिकता ने प्रभावित किया।

शहरीकरण के कारण भी कई समस्याएँ पैदा हुई। उनमें से कई व्यक्तिगत कई सामाजिक है जैसे, ''संयुक्त परिवार की जगह एकत्र परिवार, व्यक्ति–व्यक्ति के बीच संकुचित संबंध और परायापन, संबंधों की रागात्मकता की शिथिलता, जीवन यापन का खर्चीला होना, मशीनी उत्पादन से बढ़ती बेरोजगारी, जनसंख्या की अधिकता, झोपडपट्टी संस्कृति का विकास, अपराध वृत्ती में वृध्दि, अस्वस्थकर वातावरण की सृष्टि शाररीक व्यधीयों के साथ मानसिक रुग्णता में बढोत्तरी, प्रकृति से अलगाव, जीवन के प्रति अविश्वास, आत्महत्या के वातावरण का फैलाव, अति व्यस्त जीवन के कारण बच्चों प्रति उदासिनता'' आदी। के कारण तणाव, अजनबीपन, अकेलापन, संत्रासबोध, मनुष्य ने महसुस किया। इस प्रकार की स्थिति को दूर करने में आज़ादी के बाद उचित विकास नहीं हो पाया। आर्थिक क्षेत्र में नवपुंजीवादी वर्ग

से उत्पन्न विषमता, नेताओं का स्वार्थ, नौकरशाही का भ्रष्टाचार ने आजादी को पराधीनता में बदला। केवल शासक बदले, शोषण के तरीके वही रहे।'' विज्ञान ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ओर अधिनायकत्व और दूसरी ओर मानवमूल्यों में विघटन की प्रक्रिया को जन्म दिया।''

पश्चिमी जगत के संपर्क ने स्त्री–पुरुष संबंधों मे बदलाव लाया। मनुष्य रुढियों, शारिरिक पवित्रता, जीर्ण संस्कार, कर्मकांड, जातियता, से मुक्त होना चाहा। पाश्चात्य नारी आंदोलनो ने बड़ा प्रभाव स्त्रीयों पर डाला। उनमें समानता, स्वतंत्रता, लैगिंक भेद का विरोध, 'अपने शरीर पर अपना नियंत्रण चाहा कुछ नारे गढे गये जैसे''– 'मुक्ति चाहिए बंधन नहीं', हमारे सौंदर्य को विज्ञापन न बनाया जाए आदि। '' पाश्चात्य नारी मुक्ति आंदोलन का प्रभाव भी बढ़ा, ''अमेरिकी नारी मुक्ति की प्रमुख' केट मिलेट 'द्वारा लिखा गया 'सैक्सुअल पालिटिक्स' जर्मन ग्रीअर द्वारा लिखा गया' द फीमेल युनक' तथा फ्रांसीसी उपन्यासकार सिमन द बउआ का 'द सेकंड सेक्स' का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। '' उनके प्रभाव से ही यौन संबंधो में पुरुषों की अपेक्षा, समलैगिंक विवाह, स्वच्छंद काम संबंध और एण्टी ब्रा मूवमेन्ट जैसी भावनाएँ खुलकर सामने आयी। '' इसने स्त्री के जीवन में बड़ा परिवर्तन लाया उनकी सोच–विचार के साथ 'सामाजिक सांस्कृतिक मान्यताओं की नयी स्थापनाएँ हुई। नयी कविता इससे प्रभावित है। जिसके परिणाम स्वरुप साहित्य में, स्त्री–पुरुष के संबंधों के तनाव का यथार्थ चित्रण, नैतिकता के संबंध में पनपती नितांत, नयी मान्यताओं का चित्रण, मुक्त भोग का अंकन, स्त्री–पुरुष समानता का भाव, उनके बीच प्रतिस्पर्धा'' आदि का चित्रण नयी कविता में मिलता है।

सन ६० के बाद इन स्थितियों में बढोत्तरी हुई। अनाचार, दुराचार, रिश्वतखोरी, जमाखोरी, बेईमानी, स्वार्थ, संकुचित दृष्टि इस काल में पनपी। कवियों ने नैतिक जिम्मेदारी को उठाया उसके विरुध्द उसके यथार्थ को अभिव्यक्त किया। वस्तुत: स्वतंत्रता के बाद उत्पन्न मध्यवर्ग का यथार्थ कविता में आया है। नयी कविता के कवि जीवन–संबंधों के प्रती आशावान रहे है। मानव मुल्यों की पहचान कराना व्यक्तित्व को पूर्णत: प्राप्त कराना, वे जरुरी समझते है। अत: व्यक्ति के अंतर–बाहय का संघर्ष कविता में उन्होने रखा है।

साहित्यिक वातावरण

छायावादी व्यक्तिगतता से निकलकर प्रगतिवादी सामाजिकता में तो हम पहूँचे थे परंतू उसका प्रभाव समाप्त होता गया। नये 'प्रयोग' के स्वर भी मंद हो चुके थे। 'वाद' की प्रवृत्ति से कविता को बाहर कर जनता के बीच, जनता के दरबार में लाना कवियों को अभिप्रेत था। नयी कविता में प्रगतिवाद का सामाजिक भावबोध है तो प्रयोगवाद की शिल्पगत विशिष्टता है। प्रयोगवादियों की आत्मकेंद्रितता, निराशा को उन्होने सामाजिक व्यापकता का आधार दिया। नयी कविता की भिन्नता यही है। लक्ष्मीकांत वर्मा ने 'दूसरा सप्तक के बाद के कवियों ने सारी कविता को दुसरा सप्तक के निकटवर्ती पाते हुए किन्हीं अर्थो में कुछ भिन्नता का अनुभव किया'' ये वही सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक भिन्नता है जो नयी कविता प्रवृत्तियों में विकसित हुई। साथ ही विदेशी वादों का प्रभाव भी उस पर रहा है। खासकर वाद विषय में मनोविश्लेषण का तो अभिव्यक्ति क्षेत्र में बिंब प्रतिक का। निराला द्वारा 'खून सींचा खाद का तूने अशिष्ट, डाल पर मंडरा रहा है कैपिटलिस्ट'' की घोषणा ने परिस्थिति की वास्तविकता को पहचाना था। जिसमे यथार्थ का दामन पकड़कर प्रगतिवाद उभरकर आया।

वही प्रयोगवाद में सामाजिक अतियथार्थवाद, में अपनी कुंठा की व्यंजना साहित्य में करता रहा।

नयी कविता मात्र सभी प्रकार के दूषणों से मुक्त प्रांगण में आयी। प्रयोगवाद को नई कविता की भूमिका कहा जा सकता है। देवराज ने सही कहा है की, 'इन कविताओं को नयी कविता की पूर्ववर्ती कहा जा सकता है, इन कविताओं की प्रकृति का अध्ययन करने से इसमें और 'नयी कविता' आन्दोलन की काव्य–चेतना में अंतर स्पष्ट परिलक्षित हो जाता है, किन्तु यह अन्तर विरोधी नही है, यह विकास प्रक्रिया का अन्तर है।'' इसलिए देवराज इसे नयी कविता भी नहीं कहते उन्हें 'संक्रमणकालीन कविताएँ' कहते है किन्तु 'नयी कविता' नाम अब उसके लिए एक बार चल पड़ा सो वही रहा है।

९.२ नई कविता: प्रारंभ, नामकरण

'नई कविता' यह नाम बडा भ्रामक है इसमे अतिव्यक्ति का दोष है। इसलिए की यह किसी भी युग में उभरी नई भावना, प्रवृत्ति, संवेदना के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। फिर वह छायावाद हो या प्रगतिवाद, प्रयोगवाद हो या हालावाद वस्तुत: कविता के क्षेत्र में यह नये आंदोलन ही है। नई 'नया' यह विशेषण अपने समय संदर्भों को व्यक्त करनेवाला है।

हिन्दी में प्रयोगवाद के बाद की कविता के लिए 'नई कविता' के नाम से जाना जाता है। कुछ आलोचक प्रयोगवाद एवं नई कविता को एक ही मानते है परंतू स्वंय अज्ञेय ने 'प्रतीक' के जून १९५१ के अंक में 'नई कविता' शब्द का प्रयोग किया है। उन्हें नई कविता के लिए 'प्रयोगवाद' शब्द अपूर्ण, अव्याप्त और पूर्वग्रह युक्त लगा। नई कविता शब्द प्रयोग दुसरा सप्तक से ही प्रारंभ हुआ। बाद में अज्ञेय ने इन कवियों की भर्त्सना भी की किन्तु प्रयोगवाद के बाद की काव्य प्रवृत्ति 'नई कविता' के रुप में अब जानी जाती है।

जैसा की हमने पहले ही कहा है की 'प्रयोग' शब्द को वाद–दूषित पाकर 'नई कविता' नामक संज्ञा का प्रचलन हुआ। १९५१ में दुसरा सप्तक के प्रकाशन के साथ 'नई कविता' के जिन सिध्दांतों का सूत्रपात किया गया उनका विस्तार तीसरा सप्तक के प्रकाशन–काल तक (१९५९) अबाध गति से होता रहा। जिसे जगदिश गुप्त तथा रामस्वरुप चतुर्वेदी ने १९५४ में अर्धवार्षिक 'नयी कविता' पत्रिका संपादीत की इसके साथ उसे प्रतिष्ठा भी मिली। लक्ष्मीकांत वर्मा ने उसे अधिक व्यापक क्षेत्र प्रदान करते हुए. कहा की, ऐतिहासिक दृष्टि से नई कविता 'दूसरा सप्तक (१९५१) के बाद की कविता को कहा जा सकता है, किन्तु इस ऐतिहासिक क्रम के अतिरिक्त भी नई कविता का वास्तविक रुप उस समय प्रतिष्ठित हुआ, जब 'दूसरे सप्तक' के बाद के कवियों ने सारी कविता को 'दुसरा सप्तक' के निकटवर्ती पाते हुए, किन्ही अर्थों में भिन्नता का अनुभव भी किया।

कुछ आलोचकों ने नयी कविता का विकास निराला के 'नये पत्ते' (१९४६ के प्रकाशन से मानते है। ''प्रवृत्तिगत वैविध्य के अतिरिक्त निराला के दीर्घकाव्य–विकास में अगले रचना आंदोलनों–प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता के बीज मिल जातें है। उनके संकलन 'नये पत्ते' (१९४६) से चलने वाले अंतिम दौर में इस प्रकार की अनेक कविताएँ दृष्टव्य है,'' आगे रामस्वरुप चतुर्वेदी ने यह भी स्पष्ट किया है की ''नयी कविता'' आधुनिकता का तीसरा दौर है जो, स्मरण रहे, स्वाधीन भारत की पहली रचनात्मकता है। ... नयी कविता में अनुभव का

जनतंत्र पहली बार स्थापित होता है, और जीवन तथा काव्यानुभव दोनों में आधुनिक भाव–बोध पूरी तरह समरस हो जाता है। ’’ वस्तुत: नयी कविता छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की उपलब्धियों को समेटे हुए है। शायद यही कारण है की प्रयोगवाद एवं प्रगतिवाद के कई कवि अपनी सीमाओं को लाँघकर नई कविता की गतिमान, जनतांत्रिक धारा के साथ हो गये।

नई कविता में वैविध्यपूर्ण प्रवृत्तियों के कवि है जिनकी व्यापक जीवन दृष्टि ने उन्हें बांधकर रखा है। कविता विकास की अबाध परंपरा का उद्‌गम नयी कविता है विद्रोह कविता का स्थायी भाव है। छायावाद में ’स्थुल के प्रति सुक्ष्म’ का विद्रोह था, प्रगतिवाद में ’व्यक्ति के प्रति समुह का’ प्रयोगवाद में ’सामुहिकता के प्रति वैयक्तिकता’ का तो नई कविता में ’व्यक्तिवादिता के प्रति आधुनिकता’ का विद्रोह है। यह विद्रोह विकासात्मकता का परिचायक है। कविवर पंत ने हमे ’उत्तराधिकारीणी’ कहा है। जिनमें सभी ’वाद’ की प्रवृत्तियाँ समाहित है। लक्ष्मीकांत वर्मा ने इसके चार मुख्य तत्व माने है– आधुनिकता में विश्वास, मुक्त यथार्थ का समर्थन, विवेक पर आधारित यथार्थ का साक्षात्कार और क्षण तथा समसामायिकता का दायित्व। ’’ यही कारण है की नये कवियों ने ’अनुभव की प्रामाणिकता’ पर जोर दिया है, और ’परिवेश के प्रति वह सजग’ है और उनमें ’अनाहत जिजीविषा’ भरी है।

९.३ नई कविता: काव्य प्रवृत्तियाँ

आज़ादी के बाद मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग में आया स्खलन कई समस्याओं को जन्म दे चुका। महंगाई, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, बेईमानी, कालाबाजारी, जातियता, साम्प्रदायिकता, धर्माधता, यंत्रयुग के कारण बढ़ती बेरोजगारी, यौन जीवन में आया खुलापन, टुटते पारिवारीक संबंध, व्यक्ति मन में बढ़ता तनाव, आदि ने यथार्थ के क्षण की महत्ता को रेखांकित किया। लघुमानव के बहाने उसकी प्रतिष्ठा, महत्ता जरुरी लगी। कलाकारों, कवियों की नैतिक जिम्मेदारी ने उनमे बैचैनी, छटपटाहट, नैराश्य , तणाव और इन सबके विरुध्द प्रतिबध्द संघर्ष की अभिव्यक्ति नयी कविता में हुई। मानवीय संबंधों के साथ अनुभूति व्यक्ति के लिए नयी भाषा का निर्माण हुआ जो जन–जन की भावना, क्रांती, संघर्ष, आस्था को लेकर सपाटबयानी, गद्यात्मकता, मुक्तछंद का प्रयोग किया जाने लगा। युगीन परिस्थिति और व्यक्ति के पारस्पारिक संघर्ष और समन्वय को काव्य विषय के रुप में नयी कविता ने स्विकार किया। डॉ. रघुवंश ने लिखा है– ’’नयी कविता अपनी अभिव्यक्ति, प्रेषणीयता तथा उपलब्धि की दृष्टि से प्रयोगशील कविता के आगे की स्थिति है । प्रयोगशील कविता ने परम्परा से विद्रोह के रुप में प्रयोग तथा अन्वेषण का मार्ग स्वीकार किया था, पर नयी कविता के संदर्भ में वे उसकी प्रवृत्ति के सूचक है। प्रयोग युग का कवि अपने संघर्ष के प्रति निश्चित नहीं था, आज का कवि अपनी सारी शंकाओं के बीच अपने व्यक्तित्व के प्रति आस्थावान है। ’’ (साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य)

स्वतंत्रता के बाद आज़ादी से उसका मोहभंग हो गया। बाद में भी उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति में कोई सुधार नही हो पाया। परिणामत: मध्यवर्ग में अपनी स्थिति के प्रति संघर्ष भाव उत्पन्न हुआ। इसमें भी उसने विरोध को पाया, ’’एक ओर राष्ट्रीय स्वाधीनता और उन्नति से उसके मन में आस्था और विश्वास निर्माण हो रहा था तो दुसरी ओर अपनी बढती हुई महत्वाकांक्षाओ की पूर्ति न होने से निराशा और अवसाद से वह घिर रहा था। ’’ कुछ

ऐसी ही जटिल समस्याएँ उनके सामने आयी इसी प्रकार के बदलते मनुष्य तथा समाज को नयी कविता ने व्यक्त किया। उसकी प्रवृत्तियाँ निम्न है।

१. लघु मानव के व्यक्तित्व की खोज और स्थापना:–

लघु मानव का कल्पना–बोध नयी कविता की विशिष्टता है। ''नयी कविता ने जिस मानव की कल्पना की वह व्यापक मानव–आत्मा का लघुतम बोध कहा गया है। '' 'नयी कविता' किसी भी प्रकार के विराटत्व के समक्ष मनुष्य के अस्तित्व को नष्ट नहीं करना चाहती'' विराटत्व के सामने व्यक्ति के अस्तित्व को कवियों ने संकट में पाया इसलिए उन्होने उसकी महत्ता को कविता में रेखांकित कर उसके अस्तित्व को बचाना चाहा। इसी नये मनुष्य को लक्ष्मीकांत वर्मा ने 'लघु मानव' कहा। और उसकी सबसे बड़ी विशेषता है, उसकी 'संवेदना भीड़ की संवेदना नहीं है'... वह विवेक और आत्मसाक्षात्कार पर आधारित संवेदना है', वह चाहे जितनी नगण्य हो, चाहे जितनी अवहेलना के योग्य हो, उस समुहवाद से अधिक मुल्यवान है, जो केवल यंत्र द्वारा हमारी इंद्रियों को चालित करके अपना मन्तव्य तो सिध्द कर लेना है किन्तु जो उस भीड़ की हर इकाई को खोखला ठूँढ़ बनाकर छोड़ देता है। '' नये लोकतंत्र और अद्योगिक व्यवस्था से निर्मित जो संस्कृति–समाज नये कवियों को मिला उसमें उसका विवेक और स्वतंत्रता आहत हो गयी। उनमें कुंठा पैदा हुई और अपनी इस संपूर्ण स्थिति एवं 'परंपरागत सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था' प्रति विद्रोह का जन्म हुआ और ''ऐसे में मनुष्य की कल्पना को प्रोत्साहन दिया जो सारी व्यवस्था के सामने छोटा होता हुआ भी अपनी स्वतंत्रता और विवेक का नियन्ता'' वह हो गया। लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार लघु मानव की निम्न विशेषताएँ है।

१. लघु मानव के लघु परिवेश की बात इन कुंठाओं से पृथक है और मानवानुभूति और मानव सार्थकता के महत्व से संबंध्द है।
२. लघु मानव का परिवेश अनुभूति की गहराई और विवेक की मर्यादा से प्रशासित होता है।
३. भविष्य के प्रति वह अपनी अस्था तो रखता ही है, किन्तु लघु परिवेश की सार्थकता के साथ।
४. उसकी अभिव्यक्ति में यह विश्वास भी निहित है कि उसका भावबोध किसी पूर्व निश्चित नियतिवाद या चमत्कार से प्रभावित नही है।
५. स्वतंत्रता की कोई और परिभाषा बिना इस मानवीय स्तर के अर्थात लघु–मानव और उसके लघु परिवेश के पूरी नही होती।
६. वह जीवन क्रियाशील के (या क्रियाशील जीवन के) उस रुप को चाहता है, जिसमें समग्रता हो, संकीर्णता न हो।
७. जीवन की समग्रता का व्यवहारिक रुप एक–दूसरे को सहन करने में है न कि उस अव्यावहारिक आधिपत्य में, जिसमें विरोधों का नाश करके केवल एक सत्ता रुढ व्यक्ति के प्रति समस्त चेतना अर्पित हो जाए।

इससे लघु–मानव की एक ऐसी 'छ्बी' उभरकर आती है जो 'अपने लघु परिवेश,

स्वतंत्रता, विवेक और जीवन पध्दति के प्रति पूर्णतः सजग है।'' उन्होने घोषणा की मानव इकाई को पूर्ण सम्मान'' दिया जाए। अर्थात नयी कविता जीवन प्रती स्वाभिमान, सदवृत्ति. अस्था रखता है। और ऐसे ही मनुष्य को सजग–लघु मानव कहा गया। जगदीश गुप्त के शब्दों में कहे तो ''नया मनुष्य रुढिग्रस्त चेतना से मुक्त, मानव मूल्यों के रुप में स्वातंत्र्य के प्रति सजग, अपने भीतर, अनारोपित सामाजिक दायित्व का स्वंय अनुभव करनेवाला, समाज को समस्त मानवता के हित में परिवर्तित करके नया रुप देने के लिए कृत–संकल्प, कुटिल स्वार्थ भावना से विरत, मानवमात्र के प्रति क्षोभ का अनुभव करते वाला, हर मनुष्य को जन्मत: समान माननेवाला मानव व्यक्तित्व को उपेक्षित, निरर्थक और नगण्य सिध्द करनेवाली किसी भी दैविक शक्ति या राजनैतिक सत्ता के आगे अनवरत, मनुष्य की अंतरंग–सदवृत्ति के प्रति आस्थावान, प्रत्येक व्यक्ति के स्वाभिमान के प्रति सजग, दृढ़ एवं संगठित अन्त:करण संयुक्त, सक्रिय किन्तु अपीड़क, सत्यनिष्ठ तथा विवेकसंपन्न होगा।''

नयी कविता में उसी मानव को महत्व दिया गया है, जो किसी प्रकार भी अलौकिक शक्ति से असंपन्न हो, साधारण जीजीविषू हो। मानवेत्तर नहीं मानवी हो, कृत्रिम नही स्वाभाविक वृत्ति वाला हो। लघु–बनकर, रहकर ही संघर्ष संभव है। विराट, सुपरमैन से संघर्ष नहीं चमत्कार होता है। जो मनुष्य अस्तित्व को नकारता है। नयी कविता उसके उपेक्षित, हेय, अस्तित्व में स्वतंत्रता भाव का प्रतिपादन करती है। देवराज ने लघु–मानव और नये मनुष्य को संतुलित दृष्टि से देखते हुए उसकी विशेषताओं को व्यक्त किया है।

१. वह अपने चारों ओर बिखरे परिवेश से किसी प्रकार की आत्महीनता अनुभव नहीं करता।
२. वह अपनी सीमित शक्ति को किसी प्रकार की पराजय का कारण नहीं मानता, बल्कि समय पड़ने पर अपनी समस्त चेतना से किसी भी बड़े संकट के विरुध्द खड़ा होने का साहस रखता है।
३. वह निश्चित रुप से यह मानता है कि इकाई की अस्मिता की सुरक्षा के बिना सामाजिक–अस्मिता की सुरक्षा का कोई अर्थ नहीं है क्योकि इकाई समाज का प्रमुख तत्व है।
४. वह मानता है कि व्यक्ति और व्यक्ति के बीच मानवीय–मूल्यों के स्तर पर कोई भेद नहीं होता।
५. वह अपने जीवन–निर्माण में किसी भी उस शक्ति को भागीदार नहीं बनाना चाहता जो काल्पनिक–महत्व से संबध्द है क्योंकि ऐसा करके उसे आज तक छला गया है।
६. वह अपने वर्तमान के प्रति पूर्णतः सजग है।
७. वह अपने अस्तित्व का वाहक होने पर भी किसी प्रकार सामष्टिकता का विरोधी नहीं है क्योंकि मूलतः उसका संघर्ष सामाजिकता से नही, समाज में फैली मूल्यहीनता और अलोकतांत्रिक प्रवृत्ति से है।
८. वह अपनी जय और पराजय दोनों का वरण स्वंय करता है, तथा यह प्रयास करता है कि वर्तमान के स्वरुप से भविष्य का निर्धारण किया जाए। सुख और दु:ख दोनों को भोगने के लिए उसके पास जागरुक दृष्टि है।

२. आधुनिकता बोध की पहचान :–

नयी कविता में आधुनिकता बोध की पहचान का तात्पर्य है– 'मानव स्थिति के साक्षात्कार की नितांत नवीन जागरुक पध्दति', जीवन की समझ की गत्यात्मक प्रकृति', 'अपने काल को आत्मसात करने की अर्थपूर्ण चेतना', 'अर्थपूर्ण जीवन–मूल्यों को प्राप्त करने की विधि,' 'परिवेश के प्रति व्यक्ति की सतत सजगता' आदि। '' इनका आधुनिकता बोध परिवर्तनीय है, इसमें कोई 'रुढ़' या 'जड़' धारणा नहीं। जो रुढ़ियाँ, परम्पराएँ परिवर्तन व 'मनुष्य स्वतंत्रता का विकास' साधने नहीं देती उसका विरोधी काव्य है नयी कविता।

उसका यह अर्थ भी नहीं की वह समृध्द अतीत परंपरा के कटी है। बल्की उसके गतीशील तत्वों, मूल्यों, विश्वासों, को नये सृजनात्मक संघर्ष क्षमता से उपजीव्य बनाती है। यही उसका स्वतंत्र विवेक है, समय के प्रती प्रतिबध्दता एवं सजगता है। ''इससे'' आधुनिकता बोध व्यक्ति को अपना सही दायित्व निबाहने की ओर प्रेरित करता है। आधुनिकता की दृष्टि विवेकपूर्ण दृष्टिकोन की स्थापना करती है। व्यक्ति अपने परिवेश को संवारने की दिशा में क्रियाशील रहे और किस गति से किस ओर जा रहा है यह सब सोचने की शक्ति आधुनिकता बोध की शर्त है।'' (डॉ. नरेंद्र मोहनः आधुनिकता और समकालीन कविता सप्तसिंधू (नव काव्य विशेषांक– एक) अगस्त, १९७३ अंक ८, पृ. २२) अर्थात यह केवल भौतिक विकास साधने की नही मानसिक उन्नती पाने की कोशिश भर है। इसलिए उसमें 'एक ओर स्वीकृति है तो दूसरी ओर अस्वीकृति। ' वह जीवन को गती, विकास प्रदान कर रही है की उसके अस्तित्व का नाश कर रही है, इसी की तलाश है नयी कविता। डॉ. देवराज के अनुसार उसकी विशेषताएँ है–

१. आधुनिकता बोध वह सहज; स्वाभाविक और गतिशील प्रक्रिया है, जो जीवन को सही संदर्भ में समझने की दृष्टि प्रदान करती है।
२. यह मूल रुप में परस्परविरोधी नहीं है– प्रत्युत व्यवस्थामुलक मुक्ति की भावना प्रधान होती है।
३. आधुनिकता बोध वह दृष्टि है जो मनुष्य में छिपी सर्जनात्मकता को मुखरित करती है और उसे सत्य से सीधे साक्षात्कार के लिए तैयार करती है।
४. आधुनिकता बोध में संकीर्णताओं के लिए कोई स्थान नहीं होता, उसके मूल में मानवतावादी दृष्टि होती है।
५. आधुनिकता–बोध कोई बाहयारोपित तत्व नही है, बल्कि प्रगतिशील जीवन के विकास–क्रम के अनन्तर प्राप्त चेतना है, जो मूल्य न होते हुए भी वास्तविक जीवन–मूल्यों के प्रति सचेत करती है।

३. आस्था का स्वर :–

नये कवि का अपने व्यक्तित्व पर भरोसा करते है। वे कठिण से कठिण विपदा में भी अपनी आस्था के बल उसे सहने एवं दूर करने का भाव उनमें है। भविष्य की उज्जवता पर उनका दृढ़ विश्वास है। जीवन के यथार्थ पक्ष को भी वे इसी दृष्टि से देखते है। इसी कारण वे जीवन–संघर्ष से छायावादीयो तथा प्रयोगवादीयो जैसा पलायन नहीं करते। उसे अपनाकर

उनमें भरी विद्रूपता को दूर करते है। ऐसे समय उनकी कविता में व्यंग धार–धार प्रवाहित होता है। आधुनिक जीवन से सहानुभूति और सौहाद्र प्रायः समाप्त हो चुका है। मानव–मानव में झूठ और घृणा का व्यवहार चलता जा रहा है। इस प्रकार की 'पिशाच संस्कृति' पर कैलास वाजपेयी का व्यंग्य देखीए–

''कितना अच्छा है
सभी झूठ बोलते है
कितना अच्छा है
सभी घृणा करते है
अपरिचय के माध्यम से जुड़ते है
अपरिचित बिछुडते है–
...न कोई रोता है
न कोई हँसता है
कितना अच्छा है अब
हर कोई डसता है।''

जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति करते हुए केवल आस्था ही उनमे है ऐसा नही, डर. भय. अनास्था, शंका, निराशा, अविश्वास भी उनमें है। जैसे मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' का नायक उन सभी स्थितियों से गुजरकर अपने 'गुरु' का 'शिष्य' होता है। तथा ब्रह्मराक्षस' 'जीवनमूल्यों की खोज में भटकते संशोधक की कहानी, दु:ख दर्द के साथ व्यक्त हुई है। आधुनिक सामान्य व्यक्ति की यह 'ट्रैजडी' भी है तो 'बुध्दिजीविता' भी। जीवन चुनैतियों का स्विकार भी नया कवि करता है उसमे उत्पन्न विषाक्त मनःस्थिति को भी। फिर भी वह जीवन में आस्था रखता है।

४. क्षण– बोध की अभिव्यक्ति :–

नयी कविता क्षणानुभूति को अधिक महत्व देती है। सृजन के लिए क्षण ही बोध जगाते है। क्षण बोध की अनुभूति ही उन कवियों के लिए सत्य है। जीवन क्षण–संवेदना से भरा है। उसी में उसे जीवन के सुख दुःख मिलते है। उससे ही जीवन सतत परिवर्तनशील होता है। क्षण की संवेदना को अनुभव करना काव्य में उसे सुरक्षित करना फिर किसी दुसरे क्षण– संवेदना को जीना, ''इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक क्षण अपनी सीमा में ही गहन अनुभूतिमुक्त होता है और इसी कारण नयी कविता में क्षणानुभूति के अंकन को पर्याप्त महत्व दिया गया है। '' देवराज ने इसके दो प्रकार माने है एक सूक्ष्म और दुसरा स्थुल, '' सूक्ष्म क्षण में कवि सत्य के साक्षात्कार कराने वाले क्षण की अनुभूतियों को व्यक्त करता है। यह मुक्ति का क्षण हो सकता है। .... जबकि स्थूल क्षण में असत्य, भौतिक, आसक्तियुक्त कालखंड़ की अभिव्यक्ति होती है। '' क्षण अनुभूतिपूर्ण एवं गहरे होते है। जिसमे 'स्थूल एवं सुक्ष्म' अनुभूतियाँ पैदा' हो जाती है, उसकी अनुभूति एवं भोग्या की तीन स्थितियाँ देवराज के अनुसार होती है– एक स्तर वह, जिसमें संवेदना सुक्ष्म और अधिक गहन होती है, दूसरा वह जिसमें स्थूल को भोगकर अनुभूति एकत्र करने की अदम्य लालसा होती है और तीसरा वह जिसमें दो क्षणों के जुड़ने का तनाव रहता है। इसे व्यक्ति भोगना नहीं चाहता, किन्तु उसे भोगना पड़ता है। '' (वही–पृ–८१)

क्षणवाद की नयी स्थापना ही नयी कविता का विशेष है। उसके संबंध में उनका विचार है,'' क्षण कालहीन होता है, उसमें सत्य और यथार्थ के साक्षात्कार की सर्वाधिक गहन स्थिति होती है, उसमें अगले क्षण की प्रेरणा छिपी होती है, यह सत्य की उपलब्धि कराता है, इसमें आत्माभिव्यक्ति का सूक्ष्म रुप विद्यमान होता है आदि। '' इन्ही कारणों से जीवन के सामान्य कार्य–व्यापार में नया अर्थ खोज़ता, भरता है। उसकी गहरी पकड़ के कारण कविता मार्मिक बन जाती है। नयी कविता में क्षणबोध शाश्वत जीवन बोध का विरोधी नही 'बल्कि उसे प्राप्त करने की यथार्थ प्रक्रिया है। क्षण में अनुभूत होनेवाला जीवन उल्हास धर्मवीर भारती की कविता में आया है– 'जब कोई भी मनुष्य अनासक्त होकर चुनौति देता है इतिहास को उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है। नियती नहीं पूर्वानिर्धारित उसकी हर क्षण मानव निर्णय बनाता मिटाता है। ''

५. परिवेश के प्रति सजगता :–

आधुनिकता बोध और अनुभव की प्रामाणिकता के कारण नयी कविता परिवेश के प्रति सजग है। जिसके कारण सामाजिक यथार्थ का उद्घाटन हुआ है। अपने परिवेश प्रति वह दायित्वबोध को स्विकारते है। लघु मानव की दृष्टि को महत्व देने के पीछे की भूमिका यह भी रही है क्योंकि आधुनिक काल में सर्वाधिक उपेक्षित, त्रासद, विडम्बना से युक्त जीवन उसी के हिस्से में आया है। उसके मन में उभरकर आया नैराश्य, संत्रास, संकटबोध, संघर्ष की अभिव्यक्ति की सशक्तता ने नयी कविता को जीवन के साथ जोड़ दिया है। समाज अकेलेपन और वेदना के कारण सबसे बड़ा दुर्भाग्यशाली लघु मानव ही रहा है। छायावाद से लेकर प्रयोगवाद में व्यक्ति की स्थिति–गति में जो बदलाव आया उसके साथ नयी कविता–समय में वह निपट अकेला एवं त्रासद जीवन जीता रहा है। रघूवीर सहाय ने कहा है–

''कितना अच्छा था छायावादी
एक दुःख लेकर वह एक गान देता था
कितना कुशल था प्रगतिवादी
हर दुःख का कारण वह पहचानता था
कितना महान था गीतकार
जो दुःख के मारे अपनी जान लेता था
कितना अकेला हूँ मैं इस समाज में
जहाँ सदा मरता है एक और मतदाता।''

नयी कविता का संवेदनशील कवि जब राजनेता का जनतंत्र के नाम पर, शांतीवादीता के नाम पर अनेक प्रकार के फरेब करते नेताओं को देखता है, तो वह तिलमिलाह उठता है – श्रीकांत वर्मा कहते है–

''कुछ लोग मूर्तिया बनाकर
बेचेगें शांति की (अथवा षडयंत्र की)
कुछ और लोग
    सारा समय

कसमे खायेगें
लोकतंत्र की।

यथार्थ, जनतंत्र के नाम पर शोषण तंत्र, दमन तंत्र, षडयंत्र, का सशक्त विरोध मुक्तिबोध की कविता में हुआ है। 'अंधेरे में' उन सभी प्रतिष्ठित समाज की शिनाख्त वह करता है। उनके विरोध में वह खड़ा होता है यह एक चुनौती है। कहता है–

''अब अभिव्यक्ति के सारे ख़तरे
उठाने ही होगें।
तोडने होगें मढ और मढ सब''

नयी कविता ने नये मानव की प्रतिष्ठा काव्य में की है। यही उसका लक्ष्य भी है। लक्ष्मीकांत वर्मा ने उसकी सजगता के संबंध में कहा है,'' नयी कविता का आग्रह जिस विशेष तत्व पर है, वह उस मानव व्यक्तित्व की स्थापना और उसकी उपयोगिता से विकसित होता है, जो समस्त विद्रूपताओं और कटुताओं के बावजूद मनुष्य को उसकी मुल मर्यादा के प्रति, निजत्व और अस्तित्व के प्रति जागरुक रखना चाहता है। '' यही कारण है की वह खतरों की उठाता है। दमघोटु परिवेश से मुक्त होने के लिए भागता–दौड़ता, संघर्ष करता, अपने–आप से संघर्ष करता जिजीविषू बनता है। फिर वे अज्ञेय हो या मुक्तिबोध, श्रीकांत वर्मा हो या जगदीश गुप्त, रघुवीर सहाय हो या कीर्ती चौधरी वे सभी समय के प्रति सजग है।

६. यथार्थवादी दृष्टि :–

यथार्थ का प्रतिपादन प्रत्येक काल का कवि करता है परंतू उसके प्रति उसकी विभिन्न दृष्टि का आग्रह भी होता है। प्रगतिवादीयों में सामाजिक यथार्थ था तो प्रयोगवादीयों में व्यक्ति यथार्थ, या अतियथार्थ वाद परंतू नयी कविता में समय यथार्थ में बनते–बिगडते व्यक्तित्व के यथार्थ को काव्य में प्रतिपादित किया है। 'मनुष्य का दर्द मुलतः एक ही है और आज का कवि बड़ी इमानदारी के साथ उसे संवेदनापूर्ण ढंग से व्यक्त करता है। ' अज्ञेय ने कहा है–

''.... ये असंख्य
आँखे थी
दर्द सभी में था
जीवन का दर्द सभी ने जाना''

प्रगतिशीलों की तरह केवल कुंठाओ आत्मकेंद्रितता एवं यौन वर्जनाओं को यथार्थ के रुप में न स्विकारते हुए उसे समग्र सामुहिक रुप में अपनाया है।

७. जीवनानुभवों के प्रति इमानदार :–

परिवेश प्रती सजगता और सामुहिक यथार्थ के चलते जीवनानुभवों प्रति वह सजग है। आधुनिक व्यक्ति में छिपकर दूसरों पर आक्रमण करनेवाले हिंस्त्र पशुत्व कवि मन में भी कैसे जागता है, उसका उदाहरण मुक्तिबोध की कविता 'औरांग–उटाँग' में आया है।

स्वयं की ग्रीवा पर
फेरता हूँ हाथ कि

करता हूँ महसूस
एकाएक गरदान पर उगी हुई
सघन आयाल और
शब्दों पर उगे हुए बाल तथा
वाक्यों में औराँग... उटाँग के
बढे हुए नाखून।''

जीवन की अनेक समस्याओं को देखकर वह विकट स्थिति में पड़ जाता है। जीवन में आयी हुई अस्थिरता का बोध भी उनमें जगता है। ऐसी कठिणाईयों के विरुध्द भी वह खड़ा होता है। जैसे मुक्तिबोध 'मठ' और 'गठ' तोड़ने का कृत संकल्प करते है परंतू दुष्यंतकुमार में भी एक प्रकार का व्यर्थथा बोध–अनुभव उभरकर आता है–

''यह समंदर है
यहाँ जल है बहुत गहरा।
यहाँ हर एक का दम फूल
आता है।
यहाँ पर तैरने की चेष्टा भी
व्यर्थ लगती है।''

अनेक घटना प्रसंगों में नयी कविता के कवियों ने जीवन–अनुभवों को इमानदारी से व्यक्त किया है।

८. उपेक्षित जनसाधारण का काव्य :–

रामस्वरुप चतुर्वेदी के अनुसार ''नयी कविता आधुनिकता का तीसरा दौर है जो स्वाधीन भारत की पहली रचनात्मकता है। स्पष्ट ही अब तक राष्ट्रीयता का आग्रह मंद हो चुका है, और उस के स्थान पर व्यापक जन–चेतना का दबाब बढा है। इस रुप में एक तरह से राष्ट्र की अवधारणा सामान्य जनसमुह से एकाकार हुई है, विशेषतः जनसमुह के उस हिस्से से जो अपेक्षाकृत साधनहीन है। रचना–चिंतना में साधनहीन उपेक्षित जनसमुह के केन्द्र में आने के पीछे भी एक लंबी प्रक्रिया निहिन है। '' वे इस प्रक्रिया का आरंभ भारतीय काव्यशास्त्रीय उस परंपरा के विरोध में मानते है, जहाँ देवता या किसी उच्चकुलीन मनुष्य को ही काव्य का चरितनायक बनाया' जाने की परंपरा थी, उसकी जगह बंगाल के माइकेल मधुसुदन के 'मेघनाथ वध' (१८६१ ई.) से मानते है।''इस काव्य में पहली बार परंपरा से तिरस्कृत और लांछित राक्षस–वंश के मेघनाद को सहानुभूति देते हुए उसे नायक रुप में स्थापित किया गया है। यह जानना अपने में रोचक है कि माइकेल के उस रावणवंशीय काव्य का (कई अन्य काव्यों का भी) पद्य अनुवाद हिंदी में राम के अनन्य भक्त कवि मैथिलीशरण गुप्त ने किया। अपनी मौलिक रचना में तो कवि ने स्वंय इतना साहसिक कदम तो नहीं उठाया पर 'साकेत' में कैकयी का चरित्रांकन एक अभूतपूर्व सहानुभूति के साथ अवश्य किया। '' ... इस परंपरा में सूत–पुत्र कर्ण, निषाद, कुल का एकलव्य आदि प्रमुख है। दिनकर (रश्मीरथी) रामकुमार वर्मा, (एकलव्य) जगदीश गुप्त (शंम्बुक), केदारनाथ मिश्र 'प्रभात (ऋतम्बरा) नरेश मेहता (शबरी) आदी। नयी कविता का यह 'गुणात्मक परिवर्तन' उपेक्षित चरित्रों को साहित्य के केंद्र में लाया। 'समग्र

जीवनानुभव काव्य योग्य' हुआ।''आधुनिकता के पहले दौर में नायक की परिकल्पना बदली गई: धरोदत्त राजा–देवता या मनुष्य–के स्थान पर सामान्य मनुष्य या राक्षस भी को काव्य का नायक बनाया गया। नयी कविता व्यक्तिगत नायकीय चरित्र को बदलने के साथ–साथ पूरी विषय परिकल्पना को बदल देती है। '' अब कोई रस प्रमुख नहीं रहा न काव्य विषय की जाती–वर्चस्व गत श्रेष्ठता। विनम्र ढंग से परंपरा संपृक्त 'लघु मानव' को काव्य में लाती है। ''मानो कविता की ही फिर से शुरुआत ही जाती है यहाँ। वृत यों पूरा घुम जाता है। '' प्रगतिशील यथार्थ के प्रति यह जागरुकता नयी कविता की विशिष्टता है। प्रबंध के साथ कविता में भी यही भाव–संवेदन व्यक्त हुआ है। मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथूर, दुष्यंतकुमार, रघुवीर सहाय की कविताएँ इसका साक्ष्य है। नयी कविता के पास–

''आज दुनिया के करोडों आदमी
सह रहे है धूप सर्दी और नमी
जिन्दगी का एक भी साधन नहीं
बस तपती धूप है, सावन नहीं।''

यही उस व्यक्ति का चरित्र है जो सदियों से पछाड़ खा गया था, बहिष्कृत था अब वह भी 'लघु' के भीतर 'विराट'त्व को लेकर उपस्थित हुआ है।

९. व्यंग की प्रधानता :–

व्यंग्य सुधार की भावना से प्रेरित होता है। ''नयी कविता में व्यक्ति, समाज और युग तीनों की विषम–दयनीय स्थितियों पर व्यंग्य किए गए है। अज्ञेय की 'साँप' और भवानीप्रसाद मिश्र की 'गीत फरोश' जैसी कविताओं में मानवीय असामंजस्यों की चिन्तनीय स्थिति का चित्रण किया गया है। '' जगदीश गुप्त ने कहा है, नवलेखन में एक प्रधान स्वर व्यंग्य और विद्रूप का है, जिसका संबंध देश की विषय परिस्थितियों तथा मूल्यहीनता की दयनीय दशाओं से है, छोटी–मोटी इधर की रचनाओं ने अत्यन्त साहस के साथ इन पर गहरी चोट की है। '' व्यंग्य के जरिए वह समाज को बदलना चाहता है, नैतिकता में सुधार लाना चाहता है।

व्यंग के साथ जुड़ा एक और मूल्य नयी कविता में है और वह है ''अनुकूल अभिव्यक्ति का स्वरुप'' उसके प्रति इमानदारी। नयी कविता ने परंपरागत मानदंडों, रुढ़, मान्यताओं एवं सड़े–गले मूल्यों को अस्वीकार किया है। उसने संपूर्ण शासनतंत्र एवं व्यवस्था के विरुध्द विद्रोह किया है, अपने ढोंगी परिवेश का पर्दाफाश किया है। '– ऐसे समय भी कवियों ने व्यंग्य का बड़ा सुंदर प्रयोग किया है–

''मैं असभ्य हूँ क्योकि खुले नंगे पांवों चलता हूँ
.. .. ..
आप सभ्य है क्योकि हवा में उड जाते है उपर
आप सभ्य है क्योकि आग बरसा देते है भू पर...
आप सभ्य है क्योकि जबड़े खून सने है
आप बड़े चिंतित है मेरे पिछड़ेपन के मारे
आप सोचते है कि सीखता यह भी ढंग हमारे
मैं उतारना नहीं चाहता जाहिल अपने बाने

धोती–कुरता बहुत जोर से लिपटाये हूँ याने!''

अथवा उनकी प्रसिध्द व्यंग्य कविता 'गीत फरोश' कवि की दयनीय स्थिति के साथ, सामाजिकउपेक्षा को व्यंग्य में उभारती है–

''... या भीतर जाकर पूछ आइए आप,
है गीत बेचना वैसे विल्कूल पाप,
क्या करूँ मगर लाचार
हार कर गीत बेचता हूँ!
जी हाँ, हुजूर मैं गीत बेचता हूँ।"

१०. मानवतावादी स्वर:–

नये कवि सभी प्रकार के वादों से मुक्त है, वे केवल मानवतावादी है। 'वाद' संकीर्णता है और वे संकीर्ण होना नहीं चाहते। उनकी कविताओं में वाद विशेष को पाया जा सकता है पर वे किसी खुंटे से बंधे उनका समर्थन करते है ऐसा नहीं। रौंदी गयी मानवता उपेक्षित वंचितो के दुःख, करुणा प्रति सहानुभूति नयी कविता की विशेषता है। वह सभी के प्रश्न अपनी आगोश में लेकर चलता। सभी की अभिव्यक्ति करता है, वह चुप रह ही नहीं सकता। जैसे दुष्टांतकुमार कहते है–

''मुझमें रहते है करोडों लोग चुप कैसे रहूँ
हर गज़ल अब सल्तनत के नाम बयान है।''

वह कल्पना की ऊँची उड़ान, के रुप में कविता नहीं करता। अपनी कविता को अपने से घर, परिवार, समाज, देश से जोड़ना चाहता है। यही कारण है की मिट्टी की गंध, हवा, धूप और रंग लेकर कविता लिखता है। ठीक इसी जगह उनकी कविता लोकोन्मुख हो जाती है– और कविता में, ''हट्टे–कट्टे हाडों वाले/चौडी, चकली काठी वाले/थोडी खेती बाडी रक्खे/केवल खाते–पीते जीते/कत्था,चूना,लौंग सुपारी/तम्बाकु खा पीक उगलते/चलते फिरते बैठे ठ़ाडे/गंदे यश से धरती रंगते/गुड़–गुड़–गुड़–गुड़ हुक्का पकड़े/खूब धड़ाके धुआँ उडाते/फुहड़ बातों की चर्चा के/फौवारे फैलाते जाते/दीपक की छोटी बाती थी/मन्दी उजियारी के नीचे/घण्टों आल्हा सुनते–सुनते/सो जाते है मुर्दा जैसे। '' लोकजीवन की समृध्द बाद–पानी से कविता भी समृध्द हो जाती है। उदार–मानवीय हो जाती है। नये जीवनादर्श को स्थापित करती है।

इन मुख्य प्रवृत्तियों के अलावा बौद्धिकता की व्यापकता, 'असम्पृक्ति', 'परायापन', 'अजनबीपन', प्रेम, नारी, प्रकृति, रसमयता आदि महत्वपूर्ण है। अब कवि ऐसी स्थिति में आ गया है की उसकी मौलिकता, गहराई, तीव्रता, संवेदना, व्यापकता, विश्वमानवता को वह नहीं उनकी कविता 'बोलेगी' सारे 'भेद' 'खोलेगी' रघुकर सहाय कहते है–

''बात बोलेगी हम नहीं
भेद खोलेगी बात ही।''

११.शिल्पगत विशेषताः–

प्रयोगवादीयों की शिल्प प्रवृत्ति का प्रभाव नयी कविता में दिखाई देता है। बिम्ब, प्रतीक, नवीन अप्रस्तुत विधान आदि का प्रयोग पूर्ववर्ती कविता के साथ नयी परिवर्तन दृष्टि से किया गया है। नयी कविता के भीतर अभिव्यक्ति की सम्प्रेषणीयता का प्रश्न महत्वपूर्ण हो चुका है। भाषा सरंचना, भाषा प्रयोग, अनुभावित संवेद्य–तत्व, गतिशीलता की दृष्टि से नयी कविता की भाषा विशिष्ट है।

अ. भाषा:–

नये कवियों में यह विचार पनपा की 'परम्परागत भाषा से युग–जीवन के सही चित्रण की आशा नहीं की जा सकती थी। मूल रुप में यही कारण था जिससें नये कवि को भाषा संस्कार की आवश्यकता पड़ी। '' नयी कविता भाषा की विशेषता यह है की 'वह किसी एक पध्दति में बंधकर नहीं चलती' किन्तु प्रभावि एवं सशक्त अभिव्यक्ति के लिए उत्कृष्ट कवि बोलचाल की भाषा–प्रयोग को प्राधान्य देता है। नयी कविता भी उसी का स्वीकार करती है। भवानी प्रसाद की 'सतपुड़ा के जंगल' कविता जंगल प्रकृति और प्रवृत्ति दोनों को सामने लाती है। आशोक वाजपेयी की कविता 'शहर अब भी संभावना है, का उदाहरण देवराज ने दिया है, ''माँ/लौटकर जब आऊँगा/क्या लाऊँगा/यात्रा के बाद की थकान/सूटकेस में घर भर के लिए कपडें/मिठाइयाँ, खिलौने/बड़ी होती बहनों के लिए/अंदाज से नयी फैशन की चप्पलें/''

संस्कृत, अंग्रेजी उर्दू, जनपदीय बोली–शब्द का प्रयोग नयी कविता में हुआ है। त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, धुमिल, सर्वेश्वर आदि में यह देखे जाते है। 'लोक भाषा, लोक धून' और 'लोक संस्कृति' का प्रयोग 'गीति साहित्य' में हुआ है। अज्ञेय की कलगी बाजरे की कविता उत्कृष्ट उदा है।

नयी कविता के नये मुहावरे भाषा को 'सार्वजनीक' बनाते है। भाषा का साधारणीकरण नयी कविता की विशिष्टता है। कहीं कही सपाटबयानी या 'वक्तव्य नुभा' भाषा का प्रयोग भी प्रचुर हुआ है। धुमिल आदि की भाषा इसी प्रकार की है।

सामान्य आदमी, सामान्य भाषा उनकी खासियत है–

''रांपी से उठी हुई आँखों ने मुझे
क्षणभर टटोला
और फिर
जैसे पतियाते हुए स्वर में
वह हँसते हुए बोला–
बाबूजी! सच कहूँ–मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जुता है
जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है।''

नयी कविता में गद्य भाषा का प्रयोग भी सर्व स्विकृत हो गया है। अधिकार लम्बे चौड़े वाक्य, वक्तव्य देते, बात समझाते, वर्णन करने इसी प्रकार की भाषा प्रयुक्त हुई है। अज्ञेय की

कविता का एक उदाहरण–

''और एक चौथा मोटर मैं बैठता हुआ चपरासी से फाइलें उठवाएगा–
एक कोई बीमार बच्चे को सहलाता हुआ आश्वासन देगा–देखो,
हो सका तो जरुर ले आऊँगा' –
और एक कोई आश्वासन की असारता जागता हुआ भी मुस्काराकर कहेगा–
'हाँ, जरुर, भूलना मत।'
इससे क्या कि एक की कमर झुकी होगी
और एक उमंग से गा रहा होगा– 'मोसे गंगा के पार......'
और एक के चश्मे का काँच टूटा होगा
और एक के बस्ते में स्कुल की किताबें आधि से अधिक फटी हुई होगी ?
एक के कुरते की कुहनियाँ छिदी होंगी,
एक के निकर मे बटनों का स्थान एक आलपीन ने लिया होगा।

नयी कवियों के रचनाओं में चिन्ह संकेतों से भी कविता पंक्तियाँ लिखी जा चुकी है। एक शब्द एक पंक्ति बना है। तो दुसरी ओर विराम, अर्धविराम, पूर्णविराम के चिन्हों को तिलांजलि दी गयी है। जैसे–

''भाषण में जोश है
पानी ही पानी है
पर
की
च
ड़
खामोश है''

मुक्तछंद का, मुक्तक शैली का स्वीकार नयी कविता के धारा में हुआ है। जटिल एवं उलझी हुई अनुभूतियों को व्यक्त करते समय जैसा चाहा वैसा प्रयोग हुआ है। इसकों देवराज भाषा क्षेत्र में 'विद्रोह' कहते है और इसके पीछे 'चमत्कार की अपेक्षा विवशता' की अधिकता मानते है। 'बदले हुए परिवश को चित्रित करने के लिए' उन्होंने 'एक ऐसा मुहावरा स्वीकार कर लिया था, जिसके अनुसार आपाद–मस्तक कीचड़ से भरे मानव को भी मानव तुम सबसे सुंदरतम कहना जरुरी था।'' इसलिए उन्होंने ने भाषा को ही नये संस्कार दिये। प्रगति–प्रयोग काल की अपेक्षा नयी कविता की भाषा–शैली नयी ही रही है।

आ. प्रतिक

नयी कविता में परंपरागत तथा नये प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। कुछ कवियों के कविता शीर्षक ही प्रतीकात्मक है अज्ञेय की 'नदी के द्वीप', सागर तट की सीपियाँ, मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस', 'भूल–गलती' 'लकड़ी का रावण' अंधेरे में 'अंधेरा, काला पहाड, तिलक की मुर्ती, गांधी, आकाश में तालस्ताय आदी प्रतीक ही है।

'ब्रह्मराक्षस' वर्तमान में बाहयांतरीक संघर्षो के बीच पीड़ित मानव का प्रतीक है, तो 'लकड़ी का रावण' शोषक सत्ता का और 'वानर जनवादी क्रांतिकारियों के प्रतीक है। '' बढ़ न

जाय। छा न जाय। मेरी इस अद्वितीय/सत्ता के शिखरों पर स्वर्णाभ/हमला न कर बैठे खतरनाक/ कुहरे के जनतंत्री। वानर ये नर ये।''

नयी कविता में तीन प्रतीक रुपों का प्रयोग हुआ है। एक जिनका संबंध भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा से है। इनमें प्राकृतिक, पैराणिक, ऐतिहासिक, अन्योक्ति मूलक, रुपक मूलक और बिम्ब मूलक आदि आते है। दुसरे वे प्रतीक है जिन्हें नये कवियों ने गढ़ा है। और तीसरे वे प्रतीक है जो भारतीय साहित्य में किसी एक भाव–बोध के प्रतिनिधि है तथा दूसरे देशों के साहित्य में किसी दूसरे भाव–बोध के किन्तु नये कवियों ने दूसरे देश की मान्यता के आधार पर ही उन्हें अपने काव्य में प्रयुक्त किया है–

''लो क्षितिज के पास–
वह उठा तारा, अरे! वह लाल तारा नयन का तारा हमारा
सर्वहारा का सहारा''

में भारतभूषण अग्रवाल ने 'लाल तारा' रूसी क्रांती के रुप में प्रयुक्त किया है जबकी भारत में वह अपशकुन का प्रतीक माना जाता है। अज्ञेय की 'साँप' 'बावरा आहेरी' इसी प्रकार की कविता है। खंडकाव्यों में पैराणिक प्रतीकों का प्रचूर प्रयोग हुआ है। कर्ण, द्रोण, अभिमन्यू, एकलव्य, अश्वत्थामा, सीता, द्रोपदी, आदि।

इ. बिम्बः–

बिम्ब को मुर्त शब्द–चित्र कहते है। कविता के लिए वह महत्वपूर्ण साधन है जो कवि अनुभूति को प्रभावक्षमता के साथ पाठकों तक पहूँचाता है। स्वंयनिर्मित मौलिक बिंम्ब का प्रचूर प्रयोग नयी कविता में हुआ है। बिम्ब कई प्रकार के होते है। मुक्तिबोध ने बिम्बों का समर्थ प्रयोग कविता में किया है। उन्होंने मानव–हृदय की जटिलता को एक प्राकृत गुहा के समान बिंब माना है– ''भूमि की सतहों के बहूत नीचे/अंधियारी एकान्त/प्राकृत गुहा एक।''

कई वैज्ञानिक बिंबों का प्रयोग आधुनिक जीवन को व्यक्त करने के लिए मुक्तिबोध ने किया है–

सितारे आसमानी छोर/पर फैले हुए/अनगिनत दशमलव से/दशमलव–बिंदूओं के सर्वतः/पसरे हुए उलझे गणित मैदान में।

अथवा–

एक एक वस्तु या एक–एक प्राणाग्नि–बम है/ये परमास्त्र है, प्रक्षेपास्त्र है, यम है/शून्याकाश में से होते हुए वे/अरे, अरि पर ही टूट पड़े अनिवार।

प्रक्षेपास्त्र, शेवलेट–डाज, रेडियो एक्टिव रत्न, कैमरा, रेफ्रीजरेटर जैसे बिंब मिलते है जो पूरी तरह आधुनिक जीवन संवेदों को व्यक्त करते है। प्रतीकात्मक बिंबों का तो खज़ाना ही नयी कविता में है। मुक्तिबोध में ब्रह्मराक्षस, अंधी गुफा, भूत आदी। के साथ ही संशय की एक रात, कनुप्रिया, असाध्यवीणा, मोचिराभ, आदि में कई बिंबों को प्रस्तुत किया गया है। मनोवैज्ञानिक तथा यौन बिंबों को भी प्रयुक्त किया गया है। परंतू उत्तरोत्तर नयी कविता ने बिंबों की जगह सपाटबयानी वक्तव्य दिये है। बाद के कवियों ने संभवतः बिंबों को काव्य का साधक मानने के बजाय बाधक ही माना है। केदारनाथ सिंह जैसे कवि जिन्हे बिंबों का कवि कहा जाता है वे भी कह रहे है–

''तुमने जहाँ लिखा है 'प्यार'
वहाँ लिख दो 'सड़क'
फर्क नहीं पड़ता।
मेरे युग का मुहावरा है
फर्क नहीं पड़ता
और भाषा जो मैं बोलना चाहता हूँ
मेरी जिहवा पर नहीं
बल्कि दाँतों के बीच की जगहों में–
सटी हुई है।''

डॉ. नामवर सिंह ने ठीक कहा है– 'वस्तुत: इस बिंब–मोह के टूट ने का कारण सामाजिक और ऐतिहासिक है। छठे दशक के अंत और सप्तवें दशक के आरंभ में सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो उठी कि उसकी चुनौति के सामने बिंब–विधान कविता के लिए अनावश्यक भार प्रतीत होने लगा। जिस प्रकार सन ३६' तक आते–आते स्वंय छायावादी कवियों को भी सुंदर शब्दों और चित्रों से लदी हुई कविता निःसार लगने लगी, उसी प्रकार सन ६०' के आस–पास नई कविता की बिंब–धर्मिता की निरर्थकता का एहसास होने लगा। समस्या परिस्थितियों के सीधे 'साक्षात्कार' की थी, प्रश्न हर चीज को उसके सही नाम से पुकारने का था, क्योकि जैसा कि केदारनाथ सिंह ने कहा है–

''चीजें एक ऐसे दौर से गुजर रही है
कि सामने की मेज को सीधे मेज कहना
उसे वहाँ से उठाकर अज्ञान अपराधियों के बीच रख देना है।''

बाद में ''चित्रमयता को खोए बिना उसे (कविता) को रोजमर्रा की जीवंतता दी'' गयी। 'ताजी कविता' के दौर में लक्ष्मीकांत वर्मा ने 'नंगी' भाषा प्रयोग की आग्रहशीलता रखी, ''उन्होनें लिखा है– बिंबों की यह निरर्थकता ही हमें अब 'नंगे शब्दों' की ओर ले जा रही है– आवरणहीन, सज्जाहीन, संस्कारहीन, और इन सबसे है। '' अधिक ऐसा नंगापन जिसमें आभिजात्य जंगलीपन के ऊपर एक समय–बोध की छाप लगा सके। '' ''कविता में सपाटबयानी का यह आग्रह वस्तुतः गद्य–सुलभ जीवन वाक्य–विन्यास को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास है। '' हिन्दी कविता के इतिहास में लंबे समय से बिंबो, प्रतीको का प्रयोग हुआ परंतू नयी कविता ने उसे भाव 'अमूर्तन' का कारण माना. अवास्तविक, संप्रेषण अयोग्य माना 'वास्तविकता से बचने का एक ढंग' के रुप मे बिंबों की ओर देखा जाने लगा 'कविता को बोलचाल की भाषा से दूर' पाया जाने लगा उसकी 'सहज लय खंड़ित हुई, वाक्य विन्यास की शक्ति को धक्का लगा, भाषा के अंतर्गत क्रियाएँ उपेक्षित हुई, विशेषणों का अनावश्यक भार बढ़ा और काव्य–तथ्य की ताकत कम हुई, इन कमजोरियों को दूर करने के लिए ही कविता में 'सपाटबयानी' ''आयी'' अब कविता की भाषा कृष्णनारायण कक्कड के शब्दों में 'पुराने कवियों' की हो गई। नामवर की दृष्टि से ये पुराने कवि कबीर, सूर, तुलसी जैसे मूलतः बिंब–धर्मेतर'' कवि है। अब नयी कविता भाषा की यह सार्थकता भी मानी जाने लगी है।

ई. लय, तुक और छंदः–

लय, तुक और छंद की अवधारणा छायावाद से हटने लगी है। निराला ने मुक्त छंद की घोषणा की पंत ने भी नयी काव्य भाषा को अपनाया। नयी कविता ने तो छंद को अस्वीकृत ही किया परंतू उसके नये प्रयोग भी हुए है। देवराज ने ठीक कहा है– नयी कविता में छन्द को केवल घोर अस्वीकृति ही मिली हो– यह बात नहीं है, बल्कि वहाँ इस क्षेत्र में विविध प्रयोग भी किए गए है। इस संबंध में पहला प्रयोग हिन्दी के पुराने छंदों को तोड़कर नया मुक्त छंद बनाया गया, जैसे गिरिजाकुमार ने कवित्त व सवैया में तोड़–फोड़ की रामविलास शर्मा ने छनाक्षरी से रुबाई का निर्माण किया दूसरे प्रयोग में विविध देशी–विदेशी भाषाऔ के छंदों को नयी कविता में लाया गया। देशी भाषा में, बंगला, मराठी, संस्कृत और विविध लोक–भाषाओं के छंद समय–समय पर प्रयोग किए गए। विदेशी भाषाओं में अंग्रेजी के 'सॉनेट', 'बैलेड', जपानी का 'हायकू' और चीनी फ्रेंच और अमरीकी कविता के चित्रों को नयी कविता में प्रयोग किया गया। '' छंद का संबंध संगीत से रहा है और संगीत तुक, लय से जुड़ा है। नयी मुक्त छंद कविता 'गीत कविता' के रुप में विकसित हुई है परंतू इन गीतो में केवल भावानुकुलता नहीं जीवन की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व मनोवैज्ञानिक स्थितियों का अंकन है। 'गीत' नयी कविता की महत्वपूर्ण विशेषता मानी जाती है। जो लोकगीत 'लोकधुनों' लोक परंपराओं, लोक संस्कृति' से जुड़ा है।

ई. नयी कविता: लम्बी कविता

पुराने समय महाकाव्य, खण्डकाव्य द्वारा अनुभूत अभिव्यक्ति को व्यक्त करने का अवसर उपलब्ध था किन्तु नयी कविता में 'लघु' कविता में यह असंभव हो गया। परंतू ''आधुनिक जीवन की जटिल विसंगतियों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए परंपरागत प्रबंध सक्षम नहीं था, उसी प्रकार उसे नयी कविता के अन्तर्गत रची जानेवाली उन रचनाओं में भी पूर्ण रुप से नहीं रखा जा सकता था, जो आकार में लघू थी। ''... अनुभूत सत्यों को विशाल भांडार को एक साथ एक ही कविता में अभिव्यक्त करने की न कुलबुलाहट ने लम्बी कविताओं को जन्म दिया। '' लम्बी कविता की परंपरा पर नजर ड़ाले तो नयी कविता समय ही वे अधिक मात्रा में लिखी गयी है। सन १९२३ में पंत की 'परिवर्तन' हिन्दी की प्रथम लंबी कविता मानी जाती है। बाद में प्रसाद की एक कविता 'प्रलय की छाया' जो १९३३ में तथा निराला की एक राम की शक्तिपुजा सन १९३७ लिखी जा चुकी थी किन्तु नयी कविता दौर में सबसे पहले नरेश मेहता की 'समय देवता' सन १९५१ में प्रकाशित हुई। उसके बाद कई कविताएँ सामने आयी है। अज्ञेय की असाध्यवीणा–१९६१, धर्मवीर भारती की 'प्रमथ्यु गाथा'– १९५९, मुक्तिबोध की 'अंधेरे में'–१९६४), बच्चन की 'सिसिफस बरक्स हनुमान'– १९६५, विजयदेव नारायण साही की 'अलविदा'– १९६६, श्रीराम वर्मा की 'शब्दो की शताब्दी'– १९६६–६७, रघुवीर सहाय की' आत्महत्या के विरुध्द'–१९६७, नीलाभ की 'संस्मरणारम्भ'–१९६७, सौमित्र मोहन की 'लुकमान अली'–१९६८भारतभूषण अग्रवाल की 'चीरफाड़'–१९६८, रामदरश मिश्र की 'फिर वही लोग–१९६९, प्रमोद सिन्हा की 'तलघर'–१९७०, धुमिल की 'पटकथा'– १९७२, लीलाधर जगुड़ी की 'नाटक जारी है'–१९७२, रमेश गौड की 'एक मामूली आदमी का बयान' १९७४, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की 'कुआनो नदी'– १९७२, बलदेव वंशी की, 'उपनगर में वापसी– १९७४ केदारनाथ सिंह की 'बाघ– आदी।

लम्बी कविताएँ 'अनुभूति के टकरावपूर्ण विन्यास' के कारण लम्बी हुई है। नाटकीयता उसका अविार्य लक्षण है। नरेद्र मोहन के अनुसार, ''लंबी कविता की रचना तभी संभव है जब सर्जनात्मक तनाव दीर्घकालिक हो तथा विस्तृत फलक पर अपनी क्रियात्मकता सिध्द कर रहा हो। '' उसके लिए जरूरी है कि लंबी कविता में सर्जनात्मक तनाव के विविध रूप, स्तर और धरातल विद्यमान है। '' यही बात मुक्तिबोध आदि की कविता में पायी जाती है। इसलिए मुक्तिबोध ने कहा है 'कविता कभी खत्म नहीं होती' यथार्थ के गतिशील तत्व कविता को लम्बी बनाते है। यही बात मुक्तिबोध ने स्पष्ट की है– यथार्थ के तत्व परस्पर गुंफित होते है, साथ ही पूरा यथार्थ' गतिशील होता है। अभिव्यक्ति का विषय बनकर जो यथार्थ प्रस्तुत होता है, वह भी ऐसा ही गतिशील है और उसके तत्व गुंफित है। यही कारण है कि मैं छोटी कविताए लिख नहीं पाता और जी छोटी होती है वे वस्तुत: छोटी न होकर आधुरी होती है। (मैं अपनी बात कह रहा हूँ) और इस प्रकार की न मालूम कितनी ही कविताएँ मैने अधूरी लिखकर, छोद दी है। उन्हें खत्म करते की कला मुझे नहीं आती, यही मेरी ट्रेजडी है। '' रचनाकारों की इन प्रवृत्ति के कारण लम्बी कविता की परंपरा ही विकसित हो चुकी है। निसंदेह, नयी कविता की यह उपलब्धि ही मानी जायेगी।

९.५ मूल्यांकन:–

नयी कविता संबंधी इस विस्तृत चर्चा के बाद यह कहा जायेगा की उसका वर्ण–विषय क्षेत्र काफी विस्तृत है। आधुनिक मनुष्य की 'ट्रेजडी' से यह जुड़ी रही। इसलिए जीवन के सभी प्रसंगों, अच्छे–बूरे, कुरुप–विरुप, की संपूर्णता उसमें आयी है। व्यंग्य का प्रयोग इसी कारण कविता में प्रखरता के साथ हुआ है। लघु मानव की कल्पना विशेष ने उसे वर्तमान के साथ जोड़ा है। काव्य भाषा के रुप में यह पूर्ववर्ती कविता से विशेष है। छंद के साथ उसके बंधंनों को तोड़कर यह सपाटबयानी, वक्तव्य की भूमी पर पहूँची है। ''नये अर्थ के लिए नवनिर्मित शब्दों का प्रयोग' हुआ है। फिर एक बाद यह कविता जनोन्मुखता की ओर लौट पड़ी है। बिम्ब, प्रतीक, अलंकारीकता के मोह से वह मुक्त हो रही है। केदारनाथ सिंह की कविताएँ उसका प्रमाण है।

फिर भी उसमें विदवानों, के साथ नये कवियों ने ही कुई दोष पाये है। स्वंय मुक्तिबोध ने कहा है, ''नयी कविता में, बहुत बार, ऐसे भाव–विचार प्रकट किये जाते है जो नितान्त प्रतिक्रियावादी है,'' नयी कविता को पश्चिमी विचार ने सिखाया की ''जनता समुह है– वह अंधकार है, अन्यकर–ग्रस्त है, वह जल्दी ही भीड़ बन जाती है। उसका साथ मत दो। तुम सचेत व्यक्तित्वशाली प्राण–केंद्र हो। उसमें अपने–आपको विलीन मत को। अपने अन्तिम निष्कर्ष में यह विचारधारा अत्यन्त प्रक्रियावादी है, वह जन के प्रति घृणा पर आधारित है, और बुध्दिजीवियों को जनता से अलग करके रखने का उपाय है। '' इसलिए वे फिर कहते है– मैं 'जुलूम में शामिल हो जाऊँगा; लेकिन 'भीड़' और 'जुलूम' तो मनुष्य के व्यक्तित्व के परिहार का, अन्तर्व्यक्तित्व के संहार का सूचक है, इसलिए मेरी मुक्ति कहीं भी नहीं है। '' फिर भी समुह 'असाधारण कार्य करता' है बशर्ते उसका एकत्रित होना उद्देश्यपूर्ण हो का विचार भी वह रखते हुए कहते है की मुक्ति अकेले में नहीं होती–

''याद रखो,
कभी अकेले में मुक्ति नहीं मिलती,
यदि वह है तो सबके साथ है।''

इसी कारण नयी कविता 'भीड़', 'समुह' के साथ हो गयी। वह जनताभिमुख हो गयी। प्रारंभ में वह संकेतिकता, प्रतिकात्मकता, बिंबात्मकता के कारण वह जटिल हो गयी। अर्थ ग्रहण असंभाव्य हो गया परंतू उत्तरोत्तर यह प्रवृत्ती कमतर होती गयी। अब उसमें ठेठ भाषा, जनभाषा, सरल भावाभिव्यक्ति हुई है। जिसका प्रयोग कभी नागार्जुन ने किया था अब केदारनाथ सिंह कर रहे है। नागार्जुन की 'अकाल और उसके बाद' तथा केदारनाथ सिंह की 'कोई फर्क नहीं पड़ता' इन कविता अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। अज्ञेय, शमशेर, श्रीकांत वर्मा, धूमिल आदि की कविताएँ उसका प्रमाण है। उन कवियों ने भाषा में चित्रमयता के स्थान पर सपाटता आयी। अशोक वाजपेयी ने इसी बात को ध्यान में रखते हुए कहा की, ''नई कविता बिंब केंद्रित रही है और अक्सर कवियों में बिंब का ऐसा घटाटोप तैयार हुआ कि सातवे दशक तक आते–आते कई कवियों को यह महसुस हुआ कि कविता को बिंब से मुक्त कराके ही उसे जीवंत और प्रासंगिक रखा जा सकता है। उनके सामने बिंब–प्रधान कविता कुछ शक की चीज बन गई और सपाटबयानी की तरफ कई कवि झुके और उसे विश्वासनीय माना जाने लगा।'' इसी क्रम में रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, श्रीकांत वर्मा, तीन कवियों का विशेष रुप से उल्लेख करते हुए वे आगे यह भी जोडते है कि, ''उनमें से हर एक ने सपाटबयानी के मूल्य को पहचाना लेकिन उसे अपनी बुनियादी बिंब–धर्मिता के प्रतिकुल न रखकर उसके साय संयोजित किया और अपने मुहावरों को और उनसे उजागर होनेवाले काव्य–संसार को समृध्द किया, चित्रमयता को खोए बिना उसे रोजमर्रा की जीवंतता दी।'' नयी कविता में आया यह बदलाव भी कविता को फिर एक बार, जनता से दूर हुई 'प्रायोगिक' 'नई' कविता को जनता के बीच लाकर खड़ी करती है।

१.६ उपसंहार :–

नई कविता जनता की और जनता के साथ की कविता है। वह परंपरा से विच्छेद होने के बावजूद परंपरा से मुक्त नही है। इस कविता आंदोलन से हिन्दी साहित्य में मुक्तिबोध, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादूर सिंह, कीर्ति चौधरी, भारतभूषण अग्रवाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, केदारनाथ अग्रवाल, लक्ष्मीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त, मुद्रा राक्षस, नेमिचंद्र जैन, प्रभाकर माचवे, राजकमल चौधरी, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, दुष्यन्तकुमार, धूमिल, कुंवर नारायण, कैलाश वाजपेयी, श्रीराम वर्मा, दुधनाथ सिंह जैसे सशक्त महत्वपूर्ण कवि उभरकर आये। देवराज ने कहा है की 'इस कविता ने ही पहली बार व्यक्ति को व्यक्ति की परंपरा में रखकर देखने का प्रयास किया। भक्तिकाल से लेकर प्रगतिवाद तक व्यक्ति को मंदिर, महल, स्वर्ग, आकाश, और मार्क्स की तथाकथित मार्क्स वादियों द्वारा स्वयं की गई अस्वाभाविक व्याख्याओं के रंगीन पटों में लपेटा जा रहा है। नयी कविता ने ही उसे आम जिन्दगी की अच्छाइयों और बुराइयों के बीच मनोवैज्ञानिक रुप में चित्रित किया है। अतः नयी कविता ने व्यक्ति को परंपरा से काटा नहीं, बल्कि जोड़ा है।'' यह मत सही भी प्रतित होता हो परंतू कबीर

जैसे कवियों ने जनता की बात जनता की भाषा में कही है, वह हिन्दी साहित्य में पहला कवि और उसकी कविता है जिसने जनाभिव्यक्ति' को पूर्ण रुपेन स्विकार किया था। नयी कविता में यह परंपरा फिर विकसित होती है। यह उसकी कटी परंपरा से जुड़ी भावनाएँ है ऐसा कहा जायेगा। 'भक्ति काल' शब्द प्रयोग जब देवराज करते है तो कबीर उसी काल में आते है। और उन्हें यों खारिज करना, अयोग्य होगा, क्योकि शुक्लजी के अनुसार 'ऊँच–नीच और जाति–पॉती के भाव का त्याग और भक्ति के लिए मनुष्य मात्र के समानाधिकार का स्वीकार था। '' कबीर में मनुष्य मात्र के लिए समानाधिकार की भावना ने उन्हें सामाजिक, जनताभिमूख बनाया और उन्हीं के दु:ख, पीड़ा, विषमता को कविता में लाया। मनुष्य पर ईश्वर, धर्म, परंपरा, रुढ़ियों की गुलामी के वर्चस्व को उठाया।

वर्ण–विषय के साथ भाषा भी उसी प्रकार की रही है। 'खिचड़ी' अथार्त साधारण जन की भाषा है। नयी कविता में भी 'भीड़', 'समुह' अभिव्यक्त हुआ है। उस की स्वतंत्रता की रक्षा का प्रश्न खड़ा किया गया है। उसके अन्र्तबाहय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति ने उसे कबीर की परंपरा से जोड़ा ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

९.७ बोध प्रश्न :–

१. नई कविता की प्रवृत्तियों की चर्चा कीजिए।

१०

नवगीत

१०.० इकाई की रूपरेखा

१०.१ उद्‌भव

१०.२ नामकरण

१०.३ विकास

१०.४ प्रवृत्तियाँ

१०.५ बोध प्रश्न

१०.० इकाई का उद्देश्य

क. हिन्दी में गीत की परंपरा का विकास कैसे हुआ यह जानना।

ख. नवगीत यह नाम इसे क्यों दिया गया और इसकी प्रवृत्तियाँ किस प्रकार की है इसका अध्ययन करना।

घ. नवगीत में शहर और गाँव की संवेदना को अभिव्यक्त करते हुए उसके कवि किस प्रकार का अनुभव प्रतीत करता है इसे देखना-समझना।

ड. नवगीत हिन्दी साहित्य की एक सशक्त विधा है जो यहाँ की जमीन से जुड़े रहने का बोध कराती है।

१०.१ उद्‌भव :-

हिन्दी में गीति काव्य की परंपरा आदिकाल से ही रही है। विद्यापति, अमीर खुसरो में इसे देखा जा सकता है। भक्ति काव्य के कवियों ने तो इसे चरम उत्कर्ष पर पहूँचाया खासकर कृष्णभक्त कवियों में सूरदास, नंददास, मीराबाई के पद गेय रहे है। रीतिकाल में नृत्य, संगीत जैसे कलाओं का बहुमुखी विकास हुआ। यहाँ से भारतेन्दु काल तक गीत परंपरा की जडों से पोषित रहे है। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता की प्रवृत्ति ने कविता को गद्य रुप में स्वीकारा गेयता का अभाव इस काल में बना रहा किन्तु प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी ने सफल गीतों का लेखन किया। ये काफी प्रसिध्द भी हुए भावात्मकता, वैयक्तिकता, अनुभूति की रागात्मकता, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता आदि गुणो वे लबालब भरे गीतों ने फिर एक बार उत्कर्ष काल देखा। उसके बाद बच्चन, शिवमंगल सिंह 'सुमन', रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' नरेद्र शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, केदारनाथ मिश्र 'प्रधान', गोपालदास सक्सेना 'नीरज' देवेंद्र शर्मा 'इंद्र' योगेन्द्र दत्त शर्मा, उमाकांत 'मालवीय' वर्तमान में भारतेन्दु मिश्र, धनंजय, कुँवर बेचै पाल असीम, विज्ञान आदियों के गीत मर्म स्पर्शी, एवं सामाजिक सरोकार के साथ आशावादी, मानवता के गायक रहे है।

१०.२ नामकरण :–

सन १९५० के बाद गीत की चेतना में परिवर्तन आया और ''यह माना जाने लगा कि गीतों का स्वर नये जीवन और नयी प्रगति के प्रति आस्था और विश्वास का स्वर रहे है। '' इस नयी चेतना को देखते हुए ही 'नया गीत', 'आज का गीत', 'आधुनिक गीत', 'नये गीत' आदि विभिन्न नामों से उसे चिन्हित किया गया। सन १९७५ में वीरेन्द्र मिश्र ने 'नयी कविता, नये गीत: मूल्यांकन की समस्यायें 'विषय पर इलाहाबाद के साहित्यकार सम्मेलन में अपना आलेख पढा। 'नवगीत' संज्ञा सर्व प्रथम श्री. राजेद्र प्रसाद सिंह ने 'गीतांगिनी' के माध्यम से सन १९५८ में प्रदान कि इन्ही की 'आईना' पत्रिका ने नवगीत को उर्वर भूमी दिलायी। सन ५८ में 'लहर' के संपादक प्रकाश जैन का कवितांक आया। इसी में से गीत के नये तेवर का पता चलता है। संपादक महेन्द्र शंकर की 'वासंती' द्वारा आयोजित 'नये गीत: नये स्वर' की श्रृंखला ने भी नवगीत को गति दी। इसके बाद मात्र स्वतंत्र नवगीतकारों के संकलन तथा समवेत संकलन आये। जिनमें महत्वपूर्ण है, 'गीतांगिनी' के अलावा 'कविता' ६४ (१९६४), गीत–एक (१९६६) गीत–दो (१९६७), सातवें दशक के उभरते नवगीतकार' (१९६७) पाँच जोड बाँसुरी (१९६९), नवगीत दशक–एक (१९८२), नवगीत दशक–दो (१९८३), नवगीत दशक–तीन (१९८४) और यात्रा में साथ–साथ (१९८४) आदि महत्वपूर्ण है।

नवगीत ने उपने उत्स को ग्राम चेतना के साथ बदलते नगर बोध में आयी जीवन की विसंगतियों में पाया। जीवन यथार्थ तथा मखौल बनाती जा रही इन्सानीयतता को स्वर दिया नवगीत ने। '' इस समय नवगीत अपनी पूरी शक्ति एवं साधन से प्राचीन परंपरागत रुढियों एवं मृत रचना–धर्मिता को तोड़कर सामजिक परिस्थिति के विद्रूपमय स्थिति को स्वर देता दिखता है। 'नवगीत' युग की तमाम मनोवृत्तियों को समाविष्ट कर उसे प्रस्तुत करना चाहता है। इसलिए इस समय 'नवगीत' में जितना आक्रोश है, जितना तनाव है, जितनी नपुंसकता है, जितनी दृढ़ता है, जितना क्षोभ है, जितनी पीड़ा है, जितनी उदासी है, उल्लास के लिए जितनी ललक है, मुक्ति के लिए जितनी तीव्र छटपटाहट है, उतना सब कुछ शायद ही कभी गीत में देखा गया हो। यह बदलाव अकारण नहीं है। इसके मुल में अर्ध–सामंती, अर्ध पूँजीवादी–अर्धउपनिवेशवादी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था के संस्कार निहित है जो पूरी क्षमता के साथ कवि समाज को अपने आदर्श की ओर ढकेल रहे है। '' नवगीत अपनी संस्कृति, मानवीय रागात्मकता, लोक संदर्भ से जुड़ी मुलत: आंचलिक प्रवृत्ति है। शहरीकरण के कारण विकसित होती संवेदनाओं से जुड़कर वह विस्तृत हो चुकी है। यह कोई आयातित परंपरा नहीं इसी मिट्टी की उपज है। वस्तुत: 'नवगीत अपनी सृजन प्रक्रिया में सदैव सजग एवं सक्रीय रहा'' है। अनेक विद्वानों ने उसे छायावाद और नयी कविता की गीत परंपरा को जोड़नेवाला सेतू माना है। यह सही भी है। ''छायावादी गीत परंपरा के लिजलिजे, मांसल, मादक, गुदगुदे, कल्पनाश्रित वैयक्तिकता की जमीन को छोड़कर जीवन के खुरदरेपन को स्वर दे रहा था, तो दुसरी ओर नयी कविता के नीरस नागरीकरण और यांत्रिक परिवेश–जिसमें बेगानापन, विघटन, अजनबीपन, घुटन, अनास्था, संत्रास, खीझ, पराजय, कुंठा का चित्रण था।'' ऐसे में नवगीत मात्र इन सारी चिजों को नकार कर, ''मानव के चेतनात्मक स्तर पर प्राकृतिक स्नेहिल आयामों द्वारा ऐसा समन्वय प्रस्तुत कर रहा था जो मस्तिष्क को उद्‌बुद्ध करता पैदा और साथ ही हृदय

को रसाप्लावित भी। '' नवगीत ने छायावाद की रोमानियत का संस्कार तो किया ही नयी कविता को भी अपनी स्नेहित लयान्विति एवं सहज बोधगम्यता से सहारा दिया। नयी कविता के टुटते हुए सामाजिक सरोकार को नवगीत ने अपनी उर्वर एवं सशक्त लोकाभिव्यक्ति के माध्यम से पुन: समाज से जोड़ने का प्रयास किया'' और कविता की दुरुहता की जगह स्नेहिल भाव संवेदन से व्यक्ति मन को झंकृत और झकझोरता रहा है।

१०.३ नवगीत का विकास

नवगीत का आधुनिक विकास तीन कालखंडों में विभाजित कर देखा जा सकता है।

१. प्रथम स्तर (१९५० से १९६० तक)
२. द्वितीय स्तर (१९६० से १९७० तक)
३. तृतीय स्तर (१९७० से अब तक)

प्रथम स्तर स्वतंत्र भारत में 'नवरोमानियतता' से भरा आशावादी और 'यथार्थोन्मुखता' का रहा है। नेहरु की विकास संभावनाओं से प्रभावित नये लेखकों की पीढ़ी का यह दौर, सामाजिक रुढ़ियो, परंपराओं के प्रति आक्रोश, विद्रोह से भरा रहा है। परिणामत: आधुनिकता का नवरोमानियतता का प्रभाव इस कालखंड में लिखे गये नवगीतों में दिखाई देता है।

द्वितीय स्तर बदलती नगरबोध की चेतना से भरा है, जिसमें जीवन में आयी यांत्रिकता, अजनबीपन, विसंगतियाँ, संत्रास, कुंठा के साथ सहज ग्राम्य बोध पाया जाता है। अस्तित्ववाद के प्रभाव का दौर नवगीतों पर भी रहा है।

तृतीय स्तर जीवन यथार्थता, जीवन में बढता सामाजिक-राजनीतिक, अक्रांतता, लोकतंत्र का खोखलापन, परिवर्तन प्रति निराशा, के साथ आपातकाल के आतंक से प्रभावित रहा है। मनुष्य मन आधुनिकता के कारण उभरकर आयी कुण्ठा, संत्रास, अजनबीपन, अनास्था, ऊब, घुटन, पारिवारिक विघटन तेजी से फैला। नई कविता की तरह नवगीत भी अस्तित्ववाद की अनुभूति का वैयक्तिक स्तर पर अनुभव कर रहा था। उसी की अभिव्यक्ति सामाजिक रुप ले चुकी है।

शंभुनाथ सिंह की 'माध्यम मैं', जहाँ दर्द नीला है, रामदरश मिश्र की 'मेरे प्रिय गीत', कुँवर बेचैन की 'भीतर साँकल-बाहर साँकल अनुप अशेष की 'वह मेरे गाँव की हँसी थी, मयंक श्रीवास्तव की 'सहसा हुआ घर', देवेद्र शर्मा इंद्र की 'पथरीले शोर में तथा 'कुहरे की प्रत्यांचा' विरेद्र मिश्र की 'अविराम चल मधुवंती', योगेद्रदत्त शर्मा की 'खुशबुओं के दंश', जहीर कुरेशी की 'एक टुकडा धूप', महेश्वर तिवारी की 'हरसिंगार कोई तो हो', ठाकुरप्रसाद सिंह की 'वंशी और मादल,' उमाकांत मालवीय एक चावल नेह रीधा', बुध्दिनाथ मिश्र की, 'जाल फेक रे मछेरे, श्रीराम सिंह 'शलभ' की 'पॉच जोड बाँसूरी, पाल भसीन की 'खुशबुओं की सौगात' नचिकेता की 'आदमकद खबरे', विद्यासागर वर्मा के 'कोहरे का गाँव, रमेश रंजक की 'हरापन नहीं टुटेगा' आदी नवगीत कारों को गीत एवं गीत संकलन नवगीत के इतिहास को समृध्द करते नजर आते है। इनमें अपार संभावना को देखा जा सकता है। नवगीतों की विविध प्रवृत्तियाँ रही है

किन्तु ग्राम जीवन अर्थात जमीन से जुडी यह विधा सशक्त रही है। इसी में उसका सामर्थ्य रहा है। वह किसी आयातीत विचार भूमी पर खड़ा नहीं है, वरणा अधिकांश कविता, कविता आंदोलन विदेशी वादों, विचारों पर लिखी गयी है। कुँवर बेचैन ने कहा है–

''जिन्होंने खरीदी है
दूर से, विदेशों से
टूटी बैसाखियाँ
वे सब तो कहलाए
बुध्दिमान, तगड़े,
हम पूरे आदमी
अपने ही पाँव खड़े
फिर भी तो घोषित है– लंगड़े।''

(कुँवर बेचैन, पिन बहुत सारे, पृ–४५)

नवगीतकारों की यह घोषणा ही है की हम भारतीय दर्शन, 'हम पूरे आदमी' अर्थात पूर्णतः है और इसी के माध्यम से वे अपनी बात करता जा रहा है। भारतीय जीवनमूल्यों के प्रती आस्था उनमें रही है।

१०.४ नवगीत की प्रवृत्तियाँ :–

नवगीत की प्रतिबध्दता आधुनिकीकरण के दौर में बनते–बिगड़ते मनोभाव चेतना के विविध आयामों से गुजरते हुए विराट अनुभवों की अभिव्यक्ति स्वरुप उभरी, पनपी, बढ़ी है। इनका संबंध अधिकतर सामाजिक सरोकारों से रहा है।

१. सामाजिक यथार्थ:–

नवगीत यथार्थ के प्रती आग्रही रहा है। वस्तुत: 'दैहिक रोमान तथा काल्पनिक आख्यान से मुक्त होकर आधुनिक जीवन के विसंगत पक्षों को अभिव्यक्त करने के पीछे यही यथार्थ–बोध काम कर रहा था। दूसरी तरह से कहे तो यह कि, नवगीत अपनी इसी प्रवृत्ती के चलते 'नवगीत' संज्ञा अर्जित कर सका है। स्पष्ट है कि नवगीत की संपूर्ण सौदर्यमयता इस यथार्थ चित्रण के कारण ही निर्मित हुई तथा नवगीत साहित्य में अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम कर सका। '' वीरेंद्र मिश्र ने इसे ही स्पष्ट किया है –

''दूर होती जा रही है कल्पना
पास आती जा रही है जिंदगी''

(वीरेंद्र मिश्र – गीतम)

इसी तरह नवगीत पुराने भावबोध से निकलकर आधुनिक हो गया और उसने जन जन के साथ अर्थात समाज के साथ अपना रिश्ता कायम किया। इसी जगह वह सामाजिक यथार्थ के प्रति प्रतिबध्द या यों कहें दयाबोध रखता है। वीरेंद्र मिश्र ही आगे कहते है–

''पीर तेरी कर रही गमगीन मुझको
और उससे भी अधिक

तेरे नयन का नीर रानी
और उससे भी अधिक
हर पाँव की जंजीर रानी। ''

(वही)

ठाकुर प्रसाद सिंह इसी प्रकार सामाजिक वर्ण विषमता तथा नारी शोषण को एक गीत में बांधते है–

''मेरे घर के पीछे चन्दन है
लाल चन्दन है,
तुम उपर टोले की
मैं निचले गाँव की
राहें बन जाती हैं रे
कड़ियाँ पाँव की
समझो कितना मेरे प्राणों पर बन्धन है
आ जाना बन्दन है
लाल चन्दन है।''

(ठाकुरप्रसाद सिंह– वंशी और बादल, पृ–२३)

प्राणों पर बन्धन' मन में विषाद भर देता है, करुणा पैदा करता है, तो 'आ जाना बन्दन है' विषमतामुलक व्यवस्था को व्यक्त करता है, नारी शोषण को सामने लाता है। 'लाल' के प्रती स्नेह और 'बन्धन' न मिल पाने का भाव गीत के सौंदर्य को बड़ाता है। 'कड़ियाँ पाँव की' विषम वर्ण व्यवस्था का संकेत करती है।

नवगीतकारों में 'सामाजिक अव्यवस्था' से यथार्थानुभूती का भाव उभरा है। यह अव्यवस्था, मूल्य, संस्कार, मशीनीकरण, शोषणमुलक व्यवस्था, विषमता, आधुनिकता से उपजी मनोवृत्तीयों के परिणामस्वरुप उभरी है। इसी को अभिव्यक्त करते हुए मानवीय पिड़ा को गीतों में बांधा है। अव्यवस्था के खिलाफ़, नवगीत विकास कालखंड के द्वितीय तथा तृतीय चरण में विद्रोह का यह स्वर और भी तीखा है। वह समर्थ मानव को देखता हुआ भी उनके किंकर्तव्यविमूढ़ता से क्षुब्ध्द है। कभी–कभी वह अत्याधिक क्रुध्द हो जाता है–

''खण्डहर मरुस्थल, बीहड़ जंगल से होकर हम
आये जिस ठौर वियाबान है– अँधेरा है,
बंजर, कुंठा, अकाल, त्रास, भुखमरी, चिन्ता
की धरती को काले क्षितिजों ने घेरा है
अभिशापित देश यहाँ
कभी कुछ नहीं होगा
चाहे कितने दधीचि अस्थि–बीज बो जायें।''

(ओम प्रभाकर, पुष्प–रचित, पृ. ८७)

नवगीत की संवेदना के विविध पक्ष है। यथार्थ चित्रण, आधुनिकता, नगरबोध, ग्रामबोध, औद्योगीकरण, मूल्यों का हनन आदि। आज़ादी के प्रती, साठोत्तरी कविता की तरह मोहभंग की स्थिति नवगीतकारों में भी पायी जाती है। ''आज़ादी के पूर्व, सुख के जो सपने लोगों

ने संजोये थे, आज़ादी मिलने पर उनकी पूर्ति तो दूर, नैसिखियों की व्यवस्था ने उन पर नये अंकुश लादे तथा भ्रष्टाचार, राजनीति से होती हुई यह दलन एवं दमन प्रवृत्ति सामान्य जन में प्रविष्ट होने लगी। ऐसे में लोगों का व्यवस्था के प्रती क्षुब्ध होना लाजमी था। '' इसी भाव को देवेद्र शर्मा इन्द्र ने 'पथरीले शोर में' व्यक्त किया है–

''जाने अनजाने में हमने यह भूल की
देखे सुख के सपने छाँव में बबूल की।
झूठे निकले सारे
आश्वासन,
व्यर्थ हुई साधना।
हिला नहीं प्रभूता का
सिंहासन,
निष्फल आराधना।
तट पर हम खड़े खड़े यादें बुनते रहे–
टूटे जलयान के खण्डित मस्तूल की। ''

सामाजिक यथार्थ की भावाभिव्यक्ति नवगीत की महत्वपूर्ण विशेषता रही है। नवगीत वैयक्तिकता से निकलकर समाज, देश की स्थिति का निदर्शक रहा है। यही उसका मूल्यबोध रहा है।

२. ग्राम बोध :–

नवगीतकार प्रायः ग्राम जीवन के निकट रहा है। उसके प्रति अनुरक्त, या कहे 'मोहग्रस्त' रहा हैं। गाँव इनके लिए 'सांस्कृतिक धरोहर' रही है। ''ग्राम्य जीवन का आत्मीयतापूर्ण, पारिवारिक सन्दर्भों आदि को स्मृति के सहारे नवगीत में वह लाता है। जिस पर शहरीकरण के आक्रमण निरन्तर हो रहे है। इसका मूल कारण आर्थिक दबाब है जिसके नगर में पूरे होने के अवसर अधिक है। इसलिए गांव के लोग शहर की तरफ भाग रहे है। नवगीतकार शहरजीवी है पर गाँव की मधुर स्मृति उसके मन में जिन्दा है। वह लोगों को अगाह करता है'' शहर मत आना–

''घर की किल्लत भूख–बिमारी
हँस कर सह जाना
भैया!
शहर नहीं आना।''

(अनूप अशेष, नवगीत दशक–२ पृ–३९)

क्योंकि वह मासुमियत, भोलेपन को उडा ले जाता है। गांव के प्रति अस्था और नगर प्रति अनास्था का भाव नवगीतकारों में अत्याधिक रहा है। माधवेन्द्रप्रसाद ने ठीक कहा है की, ''नवगीतकार जिस सौदर्य का सृजन करता है वह भी शहरीकरण के खोखलेपन तथा ग्राम्य–जीवन के स्मृतिमूलक आत्मपरिवेश से अनुप्रणित है। बोध के स्तर पर नवगीतकार यहाँ पक्षधरता का शिकार हो गया है। एक ओर जहाँ उससे ग्राम्य– जीवन की बदहाली, मूल्यहीनता, आचार भ्रष्टता छूट गयी है वहीं दूसरी तरफ शहरों की अच्छादयों को भी नजर अंदाज कर देता

है। बोध का यह परिवर्तन सौंदर्य का वह दृश्य उपस्थित करता है जिसमें गाँव सम्बधों की मिठास का पर्याय है– मीठापन जो लाया था गाँव से/कुछ दिन शहर रहा/ अब कड़वी ककडी' इतना ही नहीं शहर परिवार बिखराव के कारण बन गये है, उसकी चर्चा भर से दीवारें दरकने लगती है 'दीवारें हिलती जब घर की/चर्चाएँ जन्मती/शहर की। '' बुढ़ापे में माता–पिता अपने बच्चों से बड़ी आशाएँ रखते है किन्तु वे शहर जाकर सबको भूल जाते है। गाँव कैसे हो चुके है इसके अनूप अशेष ने व्यक्त किया है–

''बूढ़े दिन है, गाँव अकेले
लड़के शहर गये
खेतों में कच्चे उजियारे
उनको बोये कौन
थकी पुरानी देह
धूप को बेचे आधे–पौन
नीम तले लेटे सन्नाटे फिर दोपहर–गये।''

(वह मेरे गाँव की हँसी थी–पृ–६०)

गाँव में अब केवल बुढ़े रहे है या जिन्हें शहर जाना आसान नहीं लगता वह। नगरों, महानगरों की आर्थिक, सुविधा, चमक–दमक का आकर्षण, रोजी–रोटी के सवाल को सुलझाने भर का रहा है फिर भी गांव उनको छुटता नहीं। उसके प्रती आत्मीयता, भावूकता अकारण नहीं, सकारण है। शहरी जीवन–मूल्यों से तालमेल बिठाते–बिठाते वह बार–बार गाँव की ओर लौटता है। इसमें वह कभी टुटन, छुटन, त्रासदी, विसंगती, खट्टा–मिठापन पाता है। शिवबहादूर सिंह भदौरिया का एक गीत गाँव के महत्व को रेखांकित करता है–

''गाँव से भागा लेकिन
यहाँ भी नहीं सँवरा,
चलते क्षण नाई जो दिखा गया आरसी
व्यर्थ रही, अक्षत सब
झूठा था ज्योतिषी,
शनि प्रकोप पहले–सा ही
ज्यों का त्यों ठहरा।''

(नवगीत दशक–१ पृ–१०१)

या एक दुसरे गीत में योगेंद्रदत्त शर्मा कहते है–

''बस्तियों में काँच–सा मन
टूट जाना है,
गाँव जब पीछे शहर से
छूट जाता है। ''

(खुशबुओं के देश–पृ–२६)

या मयंक श्रीवास्तव कहते है–

''गाँव नंगा कर दिया है
कारखानों ने

और खुशियाँ छीन कर
रख ली सयानों ने।''

(सहमा हुआ घर–पृ. १७)

इन उदाहरणों में ग्राम–बोध की अनुभूति होती है। नवगीतकारों के लिए, ''गाँव संस्कृति का संरक्षक है। वहाँ आत्मीयता है, संबंधों का निर्वाह है परन्तु इन सबके बावजूद गाँव में (वह) संतुष्ट नहीं है और शहर की तरफ भागता है इसे नवगीतकारों की विसंगति भी कहा जाए या सुविधा परस्ती। यह नवगीत का आधुनिक जीवन के प्रति आग्रह है। वह अपने जीवन में बदलाव चाहता है, अपनी सहभागिता की सही समझ पाना चाहता है। परंतू साथ ही वह अपने मूल्यों में बदलाव का इच्छुक कतई नहीं है, अपनी संस्कति को लेकर वह गर्वित भी है और शहरों की मूल्यहीनता को हकारत की दृष्टि से देखता है।''

३. नगर बोध :–

नवगीत में शहर तमाम नकारात्मक मूल्यों के प्रतीक रुप में उभरकर आया है। सांस्कृतिक ऱ्हास, विघटन, पारिवारिक टूटन, नकलीपन, उदासी, बिखराव, सम्बंधों का खात्मा, उपभोक्ता संस्कृति के जन्म, आर्थिकीकरण, शोषण, यन्त्रणा, ऊब, घुटन, तनाव, अजनबीयत, अनैतिकता, इत्यादि का कारण शहरीकरण को मानते हुए नवगीतकार ने अपने बोध को इसके खिलाफ़ खड़ा कर दिया है और सौन्दर्य के उस नये मानक का शोध किया है जो सिर्फ मानव के उल्लासित तथा मधूर सन्दर्भों से ही निर्मित नहीं होता वरन् जीवन के दुःखात्मक पहलुओं को भी संस्पर्श करता है।'' वस्तुतः नवगीत में शहर जीवन की संवेदनसिक्तता का भरपूर चित्रण आया है। ग्राम की तुलना करते हुए नवगीतकारों ने नगर बोध की अभिव्यक्ति की है। इनकी इन सारी संवेदनाओं को राजेद्र गौतम के शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है– ''ध्वंसक अणु–अस्त्रों के आतंक के साये में, यांत्रिक युग के भयावह तनाव में, भौतिकता के विस्फोट से मानवीय संबंधों की खंडितता के बीच, आदर्शो के टूट–बिखर जाने वाले खोखलेपन के दौरान, अनिश्चय की अंधेरो, सुरंगों से गुजरते हुए, मुखौटाधारी राजनीति के परिहास–नाटक के बीच तथा मूल्यों की भित्ति को भरभराकर गिरते देखते हुए भी जीवन में सौंदर्य की– एक नवीन सौंदर्य की– खोज ही मानवीय विश्वास की उपलब्धि की एक मात्र राह हो सकती थी और यह खोज जिस प्रकार के सौंदर्य तक इस पीढ़ी को ले गयी, उसकी मूल–सरंचना का सौंदर्य की 'कैमिस्ट्री' से भिन्न होना भी अपरिहार्य था, सम्भवत: इसीलिए नवगीतकार ने मशीनी कोलाहल के बीच लयों का संधान किया है, तनावों के बीच संवेगों को अभिव्यक्ति दी है, एक–रस भौतिकता के बीच प्राणवान बिम्बों का सर्जन किया है, बिखराव और टूटन के बीच शिल्प को संश्लिष्टीकृत रुप दिया है।''

शहरी जीवन की आपा–धापी, व्यस्तता के कारण यांत्रिक जीवन जीने के लिए व्यक्ति विवश है, मजबूर है। इसी कारण उनका जीवन रस सुख गया है। मध्यवर्गीय नोकरी पेशा वर्ग के लिए शहर कैसा हो गया है इसे माहेश्वर तिवारी ने अपने गीत हरसिंगार कोई तो हो' में व्यक्त किया है–

''शहर हो गये,
सारे गुलमोहर, अमलतास
भीड़ महानगर हो गये।

सुबहें जगीं,
जली अँगीठियाँ
धुआँ पहनने लगे मकान
चीखों से
भर गई दिशायें
शोर पहन
सुन्न हुए कान
सोय कमरे
उठकर सफर हो गये ।''

शहरवासीयों में बनावटीपन उभरकर आया है । एक प्रकार से वे औपचारिकता का निर्वाह करते जाते है जिससे आपसी रिश्तों में लगाव, या कहे 'रस' के सोते फुटना बंद– सा हो गया है। रमेश रंजक के शब्दों में – 'फिर न रेगिस्तान होते/ देह में ऐसे/ फिर न आते द्वार पर/ मेहमान हो जैसे/ हड्डियों को काटती क्यों/ औपचारिकता '' बात यहाँ तक की नहीं शहर ने ग्राम जीवन की घोर उपेक्षा की है। उसका दोहन किया है ''शहर बुलडोजर की तरह उसे रौंद रहा है । '' ,'' शामें सब सरकारी हो गयी / अपनापन पेट में दबोचकर/ छाती पर से शहर गुजर गया/ जाने कितना निरीह सोचकर।

शहरी व्यवस्था से नवगीतकारों को चिढ़ है । वे उससे परेशान भी है पर उससे दूर भी नहीं रह पाते, उसकी रफ्तार में वे शामील हो जाते है खुद को उसमें जोड़ना चाहते है। पर जब कभी ऊब जाते है निराश हो जाते है तो कहते है – ' अंडे/ प्याज/ मुँग फलियों/ केलों के छिलकों/ व्यक्त निरोधों/ और रद्दी कागज के टुकडों/ सिगरेट के खाली डिब्बों से/ अटी–पटी ये लम्बी सडकें/ ये साक्षी है वैज्ञानिक विकास की । '' (देवेंद्र शर्मा इंद्र, कुहरे की प्रत्यांचा, पृ–२९)

सफेदपोश लोगों का एक चित्र श्रीकृष्ण तिवारी का गीत 'सन्नाटे की झील' में आया है। वस्तुतः '' शहरी जिन्दगी के जिस आचरण ने नवगीतकार को खूब मथा है वह है उसकी मुखौराधारी प्रवृत्ति ऊपर से देखने में सभी शरीफ परंतू वास्तविकता में निहायत गन्दे और क्रूर। '' (पृ–१३९) नवगीतकारों को धोखा इन्ही वर्ग से मिला शायद यही कारण है की इस वर्ग के प्रती उनमें अधिक आक्रोश दिखता है –

''बाहर से हँसते है लोग
अन्दर से रोते है लोग
जाने यह कैसी आबोहवा
जाने यह कैसे लोग,
आँखों में बर्फीली झील,
ओठों पर बारूदी फास,
कानों में जंगल का शोर,
बहरा है मन का आकाश।''

(सन्नाटे की झील– पृ– ५)

खत्म होती मानवीयता और उसपर की आस्था के संकटबोध के दौर से नवगीतकार गुजर रहा है। यह संकट पहचान का है, हमारी सभ्यता, मुल्यों की रक्षा का है। 'आनेवाली पीढ़ी

के सामने का युग कैसा होगा' की चिंता इनमें है। बढ़ते खोखलेपन, समाप्त होती जीवन्तता की तलाश इनके गीतों में है।शांती सुमन का गीत 'ओ प्रतीक्षित' में यही भाव व्यक्त हुआ है–

'' यह शहर पत्थरों का शहर
टूटी हुई सुबह यहाँ
झुकी हुई शाम
जेलों से दफ्तर तक
शापित आराम
गाठों सी गालियों में भरी–भरी बदबू
साफ हवा की जगह पियें सभी जहर
पत्थरों का शहर।
घुटते सम्बधों की
चर्चा बदनाम,
धुएँ के छल्लों–सा
जीना नाकाम
मकड़ी के जालों–सी बिछी हुई उलझनें
सतही शर्तो से सब दबे हुए पहर
पत्थरों का शहर। ''

पृ– ३१

संबंधों की टूटन, संवेदनहीनता, यांत्रिकता, प्रदुषण, गंदगी, निरर्थकता का यथार्थ नवगीतकारों ने प्रस्तुत किया है। संबंधों के टूटने तथा औपचारिकता के कारण शहरी व्यक्ति पत्थर बनता जा रहा है।

शहर नवगीतकारों के लिये ''उपभोक्ता संस्कृति के भोगवादी ढ़ाँचे का नाम है जिसमें आदर्श, मूल्य, नैतिकता सभी कुछ भस्म हो चुके है । इसके अतिरिक्त राजनीतिक षड्यंत्र, सफेदपोश अपराध, नकलीपन, यांत्रिकता सब मिलकर शहर को बदरूप करने के लिये पर्याप्त है और यदि ऐसे में शहर नाटक–घर लगने लगे तो आश्चर्य नहीं – 'मेरा शहर महान नाटक–घर / जैसा लगता है/... कुछ माहिर हैं आग–लगाकर / हाथ सेंकने में / लगे हुए कुछ गरम–गरम / अफवाह फेंकने में/ बोल रहे है खीझ–खीझ कर / अक्षर रहे हुए।''

शहर कई समस्याओं से ग्रस्त होता जा रहा है । साम्प्रदायिक दंगे, राजनीतिक अखाड़े, दाँवपेंच, गंदगी, अजनबीपन, ऊब आदि। इसी का चित्रण नवगीतों में आया है।

४. प्रकृति प्रेम

गाँव प्रकृति का सम्मोहन नवगीतकारों में रहा है। जिस ग्रामीण जीवन से वह जुड़ा है उसी को गीत का विषय न बनाया जाए, ऐसा होता नहीं। गाँव प्रती निष्ठा, सांस्कृतिक निष्ठा, परंपरा बोध के साथ प्रकृति प्रेम कई नवगीतकारों में है। फिर भी प्रकृति को स्वतंत्र विषय बनाकर उसका वर्णन रामदरश मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर, रामनरेश पाठक, शम्भुनाथ सिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह आदियों में पाया जाता है। उनके प्रकृति चित्रण में 'मन के उल्लास, संयोग–वियोग, हर्ष–उन्माद और रोमान्टिकता अधिक मिलती है। '' शम्भुनाथ सिंह का गीत ' माध्यम मैं ' में 'कातिक की धरती' का वर्णन आया है–

'' रोम रोम में छबि है छाँई,
त्रिवली सी है खींची हराई,
सोनजुही सी रूप लुनाई,
अंग अंग से झरती
कातिक की धरती ''

प्रकृती के विभिन्न रूपों का चित्रण इनमें पाया जाता है। आलम्बन, उद्दीपन, अलंकरण, मानवीकरण, प्रतीक आदि। फिर भी इसप्रकार के वर्णन में ''आत्मीयता तथा ग्राम्य परिवेश का समन्वय'' रहा है–

''छौने आकाश के धरती पर झुके–झुके
उज्ज्यानी क्षिप्रा तट , मेघदूत रूके–रूके। ''

अथवा 'लोक–जीवन' का चित्रण प्रकृति चित्रण के साथ–साथ होता रहा है। रमेश रंजक का 'गीत विहग उतरा' में इसे देखा जा सकता है–

''बिखर गई पुरवा की अलकें
सारे घट में
फैल गई एक लहर गर्भ गर्भ
अन्तर में
अकुलाये यादों के फूल ।''

अधिकांश नवगीतों में प्रकृति प्रति प्रेम का वर्णन हुआ है।

५. प्रणयबोध

प्रकृति को माध्यम बनाकर प्रणय का चित्रण छायावाद की खास विशेषता है। निराला की 'जुही की कली' इसका उत्तम उदाहरण है। फिर भी निराला के गीत परंपरा का या कहे इसी प्रवृत्ति का प्रयोग नवगीतकारों ने किया है किन्तू ध्यान रहे इनका चित्रण छायावाद से नितांत भिन्न है। प्रणय चित्रण में नवीनता, ताजगी, उत्फुल्लता, सहजता, स्वाभाविकता की ललक है। ''नवगीत में प्रणय को एक नया बोध मिला जिसमें नारी भोग्या नहीं, सहधार्मिणी है, समस्याओं की मिल–बाँटकर हल करती है। काम करती है, निराश मानव को जीवन की नव–प्रेरणा प्रदान करती है। वह भार नही है, पुरूष पर आश्रित भी नहीं है। सहज सौंदर्य से उत्फुल्ल आदमी की कोमल चेतना की संरक्षिका होने के साथ पारस्पारिक मानव–मूल्यों की संवाहिका है नारी। आस्था,विश्वास, वात्सल्य, करुणा, दया जैसी उदात्त चेतना की अधिष्ठात्री होने के साथ शक्ति का अजस्त्र स्त्रोत भी वह है। नवगीत में जो नारी आती है वह सिर्फ 'देव' मात्र न होकर मानवीय भावनाओं का आधार भी है। देह कंचन की नहीं/वासना भींगी/ तुम भावनाओं का/ मधुर आधार भी तो हो/''(गीत पर्व आया है, राजेद्र गौतम)–'' (पृ.–१४३)

आधुनिकता के दौर में बढ़ते शहरीकरण में प्रणय संबंधों पर संशय खड़े हो गये। उसपर '' आर्थिक दबाव तथा भोगवादी आकर्षण ने आत्मीयता के क्षण को सीमित कर दिया है । '' जहीर कुरेशी की रचना 'एक नदी सागर से मिल कर/गाना भूल गयी' इसी दरार को दर्शाती है क्यों कि 'पत्नी निकली सुबह / शाम को दफ्तर से लौटी/ पति का नाइट शिफ्ट सात दिन में फिर से लौटी। '' (एक टुकडा धूप–पृ–८१) ऐसी परिस्थिति मे प्रणय बांध टूटना स्वाभाविक ही है तब बुध्दिनाथ मिश्र कहते है–

'' ये तुम्हारी कोंपलों–सी नर्म बाँहे
और मेरे गुलमुहर के दिन
आज कुछ अनहोनिया करके रहेंगे
प्यार के ये मनचले पल–छिन ''

(जाल फेंक रे मछेरे, पृ–१२)

नवगीतकारों का प्रणय बोध अपनी अभिव्यक्ति में स्मृतिमुलक है वह आज का सच नहीं है, बल्कि पिछली जिन्दगी के रसयुक्त क्षणों को स्मृति के माध्यम से अपने जहन में उतार कर नवगीतकार सन्तुष्ट हो लेता है क्योंकि आज की परिस्थितियाँ इतनी विषम है कि आत्मीयता का क्षण भी बामुश्किल ही मिल पाता है। '' जहिर कुरेशी, बुद्धिनाथ मिश्र के गीत उसी की अभिव्यक्ति है। इसपर शहरीकरण की यांत्रिकता और निरसता का प्रभाव है। बाजारवादी संस्कृति का भोगवादी दृष्टिकोन रिश्तों में यांत्रिकता लाता है। रिश्तों मे भी उपयोगितावाद लाता है। ऐसे में भावना, संवेदना का कोई महत्व नहीं रह जाता। जहीर कुरेशी कहते है–

''रिश्तों की सडकें
अब जाती नहीं भावना तक
आज आदमी पर होता है
कम्प्यूटर का शक
गाते फिरते है 'रिकार्ड' से
अपने दुखड़े लोग। ''

(नवगीत दशक– ३. पृ– ९३)

नवगीत में फ्रायड़ का देहवादी रूप भी पाया जाता हैं। 'देह' से प्रेम तक पहुँचने की प्रवृत्ति शान्ति सुमन के गीत 'परछाई टुटती' में पाया जाता है– घंटो इस तरह दिखती हुई /अजन्ता याद आती /आँख मुँदे प्रशंसा पिये/उँगलियाँ थिरकाती /अलग–क्षण के अलग ये किस्से/नींद ही खो गई । ''

कभी अनुभूत एकांतिक क्षणों की स्मृति– आवेग प्रस्तुत पंक्तियों में है। 'अजन्ता' की स्मृति हो जाना 'नंगापन' ही है जा रचनाकार के अचेतन में सुरक्षित पड़ा है । क्योंकि यह अनुभूति 'अलग–क्षण.. अलग किस्से' की है । आज उन किस्सों को याद किया जा रहा है। जीवन के उन सुखद क्षण प्रती आकर्षण एक आशावाद ही है तो निराशाबोध की छटपटाहट भी। नवगीतकार का यह नव रोमांस है। दुःख नहीं। योगेद्रदत्त शर्मा ने 'खुशबुओं के दंश' में यही भाव व्यक्त किया है– अब न लौटेगे कभी। उन्माद के वे पल सुहाने!। खो गये वे मेध उन्मन। ध्वस्त–क्षत अमराइयाँ हैं। मौन पेड़ो की शिखा पर डूबती परछाइयॉं हैं। झील थक कर सो गई हैं सो गई उन्मन मुहाने। ''

प्रणय की कल्पनिकता, नवता, नव उन्मादता, आकर्षण, थोथी नैतिकता का विरोध आदि विशेषता नवगीतों की है। नारी को ऊर्जास्विनी बनकर वह उसे भोगना चाहता है उसका ठंड़ापन उसे कचौटता है क्योंकि यह पुरातनता है, उसका विरोध भी वह करता है– कहता है– कब तलक तुम बर्फ सी लेटी रहेगी। रु ब रु हो। आज थोड़ी आँच तो सुलगे। (मधुर कमल, महुआ और महावर– पृ–३१) यह नवगीतकार की अश्लीलता नहीं, आधुनिक विसंगति की देन है कि पत्नी बर्फ सी ठंडी हो लेटी है इसलिए क्योंकि जीवन की समस्याओं ने उसके प्रणय की आग को ठंडा कर दिया है। ''

६. जिजीविषा का नया सौदर्य–बोध

माधवेंद्रप्रसाद ने कहा है '' नवगीत नये सौंदर्य–बोध का काव्य है जिसे शिल्प और कथ्य दोनों स्तरों पर नवता प्राप्त हुई है। जिजीविषा का सौंदर्य भाव–प्रवणता का निदर्शक है... नवगीत में वर्तमान जीवन का विसंगतिबोध है। ऊपर से सब ठीक लग रहा है, लेकिन भीतर गड़बड़ है। शीशे की दीवार की तरह ... नवगीतकार इसे तोड़ना चाहता है क्योंकि मूल्यहीनता का प्रारंभ' जिसकी परिणति निराशा में होती हैं,यही से होता है। '' इसलिये वह कहता है– '' कोई तो हाथों में/पत्थर ले/तोड़े शीशे की दीवार को। (माहेश्वर तिवारी, हरसिंगार कोई तो हो, पृ–७७) यह नवगीतकारों की 'कसमसाहट' या 'विद्रोह' है। जहाँ निराशा भी है तो आशा भी। वह 'टुटा' है, 'परायापन' उसे 'सालता' है परंतु ' मृत–गीत' वह कभी नहीं गाता। वह जहाँ 'न्यूट्रल' हो गया है वहाँ 'कोई फ़र्क नहीं पड़ता' जैसा मुहावरा उसके लिए भी आग हो गया है'' – कन्धे कुली/बोझ शहजादे/ कोई फर्क नहीं,/राजे कभी/कभी महाराजे/कोई फर्क नही/अखबारों की रँगी सुर्खियाँ/बड़बोलों की बात/सूरज सोया गोदाम में/ ठहरी काली रात/झूठी कसमें/झूठे वादे कोई फर्क नहीं'' (डॉ. सुरेश,नवगीत दशक–३ पृ–४७–४८) इस अन्यायपूर्ण स्थिति प्रति वह बेचैन हो उठता है। उसके विरोध में वह 'तन कर खड़ा होना चाहता है। '' अब उसे, ''पार जंगल के नये कुछ सूर्य अब दिखने लगे है। '' यह संभावना ही है जो उसे निराशा के गर्ते से बाहर निकालती है क्योंकि वस्तुतः ''अराजक तंत्र ने लोगों की आत्मीयता, उसकी सहजता, उल्लास, आकांक्षा, उमंग, उत्साह, प्रेरणा, सभी कुछ को संदिग्ध कर दिया हैं। आदमी के पास अपनी समस्याओं से जुझते जीवन को घिसटने के सिवा कुछ नहीं बचा है नवगीतकार ने इन्ही समस्याओं को भोगा है। यही इनका सच्चा एहसास है। '' तभी तो कुमार रवींद्र यह नवगीतकार लिखता है–

''पुष्पोंकी/नयी कथा
सुनते आकाश।
टेसू को साथ लिये
घूमते फलाश
मन में फिर जगा रहे धूप के सवाल।''

(आह्त है वन, पृ–१८)

जिजीविषा के चलते ही वह परिवर्तन की पुकार करता है। प्रगतशिलता ने जनवादि चेतना को जगाया जिसका प्रभाव बाद में प्रयोगवाद. नई कविता, साठोत्तरी कविता में आया परंतू ''नवगीत में यह चेतना पूँजीपति तथा सर्वहरा वर्ग की चेतना के रूप में नहीं आयी, वरना जो सत्ता पर काबिज थे और जिनके हाथ में व्यवस्था थी, भले ही वे जनता के प्रतिनिधि क्यों न हो ,नवगीतकार के लिये शोषक थे। इसके विपरीत पूरी जनता, चाहे वह मध्यमवर्ग हो, ग्राम–शहर के संक्रमित लोग हो, अथवा जीवन की नवता के पक्षधर हो, सभी नवगीत में पीड़ित मानव के रूप में गृहीत हुए। इसमें आर्थिक कारण उतना प्रबल नहीं दिखता है, जितना मूल्यगत त्रास एवं सांस्कृतिक विघटन की प्रक्रिया थी। क्योंकि नवगीत पारम्पारिक मानव मूल्यों एवं सांस्कृतिक धरोहर की चेतना के रूप में उभरा। इसलिए जब इनपर आघात हुआ तो नवगीतकार क्रुध्द हो उठा नचिकेता की यह हडबडाहट 'अंधे अंधियारे का। गला हम दबोच लें (आदमकद खबरें–पृ–२१) इसी क्रोध का परिणाम है। देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' को लगने लगा कि यह 'वंशी' बजाने के दिन

नहीं, संघर्ष के दिन हैं। परिवर्तन की प्रक्रिया को संपन्न करने के दिन है – 'वंशी को गिरवी रख / ले आये शंख' (कुहरे की प्रत्यांचा, पृ–२२) यह 'शंख' युध्द का प्रतीक है। ''लोकतांत्रिक व्यवस्था में पनपे शोषकों के विरुध्द नवगीतकार की यह अगाज है। संघर्ष के लिये वह तैयार है। उनके सामने शत्रू या विपक्ष स्पष्ट नहीं है फिर भी उसके खिलाफ़, उसपर आघात वह करना चाहता है क्योंकि व्यवस्था अमूर्त हुई है। उसके लोग भी। फिर भी वह जन को चेतता है। जनशक्ति द्वारा अव्यवस्था में परिवर्तन लाना नवगीतकार की जिजीविषा ही है। 'परिवर्तन की प्रतिक्षा' अब उससे और नहीं होती इसलिये वह जनता को 'अपने अधिकारों प्रती' सजग करता है। सत्यनारायण लिखते है–

''जुल्म का चक्कर और तवाही कितने दिन
कितने दिन
हम पर तुम पर सर्द सिपाही कितने दिन
कितने दिन ?
बदलेगा अब तो यह आल्बम बदलेगा,
फिर हौवा बदलेगा, आदम बदलेगा
यह गोली, बन्दूक, सिपाही कितने दिन ?
कितने दिन ?''

(तुम ना नहीं कर सकते, पृ–४५)

जिजीविषा ही होती है जो जड़, पुरातन को उखड़ फेंकने का माघा रखती है। बाधाओं को खत्म करती है। इसलिए शंभूनाथ कहते है– ये उगी जंगली झाड़ियाँ काट दें। आँख की चार जलती मशाले लिये। सूर्य की भूमिका है निभाती कहो। '' या कुँवर बेचैन कहते है–

'' आज तक इतिहास में
जो भी पली हो
दासता के वृक्ष की जड़ खोखली हो
लीक मरघट के
मिटानी है हमें वे
आग की लपटें
बुझानी है हमें वे
अस्थियाँ जीवित जहाँ अपनी जली हों
आस्था की
उस कड़ी को तोड़ना है
रुख हमें/उन रास्तों का मोड़ना है
पीढ़िया जिनपर बिना समझे चली हों। ''

(पिन बहुत सारे, पृ–५९)

नवगीतकार की जिजीविषा सभी मनुष्य की चेतना है। जीने के प्रती ललक है। जीवन के प्रती आस्था है। संघर्ष में विश्वास है। यही उनके गीत का सौंदर्य है।

७ नवगीत की वैचारिक प्रतिबध्दता :–

नवगीत वस्तुतः भारतीय लोकजीवन तथा उसके शहरी संक्रमण से निर्मित विसंगति–बोध का काव्य है। एक ओर परंपरा तथा संस्कृति का पालन वह करता है तो दुसरी ओर आधुनिक शहरी संक्रमण और उससे जुड़ी स्मस्याओं की अभिव्यक्ति। नवगीतकारों में ग्रामीण संस्कृती प्रती आत्मीयता, लगाव है तो शहरी जीवन संस्कृती प्रती ऊब, घुटन, यांत्रिकता प्रती, असंतोष है। नवगीतकारों ने किसी वैचारिक प्रतिबध्दता के तहत गीत नहीं लिखे और लिखा भी न जाए क्योंकि जीवन का सौंदर्य उसकी आत्मा में विहित होती है। वैचारिकता उसे सीमित कटघरे में लाकर रखती है। विविध मतवादों के बावजूद भी '' नवगीतकार यह निश्चय नहीं कर पाया कि उसे किस विचार का एकान्तिक अनुसरण करना है। अपनी–अपनी ढपली अपना–अपना राग–और इसीलिए अत्यन्त सशक्त काव्यान्दोलन होते हुए भी, लोकप्रियता के बावजूद नवगीत अपने अंतिम दौर से गुजरता प्रतीत हो रहा है।'' फिर भी उसके विचार प्रतिबध्दता को तीन शीर्षकों में विभाजित कर देखा जा सकता है।

क. सामाजिक विचार

गीतों की व्यापक जनचेतना सामाजिक प्रतिबध्दता से जुड़ी है। समाज में रहते नवगीतकारों ने जो चिंता आकुलाहट, प्रश्नाकुलता, परेशानी, यांत्रिकता, अजनबीपन आदि को पाया उसी की अभिव्यक्ति नवगीत में आयी है। अनेक समकालीन समय–समाज मे 'एक निर्जीवता, किंकर्तव्यविमुढता व्याप्त है'– इसे ही देवेद्र शर्मा ' इन्द्र ने व्यक्त किया है–

''खदबदाते
क्रोध की असहायता में
कसाई के ठिये पर लटके
हमीं जिम्मेदार है
इस व्यवस्था के
शैल से गिर झाड़ पर अटके।''

नवगीतकार बनी व्यवस्था के लिए स्वयं को जिम्मेदार मानते है, यह उनका '' वास्तविक विचार नही वरन् प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति है। '' फिर भी इस व्यवस्था में बदलाव आयेगा का आशावाद उनमें निहित है मूल्यगत परिवर्तन को वे देख रहे है। इसलिये वह पुरानी मूल्य की 'मीनारे' ढ़हता हुआ और नये मूल्यों की 'दीवारे' बढ़ता हुआ देख रहा है– ढ़ह रही परम्परा की/ ऊंची मीनारें/ नये नये मूल्यों की/ उठती दीवारें। '' (महुआ और महावर– पृ– ११२) यही उनकी सामाजिक सोच है। नये मूल्यों में पनपती अनिश्चय की मुद्रा का भाव भी उनमें आया है। जिसके प्रति वे संदिग्ध है, वह उन्हें वास्तविक प्रतीत नहीं हो रही है –

''मेरे घर में खड़ी व्यवस्था
इतनी घटिया है
पता नहीं चलता इसकी
सही दिशा क्या है। '' (सहभा दुआ घर– पृ– ३०)

सामाजिक समस्याओं में नवगीतकार अपनी भूमिका को समझ नहीं पाता यही उसका संकट है। वह सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति करता है। व्यवस्था कैसी होनी

चाहिए, वर्तमान संकट को दूर करने के क्या उपाय है, इस बारे में कोई ठोस मन्तव्य वह स्पष्ट नहीं करता। भविष्य का सामाजिक स्वरूप क्या होगा, इस बारे में भी नवगीतकार का भाव स्पष्ट नहीं है। इसलिए सामाजिक विचार का सौंदर्य भी वह महत्ता नहीं प्राप्त कर पाया है जिसकी उम्मीद हम किसी साहित्यिक विधा से करते है। ''

वस्तुतः नवगीत में विचार नही भाव प्रधान है। इसलिए उनमें वैचारिक प्रतिबध्दता देखने के बजाय भाव सौंदर्य को देखना होगा। नवगीतकार के अनुसार निर्बल–सबल होने का समय आ चुका है वह व्यवस्था में परिवर्तन चाहने लगे है। यह सामाजिक चेतना उनमें जाग उठी है–

''आज जो छोटा है,
निर्बल है,
कल बढ़कर मजबूत होगा,
अपने चौड़े पत्तों से
धूप–थके लोगों को छॉह देगा। ''

(दर्पन के बिंब– पृ– ५७)

यह कहकर नवगीतकार अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता को ही व्यक्त कर रहा है। मनुष्य सभ्यता संकट के दौर से गुजर रही है। शहरी यांत्रिकता, मूल्यों का विघटन, अर्थ लालसा, स्वार्थपरायता आदि का संकट उसपर मंडरा रहा है। युध्द का संकट–बोध भी नवगीतकार को हो चुका है– ''आती है मृत्यु गंध/देशों के पार से'' चारों और फैलती दहशतजदा जिंदगी को उन्होंने व्यक्त किया है।

भारतीय मन कभी भौतिकता में लगाव महसूस नहीं कर पाया। सो नवगीतकार भी नहीं। उन्होनें जीवन की वास्तविकता के बीच प्रेम, सहानुभूति, करुणा, दया'' को अपनी संपत्ति माना है–

''जिसके मन में प्यार वही तो
सबसे बड़ा अमीर है,
माना उसकी मुट्ठी में
दुख– दर्दो की जागीर है
बाँटे प्रीत–बसन सदैव से
मन की फटी–कमीज ने। ''

(पिन बहुत सारे–पृ–८५)

नवगीतकार का मन 'स्व' सीमित नहीं वह समाज से जुड़ा है। प्रेम, स्नेह, करुणा, दया, सहानुभूति के भाव से वह सबसे जुड़ा है। अत: किसी वाद का न होते हुए भी वह सामाजिक हो जाता है।

ख. राजनीतिक विचार :–

आज़ादी के बाद की राजनीति का भानचित्र नवगीतों में आया है। साठोत्तरी कवियों की तरह मात्र आजादी के बाद आये स्वशासन प्रति उनका भी मोहभंग हो चुका है। स्वतंत्र भारत का सुखद भविष्य का सपना टूट चुका है, ''सत्ता पर पूँजीवादी मानसिकता वालों के अधिपत्य

ने शोषण और अत्याचार का जो तांडव किया कि सभी के सपने बिखर कर रह गये। लोकतंत्रीय व्यवस्था में पूरे समाज के प्रतिनिधित्व की आड़ में चुनावी हथकंड़ों को अपना कर जनता के साधनों का मनमाना दुरुपयोग सत्ताधारियों द्वारा किसी तानाशाह शासक की तरह किया जाने लगा। जनता बेचैन हो उठी। जिस आज़ादी को इतनी कठिनाई और त्याग के बाद उसने हासिल किया, वह कुछ एक प्रभावशाली हाथों में कैद हो गयी। भ्रष्टाचार, चरित्र–हत्या, धन द्वारा वोटों की खरीददारी, अनैतिक साधनों के प्रयोग से जनता अपने को ठगा हुआ महसूस करने लगी तथा उसका असंतोष बढ़ता ही गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत–पाक विभाजन और उससे उत्पन्न साम्प्रदायिक विद्वेष, भारत–चीन युध्द, कॉंग्रेस का तानाशाही शासन, जनता पार्टी का गठन, पंजाब समस्या, इंदिरा गांधी की हत्या, असम छात्र आंदोलन, कश्मीर की समस्या, राजीव गांधी की हत्या इत्यादि प्रमुख राजनीतिक घटनाएँ हुई जिससे पूरा देश थर्रा उठा। अत: राजनीति के प्रति नकारात्मक रुख का निर्माण स्वाभाविक ही था। ऐसे में आज़ादी अनैतिक धंधों का माध्यम बन कर सामने आयी और नवगीतकार उसे यदि 'आज़ादी की काली कमली' कहे तो आश्चर्य नहीं। यथाशीघ्र ''स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्थापित 'लोकतंत्र' की परिणति 'तनाव' में होती है। यह तनाव वैयक्तिक, आर्थिक, सामाजिक, और राजनीतिक क्षेत्रों का तनाव है। एक अरसे के बाद अंग्रेजी हुकुमत का खात्मा हुआ और नयी आशा के रुप में कई पीढ़ियों की प्रतीक्षित स्वतंत्रता भारतीय जन को मिली जो सद्य: ही शोषण और उत्पीड़न के शिकंजे में जा फँसी। तमाम कोशीशों के बावजूद आदमी अपनी जरुरतों के लिए मोहताज रहने लगा। ''

राजनेताओं को सत्ता सुंदरी पर कब्जा पाने के लिए लोगों की जरुरत नही बल्की 'भीड़' की आवश्यकता रही वह भी ऐसी भीड़ जो ' गूँगी हो, बहरी हो'–

''भीड़ की जरुरत है–
भीड़ जो अंधी हो
गूँगी हो / बहरी हो /
भीड़–
जो बंधे हुए पानी सी ठहरी हो/
भीड़ –
जो मिट्टी के माधों की मूरत है।''

(सुबह रक्त पलाश की)

नवगीतकार ने राजनीति का सटीक वर्णन किया है। सन ७० के दशक की आपातकालीन राजनीति के विभिन्न पहलुओं को उन्होंने सामने लाया है। ''तानाशाही शासन, जे. पी. आन्दोलन, चुनावी हथकंडे, लोकतंत्र का खोखलापन, शोषण, जन–प्रतिनिधित्व का अपमान इत्यादि विभिन्न मुद्दों पर नवगीतकार ने.... अनुभूति की सघनता के साथ राजनीतिक विचारों की पुष्टता अपना महत्वपूर्ण 'रोल' निभाती है।''

आपातकाल की अलोचना कईयों ने की अनुप अशेष ने भी 'लौट आयेंगे सगुन पक्षी, में कहा है–

''बैठी है बस्ती एडी पर
जूते फटे उतार
दहशत पनप रही कोखों में

कुरसी पर तलवार। ''

(लौट आयेंगे सगुन पक्षी–पृ–२५)

देवेद्र शर्मा 'इंद्र' को जे. पी आंदोलन निरर्थक लगता है। युवा आंदोलन व्यर्थ महसूस होता है। - इसलिए वे कहते है–

''बंद करो गर्जन तर्जन
चुप भी बैठो
कौन सुनेगा, ओ
अब बुढ़े शेर तुम्हें।''

(कुहरे की प्रत्यांचा–पृ–७५)

जनता सरकार बन तो गई परंतू उसके स्थायित्व का सवाल उभरकर आया। यही सवाल कुँवर बेचैन की चिंता का कारण बना–

'यह सर्दियों' की भोर है
कैसे चढेगी सीढियाँ
सब कह रहे है यह सुबह
दिल की बहुत
कमजोर है। ''

(भीतर साँकल–बाहर साँकल–पृ–७२)

ग. दार्शनिक प्रतिबध्दता

नवगीतकार ने राजनीतिक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति भाव रुप में ही की है परंतु भारतीय लोकतंत्र, लोक, मूल्य, आदि के प्रति की चिंता उनमें रही है। एक तरह से देश पर छाया यह दूसरे प्रकार का राजनीतिक संकट ही है।

नवगीत किसी वाद के खुंटे से भले ही न बंधा हो परंतू वह आधुनिकता की क्रोड में पला बढ़ा है, इसलिए आधुनिक विचारधाराओं का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। फिर भी उनकी मूल चिंतन धारा भारतीय मतवाद ही है। हाँ उसके टूटने के आक्रोश में विदेशी विचारधाराओं प्रति प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति नवगीतकार में पायी जाती है।

हिन्दी साहित्य पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव है। जिसने सामान्य वर्ग, मेहनतकश, मजलूम लोगों प्रति आस्था के स्वर प्रकट किये है। उसके बाद मनोविश्लेषणवाद, अस्तित्ववाद प्रमुख है। फ्रायड ने कुंठित काम चेतना को उभारा–तथा उसके 'पशुत्व' को सबसे अधिक महत्व दिया। विकृत काम भावना की आड़ में भारतीय रचनाकारों ने अपनी नितांत निजी अनुभूतियों को व्यापक जन–सरोकार का जामा पहना कर इतना अधिक प्रचारित किया कि पूरा साहित्य उस दुर्गन्ध से बच गया। बाद में आस्तित्ववाद ने... ऊब, घुटन, अनास्था, विसंगति–बोध, पीड़ा, अजनबीपन, आत्मपरायापन, कुंठा, संत्रास, विघटन, अस्वीकृति, उदासी, मृत्यूबोध इत्यादी साहित्यिक अभिव्यक्तियों में इस तरह छा गए कि मानव की जिजीविषा, उसकी मूल आत्मशक्ति संदिग्ध प्रतीत होने लगी। साहित्य के समाज से खारिज हो जाने तथा लोगों द्वारा उसको नकार देने के पीछे इन्हीं प्रवृत्तियों का हाथ रहा है।'' नवगीत की वैचारिक प्रतिबध्दता के बारे में कुँवर बेचैन ने कहा है–

''जिन्होंने खरीदी है
दूर से, विदेशों से
टूटी बैसाखियाँ
वे सब तो कहलाए
बुद्धिमान, तगड़े,
हम पूरे आदमी
अपने ही पाँव खड़े
फिर भी तो घोषित है–लंगड़े।''

(पिन बहुत सारे–पृ–४५)

जिन्होंने विदेशी वादों को ग्रहण करते हुए आधुनिकता को साहित्य में प्रतिष्ठित किया। जिसे नवगीतकार विदेशी विचार कहते हुए स्वंय को मात्र 'हम पूरे आदमी' है यह कहकर भारतीय चिंतन प्रति अपनी प्रतिबद्धता को जाहीर करते है। इसी 'जीवन क्षणभंगुरता' को कुँवर बेचैन में व्यक्त किया है–

''साँसों का तो: इस दुनिया में
आने जाने का कम है
और जिन्दगी भी
ज्ञानी की भाषा में
मोहन भ्रम है।''

(वही–पृ–८८)

अस्तित्ववादी अनुभूतियों को भी नवगीतों में पाया जाता है। जिसे नवगीतकारों ने अभिव्यक्त किया है–

ऊब– 'मन न लगे मेले में
''और अकेले जी ऊबे
वहाँ निहारू अधिक
जहाँ रवि तनिक डूबे
किरन लिए अनगिन''

(नवगीत–दशक–१–पृ–१०३)

अकेलापन– ''ताना जाले सा अकेलापन
कहाँ तक झेले अकेलापन''

(हरसिंगार कोई तो ही–२०)

टूटन– मुझे हर तीसरे दिन
''नीतियों का मुल बुलाता है
शाम कहती है कहो क्या बात है
एक शीशा टूट जाता है।''

(हरापन नहीं टूटेगा–पृ–१९)

बेगानापन– ''कितने बेगाने लगते है
थे अपने ही साये

सपने हमें यहाँ तक लाये।

(नवगीत अर्धशती–पृ–९६)

यांत्रिकता– ''बाबा आदम से गुम हुए सभी
तोड़ते जमीन कुछ तलाशते
रुढ़ हो गयी सारी मुद्राएँ
अर्थ जरा जर जर से काँपते
कितना यांत्रिक आदत सा लगता
डूब रहा सूरज या हो विहान।''

(नवगीत दशक–१–पृ–१०)

अजनबीपन–''कोई हम सफर नहीं है
कोई हम जुबाँ नहीं है
न पता है मंजिलों का
कोई रास्ता नहीं है
जो पकड़ के बाँह मेरी
लिये जा रही कहीं पर
परछाई है किसी की
मेरी संगीनी नहीं है।''

(जहाॅ दर्द नीला है–पृ–५)

संत्रास– ''परकटा/उड़ता कबूतर परकटा
है खिसकती जा रही
नीचे धरा
और अम्बर का नहीं
मिलता सिश
जिन्दगी का सत्य टुकडों में बाँटा।

(सहमा हुआ घर–पृ–२१)

अकेलापन– ''एक जंगल की नदी सा
लाल–पीली रोशनी में
यह भटकता मन किसे सौंपूँ
हर तरफ आकाश सा फैला
अकेलापन कहाँ बाँटूँ।''

(सन्नाटे की झील–पृ–१०)

यह सारे उध्दरण अस्तित्ववाद की विभिन्न अनुभूतियों, संवेदनाओ के है। हमने पहले ही कहा है की नवगीत में विचार प्रमुख नहीं है। उसके प्रति–प्रतिबध्दता उन्हें महत्वपूर्ण नहीं लगती। उनकी प्रतिबध्दता जीवन के प्रति है, समाज के प्रति है। उसी का संवेदन रुप नवगीत में आया है।

८. **शिल्प :–**

नवगीतकार की भाषिक सरंचना ग्राम बोध से जुड़ी है। ठाकुर प्रसाद सिंह का काव्यसंग्रह 'वंशी और मादल' संथाल परगना के लोक जीवन को आधार बनाकर लिया गया है गाँव की सहजता को भाव के स्तर पर ही स्वीकार नहीं किया, वरन् शैल्पिक परिगठन एवं छंदविधान में भी उसका उचित प्रयोग किया। '' उनकी भाषा संवेदनशील, समर्थ शिल्प उपकरणों से सुलज्ञित है। उनकी अनुभूतियाँ लोकजीवन की परंपरा, संस्कृती, का बोध कराती है। भाषा–संस्कृती अपने अडौस–पडौस की लगती है। कई शब्द लोकजीवन के ही प्रयुक्त हुए है। जैसे–उपले पाथना, कसम खाना, लबादे, चौरा, कागा, आस, असर, कोल्हू, ओसार, हिपरा, सुन्नर, बाँझिन, कुलच्छित, भात, भेडियाधसान, गर्दखोर, सिवान, डाभर, आदि ग्राम शब्द प्रयुक्त हुए है।

संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग भी हुआ हैं– स्त्राष्टा, नाराशंसी, ऋत्विक, निमिष, प्रज्ञा, स्वास्तिक, चक्रावर्तित, वैश्वानर, ऋतुमती, पुष्पधन्वा, पद्मगंधा, धूम्रवलयांकित, आदी।

भाषा की सहजता, लोकाधर्मिता, ताजगी आदि ने नवगीत को प्रभावशील बना दिया है। अभिव्यंजना कौशल्य में अप्रस्तुत योजना, मिथकीय संरचना प्रतीकात्मकता, बिम्बात्मकता, अलंकारिकता का प्रयोग किया गया है। रामदरश मिश्र का अप्रस्तुत योजना प्रयोग का एक उदा. देखा जा सकता है–

''अंधी है धूप यहाँ, प्यासा है पानी
चूस रही फूलों को बर्रे रानी
सारे मौसम चुप है किसके डर से। ''

(मेरे प्रिय गीत–पृ ६७)

लोकधुनों पर भी गीत रचनाएँ की गई है। शंभुनाथ सिंह ने पूर्वी उत्तर प्रदेश की कौव्वाली शैली का प्रयोग किया है। तो कुछ नवगीतकार ने अमवा, पछुआँ, कोइलिया, परदेशी, पियवा, टिकोरा, नवनवा, चिरइया, सजनवाँ जैसे क्षेत्रीय शब्द–रुपों का प्रयोग कर गीत लिखे है–

''बौरायी कि अमवा की डार
पिया नहीं आये।
एक तो बैरिन मेरी
सनकी उमरिया
दूजी बसन्ती बयार
पिया नहीं आये। ''

(जाल फेंक दे मछेरे–पृ–५५)

नवगीतकार ने नवगीत को सशक्त रुप दिया। भाव एवं भावनिक सरंचना की दृष्टि से वे महत्वपूर्ण है। अपनी अनुभूति को पचाकर ग्राम एवं नगर संवेदना के परिप्रेक्ष्य में गीत रचना सुंदर बनी है। नगर उन्हें प्रिय है, वहाँ वे बसना, चाहते है परंतू मूल्यहीनता के कारण वह बेचैन हो जाते है। उन्हें लगता है 'शील शरम सब/यहाँ बिकाऊ/बम्बईया बाना। '' अथवा ''लाजो दिल्ली में बस कर/शरमाना भूल गयी है। '' जैसे गीत नगर सभ्यता, संस्कृति, संवेदना को

हमारे सामने लाते है। शहरी जीवन की आधुनिकता–बोध से भरे विसंगती को सहज–प्रभावात्मक रुप में प्रस्तुत किया है। कई नवगीतकार जिनमें प्रमुख है.. शंभुनाथ सिंह, कुँवर बेचैन, देवेंद्र कुमार, 'इंद्र' जहीर कुरैशी, राजेद्र गौतम, लोलार्क दिवेदी, उमाकान्त तिवारी, पाल भसीन, गुलाब सिंह, हरीश निगम, श्रीकृष्ण तिवारी,वीरेन्द्र मिश्र,रमेश रंजक आदी, यह सूची बड़ी लम्बी होगी। नवगीतकार नवगीत का विकास कर रहे है।

१०.५ बोध प्रश्न :–

१. नवगीत का क्रियात्मक परिचय दीजिए।

२. नवगीत की विशेषताओं को अंकित कीजिए।

◆◆◆◆◆◆

११

उपन्यास

११.० इकाई की रूपरेखा
११.१ प्रस्तावना
११.२ हिन्दी उपन्यास का विकास–क्रम
११.३ बोध प्रश्न

११.० ईकाई का उद्देश्य

क. हिन्दी उपन्यास के उद्‌भव एवं विकास को जानना।
ख. हिन्दी उपन्यास की अन्र्तधाराओं का अध्ययन करना।
ग. उपन्यासों में अभिव्यक्त जीवन चित्रण को देखना।
घ. हिन्दी उपन्यास की समय–समय पर उभरती प्रवृत्तियों का परिचय लेना।
ड. हिन्दी का उपन्यास हिन्दी समाज जीवन का अंग है। उसमे जीवन की व्यापकता, लक्ष्य निहित है।
च. देश का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, संस्कृतिक एवं साहित्यिक परिवेश इसमें धडकता है।
ज. इन सभी उद्देश्यों के लिए हिन्दी के उपन्यास यात्रा करना हमे आवश्यक है।

११.३ प्रस्तावना :–

आधुनिक काव्य में उपन्यास का महत्व वैसा ही है जैसा प्राचीन काव्य में महाकाव्य का। किन्तु महाकाव्य का नायक मध्यवर्ग या निम्नमध्यवर्ग का रहा नही किन्तु उपन्यास का रहा है। उपन्यास, कहानी आदी में कथा नायक सामान्य, सर्वहरा के पात्र ही रहे है। यही कारण है की यह विधा जितनी मध्यवर्ग के साथ जुडी है शायद ही अन्य विधा जुडी होगी। देवता, प्रकृति, राजा सामंत के जीवनमूल्यों की जगह सामान्य मनुष्य का संघर्ष पहली बार साहित्य के भीतर उपन्यास द्वारा ही आया ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा। शायद यही कारण है की विश्वस्तर पर भी उपन्यास विधा लोकप्रिय रही है। सर्वाधिक नोबल पुरस्कार उपन्यासकारों को ही मिले है। गद्य विधा के अंतर्गत यह लोकप्रियता के साथ अनन्यसाधारण महत्व प्राप्त कर चुकी है। वस्तुत: औद्यिगीकरण के बाद भारत में आयी उपनिवेशीकरण ने भारत में उपन्यास विधा का विकास किया। यह प्रथम बार बांगला और फिर उसके बाद हिन्दी में विकसित हुई। 'नॉवेल' अंग्रेजी के शब्द का प्रतिरुप 'उपन्यास' हिन्दी में बढा। मराठी के 'कादंबरी' शब्द प्रयोग की सार्थकता 'नॉवेल' से जुडी। हिन्दी में 'उपन्यास' शब्द व्युत्पत्ती और सार्थकता की दृष्टि से प्रयुक्त हुआ है।

उपन्यास शब्द 'उप' समीप तथा 'न्यास' थाती के योग से निर्मित हुआ है। उपन्यास शब्द का मूल अर्थ है– निकट रखी हुई वस्तु। अर्थात हमारी कथा, भाषा, संस्कृती,

प्रकृती को अपनी कहानी आदि को, अपनी जूबानी में व्यक्त करना उपन्यास द्वारा होता है। इसलीए प्रेमचंद ने उसकी परिभाषा देते हुए कहा है की, 'मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है। '' इस दृष्टि से उपन्यास की कथा मानव जीवन से जुड़ी और उसके व्यक्तित्व के रहस्यों को खोलने वाली होती है। वह कल्पनात्मक एवं यथार्थ होती है। जीवन की तरह उसकी घटनाएँ क्रमबध्द होती है।

दि न्यू इंग्लीश डिक्शनरी में इसी बात को पुष्ट किया गया है। उनके अनुसार 'नॉवेल' गद्य में लिखी हुई पर्याप्त आकार की उस कल्पित कथा को कहते है जिसमें जीवन का वास्तविक प्रतिनिधित्व करते हुए पात्रों और कार्य–व्यापार कथानक के अन्तर्गत चित्रित हो। '' बाबू गुलाबराय ने भी उपन्यास के स्वरुप को स्पष्ट करते हुए इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया हैं,'' उपन्यास कार्यकारण शृंखला में बंधा हुआ वह गद्य–कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदिगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक अथवा काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रुप से उद्घाटन किया जाता है। '' उसका मतलब यह है की उपन्यास की कथा वस्तुत: सत्य न होते, हुए भी सत्य प्रतीत होती है। इसीलिए उसे 'फिक्शन' कहा गया है।

भारत में कथा आख्यान की परंपरा बडी प्राचीन है परंतू उपन्यास 'नवीन' या 'नूतनता' के अर्थ में आधुनिक है। इसका उदय युरोप में हुआ। जिसका प्रभाव बांग्ला' से हिन्दी में आया, उन्नीसबी शताब्दी के प्रारंभ में नवजागरण के कालखंड में। सन १८७७ को श्रध्दाराम फिलौरी ने 'भाग्यवती' का लेखन किया परंतू आचार्य रामचंद्र शुक्ल अंग्रेजी ढंग का पहला मौलिक उपन्यास लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' (१८८२) को मानते है। और यही मत स्वीकार्य भी किया जाता है। 'भाग्यवती' के भी पीछे जाकर कुछ विद्वान 'देवरानी–जेठानी की कहानी' (१८७०), वामा शिक्षक (१८७२), को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते है। बच्चन सिंह के अनुसार 'ये स्त्रीजनोजितशिक्षा–ग्रंथ है। इनमें औपन्यासिक तत्वों का आभाव'' है। उपन्यास के विकास क्रम को स्पष्ट करने के लिए मुख्यत: निम्न आधारों को ग्रहण किया जाता है।

१. प्रेमचंद पूर्व युग (१८७७–१९१८)
२. प्रेमचंद युग (१९१८–१९३६)
३. प्रेमचंदोत्तर युग विभिन्न प्रवृत्तियाँ सामाजिक मनोवैज्ञानिक, प्रगतिवाद–प्रयोगशील (१९३६–१९६०)
४. साठोत्तरी उपन्यास
५. समकालीन परिदृश्य (आधुनिकता–बोध) (१९६०–१९८०) (उत्तर– आधुनिकता बोध) (१९८१–२०००)
६. त्रासदी का प्रारंभिक दशक– (२००० से २०१०)

१. प्रेमचंद पूर्व युग (१८७७–१९१८)

प्रेमचंद पूर्व युग को कुछ विद्वानों ने भारतेन्दु युग के नाम से अभिहित किया है। वस्तुत: यह युग भारत में दुसरे नवजागरण का युग है। इस काल के सामाजिक उपन्यास में इसका चित्रण आया है। 'परीक्षागुरु' इसी दृष्टि से पहला सामाजिक

उपन्यास कहा जाएगा। इनमें उपदेश एवं आदर्श की भावना का प्राबल्य अधिक रहा है। इस कालखंड में लिखे गये उपन्यासों को तीन भागों में देखा जा सकता है। एक सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास, दो तिलस्मी–ऐय्यारी और तीन जासुसी उपन्यास।

१. सामाजिक–ऐतिहासिक उपन्यास:–

अंग्रेजी ढंग का हिन्दी का प्रथम मौलिक सामाजिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (१८८२) का लेखन लाला श्रीनिवासदास ने किया। वस्तुत: बांग्ला के समान ही हिन्दी में भी समाज की आलोचना के रुप में उपन्यास का प्रवर्तन हुआ किन्तु बाद में मनोरंजन आदि भाव इसमें बढते गये। फिर भी उपन्यास की मुल प्रवृत्ति मात्र सामाजिक योग, आलोचन की ही रही है। इस श्रेणी के लेखकों में श्रध्दाराम फिलौरी का 'भाग्यवती' लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षा गुरु' बलकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' (१८८६) ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्यामा स्वप्न' (१९८८), राधाकृष्णदास का 'निस्सहाय हिन्दू' (१८९०), पंडित लज्ञाराम शर्मा के 'धूर्त रसिकलाल' (१८८९), 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' (१८९९), 'आदर्श दम्पत्ति' (१९०४) तथा 'बिगडे का सुधार' और 'सती सुखदेवी' (१९०७), 'आदर्श हिन्दू' (१९१४), किशोरीलाल गोस्वामी के 'चपला वा नव्य समाज' (१९०३) 'त्रिवेणी वा सौभाग्यश्रेणी' (१९०७), लीलावती वा आदर्श सत्ती' (१९०१), राजकुमारी (१९०२), पुनर्जन्म वा सौतियादाह (१९०७), माधवी–माधव वा मदनमोहिनी (१९१६), 'अंगठी का नगीना' (१९१८), गंगाप्रसाद गुप्त का 'लक्ष्मीदेवी' (दूसरी बार १९२० में छपा होगा) टीकाराम तिवारी के 'पुष्पकुमारी' (१९८०), रुद्रदत्त शर्मा के 'स्वर्ग में महासभा', श्यामकिशोर वर्मा का 'काशी यात्रा' (१९१६), रामजीदास वैश्य के 'धोखे की टट्टी (१९०७) तथा 'फूल में कांटा (१९००), अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरीऔध' के 'अधखिला फुल (१९०७) तथा 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' या 'देवबाला' (१८९९), कृष्णलाल वर्मा 'चम्पा' (१९१६), मन्नन दिवेदी का 'रामलाल' (१९१७), तथा 'कल्याणी' आदि। महत्वपूर्ण सामाजिक उपन्यास इस काल में लिखे गये है।

'परीक्षा गुरु' के लेखक लाला श्रीनिवासदास का जन्म मथुरा के एक माहेश्वरी वैश्य परिवार में हुआ था। 'परीक्षा गुरु' 'मित्र परीक्षा' ही है, इसमें 'विपदा' को 'परीक्षा' कहा गया है। इसके मुखपृष्ठ पर लिखा है 'अनुभव द्वारा उपदेश मिलने की एक संसारी वार्ता' अर्थात 'अनुभव' ही 'परीक्षा' है, और 'उपदेश' ही 'गुरु' का कर्म है, 'संसारी वार्ता' रचना की जाति है। ''इसके नायक पर विपत्ति आने से होश में आया और मित्र–अमित्र की पहचान करने योग्य बना।

नवजागरण के दोनों पक्षों का चित्रण इन उपन्यासों में हुआ है। एक सनातनी दृष्टिकोन और दूसरा सुधारवादी 'देवरानी जेठानी', 'वामा शिक्षक' आदि में स्त्री सुधार, बाल विवाह विरोध, स्त्रियों का झगडालू स्वभाव, अंधविश्वास, और उपदेश की भरभार आदि इनकी विशेषता है।

गोपाल राय ने ठीक कहा है की 'वामा शिक्षक, देवरानी जेठानी की अनुकृति है, या अधिक उसका पल्लवन। '' 'भाग्यवती' में भी हिन्दू समाज की बुराइयों की आलोचना की गयी है। इसमें लेखक का सुधारवादी दृष्टिकोन रहा है। भारतेन्दु ने 'आपबीती जगबीती ' में

'अभिजात परिवारों की सच्चाई को 'रेखांकित किया है। राधाकृष्ण दास ने 'रहस्यकथा' में विवाहपूर्व प्रेम रहस्य को सामने लाते हुए उन्नीसवी शताब्दी के सामन्त वर्ग के पतनोन्मुख चरित्र, पारिवारिक षडयंत्र तथा प्रेम और विवाह की समस्या का चित्रण किया है। '' इनका दूसरा उपन्यास 'निस्सहाय हिंदू' में 'गोवध निवारण' और 'साम्प्रदायिक सद्‌भाव' का वर्णन किया है। ब्रिटिशों की फूट डालो और राज करों के नीति के समय 'यह एक दुर्लभ बात थी। ' यह हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमें हिन्दू और मुस्लिम समाज का अंकन किया है। बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रहमचारी' के द्वारा धार्मिक पाखंड का चित्रण किया है। ''इस प्रकार का यह हिन्दी में पहला ही उपन्यास है। '' ठाकुर जगन्मोहन सिंह का 'श्यामा स्वप्न' नायक के रात्री में देखे गये चार स्वप्नों को जोडकर लिखी गई प्रेमकथा है। इसके बाद किशोरीलाल गोस्वामी ने जिन उपन्यासों की सृजना की है। वे 'सनातन धर्म में आस्था, खंडन का विरोध और सुधारों की स्वीकृति' को प्रतिपादित करते है। कैलाश प्रकाश ने उनके उपन्यासों की कुछ विशेषताओं को रेखांकित किया है। एक,अधिकतर उपन्यासों की 'कहानी बल्कुल सच्ची है और इसमें वर्णित पात्रों के नाम भी सही–सही है। केवल जिले और गाव के नाम कल्पित है। दो, इनके कथानक अभिजात हिन्दू परिवार से आये है, ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य सपन्न परिवारों की समस्याएँ इनका विषय बनी है। तीन, युवावस्था का चित्रण करते हुए स्त्री–पुरुष संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। चार, नायिकाएँ सुन्दरी तथा गुणवान है, और पुरुष धार्मिक एवं सरल। पाँच, सभी उपन्यास सुखान्त है, दम्पत्ति–जीवन प्रणय से प्रारंभ होकर वात्सल्य तक का चित्रण किया है। छह, उपन्यासों का नामकरण नायिका के नाम पर तथा वर्ण्य गुण के नाम पर सविकल्प है। जैसे– लवंगलता वा आदर्शबाला' लज्जाराम शर्मा का 'बिगडे का सुधार' उपन्यास के मुखपृष्ठ पर छपा है की 'एक दुराचारी पति सती पत्नी के सतीत्व से सदाचारी बन गया। '

''लेखक का दृष्टिकोन सनातनी है, इसलिए उसने नवीन जागृति का स्वागत नहीं किया। '' 'आदर्श हिन्दू' में मात्र 'तीर्थयात्रा' के व्याज से एक ब्राह्मण कुटुम्ब में सनातन धर्म का दिग्दर्शन, हिन्दु मन का नमुना, आजकल की त्रुटियाँ, राज भक्ति का स्वरुप, परमेश्वर की भक्ति का आदर्श और अपने विचारों की बानगी प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। '' तीथयात्रा हिन्दू धर्म का अविभाज्य भाग है। उसमें होनेवाले अत्याचार, श्राध्द, व्याभिचार, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म, शुभ–अशुभ, उच्च–नीचता, अवतारवाद, जन्माना जातिवाद का समर्थन लेखक ने किया है। वैवाहिक प्रश्नों में अन्तर्जातीय विवाह, बाल विवाह, विधवा विवाह के उत्तर अपने ढंग से दिये है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है की लेखक सनातनी का पक्षपाती रहा है।

अत: यह कहा जा सकता है की सुधार की भावना से प्रेरित सामाजिक उपन्यासों का लेखन इस काल में किया गया है। यही उसकी सामान्य प्रवृत्ति भी है।

ऐतिहासिक उपन्यास:–

प्रेमचंद पूर्व काल में लिखे हिन्दी उपन्यासों का मुख्य विषय सामाजिक, घटनात्मक ही रहा है परंतू कुछ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यासों का लेखन भी किया गया है। वस्तुत: भारतेन्दु युग में गदाधरसिंह ने बंकिमचंद्र के प्रसिध्द उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी' का हिन्दी में अनुवाद किया। तब से बंकिमचंद्र का प्रभाव हिन्दू–उपन्यास, विशेषता हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों पर पडने लगा। 'दुर्गेशनन्दिनी' की रचना 'आधुनिक योरोपीय शैली' पर हुई थी।

बंकिम से कुछ शताब्दियों पूर्व सर वाल्टर स्काट (सन १७७१ से १८३२ ई.) ने अंग्रेजी में ऐतिहासिक उपन्यास को एक नया रुप दिया था, स्काट के कुछ समय बाद भारतीय इतिहास को लेकर भी अंग्रेजी में उपन्यास लिखे गये– विलियम होक्ले का 'पाण्डुरंग हरि' (सन १८२६) तथा कर्नल टेलर के 'कन्फेशन आफ ए ठग' (सन १८३९), 'टीपू सुलतान' (१८४०), 'तारा' (सन १८६३), 'राल्फ डारनेल (सन १८६५), तथा 'सीता' (सन १८७३) ''(दि हिस्ट्री आफ दि इंग्लिश नावेल, वैल्यूम–७, पृ–७६–७८) समकालीन भारतीय इतिहास के यह अंग्रेजी उपन्यास है। स्काट ने अतीत की कहानियाँ सुना कर पाठक के मन में यह भावना जगाई कि पुराने समय के लोग भी हमारे ही समान थे और जो कुछ उनके जीवन में घटित हुआ वह ठीक वैसा ही है जो यदि हम उस समय होते तो हमारे जीवन में भी घटित होता'' (एच. जे. सी. ग्रियर्सन: सर वाल्टर स्कौट, पृ–५८) परंतू टेलर ने इतिहास में पाठको की रुची जगाई। बंकिम के उपन्यास स्कोट और टेलर दोनों का मिश्रित रुप लिये हुए है, वे पाठक को अतीत का इतिहास बतला कर वर्तमान के सुधार में प्रयत्नशील है। बंकिम के पात्रों में उन व्यक्तियों को ऐतिहासिक रुप नहीं मिलता 'वे इतने अस्पष्ट है कि यदि घटना अलग करके उनको देखा जाए तो उनमें कोई भी व्यक्तित्व नहीं है। उपन्यास की घटनाएँ केवल घटनाएँ है राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक शक्तियों का स्वाभाविक परिणाम नहीं ''(जे.सी. घोष, बंगाली लिटरेचर, पृ– १५५) बंकिम का राष्ट्रीय आदर्श हिन्दू–राज्य है। जो कुछ बंकिम के विषय में कहा जा सकता है वह किशोरीलाल गोस्वामी के विषय में भी सत्य है। '' हिन्दी के प्रथम मौलिक ऐतिहासिक उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी ने'तारा वा सत्र–कुल–कमलिनी'(१९०२), 'सुल्ताना रजिया बेगम वा रंगमहल में हलाहल'–(सन १९०४), 'हृदयहारिणी वा आदर्शरमणी'(१९०४),'लवंगलता वा आदर्शबाला'(सन १९०४), 'मल्लिकादेवी वा बंग सरोजिनी'(१९०५), 'सोना और सुगंध वा पन्नाबाई'(प्रथम भाग सन–१९०९ में तथा दुसरा भाग–१९११ में), 'गुलबहार वा आदर्श भ्रातृस्नेह'(सन–१९१६), 'लखनऊ की कब्र वा शाहीमहलसरा'(सन–१९१७ में सात भागों में, १५ वर्ष में सात भाग), कनक–कुसुम वा मस्तानी (अर्थात् बाजीराव पेशवा और मस्तानी की कहानी) ''इस उपन्यास में कल्पना कम है, ऐतिहासिकता अधिक'' यह सच्चाई ही उपन्यास के महत्व को अंकित करती है। उपन्यास कला की दृष्टि से 'तारा' प्रतिनिधि है। किशोरीलाल गोस्वामी, उस समय के अन्य सामाजिक नेताओं के समान, देश की अधोगति का कारण खोजते–खोजते मध्ययुग तक पहूँचे और इस्लामी शासन के विकारों को देखकर स्वंय भी आश्चर्यचकित हो गये और पाठक को भी उनसे सावधान करने लगे। यही कारण है कि वे इस्लामी संस्कृति का चित्रण सफलतापूर्वक नहीं कर पाये है। ''(वही, पृ–२०८) गुलबहार, रजिया बेगम आदि उपन्यास मुस्लिम शासन काल से संबंधीत है। अन्य उपन्यासों में भी यही दृष्टी उनकी रही है।

अन्य उपन्यासकारों में महत्वपूर्ण है मथुराप्रसाद शर्मा का 'नूरजहाँ बेगम व जहाँगीर', जयरामदास गुप्त के 'नवाबी परिस्तान वा वाजिदअलीशाह, 'कश्मीर पतन', रोशनआरा, 'रंग में भंग'और 'मायारानी' ब्रजनन्दन सहाय का 'लालचीन' (१९१६) मिश्रबंधुओं के, 'पुष्पमित्र', 'विक्रमादित्य', और 'वीरमणि' (१९२७) गंगाप्रसाद गुप्त के नूरजहाँ (१९०२) वीरपत्नी (१९०३), कुमारसिंह सेनापति (१९०३), हम्मीर (१९०३) आदि प्रमुख है। इस युग के ऐतिहासिक उपन्यासों में उपदेशात्मकता, आदर्शात्मक मनोरंजन की प्रधानता रही है।

घटनात्मक/तिलस्मी, जासूसी, अद्भूत उपन्यास :–

'तिलस्म' शब्द ऑक्सफार्ड डिक्शनरी के अनुसार ग्रीक भाषा का 'टेलेस्मा' शब्द अरबी भाषा में 'तिलस्म' बना, अंग्रेजी में 'टेलिस्मन' है जिसका अर्थ है– ताबीज, तथा जादू के लेख जो जिसके अधिकार में हो उसे लाभ पहुँचाते हो। हिन्दी में उसका अर्थ है इन्द्रजाल, जादू, अलौकिक कारनामें। श्री ब्रजरत्नदास के अनुसार 'आश्चर्यजनक कल्पना जो दिखलाई न पडे'' ऐसे उपन्यास रहस्य एवं रोमांच से भरे होते है जिनमें प्रेमकथानक भी अत्यंत मनोरंजक, कुतुहलजनक, रोचक बन जाते है। हिन्दी में तिलस्मी, ऐय्यारी उपन्यासों के जनक बाबू देवकीनंदन खत्री (१८६१ से १९१३) माने जाते है। इन्होंने 'चन्द्रकांता' (सन १८८८ का लेखन किया। इसकी सफलता को देखकर 'चंद्रकांता संतती' (१८९४–१९०५) के चौबीस भाग लिखे। दिन–दुनी रात चौगुनी की तरह इनकी लोकप्रियता भी बढी कई अहिन्दी भाषीयों ने उन्ही उपन्यासों को पढने हेतू हिन्दी सिख ली। बाद में 'भूतनाथ' (१९०७) का सृजन किया। उन्हीं के पुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने १९१५ से १९३५ के बीच चौदह भाग लिखे। देवकीनंदन खत्री के अन्य उपन्यासों में 'काजर की कोठरी', कुसुम कुमारी', वीरेन्द्रवीर आदि प्रसिध्द है। पाठकों की कौतुहल वृत्ती को जगाकर, उसे उसके जादूई मोह में बांधे रखकर उनका मनोरंजन किया। हिन्दी में रोमान्स की परंपरा चल पडी विचित्र घटनाओं से भरे उपन्यासों का लेखन दौर इस काल में आया। तिलस्म विद्या का प्रयोग भारत में प्राचीन काल से होता आया है। इसी के तहद अनेक लोककथाएँ, विश्वास, परंपराएँ बढी चली आयी। यह रहस्यमयी कथाएँ 'चंद्रकांत' जैसी ही रही है।

ऐयार

तिलस्मी उपन्यास का प्राण ऐयार है। 'चन्द्रकांता' उपन्यास में नायक वीरेन्द्र सिंह को तो 'सिर्फ अपनी ताकत का भरोसा है' परंतू ऐयार तेजसिंह को 'अपनी ताकत और ऐयारी दोनों का' ... ऐयारी एक विद्या (हुनर) है, जिसका मूल सूत्र है धोखा देना... ऐयार लोग माया के उपासक होते है। चंद्रकांता, चंद्रकांता सन्तति के २४ भाग इसी प्रकार के उपन्यास है।

जासुसी उपन्यास :–

तिलस्मी–ऐयारी से अलग किस्म के जासूसी उपन्यास लेकर गोपालराम गहमरी ने हिन्दी में धूम मचा दी। इनके अनुदीत, प्रकाशित, मौलिक तथा जासुसी कथापुस्तकों की संख्या २०० है। लगभग १०० मौलिक मानी जाती है। 'अदभूत लाश' (सन १८९६), गुप्तचर (१८९९), बेकसुर की फाँसी (सन–१९००), सरकारी लाश (१९००), खुनी कोण'. बेगुनाह का खून', 'जमुना की भूल', भयंकर चोरी, 'जादूगरनी मनोला' (सन १९०९), डाके पर डाका (सन–१९१०) 'जासूस चक्कर में' (सन–१९००) 'खुनी का भेद' (सन–१९१०), खूनी की खोज (सन– १९१०), इन्द्रजालिक जासूस (सन– १९१०) चाईन पर लाश (१९०७), किले में खून (१९१०), भोजपूर की ठगी (सन– १९११), गुप्त भेद (सन १९१३), जासूस की ऐयारी (सन–१९१४) आदि प्रसिध्द है। वस्तुत: १९ शती में अंग्रेजी में सर आर्थर कानन डायल द्वारा (सन–१८५९–१९३०) के समय में जासूसी उपन्यास काफी लोकप्रियता हासिल कर चुके थे। उसका प्रभाव बंगला और उससे हिन्दी में यह परंपरा विकसित हुई। बंगला उपन्यास

'हीरे का मोल' अनुवाद रुप में प्रथम प्रकाशित किया। पाठकों ने उसे सराहा फिर बाद में इसी प्रकार के उपन्यासों द्वारा पाठकों का विशूध्द मनोरंजन कार्य गहभरी ने किया है।

किशोरीलाल गोस्वामी ने भी 'जिन्दे की लाश', 'तिलस्मी शीशमहल', लीलावती, 'याकूती तख्ती' उल्लेखनिय है। गहमरी की परंपरा में रामप्रसाद लाल, जयरामदास गुप्त, रामलाल वर्मा, आदि आते है। रामप्रसाद लाल का 'हम्माद का मूर्दा' (सन १९०३) 'हसीना उर्फ सलीमा' (१९०३ से १९१५ में चार भागों में), जयरामदास गुप्त के 'कालाचंद या सौतेली माँ' तथा 'लंगडा खूनी', रामलाल वर्मा के 'चालक चोर', 'घटनाचक्र', 'जासूस के घर खून', 'जासूसी कुत्ता', 'अस्सी हजार की चोरी आदि' तीन दर्जन उपन्यास लिखे है।

अद्भूत उपन्यास :–

इस वर्ग के उपन्यासों पर अप्रत्यक्ष प्रभाव रेनाल्ड की प्रसिध्द रचना 'मिस्ट्रीज आफ दि कोर्ट आफ लंदन'अथवा 'लंदन रहस्य' का पडा था। हिन्दी में इसके १६ भाग छपे। यह उपन्यास आश्चर्य का खजाना, विचित्रता का भांडार, घटना का समुद्र, दिलचस्वी का पहाड, खूबसूरती का अखाडा,प्रेम का ननून–कानन, हंसी–मजाक का फव्वारा, सीन–सीनरी का कोहेकाफ और दगा फरेब, जाल–जुआ, चोर्री–खून खराबी, चोरी डकौती, तथा अत्याचार–अविचार का बायस्कोप है। '' ऐसे उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी का 'खूनी औरत का सात खून'(सन–१९१६), निहालचंद वर्मा का 'प्रेम का फल अथवा मिस जौहरा'(सन १९१३), पंड़ित विठ्ठलदास नागर का 'किस्मत का खेल', प्रेमविलास शर्मा का' प्रेममाधुरी वा आनंकांतद'(सन १९१५) आदि उल्लेखनीय है। अन्य उपन्यासों में अडसनिवासी सूरजभानका वेश्य 'कटा हुआ सिर' रामलाल वर्मा के 'अलबेला रागिया' और वी.ए.की बर्बादी', दुर्गाप्रसाद खत्री के 'रक्त मंडल','प्रतिशोध','लालपंजा' प्रसिध्द है। दुर्गाप्रसाद खत्री के इन उपन्यासों के संबंध में कहा जाता है की, '' ये राष्ट्रीय भावना से हिंसापूर्ण क्रांति का वर्णन करते है। '' क्रांतिकारियों के लिये प्रेरणा देते रहे है।

इस काल में १८९८ में कोई अज्ञात सी 'अबला' ने' सुहासिनी लिखा और प्रकाशित किया। उसके बाद प्रियवंदा देवी ने 'लक्ष्मी'(१९०८), कुँती देवी ने,पार्वती(१९०९) यशोदा देवी ने'सच्चा पतिप्रेम'(१९११), हेमंत कुमारी चौधरी ने 'आदर्श माता'(१९१२), ब्रह्मकुमारी भगवान देवी दुबे ने 'सौदर्य कुमारी'(१९१४) श्रीमती कुमुदबाला देवी ने 'सदाचरणी'(१९१७) आदि उपन्यासों द्वारा स्त्री आदर्शो, मूल्यों, निष्ठाओं, शिष्टाचार संबंधी स्त्री–पुरुष उपदेश पर यह उपन्यासों का लेखन किया है। यह स्त्री लेखिकाओं का प्रारंभ है।

प्रेमचंद युगीन हिन्दी उपन्यास :–

३१ जुलाई १८८० को डाक मुंशी अजायब लाल को एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ जिसे कथा सम्राट प्रेमचंद के नाम से जानते है। बाप ने नाम रखा धनपतराय और चाचा ने नवाबराय परंतू उनकी किस्मत में न धनपति होना संभव हुआ न नवाब। उम्र के सातवे वर्ष में माँ चल बसी पहली पत्नी से बनी नहीं। फिर उस जमाने में एक क्रांतीकारी कदम उठाने हुए बाल विधवा शिवरानी देवी से दुसरी शादी की। ट्यूशन करके, किताबे बेचने इन्ट्रेस पास किया, फिर स्कुल मास्टर हो गये। उनकी आरंभिक शिक्षा फारसी में हुई और साहित्यिक संस्कार उर्दू का मिला।

१९०१ में साहित्य जीवन की शुरुवात करते हुए पहले उर्दू में फिर हिन्दी में लिख चुके है। १९०८ में पाँच कहानियों का संग्रह 'सोजेवतन' प्रकाशित हुआ। जो ब्रिटिश कलेक्टर द्वारा 'राजद्रोह' के अभियोग में जलाया गया। उर्दू में उन्होंने कई उपन्यास लिखे है 'असहारे मआविद उर्फ देवस्थान रहस्य' (१९०३-०५), 'हमखुर्मा व हमसवाब' (१९०६), 'किसना' (१९०८), 'जलव ए ईसार' (१९१२) आदि। ''पहला उपन्यास उन्होंने धनपतराय के नाम से, दूसरा नवाब राय के नाम से और अन्तिम 'प्रेमचन्द' के नाम से लिखा था। ... हमखुर्मा व हमसवाब का उन्होंने प्रेमा अर्थात दो सखियों का विवाह (१९०७) में, जलव ए ईसार का वरदान (१९२१) में, प्रेमचंद को हिन्दी में प्रतिष्ठित करनेवाला पहला उपन्यास सेवासदन (१९१८) में, जो उर्दू में ही, 'बाजारे हुस्न' शीर्षक से लिखा गया था, पर उसका उर्दू रूप हिन्दी रूपांतरण के बाद प्रकाशित हुआ। इसी आधारपर 'सेवासदन' को प्रेमचंद का पहला हिन्दी उपन्यास माना जाता है।'' यही से नये युग का प्रारंभ हो जाता है। बाद में 'प्रेमाश्रम' (१९२२) तथा 'रंगभूमि' भी क्रमश: नाकाम/नेकनाम/गोशए-आफियत और चौगाने हस्ती के नाम से उर्दू में ही लिखे गये थे। १९२६ में पहला हिन्दी में प्रकाशित 'काथाकल्प' आया, फिर 'निर्मला' (१९२७) 'गबन' (१९३१), 'कर्मभूमि' (१९३३) और दुनिया का महान ट्रेजेडिक भारतीय जीवन तथा सामंती पूंजीवादी काल के लेकर लिखा गया 'गोदान' (१९३५) में आया। आज तक उनकी तीन सौ कहानियाँ, बारह उपन्यास, तीन नाटक, दो सौ से ऊपर लेख और लगभग एक दर्जन अनुवाद प्रकाशित हुए है। अपने लेखन के संदर्भ में उन्होंने पाठकों को अगाह किया था, ''पहाडों की सैर के शैकीन सज्जनों को इस सपाट कहानी में आकर्षण की कोई चीज न मिलेगी'' यह साधरणता ही उनकी खासीयत है।

हिन्दी में पहली बार उपन्यास को मनोरंजन, रहस्यकथा की दुनिया से निकालकर सामाजिक यथार्थ की दुनिया में प्रतिष्ठित किया। समाज एवं व्यक्ति जींदगी के विभिन्न पहलुओं को सामने लाया। 'सेवासदन' में वेश्या समस्या, स्त्री समस्या, हिंदू-मुस्लिम संबंध, विवाह समस्या पर प्रकाश डाला है। 'निर्मला' में दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, और उससे होनेवाला पारिवारिक विघटन, तो 'गबन' में स्त्री-आभूषण लालसा तथा मध्यवर्गीय कुंठा, प्रतिज्ञा में विधवा विवाह, कर्मभूमि में' दलित समस्या, रंगभूमि में राजनीतिक एवं औपनिवेशीकता की समस्या', और गोदान में भारतीय किसान तथा देशोन्नती का भाव प्रस्तुत हुआ है। प्रेमचंद के सामने कई समस्याएँ थी, देश की पराधीनता, स्त्री उध्दार, आजादी, देश का शोषण, औपनिवेशीक शासन, पूंजीवाद, सामंती, महाजनी की पनपती सभ्यता, अंतरर्जातिय-धर्मिय समस्या, साम्प्रदायिकता, दलित, किसान आदि। यह व्यापक पृष्ठभूमि है जिनपर उन्होंने लेखन किया है।

प्रेमचंद के संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद दिवेदी ने कहा है- ''प्रेमचंद शताब्दियों से पददलित, अपमानित और निष्चेषित कृषकों की आवाज थे; पर्दे में कैद, पद-पद पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबर्दस्त वकील थे; गरीबों और बेकसों के महत्व के प्रचारक थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दु:ख-सुख और सूझ-बूझ को जानना चाहते है तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नही मिल सकता। झोपडियों से लेकर महलों तक, खोमचे वालों से लेकर बैंको तक गाँव से लेकर विधानसभाओं तक, आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता। आप बेखटके प्रेमचंद का हाथ पकड़कर मेड़ों पर गाते हुए किसान को,

अन्त:पुर में मान किए प्रियतमा को, कोठे पर बैठी वारवनिता को, रोटियों के लिए ललकते हुए भिखमँगों को, कूट परामर्श में लीन गोचन्दों को, ढोंगी पंडितों को, फरेबी पटवारी को, नीचाशय अमीर को देख सकते है और निश्चिन्त होकर विश्वास कर सकते है कि जो कुछ आपने देखा है वह गलत नहीं है। उससे अधिक सच्चाई से दिखा सकने वाले परिदर्शक को अभी हिन्दी–उर्दू की दुनिया नहीं जानती परंतू सर्वत्र ही आप एक बात लक्ष्य करेगें, जो संस्कृतियों और सम्पदाओं से लद नहीं गए है, जो अशिक्षित और निर्धन हैं, जो गंवार और जाहिल हैं, वे उन लोगों की अपेक्षा आत्मबल रखते है और अधिक न्याय के प्रति सम्मान दिखाते हैं जो शिक्षित हैं, सुसंस्कृत हैं, जो संपन्न हैं, जो चतुर हैं, जो दुनियादार हैं, जो शहरी हैं। यही प्रेमचंद का अपना जीवन–दर्शन है। ''

'रंगभूमि' और 'गोदान' उनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इन दोनों उपन्यासों में दलित स्त्री एवं किसान प्रति स्वतंत्रता की माँग वे करते है। डॉ. नामवर सिंह ने इन उपन्यासों के संदर्भ में कहा है, ''प्रेमचंद का 'रंगभूमि वस्तुत: साम्राज्यवाद और सामंतवाद के गठबन्धन का सशक्त विरोध है। इस विरोध का नायक है– 'सूरदास', एक अंधा, भिखारी, जाति का चमार जिसमें और चाहे जितने दुर्गुण हो, लेकिन एक गुण ऐसा है जिसमें सारे दुर्गुण छिप जाते है और वह है: ''अन्याय देखकर उससे न रहा जाता था, अनीति उसके लिए असहाय थी। ... 'सुरदास' भारतीय साहित्य में एक नया चरित्र है, अविस्मरणीय और अमर ''तथा'' प्रेमचंद का परवर्ती साहित्य इस दौर के ट्रैजिक यथार्थ का मार्मिक दस्तावेज है। 'गोदान' जो उनकी मृत्यु से कुछ ही समय पहले प्रकाशित हुआ, प्रेमचंद की इन कृतियों में अन्यतम है। यहाँ न 'रंगभूमि' का हिरोइक उत्साह है, न प्रेमाश्रम का यूटोपिया। यथार्थ यहाँ अपनी पूरी भयावहता के साथ नंगा खडा है। यहाँ आने पर प्रेमचंद को अहसास होता है दुश्मन कहीं बाहर नहीं, बल्कि घर के अंदर ही है। 'गोदान' में ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर्दे के पीछे है– परदे के सामने है मिल मालिक, जमींदार, महाजन, कारिन्दा, पटवारी, पुरोहित और अपनी ही बिरादरी। ये सभी एक ओर है तो दूसरी ओर है पॉच बीघे का काश्तकार–होरी। ... 'गोदान' के होरी जैसा ट्रैजिक हीरो भारतीय साहित्य में दूसरा नहीं है। यदि 'रंगभूमि' का सूरदास अपनी मृत्यू में भी अमर है, पराजय में भी अजेय है, तो होरी की मृत्यू इस जीवन के लिए एक चुनौति है। ''

प्रेमचंद का हिन्दी में आना एक क्रांतीकारी घटना रही सामाजिक एवं साहित्यिक दृष्टि से। सामाजिक दृष्टि से वे कबीर के संग खडे रहे तो साहित्यिक दृष्टि से तिलस्म–ऐय्यार, जासुस तथा अदभूत जादुई दौर खत्म हुआ। प्रेमचंद के समकालीन उपन्यासकारों में, जी. पी. श्रीवास्तव, जगदीश झा, विमल, मदारीलाल गुप्त, चंडी प्रसाद हृदयेश, बेचेन शर्मा 'उग्र', गिरिजादत्त शुक्ल, देवनारायण दिवेदी, प्रफुलचन्द्र ओझा 'मुक्त', शिवपुजन सहाय, परिपूर्णानंद वर्मा, ऋषभचरण जैन, विश्वनाथसिंह शर्मा, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' आदि।

सन १९३६ में 'प्रलेस' की स्थापना हुई और उसके कुछ समय बाद इसी वर्ष प्रेमचंद का ८ अक्टुबर १९३६ निधन हुआ। उपन्यास की प्रवृत्ति में बदलाव आया। इस काल के लेखक इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जगदीश झा 'विमल' ने 'निर्धन कन्या' (१९२०), 'खरा सोना' (१९२१), 'आदर्श दम्पती' (१९२१), 'जीवन ज्योति' (१९२२), 'लीलावती' (१९२४), 'आशा पर पानी' (१९२५), 'रमणी रहस्य' (१९२६), 'केसर' (१९३६) आदि। उपन्यास

सामाजिक बुरीतियों, अंग्रेजी शिक्षा के कुप्रभाव से ग्रस्त युवाओं, जमीनदारों द्वारा किसानों का शोषण, भ्रष्ट अधिकारी जमाना के भ्रष्टाचार, पारिवारिक समस्याओं का समकालीन यथार्थ इनकी साहित्य कृतियों में आया है।

जी. पी. श्रीवास्तव के 'महाशय भडामसिंह शर्मा' (१९१९), 'लतखोरी लाल' (१९३१), 'विलायती उल्लू' (१९३२), 'स्वामी चौखटानंद' (१९३८) अदि हास्य–व्यंग्य रचनाएँ है। 'प्राणनाथ' (१९२५), 'गंगाजमुनी' (१९२७) 'दिल की आग उर्फ दिलजले की आह' (१९३२) आदि में, नि:स्वार्थ प्रेम, दहेज प्रथा, विवाह तथा श्राध्द में होनेवाला अपव्यय, हिन्दू–मुस्लिम एकता, ढोगी महात्माओं का पाखंड का वर्णन किया है।

मदारीलाल गुप्त ने 'गौरीशंकर' (१९२३), 'सखाराम' (१९२४) 'मानिक मन्दिर' (१९२६) तथा चंडीप्रसाद हृदयेश ने 'मनोरमा' (१९२४) तथा 'मंगल प्रभात' (१९२५) लिखे है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'चंद हसीनों के खतूत' (१९२७), 'दिल्ली का दलाल' (१९२७), 'बुधुआ की बेटी' (१९२८), 'शराबी' (१९३०), 'सरकार तुम्हारी आँखों में' (१९३७), 'जी. जी. जी' (१९३९) में तथा 'फागुन के दिन चोर' (१९६०) आदि उपन्यास लिखे। इनके साहित्य को घासलेटि साहित्य कहा गया जो सामाजिक क्रांतिकारीता का परिचय देता है। 'चंद हसीनों के खतुत' में हिन्दू–मुस्लिम युवक–युवती का प्रेम विवाह तथा साम्प्रदायिक सद्भाव का चित्रण किया है। 'दिल्ली का दलाल' में छोटि लडकियों तथा युवतियों का क्रय–विक्रय करनेवाली संस्थाओं को बेनकाब कर दिया है। 'बुधुआ की बेटी' में अछूतोध्दार अर्थात भंगियों का नारकीय जीवन यथार्थ प्रस्तुत किया है। 'शराबी' में वेश्याओं और शराबघरों का नग्न यथार्थ अंकन किया गया है। 'सरकार तुम्हारी आँखों में' में सामन्ती जीवन की विलासप्रियता, ऐयाशी, प्रजा की दयनीयता, निर्धनता, विलासी राजा का अपव्यय, देशी राजाओं की शासन सम्बधी अव्यवस्था, प्रजा–पीडन का चित्रण है। 'जी जी जी' में हिन्दु परिवार और समाज में स्त्री अत्याचार की दासता उभरकर आयी है।

गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरिश' ने सन्देह (१९२५), प्रेम की पीडा (१९३०), अरुणोदय (१९३०), पाप की पहेली (१९३१), बाबू साहब (१९३२), प्रोफेसर (१९४६) आदि उपन्यासों में समसामयिक समस्याओं का अंकन किया है।

प्रफुलचन्द्र ओझा ने 'सन्यासिनी (१९२६), पतझड (१९३०), पाप और पुण्य (१९३०), जेलयात्रा (१९३१), तलाक (१९३२) आदि उपन्यास लिखे है।

शिवपूजन सहाय ने 'देहाती दुनिया (१९२६), परिपूर्णानन्द वर्मा ने प्रेम का मूल्य (१९२७), मेरी आह (१९३२) आदि। ऋषभचरण जैन ने पैसे का साथी (१९२८), दिल्ली का व्याभिचार (१९२८), वेश्यापूत्र (१९२९), मास्टर साहब (१९२९), सत्याग्रह (१९३०), रहस्यमयी (१९३१), दिल्ली का कलंक (१९३६) में विभिन्न समस्याओं को रखा है। जैसें विधवा विवाह, अन्तरजातीय विवाह, युवक–युवतियों के विवाह पूर्व प्रेम, हिन्दू समाज में व्यास्त कुरितियाँ, महानगर में फैले भ्रष्टाचार, वेश्या जीवन का चित्रण, वेश्यासंबंधी फैलनेवाले भ्रम, व्याभिचार, अपराध का वर्णन आदि प्रमुख है।

विश्वनाथसिंह शर्मा ने कसौटी (१९२९), वेदना (१९३०) त्यागी युवक (१९३३) तथा विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने 'माँ' (१९२९) तथा भिखारिणी, संघर्ष (१९४५) में प्रकाशित हुआ।

दो छायावादी कवियों ने सामाजिक उपन्यासों का लेखन किया उनमें एक है प्रसाद– का (१९३०), 'तितली' (१९३६) तथा एक अपूर्ण उपन्यास 'इरावती' (१९३६) लिखा है। इरावती में तीर्थस्थानों पर धर्म के नाम पर चलनेवाले व्याभीचार का चित्रण है तो तितली में हिन्दू धर्म श्रेष्ठता का अंतराष्ट्रींय संदर्भ में परीक्षण किया गया है। तो दुसरे है निराला इन्होंने 'अप्सरा' (१९३१), 'अलका' (१९३३), 'निरुपमा' (१९३६) और 'प्रभावती' (१९३६) 'चोटी की पकड' (१९४६), 'काले कारनामे' (१९५०) आदि उपन्यासों का सृजन किया है। और भी कई महत्वपूर्ण उपन्यासकार है। डॉ. नगेद्र जिनकी संख्य दो–ढाई सौ बताते है फिर भी महत्व की दृष्टि से निम्न उपन्यासकार एवं उपन्यासों का उल्लेख करना जरुरी है। चतुरसेन शास्त्री ने 'हृदय की प्यास' (१९२७), 'अमर अभिलाषा' (१९३३) 'आत्मदाह' (१९३४) लिखे है। कुछ ऐसे उपन्यासकार भी है जिन्होंने उपन्यास लेखन का प्रारंभ तो इसी काल में किया परंतू प्रेमचंदोत्तर काल में वे प्रतिष्ठित हुए। गोविंदवल्लभ पंत ने 'सूर्यास्त' (१९२२), 'प्रतिभा' (१९३४), 'मदारी' (१९३५), अनुपलाल मंडल ने 'निर्वासिता' (१९२९), 'समाज की वेदी पर' (१९३१), 'साकी' (१९३२), 'रुपरेखा' (१९३४), 'ज्योतिर्मियी' (१९३४), प्रताप नारायण श्रीवास्तव ने 'विदा' (१९२८) भगवतीचरण वर्मा ने 'चित्रलेखा' (१९३४) 'तीन वर्ष' (१९३६), सियाराम शरण गुप्त ने 'गोद' (१९३३) तथा 'अन्तिम अकांक्षा' (१९३४) अदि।

इस काल में सामाजिक दृष्टि से मनोवैज्ञानिक दृष्टि की ओर प्रस्थान करनेवाले उपन्यासकारों में तीन उपन्यासकार उल्लेखनिय है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने 'प्रेमपथ' (१९२६), 'अनाथ पत्नी' (१९२८), 'मुसकान' (१९२९, यही त्यागमयी से पुर्नप्रकाशित १९३२ में) प्रेमनिर्वाह (१९३४), तथा पतिता की साधना (१९३६) आदि का लेखन किया है।

इलाचंद्र जोशी ने 'प्रणमयी (१९२९), जैनेद्रकुमार ने 'परख' (१९३०), 'सुनीता' (१९३५) आदि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की रचना की। कथा जगत में प्रेमचंद के उत्तराधिकारी के रुप में इन्हें जाना जाता है परंतू इनकी दृष्टि मनोविज्ञान तक ही सीमित रही प्रेमचंद की तरह व्यापक जन बोध का अभाव रहा परंतू कथा की किस्सागोई एवं उसके कहने का ढंग सब कुछ प्रेमचंद की तरह का ही है।

इस काल में ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृंदावनलाल वर्मा ने 'संगम' (१९२७), 'प्रत्यागत' (१९२७), 'लगन' (१९२८), 'कुंडलीचक्र' (१९३२) आदि समकालीन समस्याओं पर लिखे तो 'गढकुंडार' (१९३०) तथा 'विराटा की पद्‌मिनी' (१९३६) नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे है। अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों में गोविंदवल्लभ पंत का 'सूर्यास्त' (१९२२), रामचंद्र मिश्र का 'प्रेमपथिक' (१९२६), कृष्णनंद गुप्त का केन (१९३०), चतुरसेन शास्त्री का खवास का ब्याह (१९३२) रामप्यारे त्रिपाठी का दिल्ली की शाहजादी (१९३३), निराला का 'प्रभावती (१९३६), ब्रजनंदन सहाय का 'विस्मृत सम्राट' (१९३६) आदि उल्लेखनीय है।

कुछ महत्वपूर्ण महिला लेखिकाओं ने भी उपन्यास लिखे है। ''हिन्दी की पहली मौलिक उपन्यास लेखिका कोई 'साध्वी सती प्राण अबला' थी जिन्होंने अपना वास्तविक नाम गुप्त रखकर, १८९० में 'सुहासिनी' नामक उपन्यास लिखा और प्रकाशित कराया था। यदि यह 'अबला' ब्रजरत्न दास के अनुसार मल्लिका देवी ही है, तो उन्ही को हिन्दी की पहली मौलिक उपन्यास लेखिका भी मानना होगा। '' उसके बाद प्रेमचंद काल में रुक्मिणी देवी ने 'मेम और

साहब' (१९१९), कुन्ती ने 'सुन्दरी' (१९२२), विमला देवी चौधरानी ने 'कामिनी' (१९२३), रत्नवती देवी शर्मा ने 'सुमति' (१९२३) शैलकुमारी देवी ने 'उमा सुन्दरी' (१९२४), गिरिजा देवी ने 'कमल कुसुम (१९२५), कुमारी तेजरानी दीक्षित ने 'हृदय का काँटा' (१९२८) श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर ने 'मधुवन' (१९३३), प्रभावती भटनागर ने 'पराजय' (१९३४), जगदम्बा देवी ने 'हीरे की अँगूठी' (१९३४) उषा देवी मित्रा ने 'वचन का मोल' (१९३६) तथा कुटुम प्यारी देवी सक्सेना ने 'हृदय का ताप' (१९३६) आदि। इन स्त्री लेखिकाओं ने हिंदू समाज में स्त्री की स्थिति को सामने लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। स्त्री स्वतंत्रता, शिक्षा का समर्थन उनका महत्वपूर्ण विचार है। गोपाल राय के अनुसार ''इन लेखिकाओं का नारी संबंधी दृष्टिकोन प्रेमचंद ने उपन्यास को मध्यवर्ग के साथ जोडा, उनका यथार्थ उपन्यास में आया। उपन्यास विधा जन सामान्य के निकट आयी। सामाजिक विकास एवं स्वास्थ की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण भी है। अनेक विचार बिंदूओं से सामाजिक परिवर्तन की लडाई इस काल के उपन्यासों में आयी है। परिवर्तन केवल दृष्टि का नहीं है बल्कि सामाजिक गति–अवरोधकों को तोड़ने का है। परंपरा, रुढियों, विकृत श्रध्दाओं, अंधविश्वासों को तोड़ने की आवश्यकता पर इस काल के उपन्यासों में बल दिया। देश, देश की स्वतंत्रता, दलित, स्त्री, किसान की दासता, लुट, उनकी स्वतंत्रता, औपनिवेशिक शासन प्रणाली का विरोध, धर्मबंधनों के तोड़कर सद्भावना फैलाने की कोशिश, मानवतावाद, कल्याण भावना पर जोर एवं उसी में दृढ अस्था इन उपन्यासों में व्यक्त हुई है। चरित्र विकास की दृष्टि से यह काल बहुमुखी है। हर वर्ग, लिंग, प्रवृत्ति, स्वभाव वाले पात्रों के विविध स्तर इस काल के उपन्यासों में आये है। पात्रों की जितनी अधिक विविधता अकेले प्रेमचंद में पायी जाति है अन्य किसी में नहीं। वर्ण्य–विषय का विस्तार भी उसी प्रकार हो चुका है। परंपरा बध्द विषय जैसे प्रेम, श्रृंगार, जासूसी, ऐयारी, तिलस्म, के दायरे को तोडकर, गाँव से लेकर शहर तक, मध्यवर्ग से लेकर पूंजीपती तक, भिखारी, दरिद्र, नंगे, लोगों का जीवन चित्रण उपन्यासों में आया है। प्रगतीशील दृष्टिकोन, जनवादी भावना का उभार इसी दौर में प्रारंभ हुआ। दलिए एवं नारी के उत्त्थान, के लिए पर्याप्त उपलब्धि इसी समय मिली। वस्तुत: नारी अपने संपूर्ण स्थिति को लेकर इस काल के उपन्यासो में आयी है। भारत में ''उपन्यास का जन्म मध्यवर्ग के कारण हुआ, मध्यवर्ग के लिए मध्यवर्ग द्वारा हुआ'' ऐसा माना जाता है। परंतू डॉ. नामवर सिंह कहते है की भारत में उपन्यास का उदय मध्यवर्ग के महागाथा के रुप में नही, बल्कि किसान जीवन की महागाथा के रुप में हुआ... भारत में मध्यवर्ग इस लायक नहीं था कि उन्नीसवी शताब्दी में किसी नई रुप विधा को जन्म दे सके और अपनी संस्कृति का विकास कर सके। '' परंतू प्रेमचंद काल में उपन्यास सामाजिक परिवर्तन की प्रखर कामना लेकर के आया। किसान समस्या राष्ट्रीय समस्या के रुप में प्रस्तुत हुई। स्त्री समस्या के कई पहलुओं को उपन्यासों में उजागर किया गया। स्वाधिनता, आंदोलन, साम्प्रदायिक एकता, स्त्री–पुरुषों के संबंध, पारिवारिक विघटन, प्रेम, दम्पत्य जीवन, मूल्यविषयक संघर्ष का जीवन चित्रण इस काल के उपन्यासों की सर्जनशीलता, विशेषता है। सहज, सीधी, बोलचाल की भाषा, भावाभिव्यक्ति की विशिष्ट भंगिमा और पाठकों के पढने में रुची के साथ संबंधित या कहे चित्रित समस्या पर उद्वेलीत या कहे सोचने के लिए बाध्य करता है। अनेक नये विषय और उसका सीधा संबंध सामान्य वर्ग से रहा है यह भी इस काल के उपन्यास की खासियत है।

प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास: विभिन्न प्रवृत्तियाँ :–

प्रेमचंदोत्तर युग में हिन्दी उपन्यास का विकास तीव्र गति से हुआ। अनेक प्रतिभासंपन्न लेखकों ने नये विषयों को नया शिल्प–विधान देकर अभिव्यक्त किया। यही कारण है की प्रेमचंदोत्तर कालखंड में हिन्दी उपन्यास में विभिन्न प्रवृत्तियों का विकास हुआ। उनमें से कुछ प्रमुख उपन्यासकारों तथा उपन्यासों का उल्लेख यहाँ होगा। उपन्यास विधा का विस्तृत नभ इस दौर में मनुष्य मन की कई सच्चाइयों को अपने में समेटकर आया है। इन्हें काल–समय में ठीक–ठीक बांधना असंभव नहीं लगता इसलिए प्रवृत्तियों के तहत इसका अध्ययन किया जाएगा। डॉ. नगेन्द्र ने इसको तीन भागों में बाँटा है– १९५० तक के उपन्यास, १९५० से १९६० तक के उपन्यास और साठोत्तरी उपन्यास। पहला दशक मुख्यत: फ्रायड और मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित है, दूसरा प्रयोगात्मक विशेषताओं से और तीसरा आधुनिकतावादी विचारधारा से।'' परंतू हम सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, प्रगतिवादी–समाजवादी या राजनीतिक, ऐतिहासिक और आंचलिक उपन्यास की धाराओं का परिचय देकर साठोत्तरी और बाद वाले कालखंड का स्वतंत्र अध्ययन करेगें।

सामाजिक उपन्यास :–

सामाजिक यथार्थ प्रेमचंद की देन रही है। 'गोदान' उसी का महाकाव्य रहा है, और स्वंय होरी यथार्थ की ट्रेजडी। वर्गीय चरित्र की कल्पना कर उस यथार्थ को गोदान में प्रेमचंद ने विविध आयाभ दिये है। वस्तुत: स्वंय प्रेमचंद ने नानाविध प्रवृत्तियों को जन्म दिया इसी अर्थ में वे कथा सम्राट हो जाते है। इन्ही की परंपरा का विकास प्रसाद के कंकाल में उभरकर आया है। कलान्तरण में निराला, उपेन्द्रनाथ अश्क, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, विष्णु प्रभाकर, अमृतलाल नागर, नरेश मेहता, चंद्र किरण सौन रेक्सा आदि लेखकों ने उपन्यास विधा को समृध्द किया। इन सबके लेखन की अपनी–अपनी विशेषता है। परंतू सामाजिक दृष्टि से परिवर्तनकारी भावना ने जड एवं यथास्थितिवादी परंपरा, मूल्य, संस्कार की नींव हिलाकर रखनेवाले इनके उपन्यासों का महत्व अधिक है। इनका अवदान अनेक दृष्टिकोन से चिंतनपरक है।

प्रेमचंद के अतिरिक्त सामाजिक उपन्यास का लेखन करनेवाले में प्रसाद उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि महत्वपूर्ण है।

हिन्दी उपन्यास में प्रारंभ से ही सामाजिकता का स्वर अनुगुँज रहा है। परीक्षा गुरु समत प्रेमचंद युग के अनेक उपन्यास सामाजिक समस्याओं से पूरीत है। प्रेमचंद के प्रतिज्ञा में विधवा समस्या, सेवासदन में वेश्या समस्या, निर्मला में अनमेल विवाह और सौतेली माँ की समस्या, रंगभूमि में राजनीतिक तथ्य कायाकल्प, कर्मभूमि, और गोदाम में स्त्री एवं किसान समस्याओं का अंकन हुआ है।

रंगभूमि में सुरदास जो जाति से चमार है, अंधा तथा भिखारी है उसे नायक बनाकर दलित जीवन की समस्या को सामने लाते है। 'गोदान' तो भारतीय किसान का महाकाव्य ही बना है। होरी, धनिया, मालती, गोबर, झुनिया जैसे पात्रों द्वारा सामाजिक दर्द ही अभिव्यक्त हुआ है। प्रेमचंद की इसी परंपरा का विकास आगे चलकर प्रसाद के 'कंकाल' 'तितली' (१९३४) (१९३०) में लेखन हुआ था। 'कंकाल' तो धर्म के नाम पर चलनेवाले व्याभिचार,

उसके विधि निषेध पर चोट की है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र':–

उग्रजी का साहित्य आवेशपूर्ण शैली में जड़ सामाजिक मान्यताओं पर कठोर प्रहार करता है। लेखक की प्रकृति की तरह ही उनका साहित्य 'उग्र' अर्थात आलोचकों शब्दों में घासलेटी य नग्न, अश्लील माना जाता है। परंतू उन्होंने अपनी रचनाओं में अनुभूति को व्यापकता दी है। प्रेमचंद युग की महत्वपूर्ण समस्याएँ इनके साहित्य की भी रही है। वेश्यावृत्ति, अस्पृश्यता, साम्प्रदायिकता आदि को कौशलपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है। उनके महत्वपूर्ण उपन्यासों में 'चन्द हसीनों के खतूत' (१९२७), दिल्ली का दलाल (१९२७), बुधुवा की बेटी (१९२८), शराबी (१९३०), सरकार तुम्हारी आँखों में (१९३०), कांटा (१९३७), कढी में कोयला (१९५५), और 'फागुन के चार दिन' (१९६०) आदि है। 'चंद हसीनों के खतूत' हिन्दू–मुस्लिम सौहार्द्र को प्रेम के माध्यम से व्यक्त किया है। एक कुलीन ब्राह्मण लड़का मुरारी खान बहादूर मुहम्मद हुसैन की लड़की नर्गिस से प्रेम करता है। यही कथा सनातन हिन्दू धर्म की जड पाखंड सोच को सामने लाती है, उस पर तिखी प्रतिक्रिया लेखक देते है। 'बुधवा की बेटी' दलित संवेदना को लेकर लिखा गया है। तो 'दिल्ली का दलाल' वेश्या वृत्ती में डुबी अपहृत लडकियों की नरक–गाथा को सामने लाता है। और 'फागून के चार दिन' द्वारा सनातन धर्म और स्त्री के संबंध में उत्तेजक बहस प्रस्तुत करता है।

उग्रजी कई बार विवादों के घेरे में रहे है। परंतू सामाजिक परिवर्तन की जो लडाई प्रेमचंद ने प्रारंभ की थी उसी को विस्फोटक ढंग से उग्रजी ने उपन्यासों द्वारा रखा है। सामाजिक अवनती के लिए वे हिंदू धर्म को कारण मानते है। अपने आदर्शीकृत प्रकृतीद्वारा सामाजिक उन्नती का मार्ग प्रशस्त करते है।

निराला :–

अप्सरा (१९३१) निराला का प्रथम औपन्यासिक सृजन कर्म है। उनकी कवि छवी से कई गुना अधिक सामाजिक यथार्थवादी प्रकृति गद्य में उभरी है। उनके कवि छवि की चर्चा अधिक होती रही गद्य की नहीं परंतू निराला चोटी के गद्यकार है। बाद में अलका (१९३३), प्रभावती (१९३६), निरुपता (१९३६), कुल्लीभार (१९३९), बिल्लेसुर बकरिहा (१९४२), चोटी की पकड (१९४६) और काले कारनामे (१९५०) आदि महत्वपूर्ण उपन्यास उन्होंने लिखे है। निराला के उपन्यासों के संदर्भ में मधुरेश ने महत्वपूर्ण बात कहीं है, निराला के उपन्यास रुप रचना और संगठन की दृष्टि से किसी उल्लेखनीय शिखर को भले ही न छूते हो, लेकिन उत्पीड़ित जनता के संघर्ष और प्रतिरोधी चेतना की दृष्टि से उनका विशेष महत्व है। '' (हिन्दी उपन्यास का विकास, पृ–१००) 'अप्सरा' में अभिजात कुल का युवक और एक वेश्यापुत्री के प्रेम और विवाह का चित्रण करते हुए नारी–मुक्ति के सवाल से हमे रन–ब–रन किया है। 'अलका' अवध क्षेत्र के अभावग्रस्त किसानों की विषादपूर्ण कथा है। 'निरुपमा' निराला समय के आर्थिक और वैचारिक दृष्टि से पिछड़े रुढिगत संस्कारों में जकड़े ग्रामीण समाज की तल्ख' सच्चाईयों को सामने लाता है। प्रभावती ऐतिहासिक रचना है। बिल्लेसुर बकरिहा दलित जीवन का अंकन करता है। इन सभी उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ के विविध पहलू उभरकर आये है।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने गिरती दीवारें (१९४६), गर्म राख (१९५२), बडी बडी आँखे (१९५५), पत्थर अल पत्थर (१९५७), शहर में घुमता आईना (१९६२), एक रात नरक (१९६८), एक नन्हीं कंदील (१९६९) बाँधो न नाव इस ठाँव (१९७४), तथा निमिषा (१९८०) आदि प्रकाशित है। अश्क के उपन्यास सामाजिक संवेदना की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहे है। ''गिरती दीवारें से लेकर निमिषा तक के उपन्यासों में निम्न मध्यवर्ग के आर्थिक संघर्ष, इसी वर्ग के युवाओं की सपनों,नैतिक मूल्यों,अकांक्षाओं से पैदा हुई कुंठाओं, पुरानी पीढी से उनके संघर्ष, भटकन, निराशा, प्रेम के क्षेत्र में असफलता, दाम्पत्य जीवन की कटुता और असंतोष तथा समाज द्वारा निर्धारित मूल्यों की लक्ष्मणरेखा में घुटती और तडपती स्त्रियों का चित्रण इन उपन्यासों की विशेषता है। ''

भगतीप्रसाद वाजपेयी ने 'पिपासा' (१९३७), दो बहनें (१९४०), और नियंत्रण (१९४२), चलते चलते, सुनी राह, विश्वास का बल, अपना बिक गया, कर्मपथ आदि प्रमुख उपन्यासों का सृजन किया है। ''स्त्री-पुरुष के बीच मुक्त प्रेम और नैतिक संहिता से उसका टकराव, मनोवैज्ञानिक अन्तर्दन्द तथा स्त्री के परपुरुष से प्रेम करने के नैसर्गिक अधिकार का प्रतिपादन इनके प्रारंभिक तीन उपन्यासों में मिलता है। ''
'प्रेम पथ' में विश्वशांति, मनुष्य मात्र का कल्याण, सत्य और अहिंसा, 'भूदान' में किसानों में भूमि का समान वितरण, सामाजिक सद्भाव, 'सूनी राह' में कर्तव्य के प्रति इमानदारी, गोमती के तट पर' में भारतीय संस्कृति की महत्ता, 'उसने न कहा' में मध्यवर्गीय परिवार की समस्याएँ, 'टुटते बंधन' में पारिवारिक विघटन, 'अधिकार का प्रश्न' में पीढियों का परिवर्तनशील दृष्टिबोध, नयी पीढी का विद्रोह आदि'' पर मंथन किया गया है।'कर्म पथ' में एक स्वावलंबी युवक के जीवन संघर्ष को स्पष्ट किया है।

भगवती चरण वर्मा इस काल के महत्वपूर्ण लेखक है। इन्होंने 'चित्रलेखा' (१९३४) को लिखकर पाप-पुण्य के प्रति सामाजिकों के दृष्टिकोन को सामने लाया है। ''कथा की दृष्टि से भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास उन्नीसवी सदी के अंतिम दशक (१८९०) से लेकर भारत पर चीन के आक्रमण (१९६२) तक के समय को उसके व्यापक और वैविध्यपूर्ण आयाम में प्रस्तुत करने का प्रयास करते है। इन उपन्यासों में इस अवधि में भारत में होनेवाले राजनीतिक-आर्थिक और सामाजिक उथल-पुथल का अंकन किया गया है। इस दृष्टि से 'भूले बिसरे चित्र (१९५९), सामर्थ्य और सीमा (१९६२), सीधी सच्ची बातें (१९६८), प्रश्न और मरीचिका (१९७३), टेढे मेढे रास्ते (१९४८), और सबहि नचावत राम गोसाई (१९७०) विशेष रुप से उल्लेखनीय है। '' इनके अन्य महत्वपूर्ण उपन्यासों में आखिरी दाँव (१९५०), अपने खिलौने (१९५७), वह फिर नहीं आयी (१९६०), थके पाँव (१९६३), रेखा (१९६४) आदि है। 'भूले बिसरे चित्र' भगवतीचरण वर्मा का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है जिसमें तीन पीढियों (१८९०-१९३०) की सोच और मानसिकता के बदलाव, पुरानी पीढी के साथ नयी पीढी के संघर्ष, औपनिवेशिक शासन के प्रति बुध्दिजीवी वर्ग के मोहभंग और विद्रोह का अंकन किया गया है। ''

अमृतलाल नागर इस समय के एक ओर महत्वपूर्ण उपन्यासकार है। इनका पहला उपन्यास 'महाकाल' (१९४७) में प्रकाशित हुआ और 'बूँद और समुद्र' (१९५६) से वे चर्चा में आये। मध्यवर्गीय नागरिक जीवन का यथार्थ इसमें स्पष्ट हुआ है। व्यक्ति और समाज के अन्योन्याधित संबंधों को वे व्यक्त करते है। उनके अन्य चर्चित उपन्यासों में शतरंज के मोहरे

(१९५९), सुहाग के नुपुर (१९६०), अमृत और विष (१९६६), सात घूँघटवाला मुखडा (१९६८), एकदा नैमिषारण्ये (१९७२), तुलसीदास के जीवन पर 'मानस का हंस' (१९७२), नाच्यो बहुत गोपाल (१९७८), सुरदास के जीवन पर 'खंजन नयन' (१९८१), बिखरे तिनके (१९८२), अग्निगर्भा (१९८३), करवट (१९८५), पीढियाँ (१९९०) आदि है। 'नाच्यों बहुत गोपाल' दलित जीवन की नारकीय स्थितियों को स्पष्ट किया गया है।'' 'एकदा नैमिषारण्ये' के औपन्यासिक विजन में भारतीय या हिंदू संस्कृति के निर्माण का ऐतिहासिक आयोजन है जो नागर जी के अनुसार नैमिष आन्दोलन की देन है। इस आन्दोलन के द्वारा पुर्नजन्म, कर्मकांडवाद, उपासनावाद, ज्ञानमार्ग आदि का अन्तिम रुप से समन्वय हुआ था। इस समन्वय के मुल में राष्ट्रीय एकता का भाव था। ब्राह्मण और श्रमण संस्कृतियों का संघर्ष उस काल की राष्ट्रीय समस्या थी। जिसके कारण देश छिन्न–भिन्न हो रहा था। ब्राह्मणों के ही एक प्रगतिकामी वर्ग ने श्रमण संस्कृति को वैदिक पस्मरा से जोडकर एक मिली–जुली संस्कृति का रुप दिया जो आज हिन्दू संस्कृति के नाम से जानी जाती है। नागर जी ने इसी सांस्कृतिक विजन को एकदा नैमिषारण्ये का आधार बनाया है। ' नागरजी इस काल के शीर्षस्थ उपन्यासकार है। इनका प्रत्येक उपन्यास नयी जीवन दृष्टि का परिचायक है।

उदयशंकर भट्ट ने नये मोड (१९५४), सागर लहरें और मनुष्य (१९५६), लोक परलोक (१९५८), शेष अशेष (१९६०), नये मोड (१९५६)) आदि महत्वपूर्ण उपन्यासों का सृजन किया है। ''नये मोड में एक सुशिक्षित और आत्मनिर्भर भारतीय नारी की विवशता को चित्रित किया है। सामाजिक बंधनों में जकडी हुई डॉ. शेफाली को अपना पहला विवाह स्वीकार्य नहीं है और अपनी इच्छा से दुसरा विवाह स्वीकार्य नहीं है और अपनी इच्छा से दुसरा विवाह का कर नहीं सकती। इसी बिंदू पर उन्हे नये मोड की तलाश है। ''उनका दुसरा महत्वपूर्ण एवं चर्चित उपन्यास जो मुंबई वर्सोवा के सागर किनारे के मछुआरों के जीवन पर चित्रित है। '' परिवर्तीत होनेवाले गाँव की तस्बीर 'लोक परलोक' में उतारी गई है, तो साधु सन्यासियों के जीवन का यथार्थ 'शेष अशेष' में आया है।

विष्णु प्रभाकर ने अपना प्रथम उपन्यास 'ढलती रात' (१९५१), तट के बन्धन (१९५५), स्वप्नमयी (१९५७), इनके कई उपन्यास दुसरे नाम से पुन: प्रकाशित हुए है जैसे 'दलती रात' का 'निशिकांत' (१९८६ में), 'दर्पण का व्यक्ति का 'संस्कार' (१९९३), स्वप्नमयी का 'स्वप्न' आदि। '' इनके उपन्यासों में विषय का वैविध्य न के बराबर है। नारी निमति की बहुआयाभी त्रासदी ही उनके उपन्यासों का केंद्रीय कथ्य है। '' नारी की विभिन्न समस्याएँ उपन्यासो में आयी है। 'तट के बन्धन' में प्रेम और विवाह, धर्म और जाति, तिलक दहेज, अन्तर जातीय और अन्तरधर्मीय विवाह, नारी मुक्ति, परम्परागत नारी संहिता के अन्तविरोध और उनका विरोध, नारी की आर्थिक स्वतंत्रता का प्रतिपादन आदि प्रश्नों को उठाया गया है। '' 'ढलती रात' में स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने और ब्रिटिश शासन काल में सरकारी नौकरी करने के द्वंद के साथ सामाजिक स्तर पर जातियों और धर्मों के बीच की टकराहट, धर्म, जाति, लिंग, आदि से जुडे निम्नमध्यवर्गीय युवक का आत्मसंघर्ष चित्रित हुआ है। '' कुछ उपन्यास साठोत्तरी काल में लिखे गये है।

अन्य महत्वपूर्ण उपन्यासों में उल्लेखनीय है अमृतराय का बीज (१९५२), नाभफती का देश और हाथी के दॉत (१९५६), प्रभाकर माचवे का परंतू (१९५२), एकतारा

(१९५३), दाभा (१९५४), साँचा (१९५५) आदि। राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह का 'राम रहिम' (१९३७), सियारामशरण गुप्त का 'गोद' (१९३२), अन्तिम अकांक्षा (१९३४) नारी (१९३७) सेठ गोविंद दास का 'इन्द्रमती' चतुरसेन शास्त्री ऐतिहासिक उपन्यासकार होने के बावजूद धर्मपुत्र, खग्रास, गोली जैसे उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को बडे सुंदर ढंग से अभिव्यक्त किया है। रामानंद सागर ने और इन्सान मर गया, यज्ञदत्त शर्मा ने इन्सान, कमलेश्वर ने लोटे हुए मुसाफिर आदि उपन्यासों में हिन्दु-मुस्लिम समस्या पर मानवतावादी दृष्टि से लिखा है।

अत: यह कहा जा सकता है की प्रेमचंद के बाद सामाजिक उपन्यासों की सशक्त धारा उभरकर आयी। १९६० के बाद यह अधिक विस्तार पाती गयी परंतू बाद के सामाजिक उपन्यासों में समाज कम, यौन समस्याएँ अधिक मुखर हुई। उपन्यासों के विषय वैविध्य ने उसको अधिक विशाल बनाया।

मनोवैज्ञानिक/मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास :-

प्रेमचंद ने ही जीवन की ओर देखने के दो दृष्टिकोन प्रस्तुत किये थे। एक सामाजिक और दुसरा मनोवैज्ञानिक। प्रेमचंदोत्तर काल में यह दोनों धाराएँ स्वतंत्र रुप से विकसित हुई। प्रेमचंद के ही शिष्य जैनेद्रकुमार ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोन को अपनाया मन की सुक्ष्म, गंभीर, गहन भावों का अंकन इन उपन्यासों की विशेषता है। सन १९३० के बाद भारत में फ्रायड, एडलर, युंग की विचारधाराओं का, सार्थ, कफ्फा के अस्तित्ववाद का प्रभाव बढता गया। फ्रायड के चेतन, अवचेतन और अचेतन मन के भावों, स्वप्नों, इच्छाओं, वासनाओं का विस्तृत चित्रण उपन्यासों में आया। फ्रायड के अनुसार 'काम' एवं 'अहं' जिदगी के प्रेरक एवं निर्माण तत्व माने गये। सामाजिक, नैतिक बंधनों को तोड़ा गया। दमन की जानेवाली काम भावना का खुलकर चित्रण उपन्यासों में होने लगा। अचेतन मन, इडिप्स, लिबिडो ग्रंथियों से तैयार एक दलदल बनी और उसी से इन ग्रंथियों का हिस्टीरिया, उन्माद, पागलपन, निराशा उभरकर आयी। उपन्यासकारों को लगा की इन ग्रंथियों को उजागर करना साहित्यिक कर्म है। यह ग्रंथियाँ हर एक में होती है। उसका कम अधिक प्रभाव होता है। व्यक्ति कभी इसे उदात्त रुप देता, कभी इनकी विकृतीयों के कारण विकृत हो जाता है। एक प्रकार से पागलपन, मानस के भीतर-बाहर को जानना लेखाकित दायित्व होता है।

एडलर फ्रायड की तरह मनुष्य जीवन को काम दमन से पीड़ित मानता नहीं है वह हीनता की भावना से पीडित मानता है। ''इनके मतानुसार बचपन में ही यह हीन भावना निर्माण हो जाती है। तथा इस हीनता की क्षतिपूर्ती के लिए व्यक्ति अपने वातावरण को प्रभावित करना चाहता है। किसी-न-किसी प्रकार से वह अपना प्रभाव जमाना चाहता है। इसी कारण असामान्य कार्यों के मूल में 'प्रतिष्ठा' की भावना हो सकती है। '' इस प्रकार की मनोवृत्ती को अभिव्यक्त करना इन साहित्यकारों को अभिप्रेत है।

युग के मतानुसार 'जीवनेच्छा' ही जीवन का मुलाधार है। ''प्रतिष्ठा, सम्पत्ति और सन्तान इन तीनों में से किसी एक की अथवा तीनों की प्राप्ति के लिए व्यक्ति जिंदगी भर बेचैन रहता है। इनमें से अगर एक की भी कमी हो जाए तो उसमें मानसिक'' हीनता की ग्रंथी विकसित हो जाती है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास में पात्रों के भाव पक्ष का अंकन होता है। यही भाव पात्र के दृष्टिकोन विचार में परिणत होकर उसका व्यापक रुप धारण करता है। इसलिए पात्रों की रचना असामान्य रुप से तर्क–वितर्क, स्फुर्त, उत्सुर्फ, प्रतिक्रियावादी होती है। मानसिक स्तर पर वह रहस्यपूर्ण, कामजन्य, अहंवादी, सद् अहंवादी या सुपर इगो होती है। एक तरह से मनुष्य की अंतर–बाह्य जटिलताओं की अभिव्यक्ति होती है।

जैसा की हमने पहले ही कहा आधुनिक युग में प्रेमचंद के अविर्भाव के साथ मनोविज्ञान का प्रवेश हिन्दी कथा साहित्य में हुआ। उनके उपन्यास जीवन का चरित्र मात्र है विचार ने पात्रों के मनोविज्ञान की परख शुरु की। जिसका भारतीय संस्करण वाला रुप जैनेंद्र कुमार के उपन्यासों में आया है। उनका प्रथम उपन्यास 'परख' (१९२९) में आया। यह परख वस्तुत: एक गहरे नैतिक द्वंद से गुजरने की तनावपूर्ण प्रक्रिया है'' जो मानस की गुढता, आचरण की क्रिडागुढता को सामने लाती है। उसके बाद सुखदा (१९५२), विवर्त (१९५२), व्यतीत (१९२३), जयवर्ध्दन (१९५६), मुक्तिबोध (१९६५), अनन्तर (१९६८), अनामस्वामी (१९७४), दशार्क (१९८३) आदि मनोविष्लेशणात्मक उपन्यासों का सृजन किया। जैनेंद्र ने इन उपन्यासों के द्वारा भाव, भाषा, शिल्प, की दृष्टि से नवीनता एवं सार्थकता उपन्यास को प्रदान की है। इन उपन्यासों में मानशास्त्रीय सुक्ष्म, तरल एवं गहन संवेदनाओं को अभिव्यक्त किया गया है। जैनेंद्र के उपन्यास वैचारिक कोलाहल पैदा करनेवाले है, ''अपने मास्टर पर प्रेम करनेवाली एक तरुण विधवा और आदर्श तथा ध्येयवाद के प्रति ईमानदारी से समर्पित 'मास्टर' के बीच की भावनात्मक उथल–पुथल 'परख' का विषय है। '' तो 'सुनीता' में नायक हरि प्रसन्न और नायिका सुनीता के बीच का तीव्र एवं गुढ होता आकर्षण चित्रण आया है। हरि प्रसन्न की मानसिक पीडा सुनीता को द्रवित करती है, उसके पति का भी विरोध नहीं है। विरोध है तो हरिप्रसन्न एवं सुनीता के संस्कारों का। हरि प्रसन्न की कुष्ठा को देखकर वेदना से पीडित सुनीता उसके सामने 'विवस्त्र' होती है और उसकी यह अग्निपरीक्षा देखकर हरि प्रसन्न भाग जाता है। इसमें कथा नहीं है, जो है वह एक तरल, व्यमिश्र, नैतिकता को आवाहन करनेवाला करुणा से आपूरित जीवनानुभव'' है। 'त्यागपत्र' में मृणाल के बहाने हिन्दू समाज व्यवस्था तथा परिवार व्यवस्था पर गहरा आघात करती है। ये अघात मूक होते है लेकिन प्रभावी होते है। '' विशिष्ट हिन्दू समाज मृणाल को न्याय नहीं दे पाता इसलिए उसका भतीजा जज पद से 'त्यागपत्र' देता है। 'कल्याणी' उनका अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें ''अर्थाजन करने को बाध्य स्त्री डॉक्टर के मन की विलक्षण खींचतान चित्रित की गयी है। स्त्री ने पातिव्रत्य की अपेक्षा भी की जाए और अर्थाजन के लिए पुरुष समाज सम्पर्क की विवशता भी हो– इस कैंची में छटपटानेवाली नारी के पति अगर पुराणपंथी हो, पत्नी को अपनी वैयक्तिक मिलकियत मानकर चलता हो तो ऐसी नारी की पीड़ा बहुत तीव्र होती है। हिन्दू स्त्री की मानसिक व्यथा की यह करुण कथा समसामायिक जीवन के और नारी वेदना के अनेक संदर्भ खोलती है। '' जैनेन्द्र ने पती, पत्नी और प्रेमी के त्रिकोणात्मक प्रेमाख्यानों द्वारा हिन्दू समाज की जड एवं खोखली नैतिक परंपराओं को उजागर किया है। और संबंधों के तर्क जाल द्वारा मनुष्य मन के अंतर्जाल को व्याख्यायित किया है। प्रेमचंद की उपन्यास 'मानव चरित्र–मात्र' भावना का विस्तार बड़ी कुशलता से जैनेंद्र में हुआ है। फिर भी हिंदू सामाज मान्यताओं खासकर, प्रेम, विवाह, परिवार, समाज, नैतिकता आकर्षण, विकर्षण, का मानसिक संघर्ष उनके उपन्यासों में आया है। उसका

विरोध प्राय: क्षीण हो चुका है।

इलाचंद्र जोशी का 'घृणामयी (१९२९) में आया। यह उनका प्रथम उपन्यास है। उसके बाद संन्यासी (१९४१), पर्दे की रानी (१९४१), प्रेम और छाया (१९४६), निर्वासित (१९४६), मुक्तिपथ (१९५०), सुबह के भूले (१९५२), जिप्सी (१९५२), जहाज का पंछी (१९५५), ऋतूचक्र (१९६९), भूत का भविष्य (१९७३), कवि की प्रेयसी (१९७६) आदि उपन्यास मनोविज्ञान का चिकित्सक चित्रण प्रस्तुत करते है। प्रारंभ में पश्चिमी मनोविज्ञान का प्रयोग करते हुए 'केस स्टडी' जैसे उपन्यास का सृजन उन्होंने किया। फिर बाद में वे उसकी मर्यादा को जानकर भारतीय मनोविज्ञान का रुख अपनाते है। उनका अन्तिम उपन्यास इसका साक्ष्य है।

भगवतीचरण वर्मा का पाप–पुण्य की व्याख्या प्रस्तुत करनेवाला 'चित्रलेखा' (१९३४) में प्रकाशित हुआ। जिसका परिवेश मौर्यकालीन रहा परंतू पाप–पुण्य की समस्या शाश्वत रही है। और अंत में सबकुछ भोग, त्याग में परिवर्तित हो जाता है। उसके बाद 'टेढे–मेढे रास्ते (१९४६), आखिरी दाँव (१९५०), अपने खिलौने (१९५७), भूले बिसरे चित्र (१९५९), वह फिर नहीं आई (१९६०), सामर्थ्य और सीमा (१९६२), थके पाँव (१९६३), रेखा (१९६४), सीधी सच्ची बातें (१९६८), सबहि नचावत राम गोसाई (१९७०), प्रश्न और भरीचिका (१९७३) आदि प्रकाशित हुआ। भूले बिसरे चित्र को श्रेष्ठ माना जाता है। भगवतीचरण वर्मा नियतीवाद, मानवीय विवशता, समाजवाद, साम्यवाद, गांधीवाद, आतंकवाद आदि के सम्बध में अपने पूर्वग्रहों से कहीं भी मुक्त नहीं हो सके है। '' कई प्रकार के दोषों से युक्त होकर भी वर्माजी महत्वपूर्ण हो चुके उपन्यासकार है।

अज्ञेय का हिन्दी उपन्यास में अर्विभाव एक क्रांतीकारी संयोग है। अपनी प्रखर चेतना से पूरित मनुष्य मन की गहरी पडताल करते हुए समय, समाज, देश के संदर्भो को खोलनेवाले उनके उपन्यास वस्तुत: संवेदनशील एवं मानवीय मूल्यों प्रति चिंतन शीलता के परिचायक है। १९४० में 'शेखर एक जीवनी' का पहला भाग और १९४४ में दूसरा प्रकाशित हुआ और हिन्दी समीक्षा में भूचाल–सा आया। फिर नदी के दीप (१९५१) और अपने अपने अजनबी (१९६१) में प्रकाशित हुए। तीनों उपन्यास नये व्यक्तित्व की तलाश में लिखे गये है। शेखर एक जीवनी में व्यक्तित्व निर्माण में, ''अहं, सेक्स और भय की जीवन में जो क्रिडा चलती है, उनका जो स्थान एवं स्वरुप है, उनकी जीवन की समुची चहल–पहल में जो सक्रियता है, उसे देखने का प्रयास है। शेखर अपने स्वातंत्र्य और स्वातंत्र्य को बाधित करनेवाली प्रवृत्तियों/स्थितियों का अनुसंधान करता है। व्यक्ति और समाज, व्यक्ति और उसकी स्वाधीनता, प्रेम, घृणा, दंभ, झूठ का जीवन में स्थान इत्यादि पर चिंतन करनेवाला शेखर मूलत: एक संवेदनशील युवक है। '' वही इसका केंद्रिय चित्र एवं चरित्र है। सार्थक जीवन बनाने की उसकी संकल्पशक्ति ११ उपन्यास को विशिष्ट बनाती है।

'नदी के द्वीप' एक प्रेमकथा है, रेखा, भूषण और गौरा की। तथा 'अपने अपने अजनबी' ''दार्शनिक तेवर में लिखी कलात्मक रचना है'' जो हिन्दी में प्रथम एवं शीर्षस्थ है। अस्तीत्ववाद का प्रभाव इसपर समीक्षकों नें पाया है। अज्ञेय की चिंतना, गहन संवेदना और अभिव्यक्ति कुशलता से तीनों उपन्यास चर्चा के केंद्र में आज भी रहे है। आधुनिकता ने मनुष्य को जैसे बनाया वैसे अज्ञेय ने उसे प्रस्तुत किया है।

डॉ. देवराज के 'पथ की खोज', 'बाहर–भीतर', 'रोडे और पत्थर', 'अजय की डायरी' आदि उपन्यास प्रकाशित है। ' मनोवैज्ञानिकता का सफल लेखक जीवन के अंतर–बाह्य का उद्‌घाटन करता है। ''शिक्षित, बुध्दिजीवी समाज के जीवन की करुण यथार्थता का मनोवैज्ञानिक चित्रण इन उपन्यासों में मिलता है। ''

अमृतराय के उपन्यासों में प्रचारवादी साम्यवाद कही नहीं है। बल्की उसके प्रति प्रतिबध्दता का स्वर रहा है। ' धुँआ' में युवा पीढी का भटकाव, नक्सलवाद, दिशाहीन होती राजनीति, सामाजिक रुढियों की विकृति आदि के बीच झूलसती जींदगी का सच उभरकर आया है।

भीष्म साहनी :–

इनका पहला उपन्यास 'झरोखे' (१९६७) में प्रकाशित हुआ। प्रगतिशील दृष्टि इनके सभी उपन्यासों में मुखर हुई है। बाद में 'कड़ियाँ (१९७०), तमस (१९७३), बसंती (१९८०), 'मय्यादास की माडी (१९८८) 'कुंतो' (१९९३) और नीलू, नीलिमा, नीलोफर (२०००) प्रकाशित हुए।

'झरोखे' आर्यसमाजी संस्कारवाले बच्चे की मानसिक स्मृति चित्र को संजोया गया है। 'कड़ियाँ' में संस्कारों की जड़ता युक्त मध्यवर्गीय परिवार है, परंतु प्रमुख कथा दाम्पत्य संबध की कटुता और स्त्री की असहाय स्थिति से जुड़ा है। 'तमस' स्वाधिनता प्राप्ति के पूर्व मार्च–अप्रैल–१९४७ में हुए भीषण साम्प्रदायिक दंगों की पाँच दिन की कहानी उपन्यास में प्रस्तुत की गयी है। साम्प्रदायिकता का सजीव परंतू कटु चित्रण करनेवाले इस उपन्यास के भीष्म साहनी को श्रेष्ठ उपन्यासकार की पंक्ति में बिठाया। स्वतंत्रतापूर्व पंजाब में एक साथ रहनेवाले हिंदू–मुस्लिम एक दुसरे के सुख–दु:ख के हिस्सेदार बनते थे परंतू ब्रिटिश नीति के कारण माहौल में साम्प्रदायिक तणाव फैल जाता है और पडौसी दुश्मन में बदल जाते है। अविश्वास, शंका, क्रोध, उन्माद, आतंक, भय, हिंसा में तब्दिल हो जाते है। मानवीयता का क्षरण होता है। बाद में 'नीलू, नीलिमा, नीलोफर' में साम्प्रदायिकता पर विजय प्रेम ही पाता है का विचार लेखक ने व्यक्त किया है।

राजेंद्र यादव का 'सारा आकाश' डॉ. लाल के 'धरती की आँखे', 'बया का घोंसला और सांप', 'मन वृदावन' आदि उपन्यास भी प्रगतिवाद से प्रतिबध्द है।

प्रगतिवादी धारा में लिखे गये इन तमाम उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ के विभिन्न पहलुओं को देखा जा सकता है। सामाजिक संघर्ष के भिन्न रुप इसमें मुखर हुए है। आँचलिक उपन्यास का प्रारंभ भी इसी काल से होता है।

आँचलिक उपन्यास :–

आँचलिक उपन्यास का प्रथम आधार गोदान ही माना जाता है परंतू आँचलिकता की प्रमुख प्रवृत्ती फणीश्वर नाथ रेणू के 'मैला आँचल' (१९५४) से चर्चा में आयी। कथा एवं चरित्र केंद्रित उपन्यासों के बाद कथा के केंद्र में 'आँचल' ही प्रमुख हो उठा इसी कारण इन्हें आँचलिक उपन्यास कहा जाने लगा। वहाँ की भाषा, संस्कृति, परंपरा, रुढियाँ, अंधविश्वास, उत्सव, त्यौहार, अखाडे, गीत, धार्मिक, नैतिक, सामाजिक आचार–विचार, आस्था–विश्वास,

मनोरंजन, व्यवसाय, शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यसन, जीवन दृष्टिकोन आदि को अभिव्यक्ति केंद्रिय रुप में आँचलिक उपन्यास में मिलने लगी। स्वतंत्रता के बाद बढ़ता नागरिकरण और उसका गाँव जीवन पर पड़ता प्रभाव पहली बार इन उपन्यासों में आया। विकास की योजनाओं ने एक ओर उनमें परिवर्तन की संभावना जगायी जो दुसरी ओर लडाई, झगडे, संघर्ष, हिंसा, लूट, भ्रष्टाचार, अनाचार, दुराचार, की बीभत्सता, कुत्सा को व्यक्त किया। धर्म के नाम पर चलनेवाले पाखंड, यौन शोषण, मानसिक गुलामी का थोपना, निरंतर जारी रहा तो इसके विरुध्द वैज्ञानिक साधनों से समाज को उन्नत बनाने के लिए शिक्षा,चिकित्सा का आग्रह भी रहा है। परिणामत: जनजीवन की सुक्ष्म अंकन, जीवंत हो गया। नागार्जुन, रेणू, उदयशंकर भट्ट, राही मासुम रजा, रामदरश मिश्र, शिवप्रसाद सिंह, राजेंद्र अवस्थी, शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र', शैलेश मटियानी, विवेकी राय, श्रीलाल शुक्ल, गोविंद मिश्र, कृष्ण बलदेव वैद्य आदि उपन्यासकारों ने नये अभिव्यंजन कौशल से इस धारा को समृध्द किया है।

नागार्जुन :– के 'बलचनमा' को हिन्दी का पहला आँचलिक उपन्यास माना जाता है। यह १९५२ में प्रकाशित हुआ। 'मैला आँचल' के कारण हिन्दी में आँचलिक उपन्यास धारा की स्थापना हुई परंतू 'बलचनमा' और 'मैलाआँचल के पूर्व अमृतलाल नागर का 'सेठ बाँकेमल' और शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' का 'बहती गंगा' में आँचलिकता के संकेत जरुर मिलते है परंतू नागार्जुन में वर्ग संघर्ष यथार्थ रुप से उभरकर आया है 'बलचनमा' इसका उदाहरण है। 'नयी पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'वरुण के बेटे', दुख मोचन', यह आँचलिक उपन्यास ही है। बटेसरनाथ का नायक ही एव वटवृक्ष है उसी के छाव तले गाँव के उत्थान–पतन, कलह, द्वेष, शोषण, अंधविश्वास, भूचाल, बाढ, पंचायती, राजनीति, काँग्रेसी स्वार्थी मनोवृत्ति आदि का चित्रण हुआ है। 'वरुण के बेटे' 'सागर लहरे और मनुष्य' की तरह मछुआरे के जीवन पर ही लिखा गया है। आँचलिकता की प्रवृत्ति को नये आयाम नागार्जुन ने दिये है।

फणीश्वरनाथ रेणु :– मिथिला के पूर्णिया जिले के एक छोटे से गाँव मेरीगंज के बहाने समग्र भारतीय गाँव की कथा 'मैला आँचल' (१९५४) के बहाने रेणु ने अभिव्यक्त की है। आँचलिक उपन्यास की सर्व स्वीकृती मिलनेवाला यह पहला उपन्यास है। यह निहायत पिछडा हुआ गाँव है, गाँव में, अशिक्षा, गरीबी, दरिद्रता, अभाव, व्याभिचार, धर्म के नाम पर यौन शोषण जैसी दलदल में यह फँसा है। फिर भी नव निर्माण की प्रबल अकांक्षा लेकर डॉ. प्रशांत और गाँव की कायस्थ टोली के मुखिया तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की बेटी कमला में है। अनेक उपकथाएँ इसमें जुडी है और हर कथा एक समस्या प्रस्तुत करती है। बलदेव और लक्ष्मी की कथा, महंत रामदास और रामपियरिया, कालीचरण और बावनदास आदि। डॉ. सावित्री सिन्हा ने इस उपन्यास के संबंध में लिखा है, ''पूर्णिया गाँव के शूल और फुल, कीचड और चंदन, धूल–गुलाल सभी के रंग इसके अंचल में है। उसकी सांस्कृतिक–भौगोलिक विशेषता की पृष्ठभूमि में जनवादी दृष्टि से अंचल के अनेक मुखी चित्र खींचे गये है, जो एक ओर सुक्ष्म, संश्लिष्ट और क्षिप्र है, दूसरी ओर विविध और बहुमुखी। '' 'मैला आँचल' में लोकसंस्कृति का जितना प्रगाढ़ चित्रण हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। आजादी के बाद यह गाँव नवनिर्माण की परियोजनाओं के दौर में भी पीछड़ा है। मलेरिया उन्मुलन जैसे कार्यक्रम इस गाँव के पुराने एवं पीछड़ेपन को एक धक्का ही है। जिससे परिवर्तन की हवा बहती है।

'परती–परिकथा' भी कोसी नदी किनारे बसे गाँव 'परानपूर' में बसे दरिद्र जीवन के उल्लास, अल्हाद की कथा है। गोपाल राय ने इस गाँव के संबंध में कहा है,'' परानपूर गाँव मेरीगंज की तुलना में एक बदला हुआ गाँव है– यह वह बदलाव है जो रागदरबारी के शिवपालगंज में अपनी पूर्णता पर पहूँचता है। परती परिकथा में अपढ ग्रामीणों. अक्षरकट्टू युवकों, स्कुलों और कॉलेजों में पढनेवाले छात्रों. जातिवादी संस्कारों से ग्रस्त नर– नारियों, धुमन्तु और नारदी प्रवृत्ति की स्त्रियों, सभी राजनीतिक दलों की शाखाओं के अधकरे नेताओं, शातिर मुकदमेबाजों और, इसके साथ–साथ, लोक कथा– गीतों के गायन, लोकनाटकों के मंचन आदि के यथार्थ चित्र उपलब्ध होते है। '' इन उपन्यासों के बाद रेणु का कोई आँचलिक उपन्यास नहीं रहा 'दीर्घतया' (१९६२) में पटना के एक वर्किंग वीमेंस होस्टल में पनपनेवाले भ्रष्टाचार, स्त्रियों का यौन शोषण आदि का चित्रण हुआ है। 'जुलुस' (१९६५), 'कितने चौराहे (१९६६) और 'पलटू बाबू रोड' (१९७९) निश्चित ही उल्लेखनीय उपन्यास है।

उदयशंकर भट्ट– वह जो मैंने देखा (१९४५), आधार (१९६३) परंतू उनका बहु चर्चित उपन्यास 'सागर लहरें और मनुष्य' (१९५६) में मुंबई के मछुआरे जीवन का अंतरंग प्रस्तुत करता है। मुंबई के पश्चिमी तट पर बसे वरसोवा इसके केंद्र में है। देवेद्र सत्यार्थी– का गोंड जन– संस्कृति पर 'रथ के पहिए' (१९५०), केरल, असम और उडीसा की संस्कृती को क्रमश: 'दूधगाछ' (१९५४), 'ब्रहमपुत्र' (१९५५) और 'कथा कहो उर्वशी' (१९५६) का सृजन किया है। रांगेय राघव– का 'कब तक पुकारुँ? करनटों की भटकती जमात का चित्रण करता है। इसमें दलितों, पीडितों की सर्वंगीण शोषण की दारुण पृष्ठभूमि में प्रेम कहानी का मुलायम धागा भी है। राही मासूम रजा– का गंगौली के शिया मुसलमानों का चित्रण करनेवाला 'आधागांव' वस्तुत: ''राष्ट्रीय मुसलमान की त्रासदी'' को बयां करता है। विभाजन के बाद उभरकर आये दंगे या स्वंय विभाजन एक त्रासदी के रुप में सामने आता है परंतु गंगौली के मुसलमानों की जमीनदारी नष्ट होने के बाद उनकी कुलीनता का दंभ मात्र कायम रहता है। इस उपन्यास पर स्वंय रजा की टिप्पणी बेहद महत्वपूर्ण है,'' यह उपन्यास लिखने के बाद मैंने जो सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण बात जानी वह यह है कि यहाँ का मुसलमान पाकिस्तान नहीं गया और यदि गया भी तो हिंदुओं से डर के नहीं गया। वह कराची गया। वह लाहौर गया। वह ढाका गया.... पाकिस्तान नहीं गया। हमे शहर और देश में फर्क करना चाहिए। गंगोली में तो हिंदू–मुस्लिम दंगे नही हुए थे। पर जमीनदारी गंगोली में भी खत्म हुई। जमीनदारी के साथ समाज का पूरा ढाँचा टूट गया। गंगोली का जमीनदार गाजीपूर में पान की दुकान नहीं खोल सकता था। पर कराची में उसे कौन जानता था। इसीलिए जब उससे गंगौली छूटी तो वह गंगौली से इतनी दूर चला गया जहाँ कोई काम करके जीने में उसे शर्म न आए। जमीनदार गया तो उसके साथ जीनेवाले भी गए कि उन्हे भी ठीक से जीना नहीं आता था। इन पाकिस्तान जानेवालों को मुसलमान कहना ठीक नहीं है...'' परवर्ती उपन्यासों में 'टोपी शुक्ला' आदि उपन्यास लिखे पर आंचल नाममात्र ही रहा है।

हिमाशु श्रीवास्तव– का 'नदी फिर बह चली', बलभद्र ठाकुर का 'नेपाल की वो बेटी'(१९६०) 'घने और बने' (१९६१) 'लहरों की छाती पर' (१९६२) रामदरश मिश्र का 'पानी के प्रचीन', 'जल टूटता हुआ', सुखता हुआ तालाब, अपने लोग, रात का सफर, बिना दरवाजे का मकान उल्लेखनीय है। श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी', शिवप्रसाद सिंह का 'अलग–अलग वैतरणी', 'गली आगे मुड़ती है, 'नीला चाँद' वैश्वानर आदि। शैलेश मरियानी

का 'बोरीवली से बोरीबंदर तक' (१९५९) 'कबुतरखाना' (१९६०) निरिया भली न काठ की (१९६१), किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई (१९६१) आदि मुंबईया हिन्दी, संस्कृति पर अंकित है। राजेद्र अवस्थी का 'सूरज किरन की छाँव' (१९५९), 'जंगल के फुल' (१९६०) उतरते ज्वार की सीपियाँ (१९६८), जाने कितनी आँखे (१९६९), बहना दुआ पानी (१९७१), बीमार शहर (१९७३), अकेली अवाज (१९७६), मावली बाजार (१९७७), एक रजनीगंधा चोरी (१९८५) आदि। विद्यासागर नैरियाल का 'उलझे रिश्ते' (१९५९) भीम अकेला (१९९४), सूरज सबका है (१९९७) मै कुमायूँ गढवाल के पहाड़ी जीवन के कटू यथार्थ अनुभव के साथ वहाँ की जन-जीवन संस्कृति, का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। विवेकी राय का 'बबुल' (१९६७), पुरुष पुराण (१९७५), लोक-ऋण (१९७७), श्वेत-पत्र (१९७९), सोनामाती (१९८३), समर शेष है (१९८८) और मंगल भवन (१९९४) में आये। 'बबूल' गाजीपूर जनपद के पूर्वांचल के मजदूरों पर केंद्रित है। गाँव जीवन की अलग-अलग तस्बीरें इन उपन्यासों में आयी है।

इस दौर में अनेक ऐसे महत्वपूर्ण उपन्यासकार हुए जिन्होंने आँचलिकता को प्रमुखतः नहीं दी परंतू वे महत्वपूर्ण है।

ऐतिहासिक उपन्यास :-

हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास का प्रवर्तन श्रेय वृंदावनलाल वर्मा को जाता है। इनके पहले किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त आदि ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे परंतू उन्हें ''ऐतिहासिक रोमान्स'' कहा जाता है। ब्रजनंदन सहाय का 'लाल चीन' है परंतू शेक्सपीयर के मॅकबेथ से प्रभावित है। ऐसे में वृंदावनलाल वर्मा ने 'गढकुंडार' (१९२७) से ऐतिहासिक लेखन का प्रारंभ किया।

ऐतिहासिक उपन्यास लेखन के छह प्रकार है। एक, अतीत का आभास देनेवाले- जैसे, चित्रलेखा। दो,ऐतिहासिक वातावरण मात्र प्रस्तुत करनेवाले- जैसे, 'दिव्या,' 'अमिता' 'मुर्दों का टीला' आदि। तीन, ऐतिहासिक यात्रोंपर सृजीत- जैसे, 'वैशाली की नगरवधू', 'आम्रपाली' 'विराटा की पद्‌मीनी','बाणभट्ट की आत्मकथा' आदि। चार, ऐतिहासिक कथा के आधार पर लिखे गये- 'टूंटे कांटे'। पाँच, ऐतिहासिक घटना को आधार मानकर लिखे गये- 'अमिता', भुवनविक्रम' आदि। और छह, ऐतिहासिक वातावरण, कथा तथा पात्र से युक्त उपन्यास- इन्हे विशुध्द ऐतिहासिक उपन्यास कहा जाता है जैसे, 'झाँसी की रानी','अहल्याबाई', 'चाणक्य','शतरंज के मोहरे' आदि।

स्वतंत्रता पूर्व लिखे गये ऐतिहासिक उपन्यासों में आजादी के अंदोलन को प्रेरणा देने का भाव निहित था तो स्वातंत्र्योत्तर काल के ऐतिहासिक उपन्यासों में मानवीय सत्य और मूल्य को जगाने के रहे है। इसलिये इन उपन्यासों में ऐतिहसिक घटना की अपेक्षा कल्पना का प्राधान्य रहा है। कल्पना से बिखरी और मूल्यहीन घटनाओं को एक सुत्र में बांधकर वर्तमान मूल्य, प्रश्न, तर्क, वैज्ञानिक दृष्टिकोन का विकास किया है। भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' हो या यशपाल का 'दिव्या' 'अमिता' इनमें प्रखर बौध्दिकता, व्यवस्था संघर्ष, नारी प्रश्न को अंकित किया है। यही इन उपन्यासों की उपलब्धि है।

वृदावनलाल वर्मा :– ऐतिहासिक उपन्यासों के इस लेखक ने कई सफल उपन्यास हिन्दी साहित्य को दिये है। बुंदेलखंड का गौरव इनकी रचना का आधार है, 'गढकुंडार' और 'विराटा की पद्मीनी' (१९३६) बुंदेलखंड के इतिहास, संस्कृति, लोकगीत, लोककथा, शौर्य, अभिमान को अभिव्यक्त किया है। 'गढकुंडार' में राजपुत्रों की झूठी शांत, इज्जत ही आपसी कलह का कारणी बनी और वे एक दुसरे के विरुध्द लड़ते रहे। झाँसी की रानी' (१९४६) में देश के प्रथम गदर में महाराणी लक्ष्मीबाई के अद्वितीय शौर्य, साहस की गाथा कही गई है। स्वतंत्रता पूर्व लिखे गये इन उपन्यासों में भारतीय स्वर्णीम अतीत, वीरता, आदि की श्रेष्ठता का वर्णन किया है। स्वार्थ, संकीर्ण राष्ट्रीयता, जैसी वृत्तियों पर प्रहार भी किया गया है। वर्मा जी के अन्य महत्वपूर्ण उपन्यासों में 'कचनार' (१९४७), 'मृगनयनी' (१९५०), 'टूंटे काँटे' (१९५४), 'अहल्याबाई' (१९५५), 'भुवनविक्रम' (१९५७), 'माधवजी सिंधिया' (१९५७), रामगढ की रानी (१९६१), 'महारानी दुर्गावती' (१९६४) आदि महत्वपूर्ण उपन्यास है। 'मृगनयनी' इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। जिसमें ग्वालियर के महाराजा मानसिंह तोमर और उनकी रानी मृगनयनी की प्रेम कहानी है। इस कृती में इतिहास, प्रेम, सौंदर्य आदि का अपूर्व मिश्रण कृती को उत्कृष्ट बना देता है। प्रेमचंद ने वर्माजी के इतिहास लेखन को शंका की दृष्टि से देखा था परंतू समय के परिप्रेक्ष्य में वर्माजी ने इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय करते हुए उत्कृष्ट रचनाओं का सृजन किया। उनकी सीमाओं का उल्लेख करते हुए मधुरेश ने कहा है,'' वर्मा जी सामंतवाद की ऐतिहासिक भूमिका के विरुध्द नहीं जाते। न ही वे सामान्यत: इतिहास में वस्तुपरकता का आग्रह छोड़कर पात्रों से उसके विरुध्द कुछ कहलवाते है। इतिहास की सीमाओं में ही वे सामंतवाद की सीमाओं का संकेत करते है। '' बकौल प्रियंवद मात्र इनके उपन्यासों को दुषित राष्ट्रीयता के प्रेषण का आरोप लगाते है– क्योंकि हिंदूत्ववाद का रास्ता साफ करने में ये काफी मद्दगार साबित हो चुके है जिससे आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता का जोर बढता गया। ''जिस आदमी के दिल में इस विचार के पनपने के लिए आवश्यक घृणा को जन्म देने में वर्षों लगते उसे इन ऐतिहासिक उपन्यासकारो ने बहुत शीघ्रता, विश्वासनियता और सुक्ष्मता के साथ मध्यवर्ग में आरोपित कर दिया। '' (हंस, में प्रकाशित लेख, पृ–३१) प्रेमचंद ने इसी कारण इनके उपन्यास पर शंका व्यक्त की थी।

चतुरसेन शास्त्री :– अनेक श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन करनेवाले शास्त्रीजी हिन्दी के बहुचर्चीत ऐतिहासिक उपन्यासकार है। उनकी प्रत्येक रचना का वैविध्य उन्हे अद्वितिय बना देता है। उन्होंने १२ ऐतिहासिक उपन्यासों का लेखन किया है। 'पूर्णाहुति' (खवास का ब्याह) (१९३२), 'वैशाली की नगर वधू' (१९४८), रक्त की प्यास (१९५१), देवांगना (मन्दिर की नर्तकी) (१९५१), सोमनाथ (१९५४), आलमगीर (१९५४), 'वयरक्षम:' (१९५५), सोना और खून (अपूर्ण) (१९५८), लाल पानी (१९५६), सहयाद्रि की चट्टानें (१९६१), बिना चिराग का शहर (१९६१), हरण निमंत्रण (रक्त की प्यास पर आधारित) (१९६१) आदि। परंतू इनमे से बहुचर्चीत उपन्यास है 'वैशाली की नगर वधू' जिसमें मगध सम्राट बिंबसार और नर्तकी आम्रपाली की प्रणय कथा है। दोनों बुध्द की ओर आकर्षित होने है। आम्रपाली अंत में उन्ही की शरण में जाती है। गणतंत्र प्रणाली तथा निरंकुश शासन साम्राज्य में नारी की दयनीय स्थिति तथा सामाजिक अंतर्विरोध को लेखक ने सामने लाया है।

'वय रक्षम:' एक प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारीत रचना है जिसमें आर्य–अनार्य संघर्ष में रावण की संस्कृति के प्रचार प्रसार के कारणों की खोज हुई है। 'सोमनाथ' में वे एक ओर महमुद गजनवी के मानवीय और राग–पक्ष को गहरी संवेदना के साथ अंकित कर सके है, वही वे जातिवाद और धार्मिक संकीर्णता के कारण विघटित होते राष्ट्र के प्रति भी अपनी चिंता प्रकट करते है। '' 'आलमगीर' औरंगजेब पर केंद्रित है। 'सोना और खून' एक बृहतकाय रचना थी पर दो ढाई भाग ही वे लिख पाये।

हजारी प्रसाद द्विवेदी :– 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (१९४६) और 'चारुचंद्र लेख (१९६३) 'पुनर्नवा' (१९७३), और 'अनाथदास का पोथा' (१९७६) महत्वपूर्ण उपन्यास है। बाणभट्ट की आत्मकथा चर्चीत कृती है। गोपाल राय ने इसके संबंध में कहा है,'' बाणभट्ट की आत्मकथा' का विजन प्रेम की संवेदना तक ही सीमित नहीं है। इसके भीतर राष्ट्रीय संकट का इतिहास बोध भी सन्निहित है। जिस समय यह उपन्यास लिखा गया था, भारत पराधीन था और द्वितीय विश्वयुध्द की विनाश नीता अपने चरम पर थी। उपन्यासकार की चेतना में भारत की परतंत्रता राष्ट्रीय संकट के रुप में विद्यमान थी जिसकी अभिव्यक्ति बाणभट्ट की आत्मकथा में, परोक्ष रुप में, हर्षवर्धन काल के राष्ट्रीय संकट के रुप में हुई है। महामाया भैरवी इस राष्ट्रीय संकट से मुक्ति के लिए नौजवानों और बुध्दिजीवियों को ललकारती है।' 'चारु चंद्र लेख' में १२ शती के उत्तरार्ध और तेरहवी शती के पूर्वार्ध का चित्रण है। यह उपन्यास राजा सातवाहन की आत्मकथा रुप में लिखा गया है। 'पुनर्नवा' ''सम्राट समुद्रगुप्त के युग की निंजधरी और लोककथाओं से बुना गया उपन्यास है। '' 'अनाथदास का पोथा' उपनिषदकालीन भारत की ऋषि परंपरा, संस्कृति पर रचा गया है।

यशपाल :– मार्क्सवादी दृष्टि से 'दिव्या' तथा 'अमिता इन दो ऐतिहासिक उपन्यासों का लेखन यशपाल ने किया है। 'दिव्या' बौध्दकालीन भारत में व्याप्त वर्णव्यवस्था, के धाटों में नारी दारुण कथा के व्यक्त करती है तो 'अमिता' सम्राट अशोक के कलिंग विजय युध्द की घटना पर रचा गया है।

राहुल सांकृत्यायन :– ने 'सिंह सेनापती' (१९४४), जय यौधेय (१९४४),'मधुर स्वप्न'(१९४९), विस्मृत यात्री (१९५४), और 'दिवोदास' (१९६१) आदि ऐतिहासिक उपन्यासों का लेखन किया है। 'सिंह सेनापती में वे 'गणतंत्र बनाम राजतंत्र' पर बहस करते है गणतंत्र की समतापूर्ण समाजव्यवस्था का आदर्श प्रस्तुत करते है। बौध्दकालीन भारत राहुलजी के उपन्यासों का आधार है। 'जय यौध्देय' भी इसी प्रकार की रचना है। 'विस्मृत यात्री' छठी शताब्दी के एक बौध्द भिक्षू और यायावर नरेन्द्र यश को केंद्र में रखकर रचा गया है। 'दिवोदास'से वैदिक आर्य संस्कृति को समझने के प्रयास में लिखी गई रचना है।

रागेय राघव :– के प्रसिध्द ऐतिहासिक उपन्यासों में 'मुर्दो का टीला' (१९४८), 'प्रतिदान' (१९५०), 'चीवर' (१९५१), 'अँधेरे के जुगनू' (१९५३), 'पक्षी और आकाश' (१९५७), 'राह न रनकी' (१९५८) आदि है। इनमें 'मुर्दों का टीला' में द्रविड सभ्यता का

अंकन है। ''उपन्यास में आर्यो को आक्रमणकारी, संहारक और अत्याचारी रुप में चित्रित किया गया है। इसमें 'कुलगणों' का विनाश और सर्वशक्तिमान राजा का उदय होते दिखाया गया है।'' 'अँधेरे के जुगनू' में दास प्रथा को बचाए रखने के लिए कुलीन वर्ग द्वारा एकतंत्र के स्थान पर गणतंत्र की स्थापना तथा वैश्य वर्ग और क्षत्रिय वर्ग के उन प्रयत्नों का चित्रण किया गया है जिनसे उन्होने ब्राह्मणों की सर्वातिशायी सत्ता को समाप्त करने में सफलता प्राप्त की थी। प्रतिदान में महाभारत युग में ब्राह्मण–क्षत्रिय संघर्ष तथा चीवर में हर्षवर्धन काल के ऱ्हासमान भारतीय सामंतवाद का चित्र प्रस्तुत किया है। '' राहुल, यशपाल और राघव ये तीन उपन्यासकार प्रगतीवादी है। उनमें सम्यवाद की प्रखर बौध्दिकता विहीत है।

इनके अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण लेखक है, जिन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे है, गोविंद वल्लभ पंत का 'सुर्यास्त' (१९२२), निराला का 'प्रभावती' (१९३६), ब्रजनंदन सहाय का 'विस्मृत सम्राट' (१९३६), मिश्रबंधुओं के तीन उपन्यास पुण्यमित्र, विक्रमादित्य और चंद्रगुप्त मौर्य (१९४५, ४६, ४७) अमृतलाल नागर का 'शतरंज के मोहरे' (१९५९), 'सात घुंघट वाला मुखडा (१९६८), बालशौरी रेड्डी का 'लुकमा' (१९६९), शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र काशिकेय' का 'बहती गंगा' (१९५२), गिरिधर गोपाल का 'चाँदनी के खंडहर' (१९५४) गिरिराज किशोर का 'पहला गिरमिटिया (१९९९), दक्षिण अफ्रिका में गांधीजी द्वारा चलाया गया सत्याग्रह आंदोलन की पृष्ठभूमी में लिखा गया है। शिवप्रसाद सिंह का 'दिल्ली दूर है' (१९९३), असगर वमाहत का 'सात आसमान' (१९९६) में मुगल साम्राज्य के पतन के दिनों अस्तित्व में आये नवाब सामन्तों की शानो शौकत फिजुलखर्ची, सनक और दीवानगी की इतिहास–कथा से आरंभ का धीरे–धीरे उनके टुटने और पशत होने की कथा कहीं गयी है। '' हाल ही में प्रियंवद का 'भारत विभाजन की अंतकथा' भी विभाजन की जासदी, सत्य, कारणों को सामने लाता है।

ऐतिहासिक उपन्यास ने इतिहास संबंधी विविध दृष्टिकोनों को सामने लाते हुए उसके संबंध में निरंतर नयी सोच–विचार को अंकित किया है। यह नैरंतर्य ही उपन्यास को अधिक निकट लाता है। कमलेखा का कितने पाकिस्तान जैसी रचना में इतिहास और कल्पना, फंतासी का प्रयोग आधुनिक यथार्थ को सामने लाने में सक्षम हुआ है।

नये–स्वर नये विमर्श/स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास

कुछ अन्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में मोहन राकेश का 'अंधेरे बन्द कमरे', 'अन्तराल', 'न आनेवाला कल', तथा स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में प्रकाशित निर्मल वर्मा का 'वे दिन', रिपोर्टर, उषा प्रियंवदा का 'पचपन खम्भे, लाल दीवारें, महेन्द्र भल्ला का 'एक पति के नोटस' कृष्ण सोबती का 'मित्रो मरजानी', राजेद्र यादव का 'शह और मात', धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का साँतवा घोडा', लक्ष्मीनारायण लाल का 'धरती की आँखे', 'बया का धोंसला और सांप', 'काले फुल का पौधा' और 'रुपजीवा' सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल, प्रभाकर माचवे का 'सांचा', लक्ष्मीकांत वर्मा का 'खाली कुर्सी की आत्मा' और 'टेरीकोट' तथा भारतभूषण अग्रवाल का 'लौटती लहरों की बाँसुरी आदि महत्वपूर्ण है। मनोविश्लेषण के साथ प्रयोगशील उपन्यासकारों की एक अन्तर्धारा चली आयी इन्ही में से डॉ. लाल, सक्सेना, माचवे, वर्मा, अग्रवाल आदि उपन्यासकारों ने औपन्यासिक

विन्यास में मोहभंग, ग्रामीण यथार्थ, शहरी अजनबीपन, खोखले होते मानवीय संबंधों को प्रयोग के व्यापक यथार्थ रुप में अभिव्यक्त किया है।

प्रगतीवादी, समाजवादी अथवा राजनीतिक उपन्यास :–

मार्क्सवाद का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर १९३० से ही परिलक्षित होता नजर आता है। राजनीति के क्षेत्र में जिसे हम मार्क्सवाद कहते है, साहित्य के क्षेत्र में प्रगतीवाद, समाजवाद मानते है। मार्क्सवाद ने धर्म, अंधश्रध्दा, अस्था, जड एवं खोखली परंपरा, आर्थिक विषमता, सामाजिक शोषण आदि का विरोध करते हुए उसका सामाधान दंद्वात्मक भौतिकवाद के सहारे वैज्ञानिक समाजवाद में परिणीत करने हेतू साहित्य को प्रगतीशील होने का अव्हान किया। और कलावादियों के दृष्टिकोन से कलात्मकता एवं कलाकार की हत्या हो गयी का स्वर बाद में उठाया गया। परंतू प्रगतीवाद के सामाजिक विभाजन, शोषण, आर्थिक विसंगतीयों पर निर्भय प्रहार कर उपन्यास को समाजोपयोगी विधा बनाया। और साहित्य परिवर्तन का साधन मानकर उसका उपयोग किया। इस प्रक्रिया में कुछ महत्वपूर्ण उपन्यास सामने आये।

राहुल सांकृत्यायन :–

राहुलजी पर बौध्द धम्म का प्रभाव था फिर भी उपन्यास लिखते समय बौध्दों की गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली को उन्होंने साम्यवादी बनाकर प्रस्तुत किया क्योकि उनपर १९१७ की रुसी क्रांती का प्रभाव गहरा था। 'बाईसवीं सदी' जिसे उपन्यास नहीं माना जाता, बकौल गोपाल राय। ''लेकिन घटनाओं और पात्रों की उपस्थिति के कारण यह फैंटेसी के रुप में लिखित उपन्यास ही है। '' जो ''मनुष्य के कल्याण, श्रम और भोग की समता के साथ एक वर्गमुक्त शोषणहीन समाज का सपना है, जो मानवीय श्रम और संघर्ष द्वारा यथार्थ में बदला जा चुका है। '' इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में मार्क्सवादी दृष्टि का विनियोग हुआ है। उनके उल्लेखनीय उपन्यासों में 'जीने के लिए' (१९४०), 'सिंह सेनापती' (१९४२), 'जय यौधेय' (१९४४), 'मधुर स्वप्न' (१९५०), 'विस्मृत यात्री' (१९५३) और 'दिवोदास' (१९६२) आदि। बौध्द धर्म की वैश्विक मानवतावादी, करुणा, समता, गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली का गहण विवेचन उनके उपन्यासों में हुआ है।

यशपाल :–

मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव क्रांतिक्रारी यशपाल पर रहा है। मार्क्सवादी राजनीति पर अपने विचारों को उपन्यास के माध्यम से प्रकट किया है। उनका पहला उपन्यास 'दादा–कॉमरेड' (१९४१) में प्रकाशित हुआ उसके बाद 'देशद्रोही' (१९४३), 'दिव्या' (१९४५), 'पार्टि–कॉमरेड' (१९४६), 'मनुष्य के रुप' (१९४९), 'अमिता' (१९५६), 'झूठा–सच'–दो भाग (१९५८–६०), 'बारह घंटे' (१९६३), 'अप्सरा का श्राप' (१९६५), 'क्यों फंसे' (१९६८), मेरी तेरी उसकी बात' (१९७३) आदि। मध्यवर्ग की आशा– आकांक्षाओं से यशपाल जुडे है। इसलिए उनके उपन्यासों में अंधविश्वास, नये–पुराने संस्कारों में संघर्ष, उलझन, नारी, शिक्षा, शोषण, मजदूरों, नौकरों की स्थिती, देश विभाजन की त्रासदी, राजनीति का वर्णन प्रमुखत: से उभरकर आया है। 'झुठा–सच' दो भागों में लिखा महत्वपूर्ण

उपन्यास है। जिसमें विभाजन के कारणों का विश्लेषण करते हुए देश का भविष्य कैसा होगा इसे व्यक्त किया है। साथ ही काँग्रेस पार्टी की नीतियों की आलोचना भी की गई है। देश–विभाजन के बाद उपजा भीषण नरसंहार', विस्थापितों की दुर्दशा मनुष्य में पनपती अमानवीयता की वृत्ती को सामने लाती है। यह उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। ' दिव्या' जैसा ऐतिहासिक उपन्यास है। जिसमें नारी की नियती, उसका स्वतंत्र अस्तित्व और तत्त्कालीन समाज के अन्तर्विरोध उभरकर आये है। '' इतिहास की पृष्ठभूमि पर नारी की नियति, युध्द और शांति एवं वर्ग संघर्ष की समस्याओं को अंकित किया है। '' विद्वानों ने इसे ऐतिहासिक रोमांस की संज्ञा दी है, बावजूद यह महत्त्वपूर्ण है। 'क्यों फंसे' में स्त्री पर पुरषाधिकार का विरोध है, तो 'बारह घंटे' में प्रेम का महत्व अंकित है तो, 'अप्सरा का शाप' में दुष्यंत के लम्पट, प्रवंचक और स्वार्थी रुप को सामने लाया है। 'मेरी तेरी उसकी बात' सन ४२ की क्रांती पृष्ठभूमि में व्यापक जनचेतना के प्रसार–प्रचार पर केंद्रित है।

नागार्जुन :–

ग्रामांचल को केंद्र में रखकर नागार्जुन ने गाँव जीवन का यथार्थ उपन्यासों द्वारा अभिव्यक्त किया है। अंचल से अधिक महत्त्व वे पात्रों के चित्रण, संघर्ष, मनोविज्ञान, परिवेश और उससे प्राप्त चेतना, प्रेरणा, दर्शन को सार्थक ढंग से उकेरा है। 'रतिनाथ की चाची' (१९४८), बलचनमा (१९५२), नई पौध (१९५३), बाबा बटेसरनाथ (१९५४), दु:खमोचन (१९५६), वरुण के बेटे (१९५७), कुंभीपाक (१९६०), हीरक जयंती (१९६१), उग्रतारा (१९६३), इमरतिया (१९६८), और 'जमनिया के बाबा' (१९७०) आदि महत्वपूर्ण उपन्यास है। उनकी रचनात्मक ऊर्जा मध्यवर्ग, दलित, किसान की संघर्षभरी गाथा प्रस्तुत करने में लगी है। इसलिए दु:खमोचन, वस्तुत: सभी का दु:खमोचक ही है। मिथिला की गंध उनमें रची–बसी है। नागार्जुन पुराने सडे हुए समाज के कुंभीपाक को समाप्त कर देना चाहते है और नये–समाज की रचना करना चाहते है। उनमें समाजवाद के प्रति बौध्दिक लगाव ही नहीं, हार्दिकता भी है। उनके प्रत्येक उपन्यास में नये समाज की संकल्पना निहित है। 'रतिनाथ की चाची' में कुलीन किन्तु निर्धन विधवा की करुण कहानी द्वारा अंचल समाज के अर्न्तविरोध को उजागर किया है। 'बलचनमा' मध्यवर्गीय किसान की पिडादायक कृती है। जो सतत अन्याय एवं अत्याचार के खिलाफ संघर्षरत है। नई पौध में असंगत अनभेल विवाह की समस्या को केंद्र में रखकर जर्जर सामाजिक मान्यताओं का विरोध करती है। ' बाबा बटेसरनाथ' एक पुराने बरगद के वृक्ष की रक्षा हेतू संयुक्त मोर्चा बनाकर अन्याय का विरोध करते है। 'वरुण के बेटे' में मछुआरों के साहसिक जीवन को रुपाकार देती है। 'उग्रतारा' में पुलिसिया बर्बरता को सामने लाते हुए स्त्री की यौन–शुचिता के मिथक को तोडता नजर आता है। नागार्जुन स्वंय में जनता का संघर्ष है, साहस, प्रेरणा, ऊर्जा, कटिबध्दता औरा नई पौध' की सृजना है।

रागेय राघव :–

रागेय राघव 'घरौंदा' (१९४६) को लेकर १८ वर्ष की आयु में ही आये और साथ में 'विषादमठ' भी लाये। इसमें बंगाल के ऐतिहासिक अकाल का जीवंत चित्रण आया है। गोपालराय का कहना है की, ''इसका शीर्षक बेकिमचंद्र चटर्जी के ''आनंदमठ' से प्रेरित था,

जिसका व्यंग्य यह था कि किस प्रकार बंगाल का 'आनंदमठ' 'विषादमठ' में परिवर्तित हो गया है। '' इसके बाद 'मुर्दों का टिला (१९४८), जो मोहन जोदडो की पृष्ठभूमि में, आर्य आक्रमण को आधार बनाकर लिखा गया है। ' इन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक, जीवन चरितात्मक, नाटों लोह पीटों केसमाज पर उपन्यास लिखे है। शहर और ग्राम जीवन पर समान संवेदना से वे लिख पाते है। शहर जीवन संबंधी, 'घरौंदे', 'विषांदमठ', 'हुजूर'(१९५१), 'सीधा–सारा रास्ता' जो भगवतीचरण वर्मा के 'टेढे–मेढे रास्ते' का उत्तर देते हुए लिखा गया है। 'राई और पर्वत'(१९५८) और 'छोटी–सी बात'(१९५९) आदि। ग्राम जीवन पर लिहे उपन्यासों में 'पथ का पाप'(१९५९), और 'अखिरी आवाज'(१९६२) महत्वपूर्ण है। नटों और लोंह पीटों के कबीताई समाज पर 'कब तक पुकारु'(१९५७) और 'धरती मेरा घर'(१९६०) उल्लेखनीय है। ऐतिहासिक परंपरा में ' मुर्दों का टिला' के बाद 'चीवर'(१९५१), 'अंधेरे के जुगनू'(१९५३), 'पक्षी और आकाश'(१९५७), 'और राह न सकी'(१९५८) महत्वपूर्ण है। जीवन चरितात्मक उपन्यासों में 'देवकी का बेटा' (१९५४), 'यशोधरा जीत गई'(१९५४), 'लोई का ताना(१९५४), 'रत्ना की बान'(१९५४), 'भारती का सपूत'(१९५४), 'लखिमा की आँखें'(१९५७), 'धूनी का धुँआ'(१९५९) आदि उल्लखनीय है।

'कब तक पुकारु' रेणू के बाद की सफल आँचलिक उपन्यास माना जाता है। जो दलित जीवन संवेदना को सशक्त रुप से सामने लाता है। उनके उपन्यासों में अभिजन या कुलीन वर्ग अपनी सत्ता और व्यवस्था को बनाये रखने हेतू प्रयत्न करते दिबाई देते है ऐसे में वर्ग संघर्ष अनिवार्य है, इसी को राघव ने उपन्यासों में चित्रित किया है। 'चीवर' जैसी रचना ब्राह्मण–बौध्द विचारों के संघर्ष की फलश्रुती है।

भैरवप्रसाद गुप्त :–

प्रगतिवादी आंदोलन के रचनात्मक सक्रिय लेखक के नाते उनका योगदान महत्वपूर्ण है। 'शोले'(१९४६), 'मशाल'(१९४८), 'गंगा मैया'(१९५२), 'जंजीरे और नया आदमी'(१९५५), 'सत्ती मैया का चौरा'(१९५९), 'धरती'(१९६२), 'आशा'(१९६३), 'कालिन्दी'(१९६३), 'रंभा'(१९६४), 'नौजवान'(१९७२), 'काशी बाबू'(१९८७), 'नौ जबान'(१९७४), 'भाग्यदेवता'(१९९२), और 'छोटी सी शुरुवात'(१९९७) आदि है। परंतू 'गंगा मैया' और 'सत्ती मैया का चौरा' को ही श्रेष्ठ माना जाता है। 'गंगा मैया' में दो किसान परिवार की शत्रूता, विद्वेष, पुलिस तंत्र और समाज में विधवा स्त्री की स्थिति को केंद्र में रखा है और 'सत्ती मैया का चौरा' जमीनदारी व्यवस्था के कारण होनेवाले अन्याय, अत्याचार, शोषण के साथ उसके विरुध्द किसानो का संघर्ष को अभिव्यक्त किया है। साथ ही गांव जीवन के मिले अभिशापी नेताओं, सरकारी तंत्र, पण्डे और पुरोहित, शिक्षा संस्थान आदि का अंकन किया है।

अमृतराय :–

'बीज' इनका पहला उपन्यास है। 'हाँथी का दाँत '(१९५६), 'नागफ़नी का देश', 'सुखदुःख'(१९६९), 'भटियाली'(१९६९), 'जंगल'(१९६९), और 'धुँआ'(१९७७) आदि महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे है।

११.३ बोध प्रश्न :–

१. हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा को रेखांकित कीजिए।

२. हिन्दी उपन्यास विकास क्रम की चर्चा कीजिए।

हिन्दी गद्य विधाएँ

कहानी

नाटक

निबंध

लेखक – डॉ. पी. के. धुमाळ

१२

हिन्दी कहानी : उद्‌भव और विकास

१२.० ईकाई की रूपरेखा

१२.१ इकाई का उद्देश्य

१२.२ प्रस्तावना

१२.३ हिन्दी कहानी का विकास

१२.४ बोध प्रश्न

१२.१ उद्देश्य :-

पाठ्यक्रम में निर्धारित कहानी का उद्‌भव और विकास का विस्तृत अध्ययन करना इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है। इस इकाई के अध्ययन के दौरान हिन्दी कहानी के विकास में प्रेमचंद पूर्व कहानी, प्रेमचंदयुगीन कहानी, प्रेमचन्दोत्तर कहानी और नई कहानी का विस्तृत अध्ययन विद्यार्थी कर सकेंगे।

१२.२ प्रस्तावना :-

हिन्दी साहित्य में कहानी का उद्‌भव कुछ विलम्ब से हुआ है। जिन कहानीकारों ने कहानी के क्षेत्र में पदार्पण किया उससे कहानी के विकसित होने के साथ साथ कहानीकारों को भी प्रतिष्ठा मिली। क्योंकि कथा, आख्यान और पौराणिक गाथाओं कों कहानी का प्रारूप माना गया। कहानी का यही स्वरूप वाचक के लिए मनोरंजन और उपदेश का कार्य करता है।

१२.३ हिन्दी कहानी का विकास

हिन्दी कहानी की पूर्व पीठिका : हिन्दी कहानी का वास्तविक प्रारंभ भारतेंदु काल के उपरान्त २० वी शती के आरम्भ मे हुआ। इस युग से पूर्व 'बैताल पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी' आदि कथाओं का संस्कृत से अनुवाद किया गया था। कुछ लोग गोकुलनाथ की 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' को हिन्दी की पहली गद्य-कहानियों का संग्रह मानते है। जिसमें प्रमुख कृष्णभक्त वैष्णवों का जीवन-चरित दिया गया है। परन्तु इन्हे कहानियाँ न मानकर पुरानी शैली के जीवन-चरित मानना ही अधिक उचित है। लल्लु लालजी, सदल मिश्र, इंशाअल्ला खाँ के ग्रन्थ एक प्रकार से विभिन्न कथाओं के संग्रह मात्र माने जा सकते है। अगर 'कहानी' शब्द मात्र से कहानी का अर्थ लिया जाए तो 'रानी केतकी की कहानी' हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी मानी जानी चाहिए। इसमें कथा को छोडकर कहानी के अन्य तत्त्वों का अभाव है। इसी प्रकार राजा-शिवप्रसाद 'सितार-ए-हिन्द' द्वारा लिखित 'राजा भोज का सपना' तथा 'वीरसिंह वृतान्त' को भी पूर्ण रूप से कहानी नही माना जाना चाहिए क्योंकि इसमे चरित्र-

चित्रण और कथोपकथन का अभाव है। भारतेंदु युग के अन्त मे उपन्यास तो लिखे जाने लगे थे परन्तु कहानियाँ लिखना आरम्भ न हो पाया था। उपन्यासो की भाँति भारतेंदु युग में बँगला, मराठी और अंग्रेजी से कुछ कहानियों का अनुवाद अवश्य किया गया था।

हिन्दी कहानी के विकास का अध्ययन करने के लिए हम कथा सम्राट मुंशी प्रेमचन्द को यदि केन्द्र–बिन्दु मान लें तो उसे चार भागों में विभाजित कर सकते हैं :–

हिन्दी कहानी का विकास

प्रेमचन्द पूर्व कहानी | प्रेमचन्द युगीन कहानी | प्रेमचन्दोत्तर कहानी | नई कहानी (स्वातंत्र्योत्तर कहानी)

अ) प्रेमचन्द पूर्व कहानी :–

हिन्दी मे सर्वप्रथम कहानी लाने का श्रेय 'सरस्वती' मासिक पत्रिका को ही है। इसमें सबसे पहले किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' नामक कहानी प्रकाशित हुई। गिरिजाकुमार घोष ने 'पार्वतीनन्दन' उपनाम से बँगला की अनेक कहानियों का हिन्दी में भावानुवाद किया। 'बंग महिला' नामक एक महिला ने कूछ मौलिक कहानियाँ लिखी, जिसमें 'दुलाईवाली' कहानी प्रसिद्ध है। इसी समय से श्री भगवानदास ने 'प्लेग की चुडैल', रामचन्द्र शुक्लजी ने 'ग्यारह वर्ष का समय' तथा गिरिजादत्त वाजपेयी ने 'पंडित और पंडितानी' नामक कहानियाँ लिखी। इनमें से मार्मिकता की दृष्टि से 'इन्दुमती', 'ग्यारह वर्ष का समय' तथा 'दुलाईवाली' ही हिन्दी की मौलिक साहित्यिक कहानियाँ मानी जा सकती है। आ. शुक्लाजी 'इन्दुमती' को हिन्दी की पहली सर्वश्रेष्ठ कहानी मानते है। इन्ही सभी कहानियों से हिन्दी कहानी साहित्य का आरम्भ हुआ है। इसके उपरान्त जयशंकर प्रसाद ने 'इन्दु' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया, जिसने हिन्दी कहानी के स्वस्थ विकास मे महत्त्वपूर्ण योग दिया। इसी पत्रिका में प्रसाद की प्रथम कहानी 'ग्राम' सन् १८११ मे प्रकाशित हुई। हास्यरस की कहानियाँ लिखने वाले जी. पी. श्रीवास्तव की पहली कहानी 'इन्दु' मे सन् १८११ में प्रकाशित हुई। इसी समय प. विश्वम्बर नाथ शर्मा ने भी कहानी लिखना प्रारम्भ किया। उनकी पहली कहानी 'रक्षा बन्धन' सन् १८१३ मे सरस्वती मे छपी। इसी प्रकार राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की पहली कहानी 'कानों में कंगना' सन् १८१३ में 'इन्दु' में प्रकाशित हुई। अस्तु।

'इन्दु' का योगदान – हम कह सकते है कि आधुनिक कहानी के स्वास्थ रूप की परम्परा 'इन्दु' के प्रकाशन के साथ सन् १८११ से आरम्भ होती है। 'इन्दु' ने एक ओर नवीन कहानीकारों को प्रोत्साहन प्रदान किया और, दूसरी ओर उसके कारण कहानी की कला में सुधार हुआ, साथ ही कहानी के उद्देश्य सामने आये।

हिन्दी कहानी का भाग्य प्रसाद के इस क्षेत्र मे पदार्पण करते ही चमक उठा। सन् १९११ में उन्होंने 'इन्दु' नामक पत्रिका मे अपनी 'ग्राम' कहानी छपवाई। इसके उपरान्त उनकी अनेकानेक उच्च–कोटि की कहानियाँ प्रकाशित हुई जिनमें आकाशद्वीप, छाया, प्रतिध्वनि आँधी, बिसाती, इन्द्रजाल, स्वर्ग के खण्डहर आदि कहानियाँ हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि

मानी गई। प्रसादजी की कहानियों ने कौतुहल की प्रधानता है। इनकी ओजपूर्ण संस्कृत–निष्ठ शैली कथा के अनुरुप उचित वातावरण उत्पन्न कर उसके प्रभाव को अत्यधिक धनीभूत बना देती है। अन्तर्द्वंद्व और भावानुकूल प्रकृति चित्रण इनकी विशेषता है। चरित्र–चित्रण, कथोपकथन आदि के कलात्मक रूप ने इनकी कहानियों में अपूर्व नाटकीयता, रमणीयता का समावेश कर दिया है। इन कहानियों का आरम्भ अद्‌भुत नाटकीयता के साथ होता है। परन्तु प्रसाद कहानी को जनवादी रूप प्रदान करने में असमर्थ रहे थे। अपनी संस्कृत–निष्ठ प्रांजल शैली और विशिष्ठ कथ्य के कारण उनकी कहानियाँ विशिष्ठ पाठक–वर्ग तक ही सीमित होकर रह गई। हास्यरस–सम्राट जी. पी. श्रीवास्तव ने भी इसी समय हास्यरस प्रधान कहानियाँ लिखना आरम्भ किया और अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त की। राजा राधिकारमण प्रसादसिंह की 'कानों में कँगना' नामक कहानी भी अत्यन्त लोकप्रिय हुई। विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की पहली कहानी 'रक्षाबन्धन' सन् १९११ में 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुई। कौशिक की कहानियों में पारिवारिक जीवन का चित्रण विशेष रूप मे हुआ है। इनका पारिवारिक जीवन का अध्ययन, निरीक्षण, मनन गम्भीर और सूक्ष्म था। उनकी 'ताई' नामक कहानी– इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस युग के कहानी लेखकों में ज्वालादत्त शर्मा और चतुरसेन शास्त्री के नाम भी उल्लेखनीय है। सन् १९१५ में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की प्रथम कहानी 'उसने कहा था' प्रकाशित हुई। यह कहानी पवित्र प्रेम के लिए किये गए नि:स्वार्थ बलिदान की कहानी है। शुक्लजी के शब्दों में ''इसमे यथार्थवाद के बीच सुरूचि की चरम मर्यादा के भीतर भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यन्त निपुणता के साथ संपुटित है। ...... इनकी घटनाएँ बोल रही है, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नही।'' इस कहानी ने गुलेरीजी को अमर बना दिया है। हिन्दी की यही सबसे पहली सर्वांगपूर्ण यथार्थवादी कहानी है जो कला के प्रत्येक अंग पर खरी उतरती है। वस्तुत: 'उसने कहा था' से ही हिन्दी–कहानी का वास्तविक विकास मानना चाहिए।

ब) प्रेमचंद युग :

मुंशी प्रेमचंद आरम्भ मे उर्दू में कहानियाँ लिखते थे, जिनमे राष्ट्रीय भावना का उन्मेष रहता था। 'सोजे वतन' (सन १९०७ में प्रकाशित) उनका पहला उर्दू में लिखा बहुचर्चित कहानी संग्रह था। उसमें व्यक्त तीखी राष्ट्रीय भावना से नाराज होकर अंग्रेज सरकार ने उसे जब्त कर लिया था। इसके बाद प्रेमचंद ने हिन्दी मे कहानियाँ लिखना प्रारंभ किया था। हिन्दी कहानी के द्वितीय उत्थान के अन्तिम चरण मे सामायिक, सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण करनेवाली प्रेमचंद की कहानियाँ प्रकाश मे आई थी। प्रेमचंद के इस क्षेत्र में आने से हिन्दी–कहानी–साहित्य में एक अपूर्व परिवर्तन आ गया। इससे पूर्व कुछ सीमा तक हमारा कहानी साहित्य दूसरे साहित्यिको के ऋण से अपना काम चलाता आ रहा था। प्रेमचंद ने आकर उसे स्वावलम्बी बनाया। उनके सम्मुख कहानी–कला के रूप और वस्तु दोनो की समस्याएँ थी इनके निराकरण के लिए उन्होंने विभिन्न साहित्य की कहानी–रचना–विधियों का अध्ययन कर स्वयं अपनी कहानी–कला के शिल्प का निर्माण किया और उसे चरम विकास तक पहुँचाया। वे जनता के लेखक थे। अपनी कहानियों द्वारा उन्होंने सहस्त्रों मूक और हीन–दीन किसानों और मजदूरों का प्रतिनिधित्व किया, जो पहले साहित्य में अछूत माने जाते थे। उनकी कहानियाँ

प्राय: घटना–प्रधान है। उनका सांसारिक जीवन का ज्ञान अत्यन्त विस्तृत और सूक्ष्म था। इसी से वे अपनी कहानियो में हमारी सामायिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं एवं आन्दोलनों का सफल चित्रण करने मे सफल हो सकें। 'कामना तरु', 'आत्माराम', 'कफन', 'पूस की रात', 'शतरंज के खिलाडी', 'बडे घर की बेटी', आदि उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों मे से है। चरित्र–चित्रण, कथा–वर्णन, वातावरण निर्माण, उद्देश्य की सफल अभिव्यक्ति. कथोपकथन आदि की दृष्टिसे विश्व की सर्वश्रेष्ठ कलात्मक कहानियो के समकक्ष रखी जा सकती है। हिन्दी प्रेमचंद की कहानियाँ पाकर गौरवान्वित हुई है।

इस प्रकार इस युग मे प्रसाद स्कूल तथा प्रेमचंद स्कूल की कहानियाँ दिखाई देती है। दोनोने उच्चकोटि की कलात्मक कहानियाँ प्रदान की। प्रसाद स्कूल की कहानियाँ आगे विकसित नही हो सकी, किन्तु प्रेमचंद स्कूल की कहानियाँ 'सामान्य जन–जीवन के प्रतिबिम्ब' के कारण आज भी विकास पा रही है। कुछ उत्साही लेखकों का समुह कथा–साहित्य के क्षेत्र में उज्ज्वल नक्षत्र के समान उद्दीप्त हो उठा, जिनमे सुदर्शन, प.पु. बख्शी, शिवपूजन सहाय आदि उल्लेखनीय थे। सुदर्शन एक प्रकार से प्रेमचंदजी के उत्तराधिकारी माने जाते है। बख्शीजी ने कुछ भावात्मक कहानियाँ लिखने के बाद इस क्षेत्र को त्याग दिया।

प्रथम महायुद्ध ने भारतीय जन–जीवन को विचलित कर दिया। कुछ अन्य लोगों ने अलग–अलग प्रकार की कहानियाँ लिखी। जैसे 'हृदयेश' जी ने कुछ भावात्मक संस्कृतनिष्ठ शैली की कवित्वपूर्ण कहानियाँ लिखी। हिन्दी के लगभग सभी उपन्यासकारों ने कहानियाँ लिखी। कुछ कवियों ने भी कहानियाँ लिखी है, जैसे पंत, निराला, महादेवी, भगवतीचरण वर्मा आदि। जो कला और प्रभाव की दृष्टिसे बहुत ही सुन्दर कहानियाँ मानी गई है। – इस को प्रसाद–प्रेमचन्द्र युग कहा जाता है। प्रसादजी ने कुल मिलाकर ७० कहानियाँ लिखी। इनकी कहानियाँ भाव और शैली की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखती है। प्रेमचन्दजी ने लगभग २२५ कहानियाँ लिखी जिनमें जीवन के विविध अंगो पर प्रकाश डाला गया तथा कथानक समाज के मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग के जीवन से लिये गए। इस प्रकार कहानी साहित्य का यह उत्थान सामाजिक तथा आदर्शवादी दृष्टिकोण लेकर आया। इस युग के अन्य प्रमुख कहानीकार है – विनोदशंकर व्यास, रामकृष्णदास, चण्डी प्रसाद हृदयेश, चतुर सेन शास्त्री, वाचस्पति पाठक, विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' सुदर्शन, जेनेन्द्र कुमार, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' यशपाल, भगवती प्रसाद बाजपेयी, शिवपूजन सहाय, पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी आदि।

क) प्रेमचन्दोतर युग :

प्रेमचन्द के बाद के युग के कहानीकार पश्चिम के दो चिन्तको. कार्ल मार्क्स तथा फ्रायड से विशेष रूप से प्रभावित हुए। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कहानी के पात्र किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व नही करते है। वे व्यक्ति के रूप में किसी न किसी मनोवैज्ञानिक समस्या से ग्रस्त एवं मस्त दिखाई देते है। इस प्रकार की कहानी लिखने वालों में प्रमुख नाम है – जैनेन्द कुमार, रांगेय राघव, अज्ञेय तथा इलाचन्द जोशी। वैसे ये कहानीकार अपनी पूर्ववर्ती प्रसाद प्रेमचन्द्र परम्परा से भी सम्बद्ध दिखाई देते है। इस युग में दूसरे प्रकार के वे कहानीकार है जिन्होने प्रेमचन्द परम्परा को गतिमान किया। इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय नाम है – यशपाल, उपेन्द्र नाथ 'अश्क', चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, विष्णू प्रभाकर, अमृतलाल नागर,

भगवती चरण वर्मा, वृन्दावन लाल वर्मा आदि।

समाजवादी दृष्टिकोण से प्रभावित हिन्दी के अनेक कहानीकारों ने सामाजिक विसंगतियों को यथार्थपरक शैली में प्रस्तुत किया है। जैनेन्द्र एवं अज्ञेय का अधिक ध्यान सूक्ष्म चित्रवृत्तियों पर केन्द्रित था, जबकि समाजवादी लेखकों ने स्पष्ट रूप से समस्याओं का उद्घाटन किया है। मार्क्सवादी समाजवादी यशपाल ने अठारह कहानी संग्रह हिन्दी जगत् को दिये। यशपाल के लिए कहानी 'केवल मनोरंजक घटनाचक्र या विवरण नही है' अपितु विचार की पुष्टि के लिए चूना एवं बुना गया दृष्टान्त है। यशपाल के पात्र, खूँटो पर टँगे हुए सत्य है। कुछ कहानियाँ ऐसी भी है जिनके पात्र लेखक पर हावी हो गये और उसके नियन्त्रण से बाहर हो जीवन की सीधी–सच्ची बात कहते है। यशपाल एक क्रान्तिकारी प्रगतिवादी लेखक थे। लेखन उनके लिए आजीविका का साधन भी था और क्रान्ति का वाहक भी। उन्होंने समाज की गली–सड़ो मान्यताओं पर बडे तीखे प्रहार किये। पिंजरे की उड़ान, वो दुनिया, तर्क का तुफान, फूलों का कुरता, उत्तमी की माँ आदि इनके प्रसिद्ध कहानी–संग्रह है। यशपाल की कहानियाँ उद्देश्यपरक, साफ–सुथरी और सशक्त है। मक्रील उत्तराधिकारी, चित्र का शीर्षक, प्रतिष्ठा का बोझ, एक प्याला, तुफान का दैत्य आदि इनको बहुचर्चित कहानियाँ है।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार को कहानियाँ मे सामाजिक सरोकारों का चित्रण प्रभावी ढंग से हुआ है। चन्द्रकान्ता, भय का राज्य, अमावस आदि इनके उल्लेखनीय कहानी–संग्रह है। विद्यालंकार की बाद की कहानियाँ प्रतीकात्मक है, जबकि पहले की कहानियाँ प्रेमचन्द्र परम्परा का अनुसरण करती है।

उपेन्द्रनाथ अश्क के अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हुए है, जिनमें वे मध्यवर्गीय समस्याओं को उठाते हुए स्थितियों पर व्यंग्य करते चलते है। इससे रचनाओं की प्रासंगिकता एवं पाठकीय रुचि उनके साथ जुड़ जाती है। डाची, आकाशवाणी, काकडा का तेली इनकी बहुचर्चित कहानियाँ है।

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित इस परम्परा के अन्य लेखको में रांगेय राघव, अमृत राय, मनमथनाथ गुप्त, भैरव प्रसाद गुप्त के नाम अग्रगण्य है। रांगेय राघव की कहानी 'गदल' एक अविस्मरणीय रचना है, जो एक गूजर स्त्री के पुरूष व्यक्तित्व एवं स्नेहिल जीवन की स्वच्छ धारा को रेखांकित करती है।

स्वतन्त्रतापूर्व रचनाकारों में बहुत–से ऐसे कहानीकार भी है, जो मार्क्सवादी नही है अपितु, सदाशय वृत्तियों का प्रतिपादन करते है। भगवतीचरण वर्मा ऐसे ही कहानीकार है। इनकी कहानियाँ इतिवृत्तात्यक शैली की है। 'प्रायश्चित' इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कहानी है। गांधीवादी साहित्यकार विष्णू प्रभाकर की कहानियाँ सामाजिक सत्य को उद्घाटित करनेवाली उद्देश्यपरक कहानियाँ है। आम आदमी का दर्द इनकी कहानियों में एकाएक साकार हो उठता है। धरती अब भी घूम रही है, गृहस्थी, रहमान का बेटा, ठेका, जज का फैसला इनकी चर्चित कहानियाँ है।

द्विजेन्द्रनाथ निर्गुण की कहानियाँ भावुक यथार्थ की रचनाएँ है। राधाकृष्ण की कहानियाँ व्यंग्य के तीखेपन के लिए ज्ञात है। 'रामलीला' ऐसी ही कहानी है।

महिला लेखकों में सुभद्राकुमारी चौहान की कहानियाँ सामाजिक यथार्थ की कहानियाँ है। इनके प्रमुख कहानी–संग्रह–है–बिखरे मोती और उन्मादिनी। नारी की समस्याएँ तथा भारतीय

सन्दर्भ इनकी कहानियों में एकाएक मुखरित हो उठते है। इनकी 'पापी पेट' कहानी बहुचर्चित रही है। शिवरानी देवी की कहानियाँ 'कौमुदी' में संकलित है, जो उनके पति प्रेमचन्द्र की परम्परा का अनुसरण करती है। उषादेवी मिश्रा की कहानियाँ भावुकतापूर्ण है। मिश्र कहाँ, गोधुलि, मन का मोह आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ है।

द्वितीय चरण में और भी कतिपय कहानिकार रहे है परन्तु अधिकांश ने प्राय: कहानी के उस स्वरूप को ही अपनाया है जो प्रेमचन्द्र, जैनेन्द्र अथवा अज्ञेय ने प्रसारित किया। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की कहानियाँ वस्तुत: एक कवि हृदय की कहानियाँ है।

इस युग के अन्य उल्लेखनीय कहानीकार है, उमा नेहरु, शिवरानी देवी, उषादेवी मिश्रा, कमलादेवी चौधरी, शिवनाथ शर्मा, कृष्णदेव प्रसाद, गोरे बेडब बनारसी, अन्नपूर्णानन्द, अजीम बेग चूगताई, मोहन राकेश आदि।

ड) नई कहानी :-

स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी कहानी को नए भारतीय परिवेश को प्रकट करने का सशक्त माध्यम बनाया गया और उसमे भाषा-शैली की विविधता आई। फलत: सन् १८५० के आस-पास नयी कहानी के आन्दोलन की शुरुवात हुआी और कहानी का नामकरण नयी कहानी कर दिया गया।

नयी कहानी की प्रमुख विशेषता है – समाज के विभिन्न वर्गो एवं जीवन पक्षों का सूक्ष्म चित्रण। इस चित्रण मे भाषा सम्बन्धी परिवर्तन भी आ गये। सामाजिक सम्बन्धो मे अलगाव एवं विखराव तथा व्यक्ति की विभिन्न मन:स्थितियों का चित्रण अनेक कहानियों में मिलता है।

सन् १९६० के बाद की कहानियों का एक वर्ग आँचलिक कहानी के नाम से सामने आया। यह नामकरण उन कहानियों के लिए सार्थक हुआ जिनमे क्षेत्र विशेष की आधारभूत समस्याओं को स्थानीय भाषा भेद के साथ चित्रित किया गया। इन कहानियों में नव विकसित कस्बो की मनोवृत्तियोंको बड़ी ही मार्मिकता के साथ चित्रित किया गया। इन कहानियों में समाज के विभिन्न वर्गों में व्यक्त विशेषकर शासक-प्रशासक वर्ग में व्याप्त कमजोरियों का पर्दाफाश किया गया। अनेक हास्य-व्यग्य प्रधान कहानियाँ भी लिखी गई।

नयी कहानी के प्रमुख लेखकों में निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, कृष्ण बलदेव वैद, रमेश बख्शी, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, शेखर जोशी, अमरकान्त, मार्कण्डेय, नरेश मेहता, ज्ञानरंजन, राजेन्द्र अवस्थी, रवीन्द्र कालिया, अनीता औलक के नाम उल्लेखनीय है।

निर्मल वर्मा की कहानियाँ मौन होकर भी मुखर है। काव्यात्मकता, अस्पष्ट अभिव्यंजना, हेमिंग्वे सी संकेतात्मकता इनकी कहानियाँ के विशिष्ट गुण है। इनके प्रतिनिधि कहानी-संग्रह हैं – परिन्दे, जलती झाड़ी, पिछली गर्मियों में, बीच बहस में, कव्वे और काला पानी आदि। निर्मल वर्मा अनेक वर्षों तक विदेशों में रहे हैं. इसलिए पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है।

मोहन राकेश की कहानियों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की विडम्बना, शहरी जीवन की

कृत्रिमता, दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन की विसंगतियाँ चित्रित हुई हैं। इनके प्रमुख कहानी–संग्रह हैं : ईन्सान के खण्डहर, नये बादल, जानवर और जानवर, एक और जिन्दगी आदि। मलबे का मालिक, मवाली, जख्म, परमात्मा का कुत्ता, मिस पाल आदि इनकी बहुचर्चित कहानियाँ हैं। इनमें घोर यथार्थ का चित्रण व्यंग्य के स्तर पर हुआ है।

कमलेश्वर की कहानियों में कस्बाई मनुष्य के महानगर में पहुँचने से उत्पन्न अकेलापन, सूनापन, घबराहट तथा अजनबीपन झलकता है। इनकी कहानियों में विकास के विविध आयाम दृष्टिगोचर होते है। 'देवा की माँ' में यदि पुरानी पीढ़ी के जीवन का चित्रण है, तो 'नीली झील' में मानवीय व्यवहार एवं आकांक्षा के अनेक पहलू उजागर होते दिखाई देते हैं। व्यक्ति मन में एक चाह का चित्रण नीली आँखों और झील के नीले पानी के माध्यम से उभरता है। मांस का दरिया, मानसरोवर के हंस, राजा निबंसिया कमलेश्वर की महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं।

राजेन्द्र यादव औपन्यासिक चेतना के कहानीकार हैं तथा वह कहानी को उपन्यास के निकट ले जाने का प्रयत्न करते हैं। यादव व्यापक सामाजिक सन्दर्भों के कहानीकार हैं तथा अस्पष्ट एवं अप्रत्यक्ष कथन के माध्यम से कहानी का ताना–बाना बुनते हैं। जहाँ लक्ष्मी कैद है, अभिमन्यु की आत्मकथा, छोटे–छोटे ताजमहल, किनारे से–किनारे तक, प्रतीक्षा, टूटना और अन्य कहानियाँ, अपने पार आदि इनके प्रमुख कहानी–संग्रह हैं।

भीष्म साहनी प्रगतिशील चेतना के ऐसे कहानीकार हैं जो परम्परागत मूल्यों का, विघटन से उत्पन्न स्थितियों का समस्यापरक चित्रण करते हैं तथा एक मौन परन्तु प्रभावशाली दिशा देने का प्रयत्न करते हैं। इनके प्रतिनिधि कहानी–संग्रह हैं – पहला पाठ, भटकती राख, शोभा यात्रा, निशाचर आदि। चीफ की दावत, कठघरे,मेड इन इटली आदि कहानियाँ नयी कहानी के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

स्वातंत्रोत्तर युग में कई कहानी आन्दोलन सक्रिय हुए, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं –

✶ सचेतन कहानी

नयी कहानी की प्रतिद्वन्द्विता में उभरा 'सचेतन कहानी' आन्दोलन। कतिपय समीक्षकों का मानना है कि सचेतन कहानी का नारा उन कहानीकारों के द्वारा लगाया गया, जिनका नाम 'नयी कहानी' के कर्णधारों और शिला–स्तम्भों की श्रेणी में आने से छूट गया था। इनमें आनन्द प्रकाश जैन, महीप सिंह, राजीव सक्सेना तथा श्याम परमार के साथ–साथ मनहर चौहान, योगेश गुप्त, वेद राही, सुखबीर, जगदीश चतुर्वेदी, हिमांशु जोशी, धर्मेन्द्र गुप्त, हृदयेश आदि कहानीकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

सचेतन कहानी के सूत्रधार आनन्द प्रकाश जैन एवं महीप सिंह है। डॉ. महीप सिंह ने सन् १९६४ में बीस सचेतन कहानियों का एक सचेतन कहानी विशेषांक निकाला था। डॉ. महीप सिंह ने सचेतन कहानी को इस प्रकार परिभाषित किया है। ''सचेतनता एक दृष्टि है। वह दृष्टि जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है। अपने सक्रान्ति काल में चाहे हमें अपना जीवन अच्छा लगे या बुरा लगे... परन्तु जीवन सें हमारी सम्पृक्ति टूटती नही। मनुष्य की प्रकृति जीवन से भागने की नहीं रही हैं। जीवन की ओर भागना ही उसकी नियति है। और जब जीना ही उसकी नियति है तो वह कैसे जिये ? दृष्टि की सचेतना शायद इसका उत्तर है।''

✶ सहज कहानी

'सहज कहानी' के आरम्भिक प्रवर्तक अमृत राय हैं। सातवें दशक के प्रारम्भ में कविता की तर्ज पर अमृतराय ने 'सहज कहानी' शब्द का प्रयोग किया और घोषित किया कि कहानी का लक्ष्य अपने कहानीपन को खोकर जीवन की प्रस्तुति सहज रुप में करते हुए जीवन से कटु सत्यों और व्यवस्था की भ्रष्टता को उजागर करना है।

✶ सक्रिय कहानी

सहज कहानी आन्दोलन में अमृतराय अकेले पड़ गये। न तो उन्होंने कोई गुट बनाकर अपना विचार प्रतिपादित किया और न ही उन्हें किसी पत्रिका को सम्पादकीय बैसाखियाँ मिली। यही बात राकेश वत्स द्वारा प्रतिपादित 'सक्रिय कहानी' के सन्दर्भ में भी कही जा सकती है।

इस कहानी–परम्परा के रचनाकारों में रमेश बतरा, सुरेन्द्र सुकुमार, राकेश वत्स, सच्चिदानन्द धूमकेतु, कुमार सम्भव आदि के अतिरिक्त श्रवणकुमार, भीष्म साहनी, मणि मधुकर के नाम भी सम्मिलित किये गये हैं।

✶ अ–कहानी

जिस प्रकार कविता में क्रमश: नयी कविता के पश्चात् 'अकविता' का आगमन हुआ, लगभग उसी प्रकार कहानी में भी नयी कहानी के बाद 'अकहानी' का प्रादुर्भाव हुआ। नयी कहानी और नयी कविता का व्यक्तिनिष्ठ यथार्थवाद अकविता और अ–कहानी में आकर घोर व्यक्तिवाद, अति यथार्थवाद और उच्छृंखल यौनवाद में परिवर्तित हो गया। इस आन्दोलन से जुड़े हुए कहानीकारों में प्रमुख हैं – गंगा प्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, दूधनाथ सिंह आदि।

अ–कहानियों में अधिकांश कहानियाँ स्त्री–पुरुष के प्रेम–सम्बन्धों को ही चित्रित करती हैं। अ–कहानी के अन्तर्गत मूड या क्षण की कहानियाँ आती हैं।

✶ समान्तर कहानी

अ–कहानी की भोगवादी प्रवृत्तियों की अतिशयता को लक्ष्य बनाते हुए कमलेश्वर ने धर्मयुग में 'ऐयाश प्रेतों का विद्रोह' शीर्षक से लेखमाला के अन्तर्गत अ–कहानी के रचयिताओं की थोथी दाशंनिकता को उखाड़ फेंकने का नारा बुलन्द किया। समानान्तर का विचार–बीज तो सन् १९७१ में ही बोया गया था परन्तु सन् १९७४ तक पहुँचते–पहुँचते कमलेश्वर ने उसे 'सारिका' के माध्यम सें प्रचारित समय के लिए कहानी भीथरी हो गयी। कामतानाथ, मधुकर सिंह इब्राहिम शरीफ, श्रवण कुमार, निरुपमा सेवती, मृदुला गर्ग आदि इस धारा के वरिष्ठ कहानीकार है।

✶ आँचलिक कहानी

अनेक प्रकार के कहानी आन्दोलनों के समानान्तर 'आँचलिक' कहानी भी अपनी चाल एवं अपनी मस्ती से बराबर गतिशील है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने आँचलिक कहानी को इस प्रकार स्पष्ट किया है – ''आँचलिक वे ही काहानियाँ कही जा सकती है, जो किसी जनपद के जीवन रहन–सहन, भाषा मुहावरे, को चित्रित करना ही अपना लक्ष्य मानें। आँचलिक तत्त्व ही उनके साध्य होते है।''

सन् '५० से आँचलिक कहानी लिखी जाती रही है और यह परम्परा निरन्तर प्रवहमान है क्योंकि यह कोई चकाचौंध उत्पन्न कर समाप्त होने वाला आन्दोलन नही है बल्कि यह तो ग्रामीण परिवेश की धड़कनों को चित्रांकित करने वाला अनुशासन है। तीसरी कसम, ठुमरी, रसप्रिया, लाल पान की बेगम (फणीश्वरनाथ रेणु), हंसा जाई अकेला, सूर्या, माही (मार्कण्डेय), बिन्दा महाराज, मुरदा सराय (शिव प्रसाद सिंह), कपिला, हारा हुआ, भँवरे की जात (शैलेश मटियानी), कोसी का घटवार (शेखर जोशी), अँधेरे में (मधुकर सिंह), करिए छिमा (शिवानी), बैलेंस (बदीउज्ज़मा), मक्कार (इब्राहिम शरीफ), रथचक्र (हिमांशु जोशी) कचकौंध (गोविन्द मिश्र), थूम्बू की राख (खेमराज गुप्त सागर), नवमी की दहलीज (किशोरीलाल वैद्य), पालनहारे (बलराम), अलाव (केशव), मीच्छव, टूँट, फन्दा, मेमना (सुशील कुमार फुल्ल), मंगलाचारी (सुन्दर लोहिया), दंश (सुदर्शन वशिष्ठ) आदि चर्चित आँचलिक कहानियाँ है।

आज कहानी–क्षेत्र में कुछ महिलाएँ भी अपनी लेखनी का उपयोग कर रही है। इन में तेजरानी पाठक, कमला चौधरी, हेमवती, सत्यवती मलिक, शिवानी, मन्नु भंडारी, कृष्णा सोबती, मृणाल पांडे, सूर्यबाला, मेहरुन्निसा परवेज, दीप्ति खण्डेलवाल, ममता कालिया, शशीप्रभा शास्त्री, कृष्णा अग्निहोत्री, मालती जोशी, नासिरा शर्मा, नमिता सिंह, राजी सेठ, चन्द्रकान्ता, कुसुम अंसल, लता शुक्ल, सुनीता जैन, सुधा अरोरा, मंजुल भगत, अलका सराबगी, गीतांजलि श्री आदि प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य कहानियों के कुछ अनुवाद भी किए है। इन कहानियों मे कला के अनेक विधानो के साथ सामाजिक जीवन, इतिहास एवं संस्कृत के अनेक अंगो का स्पर्श किया है। बंगाल का अकाल, कलकत्ता और पंजाब के जनसंहार, युद्धकालीन अव्यवस्था, आर्थिक एवं नैतिक संघर्ष का चित्रण इन कहानियों में हुआ है। सस्ती व्यावसायिक मासिक पत्रिकाओं के कारण कहानी लेखकों की बाढ़–सी आ गई है। हिन्दी कहानी आज भी कथ्य और शिल्प के नए प्रतिमान रचते हुए विकास की अनेक दिशाओं सें आगे बढ़ रही है।

१२.४ बोध प्रश्न :–

१. हिन्दी कहानी के विकासक्रम को रेखांकित कीजिए?
२. प्रेमचंद युगीन कहानी की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए?

◆◆◆◆◆◆

हिन्दी नाटक का विकास

१३.० इकाई की रूपरेखा
१३.१ इकाई का उद्देश्य
१३.२ प्रस्तावना
१३.३ हिन्दी नाटक का विकास
१३.४ बोध प्रश्न

१३.१ इकाई का उद्देश्य :–

पाठ्यक्रम में निर्धारित हिन्दी नाटक और उसके विकास पर विस्तृत अध्ययन करना इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है। हिन्दी नाटक को तीन युगों में विभाजित किया गया है। भारतेन्दु युग, प्रसाद युग, और प्रसादोत्तर युग। इस इकाई में तीनों युगों का विस्तृत विश्लेषण हुआ है जिससे विद्यार्थीयों को अध्ययन में आसानी होगी।

१३.२ प्रस्तावना

नाटक साहित्य का विकास भारतेन्दु युग में माना जाता है, संस्कृत नाटकों की क्षति हो जाने के बाद आदिकाल और मध्यकाल में नाटक को किसी प्रकार का प्रक्षय नहीं मिला हॉ परम्परा के अनुसार लोकनाट्य अवश्य प्रचलित रहे।

१३.३ हिन्दी नाटक का विकास

हिन्दी में नाटक साहित्य का उद्‌भव कब से माना जाए, इस पर विद्वानों में मतभेद है। डॉ. दशरथ ओझा ने अपने अनुसन्धान में संवत १२८९ में लिखित 'गाय सुकुमार रास' को हिन्दी का प्रथम उपलब्ध नाटक माना है। भारतेन्दुजी ने अपने पिता गोपालचन्द्र द्वारा लिखे 'नंहुष' नाटक (सन् १८१४ ई.) को हिन्दी का प्रथम नाटक माना है। आ. रामचन्द्र शुक्ल ने विश्वनाथ सिंह द्वारा रचित नाटक 'आनन्द रघुनन्दन' को हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक स्वीकार किया है। डॉ. सोमनाथ गुप्त, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्णेय, बाबू गुलाब राय आदि विद्वानों ने आनन्द रघुनन्दन को हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक स्वीकार किया है। डॉ. दशरथ ओझा ने इसे संस्कृत शैली का प्रथम हिन्दी नाटक घोषित किया है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक तथा डॉ. कृष्णलाल ने 'नहुष' को हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक मान लिया है। डॉ. स्नातक के शब्दों में– ''गोपाल चन्द्र कृत 'नहुष' ही हिन्दी का प्रथम नाटक है।'' इसके अतिरिक्त हिन्दी में मैथिली नाटक, (गोविंद का नल–चरित नाटक, विद्यापति का गोरक्ष–विजय, रामदास झा का आनन्द विजय नाटक, देवानन्द का उषा हरण, रमापति उपाध्याय का रुक्मिणी हरण, उमापति

उपाध्याय का पारिजात हरण आदि) रास–लीला नाटक (नन्ददास जी का गोवर्धन लीला एवं शाम सगाई लीला) एवं पद्य–बध्द नाटक (हृदयराम का रामायण महानाटक, हनमान्नाटक, बनारसी दास का समयसार नाटक, गुरु गोविन्द सिंह का चन्डी चरित्र, यशवन्त सिंह का प्रबोध चन्द्रोदय, नेवाज का शुकन्तला नाटक आदि) भी उपलब्ध होते हैं किंतु इन्हें हम विशुध्द हिन्दी के नाटक स्वीकार नहीं करते हैं।

हिन्दी में नाटक के स्वरुप का समुचित विकास आधुनिक युग के आरभ्म से होता है। सन् १८५० से अब तक के नाटक साहित्य को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

अ) भारतेन्दु युग (सन् १८५० से १९०० ई.)
ब) प्रसाद युग (सन् १९०० से १९३० ई.)
क) प्रसादोत्तर युग (सन् १९३० से अब तक।)

अ) भारतेन्दु युग :–

हिन्दी नाटकों के वास्तविक जन्मदाता या प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही है। इनके पहले संस्कृत साहित्य में नाटक प्रचुर मात्रा में लिखे जाते रहे। संस्कृत नाटकों की एक अत्यन्त समृध्द परम्परा भी रही, परंतु हिन्दी में नाटक, आधुनिक आर्थों में जिन्हें नाटक माना सकता है, का विकास १९ वीं शती के उत्तरार्ध में ही हुआ। ' भारतेन्दु युग में नाटक के उदय का एक कारण यह है कि आधुनिक युग के आरम्भ में अंग्रेजी राज्य के शोषण और अत्याचारों से जनचेतना का जब उदय हुआ, तो परिणामत: नाटक इस जन–चेतना का वाहक बनकर साहित्य–क्षेत्र में उतरा। इस युग में नाटक के उदय का एक कारण यह भी माना जा सकता हैं कि इस युग के साहित्यकार नई युग–चेतना का प्रचार करने के लिए नाटक को विशेष रुप से नाटक के एक अंग 'प्रहसन' को साधन बनाता चाहते थे। प्रहसन के माध्यम से अपनी बात व्यंग्य और हास्य के आवरण में आसानी से व्यक्त की जा सकती है। यही कारण है कि इस युग में प्रहसन पर्याप्त मात्रा में लिखे गए।

वस्तुत: हिन्दी में वास्तविक रुप में नाटक लिखने का श्रेय भारतेन्दु को ही है। उन्होंने संस्कृत नाट्य–शास्त्र के अनेक रुढ नियमों का परित्याग करके हिन्दी नाटक को एक सर्वथा अभिनव और नवीन युग के अनुरुप रुप प्रदान करके उसे राष्ट्रीय भावना के प्रसार का सशक्त साधन बनाया। भारतेन्दु के नाटकों की संरव्या लगभग १८ है। इनमें ऐतिहासिक, पौराणिक एवं आधुनिक सामाजिक सभी प्रकार के नाटक आ गए है। हास्य एवं व्यंग्य–विनोद का भाव भी इनमें सर्वत्र विद्यमान है। भारतेन्दु जी ने इन नाटकों में जीवन के प्राय: सभी क्षेत्रों से सामग्री ग्रहण की है। इन्होंने अक्सर समाज–सुधार, देश–प्रेम, सांस्कृतिक गौरव की महत्ता आदि विषयों को अपनाया तथा नाटकों के माध्यम से उन्हें प्रतिपादित किया है। ऐतिहासिक–पौराणिक कथा–कथानकों को भी अपने समसामयिक पर्यावरण प्रदान करने का सफल सार्थक प्रयास किया है।

भारतेन्दु के नाटक मुख्यत: पौराणिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों पर आधारित है। 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'धनंजय विजय', 'मुद्रा राक्षस', 'कर्पूर–मंजरी' ये चारों नाटक अनुवादित है। अपने मौलिक नाटकों में उन्होंने सामाजिक कुरीतियों एवं धर्म के नाम पर

होनेवाले कुकृत्यों आदि पर तीखा व्यंग्य किया है। 'पाखण्ड–विड्म्बन', 'वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति' इसी प्रकार के नाटक है। 'विषस्य विषमौषधम्' ने देशी नरेशों की दुर्दशा पर आँसू बहाये गये है। साथ ही उन्हें चेतावनी दी गई है कि यदि वे न सँभले तो धीरे–धीरे अँग्रेज सभी देशी रियासतों को अपने अधिकार में ले लेंगे। 'भारत–दुर्दशा' में भारतेन्दु की राष्ट्र–भक्ति का सार उद्घोषित हुआ है। इसमें अँग्रेज को भारत–दूर्दैव के रुप में चित्रित करते हुए भारतवासियों के दुर्भाग्य की कहानी को यथार्थ रुप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें स्थान–स्थान पर विदेशी शासकों की स्वेच्छाचारिता, पुलिसवालों का दुर्व्यवहार, भारतीय जनता की मोहान्धता पर गहरे आघात किये गये है।

भारतेन्दु के नाटकों की सबसे बडी विशेषता हैं– जिन्दादिली। इनके सभी नाटक अभिनय हैं। परम्परा के अनुरुप स्वरुप–विधान की दृष्टि से इनके कुछ आरम्भिक नाटकों के संवादों में पद्यों की योजना भी मिलती है। चरित्र–चित्रण, संघर्ष, कार्य–व्यापार की एकता आदि का भी प्रायः ध्यान रखा गया है। इनके नाट्यों का एक मात्र उद्देश्य भारतीय जन–मानस में नव–जागृति, राष्ट्रीय चेतना का विकास , देशप्रेम एवं स्वाभिमान का भाव भरना था। इन्होंने अपने महान उद्देश्य का निर्वाह अन्य विधात्मक रुपों के समान नाटकों में भी पूर्ण कुशलता से किया है। इस प्रकार नाटय–कला के सभी अंगों को विकसित करने का प्रयास भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया है। ''यदि हम एक ऐसा नाटककार ढूँढें, जिसने नाट्य–शास्त्र के गम्भीर अध्ययन के आधार पर नाटय–कला सम्बन्धी सैध्दान्तिक ग्रन्थ लिखा हो, जिसने प्राचीन और नवीन, स्वदेशी और विदेशी नाटकों का अध्ययन व अनुवाद भी किया हो, जिसने वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर अनेक पौराणिक, ऐतीहासिक एवं मौलिक नाटकों की रचना की हो और उसने नाटक की रचना ही नहीं; अपितु उन्हें रंगमंच पर खेल कर भी दिखाया हो– इन सब विशेषताओं से संपन्न नाटककार हिन्दी में ही नहीं, समस्त विश्व साहित्य में केवल दो–चार ही मिलेंगे और उनमें भी भारतेन्दु का स्थान सर्वोच्च होगा। ''उनके नाटकों में जीवन और कला, सत्यम् एवं सुन्दरम्, मनोरंजन और मंगल का सुन्दर समन्वय मिलता है। उनकी शैली सरलता, रोचकता एवं स्वाभाविकता के गुणों से परिपूर्ण है।

भारतेन्दुयुगीन अन्य नाटककार :–

भारतेन्दु जी की प्रेरणा एवं प्रभाव से इस युग के अनेक साहित्यकारों ने नाटय–रचना की। इनमें उल्लेखनिय नाटककार हैं– प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास, लाला श्रीनिवासदास, बन्द्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', बालकृष्ण भट्ट, बाबू सीताराम, सत्यनारायण 'कविरत्न', रामकृष्ण वर्मा, रुपनारायण पाण्डेय आदि। इनमें प्रतापनारायण मिश्र और राधाकृष्णदास दोनों प्रभावशाली नाटककार थे। इन सभी नाटककारों के नाटकों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की ही प्रवृत्तियों का अनुकरण हुआ है। प्राय: सभी में समाज–सुधार, देश–प्रेम या हास्य–विनोद की प्रवृत्ति मिलती है। इनमें गद्य खडीबोली में तथा पद्य ब्रजभाषा में प्रयुक्त हुआ है। भाषा पात्रों के अनुरुप रखी गयी है। शैली में सरलता, स्वाभाविकता एवं रोचकता को अपनाया है। वस्तुत: भारतेन्दु युग का नाटक साहित्य जनता के बहुत समीप था तथा वह 'लोकरंजन' एवं 'लोक–रक्षण' दोनों तत्वों से युक्त रहा है। उन्होंने पाठय और दृश्य–दोनों रुपों में तत्कालीन लोक ह्रदय का अनुरंजन किया।

भारतेन्दु युग के प्रमुख नाटककार प्रतापनारायण मिश्र जी ने 'गोसंकट', 'कलिप्रभाव', जुआरी स्व्वारी', 'कली कौतुक रुपक', 'संगीत शाकुंतल' और 'हठी हमीर' आदि प्रसिध्द नाटक लिखे। इस युग के दूसरे प्रभावशाली नाटककार राधाकृष्णदास है। इन्होंने 'महारानी पद्मावती', 'महाराणा प्रताप', 'दु:खिती बाला' नामक ऐतिहासिक नाटकों का निर्माण किया। 'दु:खिती बाला' इनकी प्रथम नाट्य–रचना है, जिसमें भारतीय विधवा की दयनीय दशा का चित्रण है। पद्मावती इनका वीरस पूर्ण ऐतिहासिक नाटक हैं जिसमें चितौड के महाराणा रत्नसेन की महारानी पद्मावती के सौन्दर्य पर आकर्षित होकर अल्लाउद्दीन के आक्रमण की प्रचालित कथा अंकित है। भारतेन्दुजी के समकालीन नाटककारों में लाला श्रीनिवासदास जी का विशेष स्थान है। उन्होनें उर्दू नाटक लिखे, जिस में विशेष उल्लेखनीय है– 'प्रल्हाद चरित्र' 'रणधीर और प्रेममोहिनी', संयोगिता स्वयंवर' तथा 'तप्तासंवरण'। इस युग के अन्य प्रमुख नाटककारों में बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का नाम उल्लेखनीय है। उनकी चार नाट्य–कृतियाँ उपलब्ध हैं। 'भारत सौभाग्य', 'वारांगणा रहस्य', 'प्रयाग रामागमन', और वृध्दविलाप। 'प्रयाग रामागमन' में राम तथा सीता के 'भारद्वाज आश्रम' में आतिथ्य ग्रहण करने की कथा को ग्रहण किया गया है। 'वारांगणा रहस्य' में आज के दुर्दशाग्रस्त समाज का यथार्थ चित्र हमारे सामने रखा गया है। इस युग के एक और उल्लेखनीय नाटककार है– पं. बालकृष्ण भट्ट। इन्होंने 'दमयंती स्वयंवर', 'बृहन्नला' 'वेणु संहार', 'कलिराज की सभा', 'रेल का बिकट खेल', 'बाल–विवाह', 'जैसा काम वैसा परिणाम' आदि मौलिक नाटकों की रचना की है। इन नाटकों में पौराणिक कथाओं और अपने युग की नई समस्याओं का अंकन किया गया है।

अनुदित नाटक :–

भारतेन्दु–युग में मौलिक नाटक संख्या की दृष्टि से कम लिखे गये, इसीकारण उनके अभाव में अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ नाटकों के अनुवाद की परम्परा खूब चली। ये अनुवाद बँगला, संस्कृत और अंग्रेजी से हुए। बाबू सीताराम ने 'नागानन्द', 'मृच्छ कटिक','मालती माधव' आदि नाटकों का तथा सत्यनारायण 'कविरत्न'ने भवभूति के 'उत्तर रामचरित' और 'मालती माधव' का संस्कृत से अनुवाद किया है। ये अनुवाद अत्यन्त सुन्दर बन पडे है। बँगला के प्रसिध्द नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों का अनुवाद रुपनारायण पाण्डेय और रामकृष्ण वर्मा जी ने किया। ये नाटक अत्यंत लोकप्रिय हुए। श्री. नाथुराम प्रेमी, धन्यकुमार जैन एवम पं. बालकृष्ण भट्ट जी ने भी अनेक बँगला नाटकों का अनुवाद किया। अंग्रेजी नाटकों के अनुवादकों में गंगाप्रसाद पाण्डेय, पुरोहित गोपीनाथ, मथुरादास उपाध्याय आदि प्रमुख हैं। उन्होंने विशेष रुप से शेक्सपियर के नाटकों का आनुवाद किया।

ब) प्रसाद युग :–

हिन्दी नाटक को साहित्यिक भूमिका प्रदान करने का प्रयास सर्वप्रथम भारतेन्दुजी ने किया था। उनके पूर्व साहित्यिक नाटकों का एक प्रकार से अभाव सा था। पारसी नाटक कंपनियों द्वारा अभिनीत नाटक असाहित्यिक और कुरुचिपूर्ण हुआ करते थे। भारतेन्दुजी ने स्वयं नाटक लिखन और अपने साहित्यिक सहयोगियों को इस ओर प्रवृत्त करने के साथ ही साथ अव्यावसायिक रंगमंच की नींव भी डाली। उनके द्वारा स्थापित की गई नाटक और रंगमंच

की परम्परा को ही जयशंकर प्रसादजी ने आगे बढाते हुए उसे नया जीवन और नई दिशा प्रदान की। भारतेन्दु के पश्चात् प्रसाद जैसा सर्वांगीण, प्रतिभाशाली, रचनात्मक व्यक्तित्व सम्पन्न दूसरा कोई भी कलाकार हिन्दी में उत्पन्न नहीं हुआ। हिन्दी नाटकों के विकास का जो आरम्भ भारतेन्दु युग में हुआ था वह प्रसाद युग में अपने पूर्ण उत्कर्ष को पहुँचा। वस्तुतः प्रसाद इस क्षेत्र के सम्राट है और वह इसलिए नहीं कि उन्होंने नवीन शैली से नाटकों का शृन्गार किया, बल्कि इसलिये कि उन्होंने सर्वप्रथम हिन्दी नाटकों के पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्त्व प्रदान करके उनमें शील–वैचित्र्य, शक्ति और औदात्य का समावेश किया और उनके अन्तर्द्वन्द्व का कलात्मकतापूर्ण चित्रण किया। इतिहास के प्रमुख पात्रों में उन्होंने नया जीवन भर दिया। उदाहरण के लिए गौतम बुध्द, चाणक्य, चन्द्रगुप्त, राज्यश्री, ध्रुवस्वामिनी आदि ऐतिहासिक पात्र हैं, पर प्रसाद के नाटकों में उभरा हुआ उनका रुप इन पात्रों के व्यक्तित्व से नितान्त भिन्न है। प्रसाद की पात्र योजना की एक उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि उन्होंने अपने नाटकों में इतने विविध पात्रों की सृष्टि की है कि उनके माध्यम से पूरा युग ही सजीव होकर सामने उपस्थित हो गया है।

भारतेन्दु युग के साहित्यकारों ने देश की दूर्दशा का वर्णन बारम्बार अपनी रचनाओं में किया, जिसके प्रभाव से भारतवासियों में करुणा, ग्लानि, दैन्य एवम अवसाद की भावना का विकास हो जाना स्वाभाविक था। ऐसी मनःस्थिति में समाज एवं राष्ट्र विदेशी शक्तियों से संघर्ष करने की क्षमता से शून्य हो जाता है लेकिन प्रसादजी ने अपने देशवासियों में अत्मगौरव, उत्साह,बल एवं प्रेरणा का संचार करने के लिए अतीत के गौरवपूर्ण दृश्यों को अपनी रचनाओं में चित्रित किया। यही कारण है कि उनके अधिकांश नाटकों का कथानक उस बौध्द युग से सम्बन्धित है, जबकि सांस्कृतिक पताका विश्व के विभिन्न भागों में फहरा रही थी। प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति को प्रसादजी ने बडी सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया है। उसमें केवल उस युग की स्थूल रेखाएँ नहीं मिलतीं,तत्कालीन वातावरण के सजीव अंकन की रंगीनी भी मिलती है। धर्म की बाह्य परिस्थितियों की अपेक्षा उन्होंने दर्शन की अन्तरंग गुत्थियों को स्पष्ट करना अधिक उचित समझा है। पात्रों के चरित्र–चित्रण में भी उन्होंने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करते हुए उनमें परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन या विकास दिखाया है। मानव चरित्र के सत् और असत् दोनों पक्षों को पूर्ण प्रतिनिधित्व उन्होंने प्रदान किया। नारी रुप की जैसी महानता, सूक्ष्मता, शालीनता एवं गम्भीरता, कवि प्रसाद के हाथों प्राप्त हुई है, उससे भी अधिक सक्रिय एवं तेजस्वी रुप उसे नाटककार प्रसाद ने प्रदान किया। नारी रुप की जैसी प्रतिष्ठा प्रसादजी द्वारा हुई है वह अन्यत्र दुर्लभ है। प्रसाद के प्रायः सभी नाटकों में किसी–न–किसी ऐसे नारी पात्र की अवतारणा हुई है, जो धरती के दुःखपूर्ण अन्धकार के बीच प्रसन्नता की ज्योति की भाँति उद्दीप्त है; जो पाशविकता, दनुजता, और क्रूरता के बीच क्षमा, करुणा एवं प्रेम के दिव्य संदेश की प्रतिष्ठा करती है; जो अपने प्रभाव से दुर्जनों को सज्जन, दुराचारियों को सदाचारी और नृशंस अत्याचारियों को उदार लोकसेवी बना देती है। 'नारी तुम केवल श्रध्दा हों' की उक्ति प्रसाद की इन दिव्य नायिकाओं पर पूर्णतः लागू होती है।

इसप्रकार प्रसाद जी की सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना, उनका दार्शनिक चिन्तन, उनकी स्वाभाविक चरित्र–कल्पना, राष्ट्रीयता के प्रति उनका उत्कट आग्रह, उनका संघर्ष के विष से जीवन के अमृत की खोज करना आदि ऐसी विशेषताएँ हैं, जिन्होंने प्रसाद के नाटकों को अत्यन्त आकर्षक, युगानुकूल नवीन और भव्य रुप प्रदान कर दिया। इसीकारण वे

अपने युग के हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार साबित हुए। वस्तुत: प्रसाद को अपने युग का ही नहीं; अपितु आज तक के समस्त हिन्दी–नाटककारों में सर्वश्रेष्ठ नाटककार माना जा सकता है।

नाट्य–शिल्प की दृष्टि से प्रसाद जी के नाटकों में पूर्वी और पश्चिमी तत्वों का सम्मिश्रण मिलता है। जहाँ उनके नाटकों में कथा–वस्तु, रस, नायक, प्रतिनायक, विदूषक, शील–निरुपण, सत्य और न्याय के विषय में भारतीय नाट्य–साहित्य की परम्पराओं का पालन हुआ है, वहाँ पाश्चात्य नाटकों के संघर्ष एवं व्यक्ति–वैचित्र्य का निरुपण भी उनकी रचनाओं में हुआ है। भारतीय नाटकों की रसात्मकता इनमें भरपूर मिलती है, तो दूसरी ओर पाश्चात्य नाटकों की कार्य–व्यापार की गतिशीलता भी उनमें विद्यमान है। भारतीय नाटककार सुखान्त को पसन्द करते हैं– पश्चिम के कलाकार दु:खान्त को। प्रसाद ने अपने नाटकों का अन्त इस ढंग से किया है कि हम उन्हें सुखान्त भी कह सकते हैं और दुखान्त भी। वस्तुत: उनका अंत एक ऐसी वैराग्यपूर्ण भावना के साथ होता है, जिसमें नायक की विजय तो हो जाती है; किन्तु वह फल का उपभोग स्वयं नहीं करता, उसे वह प्रतिनायक को ही लौटा देता है। इस प्रकार के विचित्र अंत को आलोचकों ने सुखान्त न मानकर उन्हें ''प्रसादान्त'' की संज्ञा दी है।

कलात्मकता की दृष्टि से प्रसादजी के 'अजातशत्रु', 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' प्रसिध्द एवं श्रेष्ठ नाटक है। आधुनिक नाटक–विधा के दृष्टिकोन से और सामान्यत: नाट्य–कला के निखार की दृष्टि से 'ध्रुवस्वामिनी' प्रसादजी का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इस नाटक के आधार पर हम प्रसादजी को हिन्दी–नाट्य–साहित्य में 'समस्या–नाटकों का प्रवर्तक' कहकर भी संबोधित कर सकते है। इसमें तलाक और पुनर्विवाह की समस्या को बडे कौशल्य से उठाया गया है। इस बात से यह प्रमाणित हो जाता है कि प्रसादजी कितने युगधर्मी थे। यह प्रसाद की अंतिम नाट्य कृति है।

उन्होंने अपने नाटक 'स्कन्दगुप्त' में समृध्दि और ऐश्वर्य के शिखर पर आसीन गुप्त साम्राज की उस स्थिति का चित्रण किया हैं, जहाँ आंतरिक कलह, पारिवारिक संघर्ष और विदेशी आक्रमणों के फलस्वरुप उसके भावी क्षय के लक्षण प्रकट होने लगे थे। विषय और रचना शिल्प दोनों ही दृष्टियों से 'स्कन्दगुप्त' प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ नाट्यकृति मानी जाती है।

उनके प्रसिध्द नाटक 'चन्द्रगुप्त' की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमें विदेशियों से भारत के संघर्ष और उस संघर्ष में अंतत: भारत की विजय की थीम उठाई गयी है। प्रसाद के मन में भारत की पराधीनता को लेकर गहरी व्यथा थी, और ऐसा लगता हैं जैसे उन्होंने इस ऐतिहासिक प्रसंग के माध्यम से अपने इच्छित विश्वास को वाणी दी हो। इस दृष्टि से 'चन्द्रगुप्त' की कथावस्तु 'स्कन्दगुप्त' से भी उदात्त है।

'कामना' उनकी एक वैशिष्टयपूर्ण नाट्यकृति है; जिसमें विभिन्न मनोविकारों को प्रतीक के रुप में रंगमंच पर उपस्थित करते हुए उनके कार्यकलापों द्वारा मानव–सभ्यता और संस्कृति के विकास की कथा प्रस्तुत की गई है। उनकी प्रसिध्द कृति 'एक घूँट' का महत्व इसके एकांकी होने में है। समूचे नाटक में एक अंक और एक दृश्य है।

प्रसाद युगीन अन्य प्रमुख नाटककार :–

प्रसाद युगीन अन्य प्रमुख नाटककारों में हरिकृष्ण 'प्रेमी' और लक्ष्मीनारायण मिश्र जी का नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय है। प्रेमी जी ने प्रसाद की भाँति ही ऐतिहासिक

नाटकों को रचना की, यद्यपि दोनों के लक्ष्य और कालखण्ड के चुनाव में बहुत अन्तर है। प्रेमीजीने भारतीय इतिहास के मुस्लिम–काल को अपने नाटकों का आधार बनाया और हिन्दू–मुस्लिम–एकता के प्रतिपादन पर विशेष बल दिया। उनके नाटक राष्ट्रीयता और देश–प्रेम के भावों से ओतप्रोत है और इस रुप में अपने युग के सच्चे प्रतिनिधि है। उनके नाटकों में 'स्वर्णविहान', 'रक्षाबन्धन' पाताल विजय' आदि विशेष उल्लेखनीय है।

प्रेमी जी के समकालीन नाटककारों में लक्ष्मीनारायण मिश्र जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिन्होंने प्रसाद के सर्वथा भिन्न मार्ग पर चलकर हिन्दी नाटक साहित्य को नया मोड दिया। उनके 'संन्यासी' नाटक के साथ हिन्दी नाटक के विषय और शिल्प दोनों में बदलाव आया। प्रसाद के नाटकों में जहाँ स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का प्राधान्य था वहाँ मिश्र जी के नाटकों में बौध्दिकता का समावेश हुआ। उन्होंने नाट्यशास्त्र की दिशा में भी अनेक मौलिक एवं क्रांतिकारी प्रयोग किये। उनके सभी नाटक तीन अंकों के हैं और अंकों का विभाजन दृश्यों में नहीं किया गया है। अपने नाटकों की विषयवस्तु के लिए उन्होंने इतिहास के पृष्ठों में नहीं, समाज के विस्तृत अंगन में झाँका और समसामयिक समाज में विशेष रुप से नारी की स्थिति और उसकी समस्याओं को अपने दृष्टिकोन से चित्रित किया। प्रेम और विवाह, प्रणय और दाम्पत्य, काम और नैतिकता विषयक अनेक समस्याओं को उठाते हुए सामाजिक वैषम्य की पृष्ठभूमि में नारी और पुरुष के सम्बन्धों का चित्रण अपने नाटकों में किया। उनके नाटकों में चित्रित स्त्री शिक्षा का प्रसार, नारी स्वातंत्र्य–आन्दोलन तथा नवीन जीवन दर्शन के फलस्वरुप आधुनिक नारी का ऐसा रुप सामने आया जिससे हमारा समाज अब तक अपरिचित था। उनके नाटक 'अशोक', 'संन्यासी','मुक्ति का रहस्य', 'राक्षस का मन्दिर' आदि विशेष प्रसिध्द है।

इन दो प्रमुख नाटककारों के अतिरिक्त इस युग में अन्य अनेक नाटककारों ने भी नाटक लिखे। यद्यपि उनका नाटक–साहित्य गुण की दृष्टि से बहुत समृध्द नहीं है, लेकिन परिणाम की दृष्टि से हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। इस युग के नाटक–साहित्य को हम निम्न वर्गों में विभाजित कर सकते हैं–

(क) धार्मिक–पौराणिक नाटक :–

इस युग में राम, कृष्ण, प्रल्हाद, सुदामा आदि पौराणिक चरित्रों को आधार बनाकर लिखित नाटकों की संख्या शताधिक है। ये नाटक पौराणिक आख्यानों पर आधारित होने पर भी राष्ट्र–गौरव और समसामयिक राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण है। इस वर्ग के अन्तर्गत अंबिकादत्त त्रिपाठी का ' –स्वयंवर नाटक', रामचरित उपाध्याय का 'देवी द्रौपदी', राम नरेश त्रिपाठी का 'सुभद्रा' तथा 'जयन्त', गंगाप्रसाद अरोडा का'सावित्री–सत्यवान', गौरीशंकर प्रसाद का 'अजामिलचरित नाटक', परिपूर्णानन्द वर्मा का 'वीर अभिमन्यु नाटक', गोकुलचन्द्र वर्मा का 'जयद्रथ–वध' कैलाशनाथ भटनागर का 'भीष्म प्रतिज्ञा', लक्ष्मीनारायण गर्ग का 'श्रीकृष्णावतार' हरिऔध का 'रुक्मिनी परिणय' किशोरीदास वाजपेयी का' 'सुदामा' आदि उल्लेखनिय है।

(ख) ऐतिहासिक नाटक :–

इस युग के गौण ऐतिहासिक नाटकों में गणेशदत्त इन्द्र का 'महाराणा संग्रामसिंह', भँवरलाल सोनी का' वीर कुमार छत्रसाल', चन्द्रराज भंडारी को 'सम्राट अशोक',

बदरीनाथ भट्ट के 'दुर्गावती' और 'चन्द्रगुप्त', जितेश्वरप्रसाद नायल का 'भारत गौरव अर्थात् सम्राट चन्द्रगुप्त', दशरथ ओझा का 'चित्तौड की देवी', लक्ष्मीनारायण गर्ग का 'महाराणा प्रताप', जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द का 'प्रताप प्रतिज्ञा', उदयशंकर भट्ट का 'विक्रमादित्य', प्रेमचन्द का 'कर्बला' आदि उल्लेखनीय है इनमें से अधिकतर नाटकों को ऐतिहासिक घटनाओं का वार्तालाप रुपान्तर मात्र कहा जा सकता है।

(ग) सामाजिक नाटक :–

पौराणिक और ऐत्तिहासिक नाटकों के साथ–साथ इस युग में अनेक सामाजिक नाटकों की भी रचना हुई, जिनमें कौशिक जी का 'अत्याचार का परिणाम', और 'हिन्दू विधवा नाटक'. प्रेमचन्द का 'संग्राम', ईश्वरीप्रसाद शर्मा का 'कृषक दुर्दशा', सुदर्शन का 'अंजना' और भाग्यचक्र' गोविन्दवल्लभ पंत का 'कंजूस की खोपडी' और 'अंगूर की बेटी', रामेश्वरी प्रसाद 'राम' का 'अछ्तोध्दार नाटक' छबिदास पाण्डेय का 'समाज' आदि प्रसिध्द है। इन नाटकों में एक प्रकार की सामाजिक चेतना की झलक मिलती है, जिससे स्पष्ट होता है कि इस युग के नाटककार जीवन के यथार्थ के निकट आने का प्रयत्न कर रहे थे।

(घ) गीतिनाट्य :–

इस युग में कतिपय गीतिनाट्य भी लिखे गये जिनमें मैथिलीशरण गुप्त का 'अनघ', हरिकृष्ण प्रेमी का 'स्वर्ण–विहान', भगवतीचरण वर्मा का 'तारा', उदयशंकर भट्ट के 'मत्स्यगंधा' और 'विश्वमित्र' आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से 'तारा' सफल गीतिनाट्य है। भट्ट जी के गीतिनाट्यों में कवित्त्व के साथ नाटकीय संघर्ष और प्रतीकात्मकता का सुन्दर समन्वय मिलता है। इस युग के अन्य गीतिनाट्यों में गोविन्दवल्लभ पंत का 'वरमाला' और उदयशंकर भट्ट का 'विद्रोहिनी अम्बा' भी उल्लेखनीय है।

(च) हास्य–व्यंग्य प्रधान नाटक :–

प्रसाद युग के पहले प्रायः हास्य पूर्ण दृश्यों का समावेश हिन्दी नाटकों में होता था, लेकिन शुध्द हास्य नाटक का सृजन कम संख्या में ही हुआ था। इस युग में अनेक हास्य–व्यंग्य प्रधान नाटक लिखे गए, जिनमें सामाजिक और व्यक्तिगत चारित्रिक विसंगतियों पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार के नाटक लिखनेवालों में जी.पी. श्रीवास्तव का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके 'दुमदार आदमी','गडबडझाला', नाक मे दम उर्फ जवानी बनाम बुढापा उर्फ मियाँ की जूती मियाँ के सर', 'भूलचूक', 'चोर के घर छिछोर',चाल बेढब','साहित्य का सपूत', 'स्वामी चौखटानन्द' आदि हास्य–व्यंग्य प्रधान नाटक विशेष उल्लेखनीय है।

क) प्रसादोत्तर युग :–

प्रसादोत्तर काल से लेकर आज तक का हिन्दी नाटक कई धाराओं में विभक्त होकर अपनी विकास की यात्रा तय कर रहा है। इस युग में ऐतिहासिक, पौराणिक, समस्या प्रधान, प्रतीकवादी, व्यक्तिवादी चेतना से अनुप्राणित सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित, राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित, गीतिनाट्य, व्यंग्य नाटक तथा विसंगत नाटक

लिखे जा रहे है। इस युग के नाटकों की मुख्य प्रवृत्तियों को इसप्रकार विश्लेषित किया जा सकता हैं–

(१) ऐतिहासिक नाटक :–

प्रसादोत्तर युग में ऐतिहासिक नाटकों का पर्याप्त विकास हुआ। इस क्षेत्र में हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावनलाल वर्मा, गोविंदवल्लभ पंत, सेठ गोविंददास, उदयशंकर भट्ट तथा जगदीशचन्द्र माथुर और अन्य कतिपय नाटककारों ने महत्वपूर्ण योग दिया। हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में 'रक्षाबन्धन', 'शिवा साधना', 'प्रतिशोध', 'स्वप्नभंग', 'आहुति', 'उध्दार', 'शपथ', 'भग्न प्राचीर', 'आन का मान' आदि उल्लेखनिय है। उनके नाटकों में राष्ट्रभक्ति, आत्म–त्याग, बलिदान, हिन्दू–मुस्लीम एकता आदि भावों एवं प्रवृत्तियों को स्पष्ट देखा जा सकता है। उन्होंनें इतिहास का उपयोग रोमान्स की सृष्टि के लिए नहीं, अपितु आदर्श की स्थापना के लिए किया है।

वृन्दावनलाल वर्मा इतिहास के विशेषज्ञ थे। उनकी यह विशेषता उनके नाटकों में व्यक्त हुई है। उनके ऐतिहासिक नाटकों में 'झाँसी की रानी', 'पूर्व की ओर','बीरबल', 'ललित विक्रम' आदि उल्लेखनिय है। गोविन्दवल्लभ पंत जी ने अनेक सामाजिक एवं राजनीतिक नाटकों की रचना की है। उनके 'राजमुकुट' और 'अन्तःपुर का छिन्द्र' ऐतिहासिक नाटक हैं। राजमुकुट में मेवाड की पन्ना धाय का पुत्र–बलिदान तथा दूसरे में वत्सराज उदयन के अन्तःपुर की कलह का चित्रण प्रभावोत्पादक रुप में किया गया है। इन प्रमुख नाटककारों के अलावा ऐतिहासिक नाटक लिखनेवाले नाटककारों के नाम भी उल्लेखनिय हैं। जिनमें चन्द्रगुप्त विद्यालन्कार के 'अशोक' तथा 'रेवा' सेठ गोविन्ददास के 'हर्ष', 'कुलिनता' और 'शशिगुप्त', उदयशंकर भट्ट के 'मुक्ति–पथ', 'दाहर', 'शक–विजय', लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'गरूड–ध्वज, 'वत्सराज', 'वितस्ता की लहरें', 'उपेन्द्रनाथ' अश्क का 'जय–पराजय', जगदीशचन्द माथुर का 'कोणार्क', देवराज दिनेश के 'यशस्वी भोज' और 'मानव प्रताप' चतुरसेन शास्त्री का 'छत्रसाल' आदि है।

(२) पौराणिक नाटक :–

इस युग में पौराणिक नाटकों की परम्परा का भी पर्याप्त विकास हुआ। इन नाटकों के कथानक पौराणिक होते हुए भी उसके ब्याज से आज की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पौराणिक चरित्रों द्वारा किसी ने कर्तव्य के आदर्श को पाठकों के सम्मुख ररवा है, किसी ने किसी उपेक्षित पात्र के साथ सहानुभूति के दो आँसू बहाये है। किसी जाँति–पाँति की भेद की समस्या का समाधान ढूँढा है तो किसी ने नारी के गौरव के प्रति अपनी श्रध्दा के फूल अर्पित किये है।'' विभिन्न लेखकों ने पौराणिक आधार को ग्रहण करते हुए उत्कृष्ट नाटक लिखें जिनमें प्रमुख है– सेठ गोविन्ददास का 'कर्तव्य', चतुरसेन शास्त्री का 'मेघनाद', 'पृथ्वीराज शर्मा' का 'उर्मिला' सद्गुरुशरण अवस्थी का 'मझली रानी', रामवृक्ष वेनीपुरी का 'सीता की माँ' किशोरीदास वाजपेयी का 'सुदामा', चतुरसेन शास्त्री का 'राधाकृष्ण', कैलाशचन्द्र भटनागर के 'भीम–प्रतिज्ञा', एवं 'श्रीवत्स' वीरेद्रकुमार गुप्त का 'सुभद्रा–परिणय' उद्यशंकर भट्ट के 'विद्रोहिणी अम्बा', और 'सागर विजय', पाण्डेय वेचेन शर्मा 'उग्र' का 'गंगा का बेटा', डॉ. लक्ष्मण स्वरुप का 'नलदमयंती' तारा मिश्र को देवयानी',

गोविन्ददास का 'कर्ण' उमाशंकर बहादुर का 'वेचन का मोल', कामनिधि शास्त्री का 'प्रणपूर्ति' गोविन्दवल्लभ पंत का 'ययाति', डॉ. कृष्णदास भारद्वाज का 'अज्ञातबास', लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'नारद की वीणा', और 'चक्रव्यूह', रांगेय राघव का 'स्वर्गभूमि का यात्री', मुखर्जी गुंजन का 'शक्तिपूजा', सूर्यनारायण मूर्ति का 'महानाश की ओर' आदि। इसमें कोई संदेह नहीं कि ये नाटक विषय–वस्तु की दृष्टि से पौराणिक होते हुए भी हमें आज के जीवन की संकीर्णताओं एवं सीमाओं से उपर उठकर जीवन की व्यापकता एवं विशालता का संदेश देते हैं।

(३) समस्या–प्रधान नाटक:–

इस युग में समस्या–प्रधान नाटकों का प्रचलन मुख्यत: इब्सन, बर्नार्ड शा आदि, पाश्चात्य नाटककारों के प्रभाव से ही हुआ है। इन नाटकों में सामाजिक समस्याओं का समाधान विशुध्द बौध्दिक दृष्टिकोन से किया गया है। इनमें विशेषत: यौन–समस्याएँ, नारी शिक्षा, नारी स्वातंत्र्य, विवाह–समस्या, संयुक्त–परिवार समस्या, और जाँति–पाँति, ऊँच–नीच सामाजिक वैषम्य आदि समस्याओं का अंकन प्रस्तुत किया है। इस वर्ग के नाटककारों में लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ अश्क, वृन्दाबनलाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, डॉ. शंकर शेष, और डॉ. भीष्म साहनी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के समस्या–प्रधान नाटकों में 'संन्यासी', 'राक्षस का मंदिर', 'मुक्ति का रहस्य', 'सिन्दूर की होली', 'आधी रात' आदि उल्लेखनीय है। उनके अधिकांश नाटकों में यौन सम्बन्धी प्रवृत्तियों एवं काम–समस्याओं को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इन नाटकों में बौद्धिकतावाद, यथार्थवाद एवं फ्रायडवाद की प्रमुखता है। इन पर इब्सन तथा बर्नार्ड शा का स्पष्ट प्रभाव है। सेठ गोविन्ददासजी ने ऐतिहासिक, पौराणिक नाटकों के अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं का चित्रण करनेवाले नाटक भी लिखे हैं, जिनमें प्रमुख हैं– 'कुलीनता' 'सेवापथ', 'दुख क्यों?' 'सिध्दान्त स्वातंत्र्य' 'त्याग का ग्रहण' 'संतोष कहाँ?' 'पाकिस्तान', 'गरीबी और अमीरी' तथा 'बड़ा पापी कौन' आदि। सेठजी ने अपने इन नाटकों में आधुनिक युग की विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का चित्रण सफलतापूर्वक किया है।

उपेन्द्रनाथ अश्क आदर्शोन्मुख यथार्थवादी नाटककार थे। उन्होंने अपने नाटकों में व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं का चित्रण जहाँ यथार्थ के स्तर पर किया है, वही उसके मूल में सुधार या क्रान्ति की भावना निहित है, जो आदर्शवाद की सूचक हैं। उनके प्रमुख नाटकों में 'स्वर्ग की झलक', 'कैद', 'उडान', 'छ़टा बेटा', तथा 'अलग–अलग रास्ते' और 'अंजो दीदी' विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने नाटकों में नारी–शिक्षा, नारी स्वातंत्र्य, विवाह समस्या, संयुक्त परिवार आदि से सम्बधित विभिन्न पक्षों पर सामाजिक दृष्टि से तीखे व्यंग्य किये हैं। अनेक नाटकों में उन्होंने आधुनिक समाज की स्वार्थपरता, धन–लोलुपता, अनैतिकता आदि का भी चित्रण यथार्थवादी शैली में किया है। अश्क जी के नाटकों की सबसे बडी विशेषता यह हैं कि वे समस्याओं और समाधानों को उपदेशात्मक एवं गंभीर रुप में प्रस्तुत नहीं करते, अपितु उनका निदर्शन हास्य–व्यंग्य शैली में करते हैं, जिससे उनका प्रभाव और अधिक तीखा हो जाता हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक नाटकों के अतिरिक्त सामाजिक नाटक भी लिखे हैं। वर्माजी ने अपने नाटकों में विवाह, जाँति–पाँति, ऊँच–नीच सामाजिक वैषम्य,

नेताओं की स्वार्थ–परायणता आदि से संबन्धित विभिन्न प्रवृत्तियों एवं समस्याओं का अंकन प्रस्तुत किया है। उनके इस वर्ग के नाटकों में 'राखी की लाज', 'बाँस की फाँस', 'खिलौने की खोज' 'केवट' ' निलकंठ', 'सगुन', 'निस्तार' और 'देखा–देखी' आदि प्रमुख हैं।

गोविन्दवल्लभ पंत के सामाजिक नाटकों में 'अंगूर की बेटी' और 'सिन्दूर की बिन्दी' आदि उल्लेखनीय हैं। 'अंगूर की बेटी' में मदिरापान के विषय एवं भयंकर परिणामों का दिग्दर्शन कराते हुए अन्त में इस व्यसन से मुक्ति पाने की विधि पर प्रकाश डाला गया है। 'सिन्दूर की बिंदी' में भ्रष्ट एवं परित्यक्त नारी की समस्या का चित्रण अत्यन्त सहानुभूतिपूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

पृथ्वीनाथ शर्मा जी ने 'दुविधा', 'अपराधी' 'साध' आदि सामाजिक नाटकों की रचना की है, जिनमें उन्मुक्त प्रेम, विवाह तथा सामाजिक न्याय से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नों को प्रस्तुत किया है। 'दुविधा' की नायिका स्वच्छन्द–प्रेम एवं विवाह में से किसी एक को चुनने की दुविधा से ग्रस्त दिखाई गई है।

इस युग के अन्य सामाजिक नाटककारों में उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, चतुरसेन शास्त्री, रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. शंकर शेष, भीष्म साहनी, डॉ. नरेन्द्र मोहन, आदि उल्लेखनीय है।

(४) गीतिनाट्य :–

इस युग में भावप्रधान अर्थात गीतिनाट्य की रचना भी पर्याप्त संख्या में हुई। इस वर्ग के नाटकों के लिये भाव प्रमुखता के साथ–साथ पद्य का उपयोग भी आवश्यक होता है। आधुनिक युग में रचित हिन्दी का पहला गीतिनाटक जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'करुणालय' माना जाता है। इसके अनंतर मैथिलीशरण गुप्त द्वारा 'सनघ' हरिकृष्ण प्रेमी द्वारा 'बिहान' उदयशंकर भट्ट द्वारा 'मत्स्यगंधा' 'विश्वामित्र' और 'राधा' भगवतीचरण वर्मा द्वारा 'तारा' आदि सफल गीतिनाटकों की रचना हुई। गीति नाटकों की इस परम्परा में सुमित्रानन्दन पंत के 'रजत शिखर' और 'शिल्पी' (जिसमें उनके नौ गीति–नाट्य संग्रहित है), डॉ. धर्मवीर भारती का 'अंधायुग', गिरिजाकुमार माथुर के 'कल्पान्तर', 'दंगा' और 'राम', अज्ञेय का 'उत्तर प्रियदर्शी', और दुष्यन्तकुमार के 'एक कंठ विषपायी' तथा आरसीप्रसाद सिंह के 'मदनिका' और 'धूपछाँव', जानकीवल्लभ शास्त्री के पांचाली', 'मदन दहन', 'गोपा', 'उर्वशी', 'पाषाणी', सिध्दनाथ कुमार के 'सृष्टि की साँझ', 'विकलांगों का देश' 'लौह युग' 'संघर्ष', केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' के 'स्वर्णोदय', 'अंगुलिमाल' 'संवर्त्त' तथा 'मानव निश्चय ही लौटेगा' आदि विशेष उल्लेखनीय है।

(५) प्रतीकवादी नाटक :–

प्रतीकवादी नाटकों की परम्परा का उत्थान प्रसाद जी के 'कामना' नाटक से माना जाता है। इनके अनंतर लिखे गये प्रतीकवादी नाटकों में सुमित्रानन्दन पंत का 'ज्योत्सना', भगवतीप्रसाद वाजपेयी का 'छलना', सेठ गोविन्ददास का 'नवरस', कुमार हृदय का 'नक्शे का रंग' आदि उल्लेखनिय है। आगे चलकर और भी कई लेखकों ने प्रतीकात्मक नाटकों के माध्यम से आधुनिक जीवन की विसंगतियों के उद्घाटन का प्रयास किया है। इस दृष्टि से डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के 'मादाकैक्टस', सुन्दर रस', 'दर्पन, ज्ञानदेव अग्निहोत्री का

'शतुर्मुर्ग', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'बकरी' आदि नाटक विशेष उल्लेखनीय है।

(६) सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित नाटक :–

सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित नाटककारों ने जीवन को व्यापक दृष्टि से देखते हुए उसके विभिन्न अंगों, पक्षों और रुपों का चित्रण सूक्ष्मतापूर्वक किया है, जिसमें व्यक्ति, परिवार, समाज एवं संस्कृति के विभिन्न तथ्यों एवं तत्वों का उद्‌घाटन सहज ही हो पाया है। विशेषत: आधुनिक युग में उत्पन्न नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों के विघटन व सांस्कृतिक पतन की स्थिति से अवगत करवाने की दृष्टि से इस वर्ग के लेखकों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस वर्ग के नाटककारों में जगदीशचन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, नरेश मेहता, विनोद रस्तोगी, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ. शंकर शेष, भीष्म साहनी, प्रभूति की रचनाएँ आती है।

जयदीशचन्द्र माथुर ने 'कोणार्क', 'पहला राजा', 'दशरथ नंदन', आदि नाटकों में आदर्शोन्मुखी दृष्टि से सामाजिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के लिए प्रयास किया है। कोणार्क में जहाँ एक शिल्पी एवं कला विद्वेषी शासक का संघर्ष दिखाया गया है तो 'पहला राजा' में राजा पृथु के पौराणिक आख्यान के माध्यम से व्यक्ति और राजसत्ता का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित किया है। 'दशरथनन्दन' में राम के माध्यम से व्यक्ति का अन्तर्द्वन्द्व प्रस्तुत हुआ है।

इस वर्ग के प्रमुख नाटककारों में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का नाम उल्लेखनीय है। उनकी प्रमुख रचनाओं में 'अंधा–कुआँ' 'रातरानी', 'दर्पण', 'कर्प्यू', 'अब्दुल्ला दिवाना', 'एक सत्य हरिश्चन्द्र', 'मिस्टर अभिमन्यु' आदि महत्वपूर्ण है। डॉ. लाल के नाटकों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, जिनमें भारतीय गाँवों से लेकर अत्याधुनिक शहरी जीवन की विभिन्न पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनीतिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक समस्याओं का निरुपण कुशलतापूर्वक किया गया है। वस्तुत: इनके नाटक जीवन एवं समाज की विभिन्न असंगतियों और विषमताओं का उद्‌घाटन सफलतापूर्वक करते है।

विष्णु प्रभाकर ने 'डॉक्टर', 'युगे–युगे क्रांति' 'टूटते परिवेश' आदि नाटकों में पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की कतिपय समस्याओं को चित्रित किया है। नरेश मेहता ने 'सुबह के घण्टे' में आधुनिक राजनीति विशेषत: दलिय प्रजातंत्र–प्रणाली की विषमताओं का उद्‌घाटन किया है। साथ ही उन्होंने अपने दूसरे नाटक 'खण्डित यात्राएँ' में आधुनिक जीवन में टूटते हुए मूल्यों की व्यारव्या की है। विनोद रस्तोगी ने अपने नाटक 'नये हाथ' और 'बर्फ की मीनार' में क्रमश: जन्मींदारी उन्मूलत के फलस्वरुप उत्पन्न स्थिति एवं आधुनिक परिवार की मन:स्थिति का चित्रण किया है। डॉ. शंकर शेष ने अपने नाटकों में विभिन्न मानव भावनाओं का विश्लेषण करते हुए व्यक्ति, समाज एवं संस्कृति के क्षेत्र में व्याप्त अन्तर्द्वन्द्व को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया है। इस दृष्टि से उनके 'बिन बाती के दीप', 'फन्दी', 'खजुराहों का शिल्पी', 'एक और द्रोणाचार्य' उल्लेखनीय है।

(७) व्यक्तिवादी चेतना से अनुप्राणित नाटक :–

इस वर्ग के नाटकों में मुख्यत: मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, रमेश बक्षी, मुद्राराक्षस आदि नाटककारों की रचनाएँ आती है। मोहन राकेश ने अपने नाटक 'आषाढ का एक दिन',

'लहरों के राजहंस', और 'आधे अधूरे' में व्यक्ति एवं समाज के द्वन्द्व से उत्पन्न कतिपय विभिन्न स्थितियों का चित्रण विभिन्न कथानकों के माध्यम से किया है। 'आषाढ का एक दिन ' संस्कृत के महाकवि कालिदास की जीवनी एवं 'लहरों के राजहंस' अश्वघोष के 'सौन्दरनंद' पर आधारित हैं किन्तु दोनों में ही प्राचीन विषय वस्तु के माध्यम से आधुनिक युग की संवेदनाओं– मुख्यत: व्यक्ति के अहं, काम, प्रेम आदि से सम्बन्धित अन्तर्द्वन्द्व की व्यन्जना सफलतापूर्वक की गई है। 'आधे अधूरे' में परम्परागत नैतिक मूल्यों एवं आधुनिक जीवन दृष्टि के बीच घटित संघर्ष का चित्रण करते हुए दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन के विघटन को रेखांकित किया गया है। उनके नाटक रंगमंच एवं शिल्प की दृष्टि से भी अत्यन्त सफल सिध्द हुए है।

सुरेन्द्र वर्मा ने 'द्रौपदी', 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' एवं 'आठवाँ सर्ग' आदि नाटकों में परम्परागत मान्यताओं को चुनौती देते हुए नारी–पुरुष के यौन–सम्बन्धों की स्वतंत्रता, वैवाहिक बन्धन की निस्सारता, साहित्य में अश्लीलता आदि के सम्बन्ध में नये दृष्टिकोन को प्रस्तुत करने की चेष्टा की है।

इसी परम्परा को आगे बढाते हुए रमेश बक्षी ने अपने नाटक 'देवयानी का कहना है' में एक ओर तो वैवाहिक संस्था की उपयोगिता पर प्रश्नचिन्ह लगाया हैं तो अपने दूसरे नाटक ' तीसरा हाथी' में दूसरी ओर युवा पीढी के लिए पितृत्व के बोझ को हाथी का बोझ सिध्द किया है।

इस वर्ग के अन्य नाटककार मुद्राराक्षस ने अपने 'तिलचट्टा' नाटक में काम, प्रेम और विवाह के सम्बन्ध में परम्परागत मूल्यों के प्रति विद्रोह किया है, तो दूसरे नाटक 'योर्स फेथफुली' में कार्यालय के बाबू लोगों की यंत्रणा को व्यक्त किया है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि इस वर्ग के नाटककारों की दृष्टि मुख्यत: व्यक्ति स्वातंत्र्य, अहं, काम एवं स्वच्छन्द प्रेम सम्बन्धों के चित्रण में ही अधिक केन्द्रित रही जिसके फलस्वरुप परम्परागत मूल्यों एवं आदर्शों का विरोध स्वाभाविक था।

(८) राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित नाटक :–

वैसे तो राजनीतिक विषयों को लेकर नाटक लिखने की परम्परा बहुत पुरानी रही है, लेकिन आठवे दशक में 'भारतीय राजनीति में जिस प्रकार तेजी से उतार–चढाव आया उसके प्रभाव से हिन्दी में ऐसे कई नाटक लिखे गये हैं जिसमें समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप में तीखा व्यंग्य किया गया है। इनमें एक ओर तो प्रजातंत्र के नाम पर जनता का शोषण करनेवाले उन राजनीतिकों का भंडाफोड किया गया है जो कि चुनाव जीतने के लिए एवं सत्ता की प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रकार के पाखण्डों एवं झूठे आश्वासनों का आश्रय ग्रहण करते है तो दूसरी ओर इनमें सत्ताधारी वर्ग के द्वारा किये जानेवाले दुराचार, भ्रष्टाचार एवं अनाचार का भी चित्रण स्पष्ट रुप में किया गया है। आधुनिक युग में राजनीतिक नेताओं के आदर्शों, मूल्यों एवं विश्वासों के पतन का एक रोचक चित्र इन नाटककारों ने अपनी–अपनी दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इनमें दया प्रकाश सिन्हा के'इतिहास–चक्र', एवं 'कथा एक कंस की', विपिन अग्रवाल का 'ऊँची–नीची टाँग का जांघिया', हमीदुल्ला का 'समय–संदर्भ' गिरिराज किशोर का 'प्रजा ही रहने दो', सुशीलकुमार सिंह का 'सिंहासन खाली है!' मणि मधुकर का 'रस–गंधर्व', ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुरमुर्ग', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'बकरी', भीष्म साहनी के 'हानूश' तथा 'कविरा खडा बाजार में

'आदि विशेष रुप से उल्लेखनीय है।

(९) नारी चेतना से अनुप्राणित नाटक :–

इस वर्ग के नाटककारों ने नारी वर्ग की विभिन्न स्मस्याओं को भिन्न भिन्न दृष्टिकोन से प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से हमीदुल्ला का 'ख्याल भारमली', विष्णु प्रभाकर का 'अब और नही' गिरिराज किशोर का 'केवल मेरा नाम लो' भीष्म साहनी का 'माधवी' मुदूला गर्ग का 'एक और अजनबी' आदि नाटक विशेष उल्लेखनीय है। 'ख्याल भारमली' नाटक की मूल समस्या नारी के शोषण से सम्बन्धित है, जिनमें दो स्तरों पर जातिगत अन्याय एवं वर्ग संघर्ष को उठाया गया है। 'अब और नहीं ' नाटक मानवीय संवेदनाओं से संपन्न है। इसमें नारी जीवन की विसंगतियों का चित्रण करते हुए यह बताया गया हैं कि उसके जीवन की सार्थकता अपने व्यक्तित्व के स्वतंत्र एवं सार्थक तलाश में है न कि आत्म समर्पण और निर्भरता में। 'केवल मेरा नाम लो' में पिता–पुत्री के सम्बन्धों की मनोवैज्ञानिक ग्रन्थी का उद्घाटन पाश्चात्य परिवेश के अनुरुप किया है। ब्रजकिशोर श्रीवास्तव के 'नींद की दरारें' नाटक में संयुक्त परिवार के टूटन की कहानी चित्रित है। भीष्म साहनी के 'माधवी' नाटक में युगों–युगों से शोषित नारी को वाणी देने का प्रयास किया है।

(१०) व्यंग्य नाटक :–

इस वर्ग के नाटककारों में शरद जोशी तथा डॉ. विनय के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। शरद जोशी ने 'अंधों का हाथी', एवं 'एक था गधा उर्फ अलदाद खाँ' नाटक के द्वारा तथा डॉ. विनय ने 'पहला विद्रोह' और 'इन्हें जानते हैं' आदि के द्वारा व्यंग्य नाटकों की परम्परा को आगे बढाया है।

इसके अतिरिक्त नवें दशक में कुछ महिला नाटककारों ने भी हिन्दी नाटक को अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं। इनमें डॉ. कुसुम कुमार, मृणाल पाण्डे, त्रिपुरारी शर्मा, शांति मेल्होत्रा, मन्नु भंडारी, मृदूला गर्ग आदि विशेष रुप से उल्लेखनीय है। इन नाटकों में डॉ.कुसुम कुमार के 'दिल्ली उँचा सुनती हैं, 'संस्कार को नमस्कार' और 'रावण लीला' आदि महत्वपूर्ण है मृणाल पाण्डे कें 'आदमी जो मछुआरा नहीं था', 'चोर निकल भागा', 'मुक्ति पथ ' 'मौजुदा हालात को देखते हुए' तथा त्रिपुरारी शर्मा के 'बहू', 'बाढ की गाडी, बांझ घाटी', 'रेशमी रुमाल, शांति मेहलोत्रा का 'एक और रिल,' मन्नु भंडारी का 'महाभोज' और मृदुला गर्ग का 'एक और अजनबी' उल्लेखनीय है।

इस प्रकार हिन्दी नाटक का विकास अनेक रुपोंओं अनेक दिशाओं में हुआ है। अपने युग और समाज की नवीनतम स्थितियों, परिस्थितियों, संवेदनाओं और अनुभूतियों को व्यंजित करने की दृष्टि से हिन्दी नाटक पूर्ण सक्षम एवं सफल है।

१३.४ बोध प्रश्न :–

१. हिन्दी नाटक के विकासक्रम को रेखांकित कीजिए ?

२. भारतेन्दु युगीन नाटक की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए ?

◆◆◆◆◆◆

हिन्दी निबन्ध साहित्य का विकास

१४.० इकाई की रूपरेखा

१४.१ इकाई का उद्देश्य

१४.२ प्रस्तावना

१४.३ हिन्दी निबंध साहित्य का अध्ययन

१४.४ बोध प्रश्न

१४.१ इकाई का उद्देश्य :–

इस इकाई का उद्देश्य हिन्दी निबंध साहित्य का अध्ययन करना है। इसके अंतर्गत विद्यार्थी हिन्दी निबंध का अभ्युत्थान, हिन्दी निबंध का परिमार्जन, हिन्दी निबंध का उत्कर्ष, हिन्दी निबंध का प्रसारण की विस्तृत जानकारी हासिल कर सकेंगे और प्रमुख निबंधकार और उनके द्वारा लिखित निबंधो का भी अध्ययन कर सकेंगे।

१४.२ प्रस्तावना :–

'भारतेन्दु हरिश्चंद्र' के आने से हिन्दी साहित्य को नयी दिशा मिली उन्होने कई विधाएँ हिन्दी साहित्य को दी उनमें से एक निबंध है। भारतेन्दु युग सामाजिक और राजनीतिक हलचल का युग था। लेखकों ने समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर साहित्यिक लेख, और प्रभावोत्पादक शैली का प्रयोग कर निबंध रचना की जो काल के अनुरूप और आवश्यक थी।

१४.३ हिन्दी निबंध साहित्य का अध्ययन :–

'निबन्ध' गद्य साहित्य की एक विशेष विधा है। हिन्दी में निबन्ध का समुचित सुत्रपात राष्ट्रीय जागरण के उष:काल भारन्तेन्दु काल में हुआ। इसके कारण स्पष्ट ही हैं– एक तो अब गद्य का विकास हो चुका था और दूसरे मुद्रणतंत्र तथा समाचार पत्रों के प्रचलन ने साहित्य के इस अंग को प्रोत्साहन दिया। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु युग के साहित्यकार पर विविधमुखी दायित्व था; जिसकी पूर्ति गद्य साहित्य के अन्य अन्गों की अपेक्षा निबन्ध के द्वारा सहज तथा सबल रुपमें हो सकती थी। भारतेन्दु पूर्व काल में उस सामाजिक और राजनीतिक चेतना का भी उन्मेश नहीं हुआ था; जिसने आधुनिक युग के निबन्धों में प्राण फूँके।

भारतेन्दु युग से लेकर अब तक के निबन्ध साहित्य को चार विभागों में विभाजित किया जा सकता हैं।–

(१) भारतेन्दु युग (सन् १८५७–१९००) 'हिन्दी निबन्ध का अभ्युत्थान'

(२) द्विवेदी युग (सन् १९००–१९२०) 'हिन्दी निबन्ध का परिमार्जन'
(३) शुक्ल युग (सन् १९२०–१९४०) 'हिन्दी निबन्ध का उत्कर्ष'
(४) शुक्लोत्तर युग (सन् १९४०– अबतक) 'हिन्दी निबन्ध का प्रसरण।

(१)भारतेन्दु युग: हिन्दी निबन्ध का अभ्युत्थान

भारतेन्दु युग के साहित्यकार पर निश्चित रुप से विविधमुखी दायित्व था। जहाँ एक ओर उसे सामाजिक सुधार करना था; वहाँ दूसरी ओर सांस्कृतिक चेतना का समुचित विकास करना भी उसे अभिष्ट था। एक ओर उसे शिक्षा का अधिकाधिक प्रसार करना था, तो दूसरी ओर उसे साहित्य के विविध अंगो को पुष्ठ करना वांछनीय था। इन सम्पूर्ण दायित्व की पूर्ति करने के लिए जितना निबन्ध उपयोगी हो सकता है; उतनी साहित्य की दूसरी विधा नहीं। प्राय: इस युग के साहित्यकार, सम्पादक और लेखक भी है। इन्होंने अपनी पत्र–पत्रिकाओं में सामाजिक विषयों; 'सामायिक आन्दोलनों तथा दूसरे अनेक प्रकार के विषयों की चर्चा निबन्धों के रुप में की है। अत: इस युग के निबन्धों में जहाँ विषय व्यापकता हैं, वहाँ उनमें पत्रकारिता के भी सभी गुण हैं। उनके निबन्धों की समस्याएँ जनता की समस्याएँ थी; अत: इस युग के निबन्ध साहित्य में तत्कालीन युग की समग्र चेतना सम्यक् रुप से प्रतिबिम्बित हुयी है। गद्य के किसी सर्व–स्वीकृत रुप के अभाव में भाषा और शैली में एकरुपता का आना इस युग के निबन्धों में कठिन था; अत: इस क्षेत्र में वैयक्तिक प्रयोग ही चलते रहे। अस्तू ! इस युग में निबन्ध खूब लिखे गये और सम्भवत: इस युग के गद्य–साहित्य का सबसे उन्नत अंग निबन्ध ही है। इस युग के प्रमुख निबन्धकार है– भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायन मिश्र, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, ज्वालाप्रसाद, तोताराम, अम्बिकादत्त व्यास, और राधाचरण गोस्वामी प्रभूति आदि।

(१) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र– (१८५०–१८८५)–

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न हिन्दी के प्रथम निबन्धकार हैं। कविता और नाटक के समान इनके निबन्धों की परिधि भी बहुत व्यापक है। इतिहास, धर्म, समाज, राजनीति, आलोचना, खोज–यात्रा, प्रकृति–वर्णन, आत्मचरित और व्यंग्य–विनोद आदि सभी विषयों पर इस महामानव ने कलम उठायी है।

उन्होंने अपने धार्मिक निबन्धों में अंधविश्वासों; मिथ्या परम्पराओं और बाह्य–आडम्बरों पर तीखी चोट की है। सामाजिक निबन्धों में कुरीतियों का खुलकर विरोध किया हैं और राजनीतिक निबन्धों में विदेशी शासन पर मीठे–तीखे व्यंग्य कसे है। इनके यात्रा–वर्णन अत्यन्त सजीव और प्राकृतिक निबन्ध अतीव मनोहरी है। 'काश्मिर–कुसुम', 'कालचक्र', 'बादशाह दर्पन' आदि निबन्धों में उनकी सूक्ष्म ऐतिहासिक दृष्टि का परिचय मिलता है। तो 'वैद्यनाथधाम', 'हरिद्वार और सरयुपार की यात्रा' सम्बन्धि निबन्धों में भारतीय संस्कृति एवं भारतभूमि के प्रति अनुराग छलकता है।

भारतेन्दु के निबन्धों में विषय के अनुरुप विभिन्न प्रकार की भाषाशैलियों का प्रयोग हुआ हैं। उनकी भाषा में मार्मिक अभिव्यन्जना.. सजीव बहुरुपता और मनमोहक स्वच्छता मिलती है। उसमें कहीं स्वाभाविक अलंकार योजना हैं, तो कहीं गोस्टी–वार्तालाप का ढन्ग आपनाया गया है। ताजगी, जिन्दादिली, आत्मियता, व्यक्तित्व की अभिव्यन्जना, मौलिकता

और व्यंग्यात्मकता इनके निबन्धों के विशिष्ट गुण है। विशेषकर इनके निबन्ध व्याख्यात्मक और विचारात्मक शैली में लिखे गये है। 'लेवी प्राणलेवी, स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन', 'जाति विवेचनी सभा', पाँचवे पैगम्बर', 'अँग्रेज स्त्रोत', कण्कड स्तोत्र' आदि इनके प्रसिध्द निबन्ध है।

(२) बालकृष्ण भट्ट –

ये भारतेन्दु युग के प्रतिभाशाली लेखक, संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित तथा युग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार माने जाते है। इन्होंने साहित्यिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि अनेक विषयों पर सुन्दर निबन्ध लिखे। भट्टजी पाश्चात्य निबन्धकार 'एडिसन' से अधिक प्रभावित थे। इन्होंने 'हिन्दी–प्रदीप' पत्रिका के सम्पादन के साथ ही साथ वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक, एवं भावात्मक सभी प्रकार के निबन्ध लिखे। भट्टजी के निबन्धों में विचारों की मौलिकता, विषय की व्यापकता और शैली की रोचकता विद्यमान हैं। 'साहित्य–सुमन', 'भट्ट निबन्धावली', 'भट्ट निबन्धमाला' आदि उनके निबन्ध संग्रह प्रसिध्द है। इनके प्रमुख निबन्धों के नाम हैं – 'चारुचरित्र', चरित्र–पालन, प्रतिभा, 'आत्मनिर्भरता', 'आँसू', मुग्ध–माधुरी, 'हमारे मन की' मधुप्रवृत्ति, 'कल्पना', माधुर्य, चलन, आशा, माता का स्नेह, 'चन्द्रोदय', शन्कराचार्य, 'नानक', 'इग्लिश पढे तो बाबू होय' आदि।

(३) पं. प्रतापनारायन मिश्र –

ये 'बाह्मण' के सम्पादक थे। इन्होंने भी विभिन्न विषयों पर लेख लिखे। इनके निबन्धों में मुहावरों का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में हुआ हैं। अनुप्रास और श्लेष के चमत्कार से ये अपने पाठक के साथ पूर्ण आत्मियता स्थापित कर लेते हैं। इनके अब तक चार निबन्ध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं–
(१) 'निबन्ध नवनीत', (२) 'प्रताप पीयूष', (३) 'प्रताप–समीक्षा', (४) 'प्रतापनारायन ग्रन्थावली।' इनके प्रसिध्द निबन्ध हैं– बात, वृध्द, धोखा, दान, आाप, भौं, होली, बेगार रिश्वत पुच्छ, मानस–रहस्य, जवानी की सैर, हमारा कर्तव्य, मनोयोग, शिवमूर्ति, बन्दरों की सभा, समझदार की मौत आदि। मिश्रजी के निबन्धों में इनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। इनकी शैली में सामयिक भाषा के गुण–अवगुण होते हुये भी आत्मियता और रोचकता का आकर्षण भुलाया नहीं जा सकता। इनके निबन्धों में कहीं–कहीं वाक्य का विलक्षण और दुर्बोध रुप भी मिलता है। सारांशत: मिश्रजी 'मन की स्वच्छन्द भटकन' प्रणाली के निबन्धकार थे।

(४) बालमुकुन्द गुप्त –

इन्होंने 'बंगवासी', 'भारत–मित्र' आदि का सम्पादन करते हुये निबन्ध लिखें। इनके निबन्धों में विदेशी शासकों की नीति पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया गया है। निबन्ध लेखन में इन्होंने अपना उपनाम 'शिवशम्भू' ररवा था। इनके निम्बन्ध 'शिवशम्भू के चिट्ठा' नाम से प्रसिध्द है। कहीं–कहीं इनका व्यंग्य बडा तीखा हो गया हैं। इनके निबन्धों में अतीत–प्रेम के साथ राजनीतिक विचारों की सजगता विशेष उभरी हुयी हैं। इन्होंने कई जीवन–चरित्र तथा 'हिन्दी भाषा', 'लिपी', 'व्याकरण' और 'राष्ट्रभाषा' आदि के सम्बन्ध में निबन्ध लिखें।

(५) चौधरी पं. बदरीनारायण 'प्रेमघन'

इनके निबन्ध इनके द्वारा सम्पादित दो पत्रिकाओं में– 'आनन्द–कादम्बिनी' (मासिक–पत्रिका) और 'नागरी–नीरद' (साप्ताहिक) प्रकाशित होते थे। इन्होंने विचारात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक तथा वर्णनात्मक निबन्ध लिखें। भारतेन्दु काल में इन्होंने ही विचारात्मक निबन्धों का श्रीगणेश: किया। इनकी शैली में मुहावरों और काव्यात्मकता का सामंजस्य मिलता है। इनमें व्यंग्य–विनोद का भाव भी विशेष दर्शनीय हैं। इनके प्रसिध्द निबन्ध है– 'बनारस का बुढवा मंगल', 'दिल्ली दरबार में मित्र–मंडली के यार समय आदि।

इनके अतिरिक्त राधाचरण गोस्वामी, ठाकुर जगमोहनसिंह, लाला श्रीनिवासदास, मोहनलाल विष्णुलाल पंडया, पं. आम्बिकादत्त व्यास, पं. महादेव दुबे, पं. मुरलीधर पाठक, पं. गणेशदत्त शर्मा, पं. भानुदत्त, पं. हरिश्चन्द्र उपाध्याय, बाबू काशिनाथ खत्री आदि ने भी इसमें योगदान दिया है।

भारतेन्दु युग के निबन्ध प्राय. विभिन्न सामयिक समस्याओं से प्रेरित एवं आन्दोलित है। इस युग के निबन्धों में विषय क्षेत्र की व्यापकता और विविधता दृष्टिगोचर होती है। इनके निबन्धों में वैयक्तिकता के साथ–साथ सामाजिकता भी है। इनकी व्यंग्यात्मकता सोद्देश्य हैं और वह किसी न किसी सामाजिक या राजनीतिक विषमता पर गहरी चोट करती हैं। सरलता इन निबन्धों का नीज गुण है और इन निबन्धों में युग–चेतना प्रतिबिम्बित हुयी है। यद्यपि विकासक्रम की दृष्टि से यह युग हिन्दी निबन्ध का बाल्यकाल ही सिध्द होता हैं फिर भी यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि ये निबन्ध पर्याप्त रोचक एवं महत्वपूर्ण हैं।

(२)द्विवेदी युग: हिन्दी निबन्ध का परिमार्जन

इस युग की समस्त साहित्य चेतना महावीर प्रसाद द्विवेदी में समाहित है। द्विवेदी युग का प्रारम्भ महावीर प्रसादजी के 'सरस्वती' (१९०३) पत्रिका के सम्पादन के साथ ही मान सकते हैं। सरस्वती में जाते ही इन्होंने सबसे पहला कार्य तत्कालीन लेखकों की भाषा को संस्कारित एवं परिमार्जित करने का किया। उन्होंने भाषा के व्याकरण सम्मत प्रयोग तथा हिन्दी में विरामचिन्हों के उपयोग पर अत्यधिक बल दिया। द्विवेदीजी के नैतिकता प्रिय होने के कारण उस युग में नैतिक निबन्ध अधिक लिखे गये। द्विवेदी युग के निबन्धों में गम्भीरता एवं शालीनता आने लगी और उनका मुख्य सम्बन्ध सय एवं शिक्षित समाज से हो गया। इससे द्विवेदीकालीन निबन्धों में बौध्दिकता अधिक आई और हार्दिकता की कमी रही और उनमें भारतेन्दुकालीन आत्मियता तथा जिन्दादिली न रही। द्विवेदी के अनुसार ज्ञानराशि का अर्जित भाण्डार ही साहित्य है। अत: इस युग के निबन्धकार का ध्यान अपने साहित्य को संचित ज्ञानकोष बनाने की ओर भी गया। परिणामत: दूसरी भाषाओं के निबन्धों के अनुवाद करने की परम्परा भी इस युग में चल निकली। इस युग के प्रमुख निबन्धकार हैं– महावीरप्रसाद द्विवेदी, बाबू श्यामसुन्दर दास, पद्मसिंह शर्मा, मिश्रबन्धु, माधवप्रसाद मिश्र, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और सरदार पूर्णसिंह।

(१) आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी–

निबन्धकार द्विवेदी का महत्व ऐतिहासिक है, साहित्यिक नहीं। निबन्धकार

द्विवेदी का आदर्श 'बेकन' था। बेकन की भाँति द्विवेदीजी भी निबन्धों में विचारों को प्रमुखता देते थे। उन्होंने बेकन के निबन्धों का 'बेकन विचार रत्नावली' के नाम से अनुवाद भी किया। उनके निबन्धों में भाषा की शुध्दता, सार्थक स्वरुपता, शब्दप्रयोग पटुता आदि गुण तो मिलते हैं, किन्तु पर्यवेक्षण की सूक्ष्मता, विश्लेषण की गम्भीरता, चिन्तन की मौलिकता उनमें बहुत कम हैं। फिर भी उनके निबन्धों में व्यास शैली के कारण पर्याप्त सरलता आयी हैं। कहीं–कहीं हास्य–व्यंग्य एवं भावात्मकता का भी प्रस्फुटन हुआ हैं। उनके प्रसिध्द निबन्ध हैं– 'कवि और कविता', 'कवि–कर्तव्य', 'प्रतिभा', 'नाटक और उपन्यास', दण्डदेव का आत्मनिवेदन, 'कालिदास का भारत', गोपियों की भगवत् भक्ति और नल का दुस्तर दूत कार्य'।

(२) माधवप्रसाद मिश्र –

मिश्रजी 'वैश्योपकारक' के सम्पादक रह चुके थे और काशी से इन्होंने 'सुदर्शन' नामक पत्र निकाला था। इन पत्रिकाओं में इनके निबन्ध प्रकाशित होते रहें जो अब 'माधवमिश्र निबन्धमाला' में संग्रहीत है। उन्होंने जीवन चरित्र, पुरातत्व, पर्व त्यौहार, साहित्य, राजनीति, स्थान–वर्णन आदि विभिन्न विषयों पर निबन्ध लिखें। मिश्रजी पुरातन संस्कृति और सनातन धर्म के सच्चे समर्थक थे। देश के प्रति उनके मन में अगाध अनुराग था। यही कारण है कि उन्होंने आपने अधिकांश निबन्ध मार्मिक विषयों पर लिखे। राम–लीला, पर्व–त्यौहार, होली, श्रीपंचमी आदि ऐसे ही निबन्ध हैं। धृति, क्षमा, सत्य जैसे विषयों पर गंभीर शैली में विचारात्मक निबन्ध लिखने में भी उनको पर्याप्त सफलता मिली हैं। उनकी भाषा संस्कृत गर्भीत, प्रौढ एवं सशक्त है। इनकी कृतियों में भारतीय संस्कृति का पद–पद पर अभिमान प्रकट होता है।

(३) सरदार पूर्णसिंह –

कहानी साहित्य में जो स्थान गुलेरी जी को प्राप्त हैं, वही स्थान निबन्ध साहित्य में सरदार पूर्णसिंह को प्राप्त हैं। इन्होंने केवल आठ ही निबन्ध लिखे। परिमाण की दृष्टि से इनकी निबन्ध संख्या कम हैं, पर गुणों की दृष्टि से उनका बड़ा महत्व है। उनके निबन्धों में स्वतंत्र चिन्तन, भाव–प्रवणता, और मधुरता को विशेष स्थान मिला है। उनके भावात्मक निबन्धों में मानवतावादी दृष्टिकोन की प्रधानता है। इनके निबन्ध 'आचरण की सभ्यता, सच्ची वीरता, मजदूरी और प्रेम, ब्रह्म–क्रान्ति, 'कन्यादान', 'पवित्रता' आदि उन्हें निबन्धकार के रुप में प्रतिष्ठित कर देते है।

(४) डॉ. श्यामसुन्दरदास –

बाबू श्यामसुन्दरदास एक उच्च कोटि के आलोचक होने के साथ–साथ सफल निबन्धकार भी थे। उन्होंने प्राय: गम्भीर आलोचनात्मक विषयोंपर लेख लिखे हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से उन्होंने साहित्यिक, सांस्कृतिक और भाषा–वैज्ञानिक विषयों पर निबन्ध लिखें। इनके निबन्धों में विचारों का संग्रह और समन्वय ही अधिक दृष्टिगोचर होता है। आत्मानुभूतियों का प्रकाशन या भावात्मकता उनमें बहुत कम है। इनकी शैली प्रौढ़ होते हुए भी सरल है। बाबूजी एक गंभीर विचारक थे, अत: उनके निबन्धों में उनके विचारों की ही

अभिव्यक्ति मुख्यत: हुयी है। उनके प्रसिध्द निबन्ध हैं– भारतीय साहित्य की विशेषताएँ, समाज और साहित्य, हमारे साहित्योदय की प्राचीन कथा, कर्तव्य और सभ्यता इ.।

(५) पद्मसिंह शर्मा –

इनके दो निबन्ध संग्रह– 'पद्म– पराग', और 'प्रबन्ध– मंजरी' प्रकाशित हो चुके हैं। इनके निबन्ध फड़कती हुयी भाषा के कारण पर्याप्त आकर्षक बन पड़े हैं। उन्होंने कुछ जीवनीयाँ और संस्मरणात्मक लेख भी लिखे हैं।

(६) गुलेरी –

गुलेरीजीने कहानियों के समान निबन्ध भी कम लिखे है, फिर भी वे अद्वितीय और अनूठे है। उनके 'मारेसि मोंहि कुण्ठाव', 'कछुआ धरम' और 'सन्गीत' आदि निबन्धों में समाज पर तीखे व्यंग है।

(७) मिश्रबन्धु–

मिश्रबन्धुओं के निबन्ध संख्या में काफी हैं पर उनका महत्व शिक्षा मूलक हैं। द्विवेदी युग के अन्य निबन्धकारों में गोविन्द नारायण मिश्र, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, गणेश शन्कर विद्यार्थी, किशोरीदास वाजपेयी, शिवपूजन सहाय आदि उल्लेखनिय हैं।

द्विवेदीकालीन निबन्धों में भारतेन्दुकालीन निबन्धों की सी ताजगी, जिन्दादिली और व्यंग्य–विनोद प्रियता नहीं है, बल्कि विचारोंकी प्रधानता और गंभीरता है। भारतेन्दुकालीन निबन्धों में पर्याप्त मौलिकता हैं, किन्तु इनमें ज्ञान की संचयात्मकता हैं। वस्तुत: ये निबन्ध कम है और विचारों के संग्रह अधिक। गुलेरी और पूर्णसिंह को छोडकर द्विवेदी युग के निबन्धों में वैयक्तिकता का भी प्राय: अभाव है। इन निबन्धों का वृत्त भी सीमित है, इनमें भारतेन्दुकालीन निबन्धों के समान सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक चेतना का प्रतिबिम्ब नहीं है। उपदेशात्मकता इन निबन्धों की खास विशेषता है। इस युग के निबन्ध भाषा की दृष्टि से अधिक शुध्द और परिष्कृत है।

(३) शुक्ल युग: हिन्दी निबन्ध का उत्कर्ष

हिन्दी साहित्य में निबन्ध के विकास की दृष्टि से शुक्ल युग उत्कर्षकाल है। विषय, शैली, स्वरुप, भाव, तथा भाषा के विचार से सर्वांगिण विकास इस युग में हुआ। भारतेन्दु युगीन राजकिय कटुता, हिन्दी–उर्दू विवाद, आदि नष्ट होने से व्दिवेदी युग में स्वाभाविक था कि निबन्धकारों का लक्ष्य विविध विषयों का बन सके तथा ज्ञान–वर्धक निबन्ध प्रस्तुत किये गये। विषय वैविध्य, की दृष्टि से शुक्ल युग में शैक्षणिक, साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, तथा विविध और उपयोगी विषयों पर निबन्ध लिखे गये। इस युग में प्राय: विचारात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक आदि सभी प्रकार के निबन्ध लिखे गये।

(१) आ. रामचन्द्र शुक्ल –

आलोचक–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का स्थान हिन्दी निबन्ध परम्परा में शीर्ष स्थानीय है। आ. शुक्ल के निबन्ध संग्रह 'चिन्तामणि' से हिन्दी निबन्ध के विकास की गति में तीसरा मोड उपस्थित होता है। उन्होंने मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक, तथा सैध्दान्तिक सभी प्रकार के निबन्ध लिखें। उनके निबन्धों में एक ओर चिन्तन की मौलिकता, विवेचन की गंभीरता, विश्लेषण की सुक्ष्मता एवं प्रौढता दृष्टिगोचर होती है, तो दूसरी ओर उनमें लेखक की वैयक्तिकता, भावात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता का दर्शन भी स्थान–स्थान पर होता है। उनके निबन्धों में विषय और व्यक्ति का ऐसा समन्वय हुआ है कि इस बात का निर्णय करना कठिन हो जाता है कि उन्हें विषय–प्रधान कहें या व्यक्ति– प्रधान कहें? ईर्ष्या, श्रध्दा,लज्जा क्रोध, लोभ, प्रीति आदि मनोवृत्तियों का विश्लेषण उन्होंने अत्यन्त पैनी दृष्टि से किया है। एक मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री एवं साहित्यकार तीनों के कार्य की सफलतापूर्वक पूर्ति अकेले शुक्लजी ने 'चिन्तामणि' में की है।

शुक्लजी एक मौलिक निबन्ध लिखनेवाले श्रेष्ठ निबन्धकार हैं। वस्तुत: ऐसी 'नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा' को लेकर अवतरित होनेवाले निबन्धकार और आलोचक शताब्दियों के पश्चात् एक–दो–ही दिखाई पडते है। शुक्लजी के निबन्धों में पर्याप्त मौलिकता स्पष्टता और रोचकता हैं। शुक्लजी जीवन से अध्यापक, मस्तिष्क से आलोचक और हृदय से कवि है। सूत्र, व्याख्या और निष्कर्ष उनके निबन्धों का स्तर हैं। उनकी शैली के सम्बन्ध में डा. गणपतीचन्द्रगुप्त लिखते हैं– 'निबन्धकार शुक्लजी के शैली में भी निजी विशिष्टता मिलती है। भारतेन्दु युग की सी मौलिकता उसमें है, किन्तु वे उसके छिछलेपन से दूर हैं, द्विवेदी युग की विचारात्मकता उसमें है, किन्तु वैसी शुष्कता का अभाव हैं। विचारों की गंभीर घाटियों के बीच–बीच में उतरी हास्य–व्यंग से ओतप्रोत उक्तियाँ किसी स्वच्छ–शीतल निर्झर के कोमल–मधुर कलकल स्वर की तरह सुनाई पड़ती है। हाँ, उनके कुछ निबन्ध अतिगंभीरता, अति प्रौढ़ता एवं अति सूक्ष्मता के कारण साधारण पाठक के लिए पहेलियों के तुल्य जटिल, दुरुह एवं शुष्क अवश्य बन गये है।

(२) बाबू गुलाबराय –

आपके निबन्धों को मुख्यत: चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– दार्शनिक–विचारात्मक, साहित्यिक– आलोचनात्मक, आत्म–संस्मरणात्मक, हास्य विनोदात्मक। इनके निबन्धों में व्यक्तित्व की सरलता, विचारों की स्पष्टता, एवं शैली की सुबोधता मिलती है। साहित्य, मनोविज्ञान और दर्शन आदि से सम्बन्धित विषयों को लेकर लिखे गये निबन्धों में जहाँ इनके अध्ययन क्षेत्र की व्यापकता एवं विचारों की स्पष्टता बिम्बित है, वहाँ उनकी शैली की सरलता एवं सुबोधता उनके आध्यापकिय व्यक्तित्व का परिचय देती है। व्यक्ति और विषय, विचार और अनुभूति, कथ्य और कथन–इन दोनों पक्षों का सुन्दर समन्वय इनके निबन्धों में दृष्टिगोचर होता है। अब तक इनके निम्न लिखित निबन्ध संग्रह प्रकाशित हो चुके है। – 'ठलुआ क्लब', 'मेरी असफलताएँ, फिर निराशा क्यों,' 'प्रबन्ध–प्रभाकर', 'मन की बाते', 'सिध्दान्त और अध्ययन', 'काव्य के रुप', 'हिन्दी–काव्य विमर्श', 'साहित्यसमीक्षा', 'कुछ उथले, कुछ गहरें, 'मेरे निबन्ध', 'अध्ययन और आस्वाद', आदि।

इस प्रकार इन्होंने हिन्दी निबन्ध साहित्य के विकास में विशिष्ट योग दिया है। हिन्दी–निबन्ध के श्रेष्ठ निबन्धकारों में इनकी गणना की जाती है।

(३) श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी–

बख्शीजी भी शुक्ल युग के प्रमुख निबन्धकार है। इनके निबन्धों में विचारों की मौलिकता और शैली की नूतनता दृष्टिगोचर होती हैं। डॉ. ओन्कारनाथ शर्मा ने इनके निबन्धों को चार वर्गों में विभाजित किया है–

विचारात्मक– मेरा जीवन क्रम, विज्ञान, समाजसेवा, नामश्रेष्ठ आदि।

आलोचनात्मक– विश्वसाहित्य, हिन्दी साहित्य– विमर्श में संग्रहीत निबन्ध

भावात्मक– रामलाल पंडित, कुन्जबिहारी, प्रतिस्मृति, उत्सव, श्रध्दांजली के दो फूल, आदि।

विवरणात्मक– चर्चा, एक पुरानी कथा, बन्दर की शिक्षा आदि।

बख्शीजी के निबन्ध संग्रह 'पंचमात्र', 'विश्वसाहित्य' 'मकरन्द बिन्दु, प्रबन्ध–पारिजात, हिन्दी साहित्य विमर्श, 'त्रिवेणी, कुछ और कुछ' बख्शीजी के निबन्ध, यात्री आदि है।

इस युग के अन्य निबन्धकारों में शियारामशरण गुप्त, मारवनलाल चतुर्वेदी, वियोगी हरी, राम कृष्णदास, वासुदेवशरण आग्रवाल, और शान्तिप्रिय व्दिवेदी आदि का नाम उल्लेखनिय है।

शुक्ल युग के निबन्धों के सम्बन्ध में निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि इनमें विषय–वैविध्य हैं; गंभीरता और सूक्ष्मता है। भाषा की प्रौढता, सरलता, शैली की विशिष्टता और वैयक्तिकता की दृष्टि से इस युग के निबन्ध व्दिवेदी युग के निबन्धों से उन्नत हैं।

(४) शुक्लोत्तर युग: हिन्दी निबन्ध का प्रसरण –

इस युग ने अत्यन्त उच्च कोटि के निबन्ध लेखकों को जन्म दिया हैं। इन निबन्धकारों में आ. हजारीप्रसाद व्दिवेदी, आ. नन्ददुलारे वाजपेयी, डा. नगेन्द्र, डा. रामविलास शर्मा, जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, शिवदानसिंह चौव्हाण, प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, डा. देवराज और नलिन विलोचन शर्मा आदि विशेष रुप से उल्लेखनिय हैं। ये विचार और शैली की दृष्टि से शुक्ल से भिन्न हैं, पर इन्हें जीवन के बारे में जो कुछ कहना हैं, शुक्ल के समान साहित्य के माध्यम से कहते हैं। साहित्य आलोचनात्मक निबन्ध लेखकों में पन्त, प्रसाद, निराला और महादेवी वर्मा तथा शियारामशरण गुप्त के नाम उल्लेखनीय हैं। इस युग के वर्णनात्मक एवं यात्रा सम्बन्धी निबन्ध लेखकों में सत्यदेव, राहुल सांकृत्यायन और देवेन्द्र सत्यर्षि के नाम विशेष उल्लेखनिय हैं। इनके अतिरिक्त सद्‌गुरुशरण अवस्थी, भगवतीचरण वर्मा, भदन्त अनन्त कौशल्यायन, और नरहरि विष्णू गाडगील आदि ने भी हिन्दी निबन्ध क्षेत्र में सुन्दर और सफल प्रयोग किये हैं।

(१) आ. हजारीप्रसाद व्दिवेदी :–

शुक्लोत्तर निबन्धकारों में आ. व्दिवेदी का शीर्षस्थ स्थान हैं। व्दिवेदी भारतीय संस्कृति और इतिहास के पुजारी है। आपके निबन्धों का विषय क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है।

उनमें भारतीय साहित्य, भारतीय संस्कृति एवं परम्परागत ज्ञान विज्ञान के साथ आधुनिक युग की विभिन्न परिस्थितियों, प्रवृत्तियों एवं समस्याओं का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता हैं। सरलता के साथ व्यंग्य–विनोद–प्रियता इनके निबन्धों की नीजी विशेषता हैं। इन्होंने साहित्य, समाज, संस्कृति और ज्योतिष, आदि अनेक विषयों पर लिखा है। पाठक के साथ आत्मियता स्थापित करने में द्विवेदीजी सिध्दहस्त हैं। उनके अनेक निबन्ध संग्रह प्रकाशित हुए हैं– आशोक के फूल, कल्परुता, विचार और वितर्क, विचार–प्रवाह, हमारी साहित्यिक समस्याएँ, गतिशील चिन्तन, कूटज, साहित्य का मर्म आदि।

द्विवेदीजी के निबन्धों की शैली लेखक के मनोभाव एवं विषय–प्रकृति के अनुकूल बदलती रहती हैं। कालिदास युगीन वातावरण चित्रण करते समय जहाँ उनकी शब्दावली संस्कृत–गर्भित हो जाती हैं; वहाँ ग्रामीण जीवन के प्रसंगों में लोक भाषा की सुबोधता भी विद्यमान हैं। उनकी भाषा में सर्वत्र उनका व्यक्तित्व झाँकता हैं। प्राय: द्विवेदीजी के सभी निबन्ध उनकी रचनात्मक प्रतिभा, गंभीर अध्ययन और प्रगाढ़ पांडित्य के परिचायक है।

(२) आ. नन्ददुलारे वाजपेयी :–

वाजपेयी आलोचना (त्रैमासिक) पत्रिका के सम्पादक रहे हैं। इस कारण इनके निबन्धों में एक पत्र–सम्पादक की छाप सर्वत्र विद्यमान रहती हैं। ये शुक्ल–परम्परा के निबन्धकार है। उनके निबन्ध विचार–प्रधान वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इनके निबन्ध चिन्तन–मनन पर आधारित है। निबन्धों में जहाँ उनका विचारक अत्यन्त गंभीर हो जाता हैं, वहाँ उनकी शैली भी गूढ एवं बोझिल हो जाती है। उनकी शैली की बौध्दिकता एवं तार्कीकता उच्च स्तरीय पाठकों को बौध्दिक आनन्द प्रदान करती हैं। वाजपेयी ने हिन्दी–साहित्य बीसवीं शताब्दि, आधुनिक साहित्य, नया साहित्य, नये प्रश्न आदि पुस्तकों में उच्च कोटि के आलोचनात्मक निबन्ध लिखे है। इन निबन्धों में साहित्यिक विषयों की ही मार्मिक विवेचना हुयी है। इनकी भाषा संस्कृत–गर्भित होते हुये भी स्पष्ट तथा बोधगम्य हैं।

(३) शांतिप्रिय व्दिवेदी :–

आत्मानुभूतिपरक वैयक्तिक निबन्ध प्रस्तुत करने की दृष्टि से इनका हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान हैं। इन्होंने प्राय: कला एवं साहित्य सम्बन्धी विषयों पर ही स्वानुभूतिमूलक विचार प्रस्तुत किये है। उनकी शैली अत्यन्त सरस एवं प्रभावोत्पादक हैं, जो कहीं–कहीं करुणोत्पादक भी बन गयी हैं। इनके अनेक निबन्ध संग्रह प्रकाशित हो गये हैं– जीवन–यात्रा, साहित्यिकी, हमारे साहित्य निर्माता, कवि और काव्य संचारिणी, युग और साहित्य, धरातल' आदि।

(४) डा. नगेन्द्र :–

इन्होंने साहित्यिक एवं आलोचनात्मक निबन्धों की अभिवृध्दि में असाधारण योग दिया है। इनके निबन्धों का मूल स्वर विषय–प्रधान हैं। इनका प्रयास पाठक का ध्यान विवेच्य विषय या मूल समस्या की ओर आकर्षित करने का रहा हैं। एक कुशल व्यारव्याता की तरह ये किसी भी समस्या पर अपना समाधान प्रस्तुत करते है। यही कारण हैं कि गूढ से गूढ विषय को भी पाठक रुचिपूर्वक गृहण करता चलता हैं। उनका 'साधारणीकरण' सम्बन्धी निबन्ध

इस शैली का सर्वोत्कृष्ट निबंध है। इनकी भाषा सुगठित, साधु तथा प्रशान्त हैं। उनके प्रसिध्द निबन्ध–संग्रह इस प्रकार हैं– 'विचार और अनुभूति', 'विचार और विवेचन', 'विचार और विश्लेषण', 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ' आदि। सारांश यह हैं कि डा. नगेन्द्र ने अपने आलोचनात्मक निबन्धों द्वारा अपने गृहीत विषयों को सफलतापूर्वक सरल और स्पष्ट बनाया हैं। ये निबन्ध इनकी आत्माभिव्यक्ति के साधन भी है।

(५) जैनेन्द्रकुमार :–

इनके निबन्ध प्राय: साहित्यिक विषयों पर ही आधारित हैं, और 'हंस' पत्रिका में अधिकतर प्रकाशित हुये हैं। इन्होंने दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक आदि अनेक विषयों पर अपने विचार प्रकट किये हैं। विचारात्मक निबन्धों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। साथ ही दार्शनिक विषयों पर भी इन्होंने अपने गंभीर विचार प्रकट किये हैं। सामान्य विषयों पर भी इन्होंने प्रश्नोत्तरी शैली में उच्चकोटि के निबन्ध लिखे हैं। इस प्रकार के निबन्धों में इनका व्यक्तित्व स्पष्ट दिखाई पडता है। इनके निबन्ध पाठक को किसी एक सुस्पष्ट निर्णय तक नहीं पहुँचाते, अपितु उसे चक्करदार मार्ग से ले जाकर एक संदिग्ध स्थिति में छोड देते हैं। जैनेन्द्र पाठक पर अपना निर्णय नहीं थोपते; अपितु उसकी निर्णय शक्ति उत्तेजित एवं आन्दोलित कर देते हैं, जिससे वह स्वयं ही निर्णय पर पहुँच जाता है। उनके निबन्ध संग्रह – जैनेन्द्र के विचार, जड़ की बात, पूर्वोदय, साहित्य का श्रेय और प्रेय, प्रस्तुत प्रश्न, सोच–विचार, मंथन आदि हैं।

(६) डा. रामविलास शर्मा :–

अद्यतन–युग के प्रगतिवादी (मार्क्सवादी) निबन्धकारों में डा. रामविलास शर्मा अग्रगण्य है। इनके अधिकांश निबन्ध आलोचनात्मक है। अत्यन्त तीखी, व्यंग्यपूर्ण एवं सशक्त शैली में अपने विषय को प्रस्तुत करनेवाले निबन्धकारों में इनका विशेष स्थान है। उन्होंने साहित्य, कला, संस्कृति एवं राजनीति सम्बन्धी विषयों पर शताधिक निबन्ध प्रस्तुत किये हैं, जो 'संस्कृति और साहित्य', 'प्रगति और परम्परा,' 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ', 'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य' आदि संग्रहों में संग्रहित हैं।

(७) रामधारी सिंह 'दिनकर':–

हिन्दी के सुप्रसिध्द कवि रामधारी सिंह दिनकरजी ने निबन्ध के विकास में भी अपना योगादान दिया है। 'अर्धनारीश्वर', 'हमारी सांस्कृतिक एकता', 'प्रसाद, पन्त और मैथिलीशरण', 'राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय साहित्य' इनके निबन्ध संग्रहों के नाम है।

(८) डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल :–

अग्रवाल ने भारतीय संस्कृति, इतिहास, कला तथा पुरातत्व आदि विषयों पर निबन्ध लिखें हैं। इन के पृथिवीपुत्र, माताभूमि, तथा कला और संस्कृति' आदि निबन्धसंग्रह बडे प्रसिध्द है। इन्होंने अपने निबंधों में भारतीय संस्कृति के रहस्यमय तथ्यों तथा अनेक उलझावों को स्पष्ट करने के लिए शोध पूर्ण व्याख्या प्रधान निबंध लिखे है।

(९) कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर :–

प्रभाकरजी ने रेरवाचित्र एवं संस्मरणों के अतिरिक्त ललित निबंध भी लिखे हैं। उनके निबंधों के विषय व्यावहारिक जगत् तथा जनसाधारण की समस्याओं से संबंधित हैं,

उनमें आत्माभिव्यंजना प्रमुख है तथा लेखक के व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। चिंतन के साथ–साथ वैयक्तिक अनुभूतियाँ इनके निबंधों की विशेषता है। 'जिन्दगी मुस्करायी, बाजे पायलिया, घुंगरु महके अंगन,, चहके द्वार, माटी हो गयी सोना, दीप जले शंरव बजे आदि इनके प्रसिध्द निबंध–संग्रह है।

(१०) अज्ञेय

अज्ञेय कवि–रुप में जितने चर्चित हुए, उतने ही कथाकार के रुप में भी। साथ ही साथ निबंधकार के रुप में भी उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त हुयी है। उनके प्रमुख निबन्ध संग्रह है– त्रिशंकु, आलबाल, आद्यतन, जोग लिखी, धार और किनारे, केन्द्र और परिधि, भवन्ती, सर्जना और सन्दर्भ, स्मृतिलेखा आदि। अज्ञेय ने विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक तथा नाटकीय शैली का प्रयोग करते हुए हिन्दी निबन्ध साहित्य को समृध्द किया है।

(११) विद्यानिवास मिश्र :–

आधुनिक युग के प्रतिभासम्पन्न निबंधकारों में पं. विद्यानिवास मिश्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मिश्रजी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण उनकी रचनाओं में एक ओर तो भारतीय संस्कृति का पुनराख्यान हुआ है तो दूसरी ओर लोकजीवन एवं लोक संस्कृति का उज्ज्वल आलोक भी उसमें प्रकाशित हो रहा है। इनके निबंधों की प्रमुख विशेषता यह है कि; साधारण विषय को लेकर भी उन्हें पौराणिक, साहित्यिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भों से युक्त करके इतना प्रभावशाली बना दिया है कि उन्हें पढते ही मन प्रसन्न हो उठता है। इनके प्रसिध्द संकलनों के नाम हैं– चित्तवन की छाँह, तुम चन्दन हम पानी, आंगन का पंछी और बनजारा मन, बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं, मैंने सिल पहुँचाई आदि। मिश्रजी के निबंन्धों में भारतीय संस्कृति बोलती है। आम्र मंजरी, घने नीम तरु तले, विंध्य की धरती का वरदान, हिमालय, कदम की फूली डार, शिरीष का आग्रह और मेरे राम का मुकुट भीग रहा है इनके प्रसिध्द निबंध है।

(१२) कुबेरनाथ राय :–

हिन्दी के आधुनिक विशुध्द ललित निबंधकारों में कुबेरनाथ राय का अद्वितीय स्थान है। उनके निबंध व्यक्ति–प्रधान हैं, जिसमें मौलिक चिन्तन, पाण्डित्य की छाप के साथ–साथ व्यंग्य–विनोद का पुट भी विद्यमान है। इनके द्वारा लिखे गये निबंध रोचक, ज्ञान वर्धक, आकर्षक एवं मनोरंजक हैं। सुदूर अतीत के पौराणिक पर्यावरणों में लिपट कर वर्तमान जीवन का साकार स्वरुप उभार देने में कुबेरनाथ राय सिध्दहस्त है। अपने युग परिवेश की समस्याओं को इतिहास पुराण के सन्दर्भ में एक नूतन आयाम के साथ, स्वतंत्र चिन्तन–मनन की परिधियों में रुपायित करने की अद्‌भूत शक्ति उनमें है। इनके निबंध साहित्य में एक ओर भावुकता है तो दूसरी ओर यथार्थ जीवन का जीवन्त स्वरुप भी है। कुबेरनाथ जी के प्रसिध्द निबंध संकलन है– प्रिया निलकंठी, रस आखेटक, गंधमादन, विषाद योग, निषाद बाँसुरी, पर्ण मुकुट, महाकवि की तर्जनी, कामधेनु मन पवन की नौका, किरात नदी में चन्द्रमधु, दृष्टि अभिसार, मराल, उत्तर कुरु, वाणी का क्षीरसागर, अंधकार में अग्निशिखा आदि। इन संकलनों में संकलित निबंध चार प्रकार के हैं– भावात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक और

विवरणात्मक/भावात्मक निबंधों को ललित निबंध कहा जा सकता है। इनके प्रसिध्द ललित निबंध है– इस आखेटक, जम्बुक, देह वल्कल, विरुपाक्ष, किरण सप्तपदी, चित्र विचित्र, शरद बांसुरी और विपन्न मराल, वेणु कीचक, दर्पण विश्वासी, सारंग तथा राघव: करुणो रस: आदि।

(१३) ठाकुरप्रसाद सिंह :–

ठाकुरप्रसाद सिंह मूलत: ललित निबंधकार के रुप में प्रसिध्द है। इनके 'पुराना घर नये लोग' तथा 'मोर पंख' दो प्रसिध्द निबंध–संग्रह है। ठाकुरप्रसाद सिंह की उल्लेखनिय विशेषता यह है कि ये व्यक्ति के मन के भीतर प्रवेश करके उसके मर्मबिंदु से अपने आपको जोड लेते है। उनके अधिकतर निबंध संस्मरणात्मक और आत्मकथ्यपरक है।

(१४) धर्मवीर भारती :–

धर्मवीर भारती कवि होने के साथ–साथ हिन्दी के सफल निबंधकार है। इनके पाँच निबन्ध–संग्रह उपलब्ध है– ठेले पर हिमालय, पश्यन्ती, कहनी अनकहनी, कुछ चेहरे कुछ चिन्तन और शब्दिता। इन निबंधों में भारती की निबंध–लेखन प्रतिभा उजागर हुयी है। 'पश्यती' में जो निबंध संकलित है, वे भारती के व्यापक और गंभीर अध्ययन–मनन और मौलिक विवेचन से परिपूर्ण है।

(१५) हरिशंकर परसाई :–

आधुनिक युग के हास्य और व्यंग्य के निबंध लेखकों में हरिशंकर परसाई प्रतिनिधि निबंधकार के रुप में प्रतिष्ठित हैं। हिन्दी साहित्य में व्यंग्य विधा को सही अर्थों में प्रतिष्ठित करनेवालों में परसाई का नाम बडे गौरव के साथ लिया जाता है। उन्होंने आधुनिक हिन्दी व्यंग्य लेखन को एक सर्वथा नवीन मोड दिया है। आज के जीवन और समाज में व्याप्त अन्तर्विरोधों विसंगतियों, भ्रष्टाचार और ढोंग की कलई खोलने और भद्रता के मुखौटे धारण करने वालों को बेनकाब करने की कला में परसई जी अपना सानी नहीं रखते। सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में फैली असंगतियों पर उन्होंने अपने निबन्धों के माध्यम से करारा व्यंग्य किया है। परसाई जी के प्रसिध्द निबन्ध संग्रह हैं– पगइंडियों का जमाना, जैसे उनके दिन फिरे, सदाचार का तावीज, शिकायत मुझे भी है, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, अपनी–अपनी बीमारी, वैष्णव की फिसलन, विकलांग श्रध्दा का दौर, भूत के पाँव पीछे, बेईमानी की परत, सुनो भाई साधौ, तुलसीदास चन्दन धिसे, कहत कबीर, हँसते हैं रोते हैं, तब की बात और थी, ऐसा भी सोचा जाता हैं, पाखण्ड का अध्यात्म और आवारा भीड के खतरे आदि। निश्चय ही परसाई जी व्यंग्यात्मक निबंध–लेखन में अपना प्रतिमान आप हैं।

(१६) श्रीलाल शुक्ल :–

श्रीलाल शुक्ल प्रसिध्द कथाकार के साथ–साथ प्रसिध्द व्यंग्य निबंधकार भी है। इन्होंने अपने निबन्धों में आधुनिक जीवन की विसंगतियों पर प्रहार भी किया है और कहीं–कहीं चुटकी भी ली है। शुक्लजी की श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ है– अंगद का पाँव, यहाँ से वहाँ, कुछ जमीन पर कुछ हवा में, आओ बैठ लें कुछ देर और अगली शताब्दी का शहर आदि।

(१७) शरद जोशी :–

हिन्दी व्यंग्य निबंधकारों में शरद जोशी का नाम भी उल्लेखनिय है। परसाई की तरह शरद जोशी ने भी राजनीति, समाज तथा संस्कृति की विसंगतियों को अपने निबन्धों में अनावृत्त किया है। इनके प्रसिध्द निबन्ध संग्रह– जीप पर सवार झलियाँ, किसी बहाने, रहा किनारे बैठ, तिलस्म, दूसरी सतह, सभी साक्षी हैं आदि।

(१८) शंकर पुणतांबेकर :–

शंकर पुणतांबेकर की गणना व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई और शरद जोशी के बाद की पीढी में होती है। अपने निबंधों में पुणतांबेकर ने सामाजिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक और जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों की विसंगतियों पर गहरा प्रहार किया है। उनके प्रसिध्द व्यंग्य–संग्रह है– रेडीमेड कपडे, कैक्टस के काँटे, प्रेम विवाह, विजिट यमराज की, अंगूर खट्टे नहीं है, बदनामचा, गुलेल भाग–१, गुलेल भाग–२, गुलेल भाग–३, गुलेल भाग–४, गुलेल भाग–५, पतनजली, शतरंज के खिलाडी, मेरी फाँसी, गिद्ध मंडरा रहा है, तेरहवां डिनर, पराजय की जुबली आदि।

(१९) रामदरश मिश्र :–

रामदरश मिश्र कवि कथाकार–समीक्षक के साथ–साथ ललित निबंधकार भी है। ग्रामीण चेतना और उसके संस्कारों से जुडे हुए मिश्रजी के निबंध भी उनकी इसी चेतना के वाहक है। ठेठ ग्रामीण संवेदना और जीवन–मुल्यों से जुडे रहकर मिश्रजी ने आज के मनुष्य को प्रेरित और प्रभावित करने वाले मूल प्रश्नों को अपने निबंधों में उठाया है। 'कितने बजे हैं'', 'बबूल और कैन्टस', घर–परिवार मिश्रजी के तीन प्रसिध्द निबंध–संग्रह है।

(२०) विवेकी राय :–

विवेकी राय आजादी के पश्चात विकसित और परिवर्तित गाँवों की संक्रान्ति–चेतना के शिल्पी हैं। किसानों का देश, गाँवों की दुनिया, त्रिधारा, फिर बैतलवा डाल पर, जुलूस रुका है, गँवई गंध गुलाब, नया गाँवनाम, आम रास्ता नहीं है, आस्था और चिन्तन, जगत तपोवन सौ कियौ और बन तुलसी की गंध इनके प्रसिध्द निबंध–संग्रह हैं। इनके निबंधों में आधुनिक व्यवस्था के अन्तर्गत गाँवों की सारी स्वस्थ परम्पराओं के टूटने ओर सांस्कृतिक मूल्यों के विघटित होने की प्रक्रिया को बहुत गहराई से देखा–परखा गया है।

(२१) शिवप्रसाद सिंह :–

शिवप्रसाद सिंह आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की परंपरा के प्रसिध्द ललित निबंधकार है। शिखरों के सेतु, कस्तुरी मृग, चतुर्दिक, मनसी गंगा, किस किसको नमन करूँ, क्या करूँ कुछ कहा न जाये और खालिस मौज में इनके प्रकाशित निबंध संग्रह है। इनके निबंध लेखन में विद्वता, यायावरी वृत्ति, लोक–कथा प्रेम, सूक्ष्म विचार शक्ति और गद्य काव्य की शैली विद्यमान है।

(२२) विष्णुकांत शास्त्री :–

शास्त्री मुख्यतः चिन्तनशील समीक्षक के रुप में विख्यात है। इनके तीन निबंध संग्रह प्रकाशित है– 'कुछ चन्दन की, कुछ कपूर की', 'चिन्तन–मुद्रा' और 'अनुचिन्तन'। शास्त्रीजी का निबंध लेखन उनके गहन–गम्भीर विचारों का प्रतिफलत है।

(२३) निर्मल वर्मा :–

निर्मल वर्मा भारत की आस्था– विश्वास मूलक अन्तश्चेतना से समृध्द हिन्दी निबंधकार हैं। चीडों पर चाँदनी, हर बारिश में, शब्द और स्मृति, कला का जोखिम, ढलान से उतरते हुए, तथा शतब्दी के ढलते वर्षों में इनके प्रसिध्द निबंध संग्रह हैं।

उपर्युक्त निबंधकारों के अतिरिक्त नामवर सिंह, रमेशचन्द्र शाह, रविन्द्रनाथ त्यागी, गोपाल चतुर्वेदी, रविन्द्र कालिया, सुदर्शन मजाठिया, प्रभाकर श्रोत्रिय, कृष्णदत्त पालीवाल, श्रीराम परिहार तथा कृष्णबिहारी मिश्र आदि के नाम उल्लेखनिय है। जिससे कहा जा सकता है कि हिन्दी निबंध का भविष्य उज्ज्वल है।

१४.४ बोध प्रश्न :–

१. हिन्दी निबंध साहित्य के विकास को रेखांकित कीजिए?
२. हिन्दी निबंध साहित्य में भारतेन्दु के योगदान कों रेखांकित कीजिए?

◆◆◆◆◆◆

T.Y.B.A. HIND PART - IV

Con. 1670 (a)-10 2 RV-7382

(REVISED COURSE)

(3 Hours) [Total Marks: 100]

सूचना : (१) सभी प्रश्न **अनिवार्य है।**

(२) उत्तर पुस्तिका पर प्रश्न क्रमांक / उप प्रश्न क्रमांक अवश्य लिखें।

(३) आई.डी.ओ.एल, (पत्राचार) के विद्यार्थी उत्तर पुस्तिका **के मुख्य पृष्ठ** पर **आई.डी.ओ.एल. (पत्राचार) अवश्य** लिखें।

१. वीरगाथा काव्य की प्रवृत्तियों का सामान्य परिचय दीजिए। २०

अथवा

आदिकालीन संत काव्य की विशेषताओं को विशद कीजिए।

२. भक्तिकालीन संत काव्य की विशेषताओं को विशद कीजिए। २०

अथवा

रामभक्तिशाखा की प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।

३. रामभक्तिशाखा का नामकरण करते हुए रीतिमुक्त साहित्य का परिचय दीजिए। २०

अथवा

रीतिबद्ध काव्य की विशेषताओं को प्रकाश डालिए।

४. छायावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ विशद कीजिए। २०

अथवा

हिन्दी निबंध साहित्य का क्रमिक विकास लिखिए।

५. (अ) किसी एक विषय पर टिप्पणी लिखिए :– १०

(१) कृष्णभक्तिशाखा

(२) भारतेंदु युग।

(ब) सभी वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर लिखिए :– १०

(१) हिन्दी का प्रथम कवि किसे माना जाता हैं ?

(२) प्रेमाख्यान काव्य किस शैली में लिखे गये हैं ?

(३) कवि प्रिया किसकी रचना हैं ?

(४) आधुनिक काल में लिखा गया खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य कौन–सा हैं ?

(५) नई कहानी का प्रारंभ कब से माना जाता हैं ?

(६) 'झाँसी की रानी' शीर्षक कविता के रचयिता का नाम लिखिए।

(ट) जयशंकरप्रसा (ड) सुभद्राकुमारी चौहान

(ठ) दिनकर (ढ) माखनलाल चतुर्वेदी

(७) 'हिन्दी प्रदीप' के संपादक इनमें से कौन थे?

(ट)	भारतेंदु	(ड)	बालकृष्ण भट्ट
(ठ)	प्रतापनारायण मिश्र	(ढ)	महावीरप्रसाद द्विवेदी

(८) इनमें से कौन–सा नाटक प्रसाद जी का नहीं है?

(ट)	स्कंदगुप्त	(ड)	ध्रुवस्वमिनी
(ठ)	चंद्रगुप्त	(ढ)	अंधेरनगरी

(९) 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक के रचयिता कौन है?

(ट)	सुरेंद्र वर्मा	(ड)	मणि मधुकर
(ठ)	शंकर शेष	(ढ)	रामकुमार वर्मा

(१०) 'धुमक्कंड शास्त्र' के लेखक कौन है?

(ट)	अज्ञेय	(ड)	रांगेय राघव
(ठ)	राहुल सांस्कृत्यायन	(ढ)	यशपाल

T.Y.B.A. HIND PART - IV

Con. 376 & (a)-11 (OLD COURSE) RD-1469-1470

(3 Hours) [Total Marks: 100]

सूचना : (१) **सभी** प्रश्न **अनिवार्य है।**

(२) उत्तर पुस्तिका पर प्रश्न क्रमांक/उप प्रश्न क्रमांक **अवश्य** लिखें।

(३) **आई.डी.ओ.एल, (पत्राचार) के** विद्यार्थी उत्तर पुस्तिका **के मुख्य पृष्ठ** पर **आई.डी.ओ.एल. (पत्राचार) अवश्य** लिखें।

१. वीरगाथा काव्य की प्रवृत्तियों का सामान्य परिचय दीजिए। २०

अथवा

आदिकालीन जैन साहित्य और लौकिक साहित्य का विवेचन कीजिए।

२. भक्तिकाल के संत काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। २०

अथवा

राम भक्ति काव्य की प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए।

३. रीतिकाल का नामकरण करते हुए रीतिबद्ध काव्य का सामान्य परिचय दीजिए। २०

अथवा

रीतिबद्ध काव्य धारा की विशेषताओं का विवरण दीजिए।।

४. प्रयोगवादी काव्य की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए। २०

अथवा

हिन्दी कहानी का विकास क्रम लिखिए।

५. (क) किसी **एक** विषय पर टिप्पणी लिखिए :– १०

(१) नाथ साहित्य।

(२) भारतेंदुयुगीन कविता।

(ख) सभी वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर लिखिए :– १०

(१) 'संदेश रासक' के रचयिता का नाम लिखिए।

(२) सूफी काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि कौन है?

(३) रीतिकाल के किस प्रमुख कवि ने वीर रस प्रधान कविताएँ लिखी।

(४) 'कामायनी' में किस दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है?

(५) 'शंबूक' नामक कृति के रचयिता कौन है?

(६) नाभादास किस काव्य धारा के कवि है?

(ट) कृष्ण भक्ति काव्य (ड) संत काव्य

(ठ) राम काव्य (ढ) सूफी काव्य

(७) 'कविप्रिया' किसकी रचना है?

(ट) रहिम (ड) घनानंद

(ठ) केशवदास (ढ) सूरदास

(८) इनमें से कौन–सी कृति अज्ञेय की नहीं है?

(ट) हरी घास पर क्षण भर (ड) अरी ओ करुणा प्रभामय

(ठ) आँगन के पार द्वार (ढ) संसद से सड़क तक।

(९) 'कबिरा खड़ा बजार में' के रचयिता कौन है?

(ट) भीष्म सहानी (ड) गोविंद चालक

(ठ) सुरेंद्र वर्मा (ढ) जगदीशचंद्र माथुर

(१०) 'प्रेमचंद की जीवनी किस नाम से लिखी गई है?

(ट) कलम का मजदूर (ड) कलम का सिपाही

(ठ) कलमकार (ढ) आवारा मसीहा

T.Y.B.A. HIND PART - IV

Con. 376 & (a)-11 2
(REVISED COURSE) RD-1470
(3 Hours) [Total Marks: 100]

सूचना : (१) सभी प्रश्न **अनिवार्य है।**
(२) उत्तर पुस्तिका पर प्रश्न क्रमांक/उप प्रश्न क्रमांक **अवश्य** लिखिए।
(३) आई.डी.ओ.एल, (पत्राचार) के विद्यार्थी उत्तर पुस्तिका **के मुख्यपृष्ठ** पर **आई.डी.ओ.एल. (पत्राचार) अवश्य** लिखें।

१. हिन्दी साहित्य के काल विभाजन एवं नामकरण के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों के मत–मतन्तारों की चर्चा कीजिए। २०

अथवा

वीरगाथा कालीन काव्य की सामान्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

२. संत काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों को सविस्तर स्पष्ट कीजिए। २०

अथवा

कृष्ण भक्ति साहित्य की सामान्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

३. रीति मुक्त काव्य की प्रवृत्तियों को सविस्तर स्पष्ट कीजिए। २०

अथवा

रीतिबद्ध काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

४. छायावादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए। २०

अथवा

हिन्दी कहानी विधा की विकास यात्रा पर प्रकाश डालिए।

५. (क) किसी **एक** विषय पर टिप्पणी लिखिए :– १०
(१) सिद्ध साहित्य
(२) प्रयोगवाद

(ख) निम्नलिखित सभी प्रश्नों के उत्तर लिखिए :– १०
(१) हिन्दी साहित्य को आरंभिक युग को 'आदिकाल' के नाम से किसने अभिहित किया है?
(२) भ्रमरगीत के रचनाकार का नाम लिखिए?
(३) रीतिकाल के किस कवि ने वीररस प्रधान रचनाएँ की है?
(४) 'सरोजस्मृति' नामक रचना किस कवि ने की है?
(५) 'चिन्तामणि' किसके निबंधो का संकलन है?
(६) हिन्दी साहित्य के आदिकाल को 'सिद्ध सामंत काल' किसने कहा है?

(ट) रामचन्द्र (ड) रामकुमार वर्मा
(ठ) राहुल सांकृत्यायन (ढ) डॉ. नगेन्द्र

(७) 'पुष्टिमार्ग' का जहाज किस कवि को कहा गया है?
(ट) कबीरदास (ड) घनानंद
(ठ) तुलसीदास (ढ) केशवदास

(८) कौन–सा कवि 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से प्रसिद्ध है?
(ट) रामनरेश त्रिपाठी (ड) नरेन्द्र शर्मा
(ठ) माखनलाल चतुर्वेदी (ढ) पंत

(९) सरस्वती के संपादक इनमें से कौन थे?
(ट) प्रतापनारायण मिश्र (ड) महावीर प्रसाद द्विवेदी
(ठ) हजारी प्रसाद द्विवेदी (ढ) हरिऔंध

(१०) 'त्यागपत्र' उपन्यास के लेखक का नाम बताइए?
(ट) यशपाल (ड) अमृतलाल नागर
(ठ) जयशंकर प्रसाद (ढ) जैनेन्द्रकुमार